भगवान् महावीरके २५००वें निर्वाण महोत्सवके उपलक्ष्यमें

भारतके दिगम्बर जैन तीर्थ

[प्रथम भाग]

उत्तर प्रदेश और दिल्ली राज्य

संयोजन एवं निर्देशन

भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली

संकलन-सम्पादन

बलभद्र जैन

प्रकाशक

भारतवर्षीय दिगम्बर जैन तीर्थक्षेत्र कमेटी,

हीराबाग, बम्बई-४

प्रकाशक :
भारतवर्षीय दिगम्बर जैन तीर्थक्षेत्र कमेटी,
हीराबाग, बम्बई–४

प्रथम संस्करण : नवम्बर १९७४
मूल्य : तीस रुपये

© Bharatvershiya Digamber Jain Tirth-kshetra Committee,
Hirabaug, Bombay-4

मुद्रक
सन्मति मुद्रणालय
दुर्गाकुण्ड मार्ग, वाराणसी–२२१००५

आमुख

भारतवर्षीय दिगम्बर जैन तीर्थक्षेत्र कमेटीको इस बातका हर्ष है कि 'भारतके दिगम्बर जैन तीर्थ'का यह प्रथम खण्ड भगवान् महावीरके २५००वें निर्वाण महोत्सव वर्षके शुभारम्भके दिन प्रकाशित हो रहा है। हमारी पीढ़ीका यह सौभाग्य है कि हम, जो भगवान्के निर्वाणके ढाई हजारवें वर्षकी परिसमाप्तिके महान् पर्वके साक्षी हैं, उसे मना रहे हैं और उनके तीर्थंकरत्वका गुणगान करके धन्य हो रहे हैं। हमारी आस्थाको आधार देनेवाले, हमारे जीवनको कल्याणमय बनानेवाले, हमारी धार्मिक परम्पराकी अहिंसामूलक संस्कृतिकी ज्योतिको प्रकाशमान रखनेवाले, जन-जनका कल्याण करनेवाले हमारे तीर्थंकर ही हैं। जन्म-मरणके भवसागरसे उबार कर अक्षय सुखके तीरपर ले जानेवाले तीर्थंकर प्रत्येक युगमें 'तीर्थ' का प्रवर्तन करते हैं; अर्थात् मोक्षका मार्ग प्रशस्त करते हैं। तीर्थंकरोंकी इस महिमाको अपने हृदयमें बसाये रखने, और अपने श्रद्धानको अक्षुण्ण बनाये रखनेके लिए हमने उन सभी विशेष स्थानोंको 'तीर्थ' कहा जहाँ-जहाँ तीर्थंकरोंके जन्मादि 'कल्याणक' हुए, जहाँसे केवली भगवान्, महान् आचार्य साधु और 'सिद्ध' हुए, जहाँके 'अतिशय'ने श्रद्धालुओंको अधिक श्रद्धायुक्त बनाया, उन्हें चमत्कारी प्रभावोंसे साक्षात्कार कराया। ऐसे पावन स्थानोंमेंसे कुछ हैं जो 'ऐतिहासिक' कालके पूर्वसे ही पूजे जाते हैं और जिनका वर्णन पुराण-कथाओंकी परम्परासे पुष्ट हुआ है। अन्य तीर्थोंके साथ इतिहासकी कोटिमें आनेवाले तथ्य जुड़ते चले गये हैं और मनुष्य-की कलाने उन्हें अलंकृत किया है। स्थापत्य, मूर्तिकला, विविध शिल्प-कारोंने इन स्थानोंके महत्त्वको बढ़ाया है। अनादि-अनन्त प्रकृतिका मनोरम रूप और वैभव तो प्रायः सभी तीर्थों पर विद्यमान है।

ऐसे सभी तीर्थस्थानोंकी वन्दनाका प्रबन्ध और तीर्थोंकी सुरक्षाका दायित्व समाजकी जो संस्था अखिल भारतीय स्तरपर वहन करती है, उसे 'गौरव' की अपेक्षा अपनी सीमाओंका ध्यान अधिक रहता है, और यही ऐसी संस्थाओंके लिए शुभ होता है, यह ज्ञान उन्हें सक्रिय रखता है।

भारतवर्षीय दिगम्बर जैन तीर्थक्षेत्र कमेटी अपनी सीमाओंको अच्छी तरह जानती है, किन्तु वह यह भी जानती है कि जो जैन समाज इन तीर्थोंकी वन्दना करके धन्य होती है, वह इन तीर्थोंकी रक्षाके लिए तन-मन-धनका योगदान देनेमें सहयोगी रही है, तभी कुछ सम्भव हो पाया है।

भगवान् महावीरके पच्चीस सौवें निर्वाणका यह महोत्सव ऐसा अवसर है जब तीर्थोंकी सुरक्षाका बहुत बड़ा और व्यापक कार्यक्रम जो कमेटीने बनाया है, और आगे बनानेके लिए तत्पर है, उसमें प्रत्येक भाई-बहिन को यथा-सामर्थ्य योगदान देनेकी अन्तःप्रेरणा उत्पन्न होना स्वाभाविक है। यह प्रेरणा मूर्त रूप ले और यात्री भाई-बहनों को तीर्थ-वन्दनाका पूरा सुफल, आनन्द और ज्ञान प्राप्त हो, इस दृष्टिसे तीर्थक्षेत्र कमेटीने इस ग्रन्थमालाका प्रकाशन प्रारम्भ किया है। ग्रन्थमालाका यह पहला खण्ड है।

प्रकाशनकी इस परिकल्पनाको पग-पगपर साधनेका सर्वाधिक श्रेय श्रीसाहू शान्तिप्रसादजीको है, जिनके सभापतित्व-कालमें इस ग्रन्थकी सामग्रीके संकलनका और लेखनका कार्य प्रारम्भ हुआ और आज प्रथम खण्डका प्रकाशन भी उनके निर्देशनमें सम्पन्न हुआ है। आगेके चार खण्ड भी उनके निर्देशनमें तैयार हो रहे

हैं। हमारा प्रयत्न है कि महोत्सव वर्षके भीतर अधिकसे अधिक भाग प्रकाशमें आ जायें। मैं तीर्थक्षेत्र कमेटी बम्बईकी ओर से श्री साहूजीके प्रति कृतज्ञता ज्ञापन करता हूँ। ऐसा करना मेरा और कमेटीका सुखद कर्तव्य है।

तीर्थक्षेत्र कमेटी और भारतीय ज्ञानपीठके संयुक्त तत्त्वावधानमें इस ग्रन्थमालाकी सामग्रीका संकलन, लेखन और प्रकाशन हुआ है। मैं सभी सहयोगियोंका आभारी हूँ।

लालचन्द हीराचन्द
सभापति
भारतवर्षीय दिगम्बर जैन तीर्थक्षेत्र कमेटी,
बम्बई

१ नवम्बर, १९७४।

प्रस्तुति

'भारतके दिगम्बर जैन तीर्थ ग्रन्थमाला'का यह पहला पुष्प पहले भागके रूपमें भगवान् महावीरके निर्वाण महोत्सवकी स्मृतिमें समर्पित है। यह समर्पण हमारे जीवनका सौभाग्य है।

इस खण्डमें उत्तरप्रदेशके तीर्थोंका वर्णन प्राचीन क्षेत्रीय भू-भागोंके नामोंके आधारपर किया गया है। अर्थात् (१) कुरुजांगल और शूरसेन, (२) उत्तराखण्ड, (३) पंचाल, (४) काशी और वत्स, (५) कोशल और, (६) चेदि। इस पद्धतिसे प्राचीन इतिहास, पुराण कथा और परम्पराके साथ सन्दर्भोंका मेल बैठानेमें सरलता होगी। दिल्ली राज्य और आज जो प्राचीन भू-भाग पाकिस्तानकी सीमामें आ गया है, उस पोदनपुर-तक्षशिलाका भी परिचय इस खण्डके परिशिष्टमें दिया गया है।

तीर्थक्षेत्र कमेटीकी ओरसे पण्डित बलभद्रजी गत चार वर्षोंसे कमेटी द्वारा पूर्व संकलित सामग्रीके आधार पर कार्य कर रहे हैं। उन्होंने तात्कालिक यात्राओं द्वारा संकलनमें नयी सामग्री जोड़कर लेखन-सम्पादनको अद्यतन बनानेका प्रयत्न किया है। कमेटी द्वारा ग्रन्थमालाकी योजना किस प्रकार निर्धारित और स्वीकृत है इसका उल्लेख पण्डित बलभद्रजी अपनी भूमिकामें कर रहे हैं। योजनाके अनुसार उक्त पहले भागके प्रकाशनके उपरान्त अगले चार भाग इस प्रकार नियोजित हैं :

दूसरा भाग	—बंगाल, बिहार, उड़ीसाके तीर्थ
तीसरा भाग	—मध्यप्रदेशके तीर्थ
चौथा भाग	—राजस्थान, गुजरात, महाराष्ट्रके तीर्थ
पाँचवाँ भाग	—दक्षिण भारतके तीर्थ

इनमें से दूसरे और तीसरे खण्डोंकी संकलित सामग्रीका निरीक्षण-संशोधन प्रस्तावित यात्राओंसे प्राप्त सभी जानकारीके आधारपर चल रहा है। दक्षिण भारतकी यात्राओं और सामग्री-संकलनका प्रबन्ध अलगसे किया गया है ताकि इस ग्रन्थमालाके सभी खण्ड जल्दी प्रकाशित किये जा सकें।

जैसा कि इस प्रथम भागसे स्पष्ट होगा, तीर्थोंके वर्णनमें पौराणिक, ऐतिहासिक और स्थापत्य तथा कलापरक सामग्रीका संयोजन बड़े परिश्रम और सूझ-बूझसे किया गया है। पण्डित बलभद्रजीका इस कार्यमें व्यापक अनुभव है। सामग्रीको सर्वांगीण बनानेकी दिशामें जो भी सम्भव था, कमेटीके साधन और ज्ञानपीठका निर्देशन और श्री साहू शान्तिप्रसादजीका मार्गदर्शन एवं प्रेरणा पण्डितजीको उपलब्ध रही है।

पुस्तकमें जितने मानचित्र और जितनी अधिक संख्यामें फोटो हैं, उनका संग्रह, ब्लाक आदिकी तैयारी और प्रकाशन आदि आज कितने व्यय-साध्य हैं, यह सर्व-विदित है। कागज, छपाई, जिल्दबन्दी आदिकी दरें उत्तरोत्तर बढ़ती गयी हैं। फिर भी तीर्थक्षेत्र कमेटीने इस ग्रन्थमालाको सर्व-सुलभ बनानेकी दृष्टिसे केवल लागत मूल्यके आधार पर दाम रखनेका निर्णय किया है। भारतीय ज्ञानपीठका व्यवस्था-सम्बन्धी जो व्यय हुआ है, और जो साधन-सुविधाएँ इस कार्यके लिए उपलब्ध की गयी हैं, उनका समावेश व्यय-राशिमें नहीं किया गया है। इस पहले भागके ६ अध्यायों (जनपदों) की कुछ प्रतियाँ अलग-अलग छपाई गयी हैं ताकि सम्बन्धित तीर्थक्षेत्र उतने ही अंशकी प्रतियाँ प्राप्त कर सकें।

हमारा विश्वास है कि इस प्रकाशनको उपयोगी, सुन्दर, ज्ञानवर्धक और तीर्थ-वन्दनाके लिए प्रेरणा-दायक माना जायेगा।

पूरा प्रयत्न करने पर भी त्रुटियाँ रह जाना सम्भव है। इस ग्रन्थके सम्बन्धमें सुझावों और संशोधनों-का स्वागत करेंगे।

लक्ष्मीचन्द्र जैन
मन्त्री
भारतीय ज्ञानपीठ
नयी दिल्ली

चन्दुलाल कस्तूरचन्द
महामन्त्री
भारतवर्षीय दिगम्बर जैन तीर्थक्षेत्र कमेटी, बम्बई

प्राक्कथन

तीर्थ

तीर्थ-मान्यता

प्रत्येक धर्म और सम्प्रदायमें तीर्थोंका प्रचलन है। हर सम्प्रदायके अपने तीर्थ हैं, जो उनके किसी महापुरुष एवं उनकी किसी महत्त्वपूर्ण घटनाके स्मारक होते हैं। प्रत्येक धर्मके अनुयायी अपने तीर्थों की यात्रा और वन्दनाके लिए बड़े भक्ति भावसे जाते हैं और आत्म-शान्ति प्राप्त करते हैं। तीर्थ-स्थान पवित्रता, शान्ति और कल्याणके धाम माने जाते हैं। जैन धर्ममें भी तीर्थ-क्षेत्र का विशेष महत्त्व रहा है। जैन धर्मके अनुयायी प्रति वर्ष बड़े श्रद्धा-भावपूर्वक अपने तीर्थों की यात्रा करते हैं। उनका विश्वास है कि तीर्थ-यात्रासे पुण्य-संचय होता है और परम्परासे यह मुक्ति-लाभ का कारण होती है। अपने इसी विश्वासकी बदौलत वृद्ध जन और महिलाएँ भी सम्मेद शिखर, राजगृही, माँगीतुंगी, गिरनार जैसे दुरूह पर्वतीय क्षेत्रों पर भी भगवान् का नाम स्मरण करते हुए चढ़ जाते हैं। बिना आस्था और निष्ठाके क्या कोई वृद्धजन ऐसे पर्वतपर आरोहण कर सकता है?

तीर्थकी परिभाषा

तीर्थ शब्द तॄ धातुसे निष्पन्न हुआ है। व्याकरणकी दृष्टिसे इस शब्दकी व्युत्पत्ति इस प्रकार है—'तीर्यन्ते अनेन वा।' 'तॄ प्लवनतरणयोः' (भ्वा. प. से.)। 'पातॄतुदि'—(उ.२।७) इति थक्। अर्थात् तॄ धातुके साथ थक् प्रत्यय लगाकर तीर्थ शब्दकी निष्पत्ति होती है। इसका अर्थ है—जिसके द्वारा अथवा जिसके आधारसे तरा जाय। कोषके अनुसार तीर्थ शब्द अनेक अर्थोंमें प्रयुक्त होता है। यथा—

निपानागमयोस्तीर्थमृषिजुष्टजले गुरौ।

—अमरकोष तृ. काण्ड श्लोक ८६

तीर्थं शास्त्राध्वरक्षेत्रोपायनारीरजःसु च।
अवतारर्षिजुष्टाम्बुपात्रोपाध्यायमन्त्रिषु॥

—मेदिनी

इस प्रकार कोषकारोंके मतानुसार तीर्थ शब्द जलावतरण, आगम, ऋषि जुष्ट जल, गुरु, क्षेत्र, उपाय, स्त्री-रज, अवतार, पात्र, उपाध्याय और मन्त्री इन विभिन्न अर्थों में प्रयुक्त होता है।

जैन शास्त्रोंमें भी तीर्थ शब्दका प्रयोग अनेक अर्थोंमें किया गया है। यथा—

संसाराब्धेरपारस्य तरणे तीर्थमिष्यते।
चेष्टितं जिननाथानां तस्योक्तिस्तीर्थसंकथा॥

—जिनसेनकृत आदिपुराण ४।८

अर्थात् जो इस अपार संसार-समुद्रसे पार करे उसे तीर्थ कहते हैं। ऐसा तीर्थ जिनेन्द्र भगवान्का चरित्र ही हो सकता है। अतः उसके कथन करने को तीर्थाख्यान कहते हैं।

यहाँ जिनेन्द्र भगवान्के चरित्र को तीर्थ कहा गया है।

आचार्य समन्तभद्रने भगवान् जिनेन्द्रदेवके शासनको सर्वोदय तीर्थ बताया है—

सर्वान्तवत्तद्गुणमुख्यकल्पं सर्वान्तशून्यं च मिथोऽनपेक्षम् ।
सर्वापदामन्तकरं निरन्तं सर्वोदयं तीर्थमिदं तवैव ॥
—युक्त्यनुशासन ६२

अर्थात् "आपका यह तीर्थ सर्वोदय (सबका कल्याण करनेवाला) है। जिसमें सामान्य-विशेष, द्रव्यार्थिक-पर्यायार्थिक, अस्ति-नास्ति रूप सभी धर्म गौण-मुख्य रूपसे रहते हैं, ये सभी धर्म परस्पर सापेक्ष हैं, अन्यथा द्रव्यमें कोई धर्म या गुण रह नहीं पायेगा। तथा यह सभीकी आपत्तियोंको दूर करनेवाला है और किसी मिथ्यावादसे इसका खण्डन नहीं हो सकता। अतः आपका यह तीर्थ सर्वोदय-तीर्थ कहलाता है।"

यह तीर्थ परमागम रूप है, जिसे धर्म भी कहा जा सकता है।

बृहत्स्वयंभू स्तोत्रमें भगवान् मल्लिनाथकी स्तुति करते हुए आचार्य समन्तभद्रने उनके तीर्थको जन्म-मरण रूप समुद्रमें डूबते हुए प्राणियोंके लिए प्रमुख तरण-पथ (पार होनेका उपाय) बताया है—

तीर्थमपि स्वं जननसमुद्रत्रासितसत्त्वोत्तरणपथोऽगम् ॥१०९

पुष्पदन्त-भूतबलि प्रणीत षट्खण्डागम (भाग ८, पृ. ९१) में तीर्थंकरको धर्म-तीर्थका कर्ता बताया है। आदिपुराणमें श्रेयान्सकुमारको दान-तीर्थका कर्ता बताया है। आदिपुराणमें (२।३९) मोक्षप्राप्तिके उपायभूत सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक् चारित्रको तीर्थ बताया है।

आवश्यक निर्युक्तिमें चातुर्वर्ण अर्थात् मुनि-अर्जिका श्रावक-श्राविका इस चतुर्विध संघ अथवा चतुर्वर्ण को तीर्थ माना है। इनमें भी गणधरों और उनमें भी मुख्य गणधरको मुख्य तीर्थ माना है और मुख्य गणधर ही तीर्थंकरोंके सूत्र रूप उपदेशको विस्तार देकर भव्यजनोंको समझाते हैं, जिससे वे अपना कल्याण करते हैं। कल्पसूत्रमें इसका समर्थन दिया गया है।

तीर्थ और क्षेत्र-मंगल

कुछ प्राचीन जैनाचार्योंने तीर्थके स्थानपर 'क्षेत्र-मंगल' शब्दका प्रयोग किया है। षट्खण्डागम (प्रथम खण्ड पृ. २८) में क्षेत्र-मंगलके सम्बन्धमें इस प्रकार विवरण दिया गया है—

तत्र क्षेत्रमंगलं गुणपरिणतासन-परिनिष्क्रमण-केवलज्ञानोत्पत्तिपरिनिर्वाणक्षेत्रादिः। तस्योदाहरणम्—ऊर्जयन्त-चम्पा-पावानगरादिः। अर्धाष्टारत्न्यादि-पञ्चविंशत्युत्तरपञ्च-धनुःशतप्रमाणशरीरस्थितकैवल्याद्यवष्टब्धाकाशदेशा वा, लोकमात्रात्मप्रदेशैर्लोकपूरणापूरितविश्वलोकप्रदेशा वा।

अर्थात् गुण-परिणत-आसन क्षेत्र अर्थात् जहाँ पर योगासन वीरासन इत्यादि अनेक आसनोंसे तदनुकूल अनेक प्रकार के योगाभ्यास, जितेन्द्रियता आदि गुण प्राप्त किये गये हों ऐसा क्षेत्र, परिनिष्क्रमण क्षेत्र, केवलज्ञानोत्पत्ति क्षेत्र और निर्वाण क्षेत्र आदि को क्षेत्र-मंगल कहते हैं। इसके उदाहरण ऊर्जयन्त (गिरनार), चम्पा, पावा आदि नगर क्षेत्र हैं। अथवा साढ़े तीन हाथ से लेकर पाँच सौ पच्चीस धनुष तकके शरीरमें स्थित और केवलज्ञानादिसे व्याप्त आकाश प्रदेशोंको क्षेत्र-मंगल कहते हैं। अथवा लोक प्रमाण आत्म-प्रदेशोंसे लोकपूरणसमुद्घात दशामें व्याप्त किये गये समस्त लोकके प्रदेशोंको क्षेत्र-मंगल कहते हैं।

बिलकुल इसी आशय की ४ गाथाएँ आचार्य यतिवृषभने तिलोयपण्णत्ति नामक ग्रन्थमें (प्रथम अधिकार गाथा २१-२४) निबद्ध की हैं और उन्होंने कल्याणक क्षेत्रोंको क्षेत्रमंगलकी संज्ञा दी है।

गोम्मटसारमें बताया है—

क्षेत्रमंगलमूर्जयन्तादिकमर्हदादीनाम्।

इस प्रकार हम देखते हैं कि तीर्थ शब्दके आशयमें ही क्षेत्र-मंगल शब्दका प्रयोग मिलता है। यदि अन्तर है तो इतना कि तीर्थ शब्द व्यापक है। तीर्थ शब्दसे उन सबका व्यवहार होता है, जो पार करनेमें साधन हैं। इन साधनोंमें एक साधन तीर्थ भूमियाँ भी हैं। इन तीर्थ भूमियों को ही क्षेत्र-मंगल शब्दसे व्यवहृत किया गया है। अतः यह कहा जा सकता है कि तीर्थ शब्दका आशय व्यापक है और क्षेत्र-मंगल शब्द का अर्थ व्याप्य है। तीर्थ शब्दके साथ यदि भूमि या क्षेत्र शब्द और जोड़ दिया जाय तो उससे वही अर्थ निकलेगा जो क्षेत्र-मंगल शब्दसे अभिप्रेत है।

तीर्थोंकी संरचनाका कारण

तीर्थ शब्द क्षेत्र या क्षेत्र-मंगलके अर्थमें बहुप्रचलित एवं रूढ़ है। तीर्थ-क्षेत्र न कहकर केवल तीर्थ शब्द कहा जाय तो उससे भी प्रायः तीर्थ-क्षेत्र या तीर्थ-स्थान का आशय लिया जाता है। जिन स्थानोंपर तीर्थंकरों के गर्भ, जन्म, अभिनिष्क्रमण, केवल-ज्ञान, और निर्वाणकल्याणकों में से कोई कल्याणक हुआ हो अथवा किसी निर्ग्रन्थ वीतराग तपस्वी मुनिको केवलज्ञान या निर्वाण प्राप्त हुआ हो, वह स्थान उन वीतराग महर्षियों-के संसर्गसे पवित्र हो जाता है। इसलिए वह पूज्य भी बन जाता है। वादीभसिंह सूरिने क्षत्रचूड़ामणि (६।४-५) में इस बातको बड़े ही बुद्धिगम्य तरीकेसे बताया है। वे कहते हैं—

पावनानि हि जायन्ते स्थानान्यपि सदाश्रयात् ॥
सद्भिरध्युषिता धात्री संपूज्येति किमद्भुतम्।
कालायसं हि कल्याणं कल्पते रसयोगतः ॥

अर्थात् महापुरुषोंके संसर्गसे स्थान भी पवित्र हो जाते हैं। फिर जहाँ महापुरुष रह रहे हों वह भूमि पूज्य होगी ही, इसमें आश्चर्यकी क्या बात है। जैसे रस अथवा पारसके स्पर्श मात्रसे लोहा सोना बन जाता है।

मूलतः पृथ्वी पूज्य या अपूज्य नहीं होती। उसमें पूज्यता महापुरुषोंके संसर्गके कारण आती है। पूज्य तो वस्तुतः महापुरुषोंके गुण होते हैं किन्तु वे गुण (आत्मा) जिस शरीरमें रहते हैं, वह शरीर भी पूज्य बन जाता है। संसार उस शरीरकी पूजा करके ही गुणोंकी पूजा करता है। महापुरुषके शरीरकी पूजा भक्तका शरीर करता है और महापुरुषके आत्मामें रहनेवाले गुणोंकी पूजा भक्तकी आत्मा अथवा उसका अन्तःकरण करता है। इसी प्रकार महापुरुष, वीतराग तीर्थंकर अथवा मुनिराज जिस भूमिखण्डपर रहे, वह भूमिखण्ड भी पूज्य बन गया। वस्तुतः पूज्य तो वे वीतराग तीर्थंकर या मुनिराज हैं। किन्तु वे वीतराग जिस भूमिखण्ड पर रहे, उस भूमिखण्ड की भी पूजा होने लगती है। उस भूमिखण्डकी पूजा भक्त-का शरीर करता है, उस महापुरुषकी कथा-वार्ता, स्तुति-स्तोत्र और गुण-संकीर्तन भक्तकी वाणी करती है और उन गुणोंका अनुचिन्तन भक्तकी आत्मा करती है। क्योंकि गुण आत्मा में रहते हैं, उनका ध्यान, अनुचिन्तन और अनुभव आत्मामें ही किया जा सकता है।

वीतराग तीर्थंकरों और महर्षियोंने संयम, समाधि, तपस्या और ध्यानके द्वारा जन्म-जरा मरणसे मुक्त होनेकी साधना की और संसारके प्राणियोंको संसारके दुखोंसे मुक्त होनेका उपाय बताया। जिस मिथ्या-मार्गपर चलकर प्राणी अनादि कालसे नाना प्रकारके भौतिक और आत्मिक दुख उठा रहे हैं, उस मिथ्या-मार्गको ही इन दुखों का एक मात्र कारण बताकर प्राणियोंको सम्यक् मार्ग बताया। अतः वे महापुरुष संसारके प्राणियोंके अकारण बन्धु हैं, उपकारक हैं। इसीलिए उन्हें मोक्षमार्गके नेता माना जाता है। उनके उपकारोंके प्रति कृतज्ञता प्रकट करने और उस भूमि-खण्डपर घटित घटनाकी सतत स्मृति बनाये रखने और इस सबके माध्यमसे उन वीतराग देवों और गुरुओंके गुणोंका अनुभव करनेके लिए उस भूमि-

पर उन महापुरुषका कोई स्मारक बना देते हैं। संसारकी सम्पूर्ण तीर्थभूमियों या तीर्थ-क्षेत्रोंकी संरचनामें भक्तोंकी महापुरुषोंके प्रति यह कृतज्ञता की भावना ही मूल कारण है।

तीर्थोंके भेद

दिगम्बर जैन परम्परामें संस्कृत निर्वाण भक्ति और प्राकृत निर्वाण काण्ड प्रचलित है। अनुश्रुतिके अनुसार ऐसा मानते हैं कि प्राकृत निर्वाण-काण्ड (भक्ति) आचार्य कुन्दकुन्दकी रचना है। तथा संस्कृत निर्वाण भक्ति आचार्य पूज्यपाद द्वारा रचित कही जाती है। इस अनुश्रुतिका आधार सम्भवतः क्रियाकलापके टीकाकार प्रभाचन्द्राचार्य हैं। उन्होंने लिखा है कि संस्कृत भक्तिपाठ पादपूज्य स्वामी विरचित है। प्राकृत निर्वाण-भक्तिके दो खण्ड हैं—एक निर्वाण-काण्ड और दूसरे निर्वाणेतर-काण्ड। निर्वाण-काण्डमें १९ निर्वाणक्षेत्रोंका विवरण प्रस्तुत करके शेष मुनियोंके जो निर्वाण क्षेत्र हैं उनके नामोल्लेख न करके सबकी वन्दना की गयी है। निर्वाणेतर काण्डमें कुछ कल्याणक स्थान और अतिशय क्षेत्र दिये गये हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि प्राकृत निर्वाण-भक्तिमें तीर्थभूमियोंकी इस भेद कल्पनासे ही दिगम्बर समाजमें तीन प्रकारके तीर्थ-क्षेत्र प्रचलित हो गये—सिद्ध क्षेत्र (निर्वाण क्षेत्र), कल्याण क्षेत्र और अतिशय क्षेत्र।

संस्कृत निर्वाण भक्तिमें प्रारम्भके बीस श्लोकोंमें भगवान् वर्धमानका स्तोत्र है। उसके पश्चात् बारह पद्योंमें २५ निर्वाण क्षेत्रोंका वर्णन है। वास्तवमें यह भक्तिपाठ एक नहीं है। प्रारम्भमें बीस श्लोकोंमें जो वर्धमान स्तोत्र है, वह स्वतन्त्र स्तोत्र है। उसका निर्वाण भक्तिसे कोई सम्बन्ध नहीं है। यह इसके पढ़नेसे ही स्पष्ट हो जाता है। द्वितीय पद्यमें स्तुतिकार सन्मति का पाँच कल्याणकोंके द्वारा स्तवन करने की प्रतिज्ञा करता है और बीसवें श्लोकमें इस स्तोत्रके पाठका फल बताता है। यहाँ यह स्तोत्र समाप्त हो जाता है। फिर इक्कीसवें पद्यमें अर्हन्तों और गणधरों की निर्वाण-भूमियोंकी स्तुति करनेकी प्रतिज्ञा करता है। और बत्तीसवें श्लोकमें उनका समापन करता है। जो भी हो, संस्कृत निर्वाण-भक्तिके रचयिताने प्राकृत निर्वाण-भक्तिकारकी तरह तीर्थ-क्षेत्रोंके भेद नहीं किये। सम्भवतः उन्हें यह अभिप्रेत भी नहीं था। उनका उद्देश्य तो निर्वाण-क्षेत्रोंकी स्तुति करना था।

इन दो भक्तिपाठोंके अतिरिक्त तीर्थ-क्षेत्रोंसे सम्बन्धित कोई स्वतन्त्र ग्रन्थ दिगम्बर परम्परामें उपलब्ध नहीं है। जो हैं, वे प्रायः १६,१७ वीं शताब्दीके बादके हैं।

किन्तु दिगम्बर समाजमें उक्त तीन ही प्रकारके तीर्थक्षेत्रोंकी मान्यताका प्रचलन रहा है—(१) निर्वाण क्षेत्र, (२) कल्याणक क्षेत्र और (३) अतिशय क्षेत्र।

निर्वाण क्षेत्र—ये वे क्षेत्र कहलाते हैं, जहाँ तीर्थंकरों या किन्हीं तपस्वी मुनिराजका निर्वाण हुआ हो। संसारमें शास्त्रोंका उपदेश, व्रत-चरित्र, तप आदि सभी कुछ निर्वाण प्राप्तिके लिए है। यही चरम और परम पुरुषार्थ है। अतः जिस स्थानपर निर्माण होता है, उस स्थानपर इन्द्र और देव पूजाको आते हैं। अन्य तीर्थोंकी अपेक्षा निर्वाण क्षेत्रोंका महत्त्व अधिक होता है। इसलिए निर्वाण-क्षेत्रके प्रति भक्त जनताकी श्रद्धा अधिक रहती है। जहाँ तीर्थंकरोंका निर्वाण होता है, उस स्थानपर सौधर्म इन्द्र चिह्न लगा देता है। उसी स्थान पर भक्त लोग उन तीर्थंकर भगवान्के चरण-चिह्न स्थापित कर देते हैं। आचार्य समन्तभद्रने स्वयम्भू-स्तोत्रमें भगवान् नेमिनाथकी स्तुति करते हुए बताया है कि ऊर्जयन्त (गिरनार) पर्वतपर इन्द्रने भगवान् नेमिनाथके चरण-चिह्न उत्कीर्ण किये।

तीर्थंकरोंके निर्वाण क्षेत्र कुल पाँच हैं—कैलाश, चम्पा, पावा, ऊर्जयन्त और सम्मेद शिखर। पूर्वके चार क्षेत्रों पर क्रमशः ऋषभदेव, वासुपूज्य, महावीर और नेमिनाथ मुक्त हुए। शेष बीस तीर्थंकरोंने सम्मेद

शिखरसे मुक्ति प्राप्त की। इन पाँच निर्वाण क्षेत्रोंके अतिरिक्त अन्य मुनियों की निर्वाण भूमियाँ हैं, जिनमेंसे कुछके नाम निर्वाण भक्तिमें दिये हुए हैं।

कल्याणक क्षेत्र—ये वे क्षेत्र हैं, जहाँ किसी तीर्थंकरका गर्भ, जन्म, अभिनिष्क्रमण (दीक्षा) और केवलज्ञान कल्याणक हुआ है। जैसे हस्तिनापुर, शौरीपुर, अहिच्छत्र, वाराणसी, काकन्दी, कुभग्राम आदि।

अतिशय क्षेत्र—जहाँ किसी मन्दिरमें या मूर्तिमें कोई चमत्कार दिखाई दे, तो वह अतिशय क्षेत्र कहलाता है। जैसे श्री महावीरजी, देवगढ़, हुम्मच, पद्मावती आदि। जो निर्वाण क्षेत्र अथवा कल्याणक क्षेत्र नहीं हैं, वे सभी अतिशय क्षेत्र कहे जाते हैं। अतिशय क्षेत्रोंके प्रति जनसाधारणका आकर्षण भौतिक या सांसारिक होता है, आध्यात्मिक नहीं होता। लोग या तो ऐहिक कामनावश वहाँ जाते हैं अथवा उनके मनमें अद्भुत कुतूहल होता है।

तीर्थक्षेत्रोंकी स्थापनाके मूलमें जिस आध्यात्मिक भावनाका विकास हुआ था, वह भावना थी आत्मिक शान्ति-लाभ और उस क्षेत्रसे सम्बन्धित वीतराग तीर्थंकर या महर्षियोंके आदर्शसे अनुप्राणित होकर आत्म-कल्याण की। किन्तु अतिशय क्षेत्रोंमें भौतिक प्रलोभन ही आकर्षणके केन्द्र-बिन्दु होते हैं।

हमें लगता है, जैन जनताको ऐहिक कामनाओंकी पूर्तिके लिए यद्वा तद्वा जैनेतर देव-स्थानोंमें जानेसे रोकनेके लिए ही अतिशय क्षेत्रोंकी स्थापना की गयी। यह कल्पना सम्भवतः भट्टारक परम्परा की देन है। अतिशय क्षेत्र प्रायः ८-९वीं शताब्दीके बादके हैं। और यह वह काल था, जब जैन धर्मको अपनी अस्तित्व-रक्षाके लिए लगभग सभी प्रान्तोंमें और मुख्यतः दक्षिण भारतमें कठिन संघर्ष करना पड़ रहा था। उस काल-में जैन धर्मपर जैनोंकी आस्था बनाये रखनेके लिए ही मनीषी आचार्यों और भट्टारकोंको अतिशय क्षेत्रोंकी कल्पना करनी पड़ी। सैद्धान्तिक दृष्टिकोणसे इसका समन्वय भले ही न किया जा सकता हो, किन्तु ऐसी कल्पनाके लिए तत्कालीन धार्मिक और राजनैतिक परिस्थिति ही जिम्मेदार कही जा सकती है।

तीर्थों का माहात्म्य

संसारमें प्रत्येक क्षेत्र-स्थान समान हैं, किन्तु द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावका प्रभाव हर स्थानको दूसरे स्थानसे पृथक् कर देता है। द्रव्यगत विशेषता, क्षेत्रकृत प्रभाव और कालकृत परिवर्तन हम नित्य देखते हैं। इससे भी अधिक व्यक्तिके भावों और विचारोंका चारों ओरके वातावरणपर प्रभाव पड़ता है। जिनके आत्मामें विशुद्ध या शुभ भावोंकी स्फुरणा होती है, उनमेंसे शुभ तरंगें निकलकर आसपासके सम्पूर्ण वातावरणको व्याप्त कर लेती हैं। उस वातावरणमें शुचिता, शान्ति, निर्वैरता और निर्भयता व्याप्त हो जाती है। ये तरंगें कितने वातावरणको घेरती हैं, इसके लिए यही कहा जा सकता है कि उन भावोंमें, उस व्यक्तिकी शुचिता आदिमें जितनी प्रबलता और वेग होगा, उतने वातावरणमें वे तरंगें फैल जाती हैं। इसी प्रकार जिस व्यक्ति-के विचारोंमें जितनी कषाय और विषयोंकी लालसा होगी, उतने परिमाणमें, वह अपनी शक्ति द्वारा सारे वातावरणको दूषित कर देता है। इतना ही नहीं, वह शरीर भी पुद्गल-परमाणु और उसके चारों ओरके वातावरणके कारण दूषित हो जाता है। उसके अशुद्ध विचारों और अशुद्ध शरीरसे अशुद्ध परमाणुओंकी तरंगें निकलती रहती हैं, जिससे वहाँके वातावरणमें फैलकर वे परमाणु दूसरेके विचारोंको भी प्रभावित करते हैं।

प्रायः सर्वस्वत्यागी और आत्मकल्याणके मार्गके राही एकान्त शान्तिकी इच्छासे वनोंमें, गिरि-कन्द-राओंमें, सुरम्य नदी-तटोंपर आत्मध्यान लगाया करते थे। ऐसे तपस्वी-जनोंके शुभ परमाणु उस सारे वाता-वरणमें फैल कर उसे पवित्र कर देते थे। वहाँ जाति-विरोधी जीव आते तो न जाने उनके मनका भय और संहारकी भावना कहाँ तिरोहित हो जाती। वे उस तपस्वी मुनिकी पुण्य भावनाकी स्निग्ध छायामें परस्पर किलोल करते और निर्भय विहार करते थे।

इसी आशयको भगवज्जिनसेनने आदिपुराण २।३-२६ में व्यक्त किया है। मगध नरेश श्रेणिक गौतम गणधरकी प्रशंसा करते हुए कहते हैं—"आपका यह मनोहर तपोवन जो कि विपुलाचल पर्वतके चारों ओर विद्यमान है, प्रकट हुए दयावनके समान मेरे मनको आनन्दित कर रहा है। इस ओर ये हथिनियाँ सिंहके बच्चेको अपना दूध पिला रही हैं और ये हाथीके बच्चे स्वेच्छासे सिंहनीके स्तनोंका पान कर रहे हैं।"

इस प्रकारका चमत्कार तो तपस्वी और ऋद्धिधारी वीतराग मुनियोंकी तपोभूमिमें भी देखनेको मिलता है। जो उस तपोभूमिमें जाता है, वह संसारकी आकुलता व्याकुलताओंसे कितना ही प्रभावित क्यों न हो, मुनिजनोंकी तपोभूमिमें जाते ही उसे निराकुल शान्तिका अनुभव होने लगता है और वह जब तक उस तपोभूमिमें ठहरता है, संसारकी चिन्ताओं और आधि-व्याधियोंसे मुक्त रहता है।

जब तपस्वी और ऋद्धिधारी मुनियोंका इतना प्रभाव होता है तो तीन लोकके स्वामी तीर्थंकर भगवान् के प्रभावका तो कहना ही क्या है। उनका प्रभाव तो अचिन्त्य है, अलौकिक है। तीर्थंकर प्रकृति सम्पूर्ण पुण्य प्रकृतियोंमें सर्वाधिक प्रभावशाली होती है और उसके कारण अन्य प्रकृतियोंका अनुभाग सुखरूप परिणत हो जाता है। तीर्थंकर प्रकृतिकी पुण्य वर्गणाएँ इतनी तेजस्वी और बलवती होती हैं कि तीर्थंकर जब माताके गर्भमें आते हैं, उससे छह माह पूर्वसे ही वे देवों और इन्द्रोंको तीर्थंकरके चरणोंका विनम्र सेवक बना देती हैं। इन्द्र छह माह पूर्व ही कुबेरको आज्ञा देता है—"भगवान् त्रिलोकीनाथ तीर्थंकर प्रभुका छह माह पश्चात् जन्म होने वाला है। उनके स्वागतकी तैयारी करो। त्रिलोकीनाथके उपयुक्त निवास स्थान बनाओ। उनके आगमनके उपलक्ष्यमें अभीसे उनके जन्म पर्यन्त रत्न और स्वर्ण की वर्षा करो, जिससे उनके नगरमें कोई निर्धन न रहे।"

ऐसे वे तीर्थंकर भगवान् जिस नगरमें जन्म लेते हैं, वह नगर उनकी चरण-धूलिसे पवित्र हो जाता है। जहाँ वे दीक्षा लेते हैं, उस स्थानका कण-कण उनके विराग रंजित कठोर तप और आत्मसाधनासे शुचिता-को प्राप्त हो जाता है। जिस स्थानपर उन्हें केवलज्ञान होता है, वहीं देव समवसरणकी रचना करते हैं, जहाँ भगवान्की दिव्य ध्वनि प्रकट होकर धर्मचक्रका प्रवर्तन होता है और अनेक भव्य जीव संयम ग्रहण करके आत्म-कल्याण करते हैं, वहाँ तो कल्याणका आकाशचुम्बी मानस्तम्भ ही गड़ जाता है, जो संसारके प्राणियों-को आमन्त्रण देता है—'आओ और अपना कल्याण करो।' इसी प्रकार जहाँ तीर्थंकर देव शेष अघातिया कर्मोंका विनाश करके निरंजन परमात्म दशाको प्राप्त होते हैं, वह तो शान्ति और कल्याणका ऐसा अजस्र स्रोत बन जाता है, जहाँ भक्ति भावसे जानेवालोंको अवश्य शान्ति मिलती है और अवश्य ही उनका कल्याण होता है। निर्वाण ही तो परम पुरुषार्थ है, जिसके कारण अन्य कल्याणकोंका भी मूल्य और महत्त्व है।

यह माहात्म्य अन्य मुनियोंके निर्वाण स्थानका भी है। यह माहात्म्य उस स्थानका नहीं है, किन्तु उन तीर्थंकर प्रभुका है या उन निष्काम तपस्वी मुनिराजोंका है, जिनके अन्तरमें आत्यन्तिक शुद्धि प्रकट हुई, जिनकी आत्मा जन्म-मरणसे मुक्त होकर सिद्ध अवस्थाको प्राप्त हो चुकी है। इसीलिए तो आचार्य शुभचन्द्रने ज्ञानार्णवमें कहा है—

> सिद्धक्षेत्रे महातीर्थे पुराणपुरुषाश्रिते।
> कल्याणकलिते पुण्ये ध्यानसिद्धिः प्रजायते॥

सिद्धक्षेत्र महान् तीर्थ होते हैं। यहाँ पर महापुरुषका निर्वाण हुआ है। यह क्षेत्र कल्याणदायक है तथा पुण्यवर्द्धक होता है। यहाँ आकर यदि ध्यान किया जाय तो ध्यानकी सिद्धि हो जाती है। जिसको ध्यान-सिद्धि हो गयी, उसे आत्म-सिद्धि होनेमें विलम्ब नहीं लगता।

तीर्थ-भूमियोंका माहात्म्य वस्तुतः यही है कि वहाँ जानेपर मनुष्योंकी प्रवृत्ति संसारकी चिन्ताओंसे मुक्त होकर उस महापुरुषकी भक्तिसे आत्मकल्याणकी ओर होती है। घरपर मनुष्यको नाना प्रकारकी

सांसारिक चिन्ताएँ और आकुलताएँ रहती हैं। उसे घरपर आत्मकल्याणके लिए निराकुल अवकाश नहीं मिल पाता। तीर्थ-स्थान प्रशान्त स्थानों पर होते हैं। प्रायः तो वे पर्वतों पर या एकान्त वनोंमें नगरोंके कोलाहलसे दूर होते हैं। फिर वहाँके वातावरणमें भी प्रेरणाके बीज छितराये होते हैं। अतः मनुष्यका मन वहाँ शान्त, निराकुल और निश्चिन्त होकर भगवान्‌की भक्ति और आत्म-साधनामें लगता है। संक्षेपमें, तीर्थक्षेत्रोंका माहात्म्य इन शब्दोंमें कहा जा सकता है—

श्रीतीर्थपान्थरजसा विरजीभवन्ति तीर्थेषु विभ्रमणतो न भवे भ्रमन्ति।
तीर्थव्ययादिह नराः स्थिरसंपदः स्युः पूज्या भवन्ति जगदीशमथाश्रयन्तः॥

अहा! तीर्थभूमिके मार्गकी—रज इतनी पवित्र होती है कि उसके आश्रयसे मनुष्य रज रहित अर्थात् कर्म मल रहित हो जाता है। तीर्थों पर भ्रमण करनेसे अर्थात् यात्रा करनेसे संसारका भ्रमण छूट जाता है। तीर्थपर धन व्यय करनेसे अविनाशी सम्पदा मिलती है। और जो तीर्थपर जाकर भगवान्‌की शरण ग्रहण कर लेते हैं अर्थात् भगवान्‌के मार्गको जीवनमें उतार लेते हैं, वे जगत्पूज्य हो जाते हैं।

तीर्थ-यात्रा का उद्देश्य

तीर्थ-यात्राका उद्देश्य यदि एक शब्दमें प्रकट किया जाये तो वह है आत्म-विशुद्धि। शरीरकी शुद्धि तेल-साबुन और अन्य प्रसाधनोंसे होती है। वाणीकी शुद्धि लवंग, इलायची, सौंफ आदिसे होती है, ऐसी लोक-मान्यता है। कुछ लोगोंकी मान्यता है कि पवित्र नदियों, सागरों और भगवान्‌के नाम संकीर्तनसे सर्वांग विशुद्धि होती है। कुछ मानते हैं कि तीर्थ-क्षेत्रकी यात्रा करने मात्रसे पापोंका क्षय और पुण्यका संग्रह हो जाता है। किन्तु यह बहिर्दृष्टि है। बहिर्दृष्टि अर्थात् बाहरी साधनों की ओर उन्मुखता। किन्तु तीर्थ-यात्राका उद्देश्य बाह्यशुद्धि नहीं है, वह हमारा साध्य नहीं है, न हमारा लक्ष्य ही बाह्यशुद्धि मात्र है। वह तो हम घर पर भी कर लेते हैं। तीर्थ-यात्राका ध्येय आत्म-शुद्धि है, आत्माकी ओर उन्मुखता, परसे निवृत्ति और आत्म-प्रवृत्ति हमारा ध्येय है। बाह्य-शुद्धि तो केवल साधन है और वह भी एक सीमा तक। तीर्थ-यात्रा करने मात्रसे ही आत्म-शुद्धि नहीं हो जाती। तीर्थ-यात्रा तो आत्म-शुद्धिका एक साधन है। तीर्थ पर जाकर वीतराग मुनियों और तीर्थंकरोंके पावन चरित्रका स्मरण करके हम उनकी उन साधना पर विचार करें, जिसके द्वारा उन्होंने शरीर-शुद्धिकी चिन्ता छोड़कर आत्माको कर्म-मलसे शुद्ध किया। यह विचार करके हम भी वैसी साधनाका संकल्प लें और उसकी ओर उन्मुख होकर वैसा प्रयत्न करें।

कुछ लोगोंकी ऐसी धारणा बन गयी है कि जिसने तीर्थकी जितनी अधिक बार वन्दना की अथवा किसी स्तोत्रका जितना अधिक बार पाठ किया या भगवान्‌की पूजामें जितना अधिक समय लगाया, उतना अधिक धर्म किया। ऐसी धारणा पुण्य और धर्मको एक माननेकी परम्परासे पैदा हुई है। जिस क्रियाका आत्म-शुद्धि, आत्मोन्मुखतासे कोई नाता नहीं, वह क्रिया पुण्यदायक और पुण्यवर्द्धक हो सकती है, वह भी तब, जब मन में शुभ भाग हों, शुभ राग हों।

पुण्य या शुभ राग साधन है, साध्य नहीं। पुण्य बाह्य साधन तो जुटा सकता है, आत्माकी विशुद्धि नहीं कर सकता। आत्माकी विशुद्धि आत्माके निज पुरुषार्थसे होगी और वह शुभ-अशुभ दोनों रागोंके निरोधसे होगी। तीर्थ-भूमियाँ हमारे लिए ऐसे साधन और अवसर प्रस्तुत करती हैं। वहाँ जाकर भक्त जन उस भूमिसे सम्बन्धित महापुरुषका स्मरण; स्तवन और पूजन करते हैं तथा उनके चरित्रसे प्रेरणा लेकर अपनी आत्माकी ओर उन्मुख होते हैं। पुण्यकी प्रक्रिया सरल है, आत्म-शुद्धिकी प्रक्रिया समझनेमें भी कठिन है और करनेमें भी।

किन्तु एक बात स्मरण रखने की है। भक्त जन घाटेमें नहीं रहता। वह पाप और अशुभ संकल्प-विकल्पोंको छोड़कर तीर्थ-यात्राके शुभ भावोंमें लीन रहता है। वह अपना समय तीर्थ-वन्दना, भगवान्‌का पूजन, स्तुति आदिमें व्यतीत करता है। इससे वह पुण्य संचय करता है और पापोंसे बचता है। जब वह आत्माकी ओर उन्मुख होता है तो कर्मोंका क्षय करता है, आत्म-विशुद्धि करता है। अर्थात् स्वकी ओर उपयोग जाता है तो असंख्यात गुणी कर्म-निर्जरा करता है और पर (भगवान् आदि) की ओर उपयोग जाता है तो पुण्यानुबन्धी पुण्य संचय करता है। यही है तीर्थ-यात्राका उद्देश्य और तीर्थयात्राका वास्तविक लाभ।

तीर्थ-यात्रासे आत्म-शुद्धि होती है, इस सम्बन्धमें श्री चामुण्डराय 'चारित्रसार'में कहते हैं—

तत्रात्मनो विशुद्धध्यानजलप्रक्षालितकर्ममलकलंकस्य स्वात्मन्यवस्थानं लोकोत्तरशुचित्वं, तत्साधनानि सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रतपांसि तद्वन्तश्च साधवस्तदधिष्ठानानि च निर्वाणभूम्यादिकानि। तत्प्राप्त्युपायत्वाच्छुचिव्यपदेशमर्हन्ति। (अशुचि अनुप्रेक्षा)

अर्थात् विशुद्ध ध्यान रूपी जलसे कर्म मलको धोकर आत्मामें स्थित होनेको आत्माकी विशुद्धि कहते हैं। यह विशुद्धि अलौकिक होती है। आत्म-विशुद्धिके लिए सम्यग्दर्शन, सम्यक्-ज्ञान, सम्यक्-चारित्र, सम्यक्-तप और इनसे युक्त साधु और उनके स्थान निर्वाणभूमि आदि साधन हैं। ये सब आत्म-शुद्धि प्राप्त करनेके उपाय हैं। इसलिए इन्हें भी पवित्र कहते हैं।

गोम्मटसारमें आचार्य नेमिचन्द्रने कहा है—

"क्षेत्रमंगलमूर्जयन्तादिकमर्हदादीनां निष्क्रमणकेवलज्ञानादिगुणोत्पत्तिस्थानम्।"

अर्थात् निष्क्रमण (दीक्षा) और केवल-ज्ञानके स्थान आत्मगुणोंकी प्राप्तिके साधन हैं।

तीर्थ-पूजा

वसुनन्दी श्रावकाचारमें क्षेत्र-पूजाके सम्बन्धमें महत्त्वपूर्ण उल्लेख मिलता है, जो इस प्रकार है—

'जिणजम्मण णिक्खमणे णाणुप्पत्तीए तित्थतिण्हेसु।
णिसिहीसु खेत्तपूजा पुव्वविहाणेण कायव्वा' ॥४५२॥

अर्थात् जिन भगवान्‌की जन्म कल्याणक भूमि, निष्क्रमण, कल्याणक भूमि, केवलज्ञानोत्पत्ति स्थान, तीर्थचिह्न स्थान और निषीधिका अर्थात् निर्वाण-भूमियोंमें पूर्वोक्त विधानसे की हुई पूजा क्षेत्र-पूजा कहलाती है।

आचार्य गुणभद्र 'उत्तर-पुराण' में बतलाते हैं कि निर्वाण-कल्याणकका उत्सव मनानेके लिए इन्द्रादि देव स्वर्गसे उसी समय आये और गन्ध, अक्षत आदिसे क्षेत्रकी पूजा की और पवित्र बनाया।

'कल्पान्निर्वाणकल्याणमन्वेत्यामरनायकाः।
गन्धादिभिः समभ्यर्च्य तत्क्षेत्रमपवित्रयन्' ॥

—उत्तर पुराण ६६।६३

पाँचों कल्याणकोंके समय इन्द्र और देव भगवान्‌की पूजा करते हैं। और भगवान्‌के निर्वाण-गमनके बाद इन कल्याणकोंके स्थान ही तीर्थ बन जाते हैं। वहाँ जाकर भक्त जन भगवान्‌के चरण चिह्न अथवा मूर्तिकी पूजा करते हैं तथा उस क्षेत्रकी पूजा करते हैं। यही तीर्थ-पूजा कहलाती है। वस्तुतः तीर्थ-पूजा भगवान्‌का स्मरण कराती है क्योंकि तीर्थ भी भगवान्‌के स्मारक हैं। अतः तीर्थ-पूजा प्रकारान्तरसे भगवान्‌की ही पूजा है।

तीर्थ-क्षेत्र और मूर्ति-पूजा

जैन धर्ममें मूर्ति-पूजाके उल्लेख प्राचीनतम कालसे पाये जाते हैं। पूजा पूज्य पुरुषकी की जाती है। पूज्य पुरुष मौजूद न हो तो उसकी मूर्ति बनाकर उसके द्वारा पूज्य पुरुषकी पूजा की जाती है। तदाकार

स्थापनाका आशय भी यही है। इसलिए इतिहासातीत कालसे जैन मूर्तियाँ पायी जाती हैं और जैन मूर्तियोंके निर्माण और उनकी पूजाके उल्लेखसे तो सम्पूर्ण जैन साहित्य भरा पड़ा है। जैन धर्ममें मूर्तियोंके दो प्रकार बतलाये गये हैं—कृत्रिम और अकृत्रिम। कृत्रिम प्रतिमाओंसे अकृत्रिम प्रतिमाओंकी संख्या असंख्य गुणी बतायी है। जिस प्रकार प्रतिमाएँ कृत्रिम और अकृत्रिम बतलायी हैं, उसी प्रकार चैत्यालय भी दो प्रकारके होते हैं—कृत्रिम और अकृत्रिम।

ये चैत्यालय नन्दीश्वर द्वीप, सुमेरु, कुलाचल, वैताढ्य पर्वत, शाल्मली वृक्ष, जम्बू वृक्ष, वक्षार गिरि, चैत्य वृक्ष, रतिकर गिरि, रुचकगिरि, कुण्डलगिरि, मानुषोत्तर पर्वत, इष्वाकारगिरि, अंजनगिरि, दधिमुख पर्वत, व्यन्तरलोक, स्वर्गलोक, ज्योतिर्लोक और भवनवासियोंके पाताललोकमें पाये जाते हैं। इनकी कुल संख्या ८५६९७४८१ बतलायी गयी है। इन अकृत्रिम चैत्यालयोंमें अकृत्रिम प्रतिमाएँ विराजमान हैं। सौधर्मेन्द्रने युगके आदिमें अयोध्यामें पाँच मन्दिर बनाये और उनमें अकृत्रिम प्रतिमाएँ विराजमान कीं।

कृत्रिम प्रतिमाओंका जहाँ तक सम्बन्ध है, सर्वप्रथम भरत क्षेत्रके प्रथम चक्रवर्ती भरतने अयोध्या और कैलासमें मन्दिर बनवाकर उनमें स्वर्ण और रत्नोंकी मूर्तियाँ विराजमान करायीं। इनके अतिरिक्त जहाँ पर बाहुबली स्वामीने एक वर्ष तक अचल प्रतिमायोग धारण किया था, उस स्थानपर उन्हींके आकारकी अर्थात् पाँच सौ पचीस धनुषकी प्रतिमा निर्मित करायी। ऐसे भी उल्लेख मिलते हैं कि दूसरे तीर्थंकर अजितनाथके कालमें सगर चक्रवर्तीके पुत्रोंने तथा बीसवें तीर्थंकर मुनिसुव्रतनाथके तीर्थमें मुनिराज वाली और प्रतिनारायण रावणने कैलास पर्वत पर इन बहत्तर जिनालयोंके तथा रामचन्द्र और सीताने बाहुबली स्वामीकी उक्त प्रतिमाके दर्शन और पूजा की थी।

पुरातात्त्विक दृष्टिसे जैन मूर्ति-कलाका इतिहास सिन्धु सभ्यता तक पहुँचता है। सिन्धु घाटीकी खुदाईमें मोहन-जो-दड़ो और हड़प्पासे जो मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं, उनमें मस्तकहीन नग्न मूर्ति तथा सील पर अंकित ऋषभ जिनकी मूर्ति जैन धर्मसे सम्बन्ध रखती हैं। अनेक पुरातत्त्ववेत्ताओंने यह स्वीकार कर लिया है कि कायोत्सर्गासनमें आसीन योगी-प्रतिमा आद्य जैन तीर्थंकर ऋषभदेवकी प्रतिमा है।

भारतमें उपलब्ध जैन मूर्तियोंमें सम्भवतः सबसे प्राचीन जैन मूर्ति तेरापुरके लयणोंमें स्थित पार्श्वनाथ-की प्रतिमाएँ हैं। इनका निर्माण पौराणिक आख्यानोंके अनुसार कलिंगनरेश करकण्डने कराया था, जो पार्श्वनाथ और महावीरके अन्तरालमें हुआ था। यह काल ईसा पूर्व सातवीं शताब्दी होता है।

इसके बादकी मौर्यकालीन एक मस्तकहीन जिनमूर्ति पटनाके एक मुहल्ले लोहानीपुरसे मिली है। वहाँ एक जैन मन्दिरकी नींव भी मिली है। मूर्ति पटना संग्रहालयमें सुरक्षित है। वैसे इस मूर्तिका हड़प्पासे प्राप्त नग्नमूर्तिके साथ अद्भुत साम्य है।

ईसा पूर्व पहली दूसरी शताब्दीके कलिंगनरेश खारवेल के हाथी-गुंफा शिलालेख से प्रमाणित है कि कलिंगमें सर्वमान्य एक 'कलिंग-जिन'की प्रतिमा थी, जिसे नन्दराज (महापद्मनन्द) ई. पूर्व. चौथी-पाँचवीं शताब्दीमें कलिंगपर आक्रमण कर अपने साथ मगध ले गया था। और फिर जिसे खारवेल मगधपर आक्रमण करके वापिस कलिंग ले आया था।

इसके पश्चात् कुषाण काल (ई. पू. प्रथम शताब्दी तथा ईसाकी प्रथम शताब्दी) की और इसके बादकी तो अनेक मूर्तियाँ मथुरा, देवगढ़, पभोसा आदि स्थानोंपर मिली हैं।

तीर्थ और मूर्तियोंपर समयका प्रभाव

ये मूर्तियाँ केवल तीर्थ क्षेत्रोंपर ही नहीं मिलतीं, नगरोंमें भी मिलती हैं। तीर्थ क्षेत्रोंपर तीर्थंकरोंके कल्याणक स्थानों और सामान्य केवलियोंके केवलज्ञान और निर्वाणस्थानोंपर प्राचीन कालमें, ऐसा लगता है, उनकी मूर्तियाँ विराजमान नहीं होती थीं। तीर्थंकरों के निर्वाण स्थानको सौधर्मेन्द्र अपने वज्रदण्डसे चिह्नित

कर देता था। उस स्थानपर भक्त लोग चरण-चिह्न बनवा देते थे। तीर्थंकरोंके पाँच निर्वाण स्थान हैं। उनपर प्राचीन कालसे अबतक चरण-चिह्न ही बने हुए हैं और सब उन्हींकी पूजा करते हैं। शेष तीर्थ स्थानोंपर प्राचीन कालमें चरण-चिह्न रहे। किन्तु वहाँ मूर्तियाँ कबसे विराजमान की जाने लगीं, यह कहना कठिन है। इसका कारण यह है कि वर्तमानमें किसी भी तीर्थपर कोई मन्दिर और मूर्ति अधिक प्राचीन नहीं है। भारतीय इतिहासकी कुछ शताब्दियाँ जैनधर्म और जैन धर्मानुयायियोंके लिए अत्यन्त दुर्भाग्यपूर्ण रहीं, जबकि लाखों जैनोंको बलात् धर्म-परिवर्तन करना पड़ा, लाखोंको अपना मातृ-स्थान छोड़कर विस्थापित होना पड़ा और अपने अस्तित्वकी रक्षा और निवासके लिए नये स्थान खोजने पड़े। ऐसे ही कालमें अनेक तीर्थ-क्षेत्रोंसे जैनोंका सम्पर्क टूट गया। वे क्षेत्र विरोधियोंके क्षेत्र में होनेके कारण वहाँकी यात्रा बन्द हो गयी। अनेक मन्दिरोंको विरोधियोंने तोड़ डाला, अनेक मन्दिरोंपर जैनेतरोंने अधिकार कर लिया। ऐसे ही कालमें जैन लोग अपने कई तीर्थोंका वास्तविक स्थान ही भूल गये। फिर भी उन्होंने तीर्थ-भक्तिसे प्रेरित होकर उन तीर्थोंकी नये स्थानोंपर उन्हीं नामोंसे, स्थापना और संरचना कर ली। कुछ जैन तीर्थोंका नव निर्माण पिछली कुछ शताब्दियोंमें ही किया गया है। उनके मूल स्थानोंकी खोज होना अभी शेष है।

तीर्थोंपर प्रायः चरणचिह्न ही रहते थे और उनके लिए एकाध मन्दिर बनाया जाता था। जब मन्दिरों का महत्त्व बढ़ने लगा तो तीर्थोंपर भी अनेक मन्दिरोंका निर्माण होने लगा।

तीर्थोंपर तीर्थंकरोंकी जो मूर्तियाँ निर्मित होती थीं उनका अध्ययन करनेसे हम इस परिणामपर पहुँचते हैं कि वे सभी नग्न वीतराग होती थीं। जितनी प्राचीन प्रतिमाएँ उपलब्ध होती हैं, वे सभी नग्न हैं। सम्भवतः मथुरामें सर्वप्रथम ऐसी मूर्तियाँ उपलब्ध होती हैं, जिन प्रतिमाओंके चरणोंके पास वस्त्र खण्ड मिलता है। कडोरा या लंगोटसे चिह्नित प्रतिमाओंके निर्माणका काल तो गुप्तोत्तर युग माना जाता है और उस समय भी इस प्रकारकी प्रतिमाओंका निर्माण अपवाद ही माना जा सकता है।

जब निर्ग्रन्थ जैन संघमें-से फूटकर श्वेताम्बर सम्प्रदाय निकला, तो उसे एक सम्प्रदायके रूपमें व्यवस्थित रूप लेनेमें ही काफी समय लग गया। इतिहासकी दृष्टिसे इसे ईसाकी छठी शताब्दी माना गया है। इसके भी पर्याप्त समयके बाद वीतराग तीर्थंकर मूर्तियोंपर वस्त्रके चिह्नका अंक किया गया। धीरे-धीरे यह विकार बढ़ते-बढ़ते यहाँतक पहुँच गया कि जिन मूर्तियाँ वस्त्रालंकारोंसे आच्छादित होने लगीं और उनकी वीतरागता इस परिग्रहके आडम्बरमें दब गयीं। किन्तु दिगम्बर परम्परामें भगवान् तीर्थंकरके वीतराग रूपकी रक्षा अबतक अक्षुण्ण रूपसे चली आ रही है।

तीर्थ क्षेत्रोंमें प्राचीन कालसे स्तूप, आयागपट्ट, धर्मचक्र, अष्ट प्रातिहार्य युक्त तीर्थंकर मूर्तियोंका निर्माण होता था और वे जैन कलाके अप्रतिम अंग माने जाते थे। किन्तु ११वीं से १२वीं शताब्दियोंके बादसे तो प्रायः इनका निर्माण समाप्त-सा हो गया। इस बीसवीं शताब्दीमें आकर मूर्ति और मन्दिरोंका निर्माण संख्याकी दृष्टिसे तो बहुत हुआ है किन्तु अब तीर्थंकर-मूर्तियाँ एकाकी बनती हैं, उनमें न अष्ट प्रातिहार्यकी संयोजना होती है, न उनका कोई परिकर होता है। उनमें भावाभिव्यंजना और सौन्दर्यका अंकन सजीव होता है।

पूजाकी विधि और उसका क्रमिक-विकास

श्रावकके दैनिक आवश्यक कर्मोंमें आचार्य कुन्दकुन्दने प्राभृतमें तथा वरांगचरित और हरिवंश-पुराणमें दान, पूजा, तप और शील ये चार कर्म बतलाये हैं। भगवज्जिनसेनने इसको अधिक व्यापक बनाकर पूजा, वार्ता, दान, स्वाध्याय, संयम और तपको श्रावकके आवश्यक कर्म बतलाये। सोमदेव और पद्मनन्दिने देव-पूजा, गुरूपासना, स्वाध्याय, संयम, तप और दान ये षडावश्यक कर्म बतलाये।

इन सभी आचार्योंने देव-पूजाको श्रावकका प्रथम आवश्यक कर्तव्य बताया है। परमात्म प्रकाश (१६८) में तो यहाँतक कहा गया है कि "तूने न तो मुनिराजोंको दान ही किया, न जिन भगवान्की पूजा

ही की, न पंच परमेष्ठियोंको नमस्कार किया, तब तुझे मोक्षका लाभ कैसे होगा ?" इस कथनसे यह स्पष्ट हो जाता है कि भगवान्‌की पूजा श्रावकको अवश्य करनी चाहिए। भगवान्‌की पूजा मोक्ष-प्राप्तिका एक उपाय है।

आदि-पुराण-पर्व ३८में पूजाके चार भेद बताये हैं—नित्यपूजा, चतुर्मुखपूजा, कल्पद्रुमपूजा और आष्टाह्निकपूजा। अपने घरसे गन्ध, पुष्प, अक्षत ले जाकर जिनालयमें जिनेन्द्रदेवकी पूजा करना सदार्चन अर्थात् नित्यमह (पूजा) कहलाता है। मन्दिर और मूर्तिका निर्माण कराना, मुनियोंकी पूजा करना भी नित्यमह कहलाता है। मुकुटबद्ध राजाओं द्वारा की गयी पूजा चतुर्मुख पूजा कहलाती है। चक्रवर्ती द्वारा की जानेवाली पूजा कल्पद्रुम पूजा होती है। और अष्टाह्निकामें नन्दीश्वर द्वीपमें देवों द्वारा की जानेवाली पूजा आष्टाह्निक पूजा कहलाती है।

पूजा अष्टद्रव्यसे की जाती है—जल, गन्ध, अक्षत, पुष्प, नैवेद्य, दीप, धूप और फल। इस प्रकारके उल्लेख प्रायः सभी आर्ष ग्रन्थोंमें मिलते हैं। तिलोयपण्णत्ति (पंचम अधिकार, गाथा १०२से १११) में नन्दीश्वर द्वीपमें अष्टाह्निकामें देवों द्वारा भक्तिपूर्वक की जानेवाली पूजाका वर्णन है। उसमें अष्टद्रव्योंका वर्णन आया है। धवला टीकामें भी ऐसा ही वर्णन है। आचार्य जिनसेन कृत आदिपुराण (पर्व १७ श्लोक २५२) में भरत द्वारा तथा पर्व २३ श्लोक १०६में इन्द्रों द्वारा भगवान्‌की पूजाके प्रसंगमें अष्टद्रव्योंका वर्णन आया है।

पूजन विधिके प्रसंगमें समाजमें कुछ मान्यता-भेद है। अष्टद्रव्योंके नामोंके सम्बन्धमें कोई मतभेद नहीं है। केवल मतभेद है सचित्त और अचित्त (प्रासुक) सामग्रीके बारेमें। एक वर्ग की मान्यता है कि अष्टद्रव्योंमें जो नाम हैं, पूजनमें वे ही वस्तु चढ़ानी चाहिए। इसके विपरीत दूसरी मान्यता है कि सचित्त वस्तुमें जीव होते हैं, उनकी हिंसाकी सम्भावनासे बचनेके लिए प्रासुक वस्तुओंका ही व्यवहार उचित है।

मतभेदका दूसरा मुद्दा है—भगवान् पर केशर चर्चित करनेका। इसके पक्षमें तर्क यह दिया जाता है कि अष्टद्रव्योंमें दूसरा द्रव्य चन्दन या गन्ध है। उसका एक मात्र प्रयोजन है भगवान् पर गन्ध विलेपन करना। दूसरा पक्ष इस बातको भगवान् वीतराग प्रभुकी वीतरागताके विरुद्ध मानता है और गन्ध-लेपको परिग्रह स्वीकार करता है।

पूजनके सम्बन्धमें तीसरा विवाद इस बातको लेकर है कि पूजन बैठकर किया जाय या खड़े होकर।

चौथा विवादास्पद विषय है भगवान्‌का पंचामृताभिषेक अर्थात् घृत, दूध, दही, इक्षुरस और जल।

पाँचवाँ मान्यता-भेद है स्त्रियों द्वारा भगवान्‌का प्रक्षाल।

इन मान्यता-भेदोंके पक्ष-विपक्षमें पड़े बिना हमारा विनम्र मत है कि भगवान्‌का पूजन भगवान्‌के प्रति अपनी विनम्र भक्तिका प्रदर्शन है। यह कषायको कृश करने, मनको अशुभसे रोककर शुभमें प्रवृत्त करने और आत्म-शान्ति प्राप्त करनेका साधन है। साधनको साधन मानें, उसे साध्य न बना लें तो मान्यता-भेदका प्रभाव कम हो जाता है। शास्त्रोंको टटोलें तो इस या उस पक्षका समर्थन शास्त्रोंमें मिल जायेगा। जिस आचार्यने जिस पक्षको युक्तियुक्त समझा, उन्होंने अपने ग्रन्थमें वैसा ही कथन कर दिया। उन्हें न किसी पक्षका आग्रह था और न किसी दूसरे पक्षके प्रति द्वेष-भाव।

हमें लगता है, अपने पक्षके प्रति दुराग्रह और दूसरे पक्षके प्रति आक्रोश और द्वेष-बुद्धि, यह कषायमें से उपजता है। इसमें सन्देह नहीं कि सचित्त फलों और नैवेद्य (मिष्टान्न आदि) का वर्णन तिलोयपण्णत्ती में नन्दीश्वर द्वीपमें देवताओंके पूजन-प्रसंगमें मिलता है, अन्य शास्त्रोंमें भी मिलता है। किन्तु हमारी विनम्र मान्यतामें जब शुद्धाशुद्धि और हिंसा आदिका विशेष विवेक नहीं रहा, उस काल और क्षेत्रमें सुधारवादी प्रवृत्ति चली और इसपर बल दिया गया कि जो भी वस्तु भगवान्‌के आगे अर्पण की जाये, वह शुद्ध हो, प्रासुक हो, सूखी हो, जिसमें हिंसा की सम्भावनासे बचा जा सके। यही बात गन्ध-विलेपन और पंचामृताभिषेकके सम्बन्धमें है।

धर्म और पुण्य-कार्यको कषायका साधन न बनावें। मनकी चंचलता, मनके संकल्प-विकल्पसे दूर होकर आप भगवान्‌के गुणोंके संकीर्तन चिन्तन और अनुभवनमें अपने आपको जिस उपायसे, जिस विधिसे केन्द्रित करें, वही विधि आपके लिए उपादेय है। दूसरा व्यक्ति क्या करता है, क्या विधि अपनाता है, और उस विधिमें क्या त्रुटि है, आप इस पर अपने उपयोगको केन्द्रित न करके यह आत्म-निरीक्षण करें कि मेरा मन भगवान्‌के गुणोंमें आत्मसात् क्यों नहीं हुआ, मेरी कहाँ त्रुटि रह गयी, तब फिर क्या मतभेद मन-भेद बन सकते हैं? तीन सौ तिरेसठ विरोधी मतोंके विविध रंगी फूलोंसे स्याद्वादका सुन्दर गुलदस्ता बनानेवाला जैनधर्म एक ही वीतराग जिनेन्द्र भगवान्‌के भक्तोंकी विविध प्रकारकी पूजन-विधियोंके प्रति अनुदार और असहिष्णु बनकर उनकी मीमांसा करता फिरेगा? और क्या जिनेन्द्र प्रभुका कोई भक्त कषायको कृश करनेकी भावनासे जिनेन्द्र प्रभुके समक्ष यह दावा लेकर जायेगा कि जिस विधिसे मैं प्रभुकी पूजा करता हूँ, वही विधि सबके लिए उपादेय है? नहीं, बिलकुल नहीं। हमारे अज्ञान और कुज्ञानमेंसे दम्भ पूरता है और दम्भ अर्थात् मदमेंसे स्वके प्रति राग और परके प्रति द्वेष निपजता है। यह सम्यक् मार्ग नहीं है, यह मिथ्या-मार्ग है।

तीर्थ-यात्रा का समय

यों तो तीर्थ-यात्रा कभी भी की जा सकती है। जब भी यात्रा की जाये, पुण्य-संचय ही होगा। किन्तु अनुकूल द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव देखकर यात्रा करना अधिक उपयोगी रहता है। द्रव्य की सुविधा होनेपर यात्रा करना अधिक फलदायक होता है। यदि यात्राके लिए द्रव्यकी अनुकूलता न हो, द्रव्यका कष्ट हो और यात्राके निमित्त कर्ज लिया जाये तो उससे यात्रामें निश्चिन्तता नहीं आ पाती, संकल्प-विकल्प बने रहते हैं। किस या किन क्षेत्रोंकी यात्रा करनी है, वे क्षेत्र पर्वतपर स्थित हैं, जंगलमें हैं, शहरमें हैं अथवा सुदूर देहाती अंचलमें हैं। वहाँ जानेके लिए रेल, बस, नाव, रिक्शा-ताँगा या पैदल किस प्रकारकी यातायात सुविधा है, यह जानकारी यात्रा करनेसे पूर्व कर लेना आवश्यक है। इसके साथ-साथ कालकी अनुकूलता भी आवश्यक है। जैसे सम्मेद शिखरकी यात्रा तीव्र ग्रीष्म ऋतुमें अथवा वर्षा ऋतुमें करनेसे बड़ी कठिनाई उठानी पड़ती है। उत्तराखण्डके तीर्थोंके लिए वर्षा ऋतु अथवा सर्दीकी ऋतु अनुकूल नहीं है। उसके लिए ग्रीष्म ऋतु ही उपयुक्त है। कई तीर्थोंपर नदियोंमें बाढ़ आनेपर यात्रा नहीं हो सकती। कुछ तीर्थोंको छोड़कर उदाहरणतः उत्तराखण्डके तीर्थ—शेष तीर्थोंकी यात्राका सर्वोत्तम अनुकूल समय अक्टूबरसे लेकर मार्च तक का है। इसमें मौसम प्रायः साफ़ रहता है, बाढ़ आदिका प्रकोप समाप्त हो चुकता है, ठण्डे दिन होते हैं। गर्मी की बाधा नहीं रहती। शरीरमें स्फूर्ति रहती है। यह मौसम पर्वतीय और मैदानी, शहरी और देहाती सभी प्रकारके तीर्थोंकी यात्राके लिए अनुकूल है। भावोंकी अनुकूलता यह है कि यात्रापर जानेके पश्चात् अपने भावोंको भगवान्‌की भक्ति-पूजा, स्तुति, स्तोत्र, जाप, कीर्तन, धर्म-चर्चा, स्वाध्याय और आत्म-ध्यानमें लगाना चाहिए। अन्य सांसारिक कथाएँ, राजनैतिक चर्चाएँ नहीं करनी चाहिए।

तीर्थ-यात्राका अधिकार

तीर्थ-यात्रा का उद्देश्य, जैसा कि हम निवेदन कर आये हैं, पापोंसे मुक्ति और आध्यात्मिक शान्ति प्राप्त करना है। जो भी व्यक्ति इन उद्देश्यों से तीर्थ-यात्रा करना चाहता है, वह कर सकता है। उसके लिए मुख्य शर्त है जिनेन्द्र प्रभुके प्रति भक्ति। जो प्रदर्शनके लिए ही तीर्थों पर जाना चाहते हैं, उनके लिए अधिकारका प्रश्न ही नहीं उठता। किन्तु जो विनय और भक्तिके साथ, वहाँके नियमोंका आदर करते हुए तीर्थ-वन्दनाको जाना चाहें, वे वहाँ जा सकते हैं। तीर्थ-यात्रा अधिकारका प्रश्न न होकर कर्तव्यका प्रश्न है। जो कर्तव्यको अपना अधिकार मानते हैं, उनके लिए अधिकारका कोई प्रश्न नहीं उठता। किन्तु जो अधिकारको ही अपना कर्तव्य बना लेते हैं, उनका उद्देश्य तीर्थ-वन्दना नहीं होता, बल्कि उस तीर्थकी व्यवस्था पर अपना

अधिकार करना होता है। तीर्थ तीर्थंकरों या केवलियोंके स्मारक हैं। उनकी उपदेश-सभामें सब जाते थे— मनुष्य, देव, पशु-पक्षी तक। उनके पावन स्मारक स्वरूप तीर्थोंमें सब जायें, मनुष्य मात्र जायें, सभी तीर्थ-व्यवस्थापकोंकी यह हार्दिक कामना होती है। किन्तु उनकी इस सदिच्छाका दुरुपयोग करके कुछ लोग उस तीर्थपर ही अधिकार जताने लगें तो यह प्रश्न यात्राका न रहकर व्यवस्थाके स्वामित्वका बन जाता है। जहाँ प्राणीके कल्याण और विश्व-मैत्रीका घोष उठा था, वहाँ यदि कषायके निर्घोष गूँजने लगें तो फिर तीर्थोंकी पावनता कैसे बनी रह सकती है और तीर्थोंके वातावरणमें-से पावनताका वह स्वर मन्द पड़ जाये तो तीर्थोंका माहात्म्य और उनका अतिशय कैसे बना रह सकता है। आज तीर्थों पर वैसा अतिशय नहीं दीख पड़ता, जैसा मध्यकाल तक था। और उसके जिम्मेदार हैं वे लोग, जो योजनानुसार आये दिन तीर्थक्षेत्रोंके उन्मुक्त वीत-राग वातावरणमें कषायका विषैला धुआँ छोड़कर वहाँ घुटन पैदा किया करते हैं।

प्राचीन कालमें तीर्थ-यात्रा

प्राचीन काल में तीर्थ-यात्रा कैसे होती थी, इसके लिए कुछ उल्लेख शास्त्रोंमें मिलते हैं अथवा उनके यात्रा-विवरण उपलब्ध होते हैं। उनसे ज्ञात होता है कि पूर्वकालमें यात्रा-संघ निकलते थे। संघका एक संचा-लक होता था, जो संघका व्यय उठाता था। संघ में विविध वाहन होते थे—हाथी, घोड़े, रथ, गाड़ी आदि। संघके साथ मुनि भी जाते थे। उस समय यात्रामें कई-कई माह लग जाते थे। महाराज अरविन्द जब मुनि बन गये, और जब वे एक बार एक संघके साथ सम्मेद-शिखरकी यात्राके लिये जा रहे थे, अचानक एक जंगली हाथी आक्रमणके उद्देश्यसे उनपर आ झपटा। अरविन्द अवधि-ज्ञानी थे। उन्होंने जाना कि यह तो मेरे मन्त्री मरुभूतिका जीव है। अतः उन्होंने उस हाथीको सम्बोधित करके उपदेश दिया। हाथीने अणुव्रत धारण कर लिये और प्रासुक जल और सूखे पत्तों पर निर्वाह करने लगा। वही जीव बादमें पार्श्वनाथ तीर्थंकर बना। इस प्रकारका कथन पौराणिक साहित्यमें मिलता है।

भैया भगवतीदास कृत 'अर्गलपुर जिन-वन्दना' नामक स्तोत्र है। उससे ज्ञात होता है कि रामपुरके श्रावकोंके साथ भैया भगवतीदास यात्रा करते हुए अर्गलपुर (आगरा) आये थे। उन्होंने अपने स्तोत्रमें आगराके तत्कालीन जैन मन्दिरों का परिचय दिया है। इससे यह भी पता चलता है कि उस समय जैन समाज में कितना अधिक साधर्मी वात्सल्य था। तब यात्रा संघके लोग किसी मन्दिरमें दर्शनार्थ जाते थे तो उस मुहल्लेके जैन बन्धु संघके लोगोंको देखकर बड़े प्रसन्न होते थे और उनका भोजन, पानसे सत्कार करते थे। दुःख है कि वर्तमानमें साधर्मी वात्सल्य नहीं रहा और न यात्रा-संघोंके स्वागत-सत्कार का ही वह रूप रहा।

यात्रा संघोंके अनेक उल्लेख विभिन्न ग्रन्थोंकी प्रशस्तियों आदिमें भी मिलते हैं।

तीर्थ-यात्रा कैसे करें ?

वर्तमानमें यातायातके साधनोंकी बहुलता और सुलभताके कारण यात्रा करना पहले जैसा न तो कष्ट-साध्य रहा है और न अधिक समय-साध्य। यात्रा-संघोंमें यात्रा करनेके पक्ष-विपक्षमें तर्क दिये जा सकते हैं। किन्तु एकाकीकी अपेक्षा यात्रा-संघोंके साथ यात्रा करनेका सबसे बड़ा लाभ यह है कि अनेक परिचित साथियोंके साथ यात्राके कष्ट कम अनुभव होते हैं, समय पूजन, दर्शन, शास्त्र-चर्चा आदिमें निकल जाता है; व्यय भी कम पड़ता है। रेलकी अपेक्षा मोटर बसों द्वारा यात्रा करनेमें कुछ सुविधा रहती है।

जब यात्रा करनेका निश्चय कर लें तो उसी समयसे अपना मन भगवान्की भक्तिमें लगाना चाहिए और जिस समय घरसे रवाना हों, उसी समयसे घर-गृहस्थीका मोह छोड़ देना चाहिए, व्यापारकी चिन्ता छोड़ देनी चाहिए तथा अन्य सांसारिक प्रपंचोंसे मुक्त हो जाना चाहिए।

यात्रामें सामान यथासम्भव कम ही रखना चाहिए किन्तु आवश्यक वस्तुएँ नहीं छोड़नी चाहिए।

उदाहरणके रूपमें यदि सर्दीमें यात्रा करनी हो तो ओढ़ने-बिछानेके रुईवाले कपड़े (गद्दा और रजाई) तथा पहननेके गर्म कपड़े अवश्य अपने साथमें रखने चाहिए। उत्तर प्रदेशमें ग्रीष्म ऋतुमें गर्मी अधिक पड़ती है और सर्दीके मौसममें अधिक सर्दी पड़ती है। विशेषतः गुजरात, मद्रास आदि प्रान्तोंके यात्रियोंको उत्तर प्रदेशके तीर्थोंकी यात्रा करते समय इस बातको ध्यानमें रखना चाहिए। कपड़ोंके अलावा स्टोव, आवश्यक बर्तन और कुछ दिनोंके लिए दाल, मसाला, आटा आदि भी साथमें ले जाना चाहिए।

उत्तर प्रदेशके तीर्थोंमें उत्तराखण्डके अतिरिक्त प्रायः सभी तीर्थ मैदानी इलाकेमें हैं। और इनकी यात्रा किसी भी मौसममें की जा सकती है। जिन दिनों अधिक गर्मी पड़ती और वर्षा होती है, उन्हें बचाना चाहिए—जिससे असुविधा अधिक न हो।

तीर्थ क्षेत्रपर पहुँचने पर यह ध्यान रखना चाहिए कि तीर्थक्षेत्र पवित्र होते हैं। उनकी पवित्रताको किसी प्रकार आन्तरिक और बाह्य रूपसे क्षति नहीं पहुँचनी चाहिए। ज्ञानार्णवमें आचार्य शुभचन्द्रने कहा है—

"जनसंसर्गवाक्चित्तपरिस्पन्दमनोभ्रमाः। उत्तरोत्तरबीजानि ज्ञानिजनमतस्त्यजेत्॥"

अर्थात् अधिक मनुष्योंका जहाँ संसर्ग होता है, वहाँ मन और वाणीमें चंचलता आ जाती है और मनमें विभ्रम उत्पन्न हो जाते हैं। यही सारे अनर्थोंकी जड़ है। अतः ज्ञानी पुरुषोंको अधिक जन-संसर्ग छोड़ देना चाहिए।

यदि शास्त्र-प्रवचन, तत्त्व-चर्चा, प्रभु-पूजन, कीर्तन, सामायिक प्रतिक्रमण या विधान-प्रतिष्ठोत्सव आदि धार्मिक प्रसंग हों तो जन-संसर्ग अनर्थका कारण नहीं है, क्योंकि वहाँ सभीका एक ही उद्देश्य होता है और वह है—धर्म-साधना। किन्तु जहाँ जनसमूहका उद्देश्य धर्म-साधना न होकर सांसारिक प्रयोजन हो, वहाँ जन-संसर्ग संसार-परम्पराका ही कारण होता है।

तीर्थ-क्षेत्रों पर जो जनसमूह एकत्रित होता है, उसका उद्देश्य धर्म-साधन होता है। यदि उस समूहमें कुछ तत्त्व ऐसे हों जो सांसारिक चर्चाओं और अशुभ रागवर्द्धक कार्योंमें रस लेते हों तो तीर्थों पर जाकर ऐसे तत्त्वोंके सम्पर्कसे यथासम्भव बचनेका प्रयत्न करना चाहिए तथा अपने चित्तकी शान्ति और शुद्धि बढ़ानेका ही उपाय करना चाहिए। यही आन्तरिक शुद्धि कहलाती है।

बाह्य शुचिताका प्रयोजन बाहरी शुद्धि है। तीर्थ क्षेत्रोंपर जाकर गन्दगी नहीं करनी चाहिए। मल-मूत्र यथास्थान ही करना चाहिए। बच्चोंको भी यथास्थान ही बैठाना चाहिए। दीवालों पर अश्लील वाक्य नहीं लिखने चाहिए। कूड़ा, राख यथास्थान डालना चाहिए। रसोई यथास्थान करनी चाहिए। सारांश यह है कि तीर्थों पर बाहरी सफाई का विशेष ध्यान रखना चाहिए।

स्त्रियोंको एक बातका विशेष ध्यान रखना चाहिए। मासिक-धर्मके समय उन्हें मन्दिर, धर्म-सभा, शास्त्र-प्रवचन, प्रतिष्ठा-मण्डप आदिमें नहीं जाना चाहिए। कई बार इससे बड़े अनर्थ और उपद्रव हो जाते हैं।

जब तीर्थ-क्षेत्रके दर्शनके लिए जायें, तब स्वच्छ धुला हुआ (सफेद या केशरिया) धोती-दुपट्टा पहन कर और सामग्री लेकर जाना चाहिए। जहाँ तक हो, पूजनकी सामग्री घरसे ले जाना चाहिए। यदि मन्दिर-की सामग्री लें तो उसकी न्यौछावर अवश्य दे देनी चाहिए। जहाँसे मन्दिरका शिखर या मन्दिर दिखाई देने लगे, वहींसे 'दृष्टाष्टक' अथवा कोई स्तोत्र बोलते जाना चाहिए। क्षेत्रके ऊपर यात्रा करते समय या तो स्तोत्र पढ़ते जाना चाहिए अथवा अन्य लोगोंके साथ धर्म-वार्ता और धर्म-चर्चा करते जाना चाहिए।

क्षेत्र पर और मन्दिरमें विनयका पूरा ध्यान रखना चाहिए। सामग्री यथास्थान सावधानीपूर्वक चढ़ानी चाहिए। उसे जमीनमें, पैरोंमें नहीं गिरानी चाहिए। गन्धोदक भूमि पर न गिरे, इसका ध्यान रखना आवश्यक है। गन्धोदक कटि भागसे नीचे नहीं लगाना चाहिए। पूजनके समय सिरको ढकना और केशरका तिलक लगाना आवश्यक है।

जिस तीर्थ पर जायें और जिस मूर्तिके दर्शन करें, उसके बारेमें पहले जानकारी कर लेना जरूरी है। इससे दर्शनोंमें मन लगता है और मनमें प्रेरणा और उल्लास जागृत होता है।

तीर्थ-यात्राके समय चमड़ेकी कोई वस्तु नहीं ले जानी चाहिए। जैसे—सूटकेस, बिस्तरबन्द, जूते, बैल्ट, घड़ीका फीता, पर्स आदि।

अन्तमें एक निवेदन और है। भगवान्के समक्ष जाकर कोई मनौती नहीं मनानी चाहिए, कोई कामना लेकर नहीं जाना चाहिए। निष्काम भक्ति सभी संकटोंको दूर करती है। स्मरण रखना चाहिए कि भगवान्से सांसारिक प्रयोजनके लिए कामना करना भक्ति नहीं, निदान होता है। भक्ति निष्काम होती है, निदान सकाम होता है। निदान मिथ्यात्व कहलाता है और मिथ्यात्व संसार और दुःखका मूल है।

विषापहार स्तोत्रमें कवि धनंजयने भगवान्के समक्ष कामना प्रकट करनेवालोंकी आँखोमें उंगली डालकर उन्हें जगाते हुए कितने सुन्दर शब्दोंमें कहा है—

इति स्तुतिं देव विधाय दैन्याद् वरं न याचे त्वमुपेक्षकोऽसि।
छायातरुं संश्रयतः स्वतः स्यात् कश्छायया याचितयात्मलाभः॥

अर्थात् हे देव! स्तुति कर चुकने पर मैं आपसे कोई वरदान नहीं मांगता। माँगूँ क्या, आप तो वीतराग हैं। और माँगूँ भी क्यों? कोई समझदार व्यक्ति छायावाले पेड़के नीचे बैठकर पेड़से छाया थोड़े ही माँगता है। वह तो स्वयं बिना माँगे ही मिल जाती है। ऐसे ही भगवान्की शरणमें जाकर उनसे किसी बात की कामना क्या करना। वहाँ जाकर सभी कामनाओंकी पूर्ति स्वतः हो जाती है।

तीर्थ-ग्रन्थकी परिकल्पना

भारतवर्षीय दिगम्बर जैन तीर्थ क्षेत्र कमेटी बम्बईकी बहुत समयसे इच्छा और योजना थी कि समस्त दिगम्बर जैन तीर्थोंका प्रामाणिक परिचय एवं इतिहास तैयार कराया जाये। सन् १९५७–५८ में तीर्थक्षेत्र कमेटीके सहयोगसे मैंने लगभग पाँच सौ पृष्ठकी सामग्री तैयार भी की थी और समय-समयपर उसे तीर्थ-क्षेत्र कमेटीके कार्यालयमें भेजता भी रहता था। किन्तु उस समय उस सामग्रीका कुछ उपयोग नहीं हो सका।

सन् १९७० में भगवान् महावीरके २५०० वें निर्वाण महोत्सवके उपलक्ष्यमें भारतवर्षके सम्पूर्ण दिगम्बर जैन तीर्थोंके इतिहास, परम्परा और परिचय सम्बन्धी ग्रन्थके निर्माणका पुनः निश्चय किया गया। यह भी निर्णय हुआ कि यह ग्रन्थ भारतीय ज्ञानपीठके तत्त्वावधानमें भारतवर्षीय दिगम्बर जैनतीर्थ क्षेत्र कमेटी बम्बईकी ओरसे प्रकाशित किया जाये। भगवान् महावीरके २५००वें निर्माण महोत्सवकी अखिल भारतीय दिगम्बर जैन समितिके मान्य अध्यक्ष श्रीमान् साहू शान्तिप्रसादजीने, जो तीर्थक्षेत्र कमेटीके भी अध्यक्ष हैं, मुझे इस ग्रन्थके लेखन-कार्यका दायित्व लेनेके लिए प्रेरित किया और मैंने भी उसे सहर्ष स्वीकार कर लिया।

ग्रन्थकी रूपरेखा

इस ग्रन्थकी रूपरेखा निम्न प्रकार निश्चित की गयी है—

१. इस ग्रन्थके पाँच भाग रहेंगे, जो इस प्रकार हैं—

भाग १. उत्तर प्रदेश, दिल्ली एवं पंजाब (पाकिस्तान) के तीर्थ
भाग २. बिहार, बंगाल और उड़ीसाके तीर्थ
भाग ३. मध्य प्रदेशके तीर्थ
भाग ४. राजस्थान, गुजरात और महाराष्ट्रके तीर्थ
भाग ५. दक्षिण भारतके तीर्थ

२. प्रत्येक तीर्थके विवरणमें निम्नलिखित बातें रहेंगी—

अ. तीर्थकी अवस्थिति और मार्ग

आ. तीर्थका रूप (कल्याणक क्षेत्र, सिद्धक्षेत्र या अतिशय क्षेत्र है) और उसका शास्त्रीय आधार। यदि अतिशयक्षेत्र है तो उसके सम्बन्धमें परम्परागत अनुश्रुतियाँ।

इ. धार्मिक और सांस्कृतिक इतिहास, पौराणिक आख्यान।

ई. पुरातत्त्व सम्बन्धी पृष्ठभूमि और विवरण।

उ. क्षेत्र पर स्थित मन्दिरों, मूर्तियों, स्तम्भों आदिका विवरण। प्राचीन मूर्तियों तथा अन्य कलापूर्ण वस्तुओंका विशेष परिचय। प्रत्येक मन्दिरकी वेदियों और मूर्तियोंका विवरण। महत्त्वपूर्ण शिलालेख।

ऊ. प्रचलित किंवदन्तियाँ।

ए. वार्षिक अथवा उल्लेखनीय नैमित्तिक मेले।

ऐ. क्षेत्रपर स्थित संस्थाएँ।

३. इस विवरणके साथ प्रदेशका नक्शा, जनपद के नक्शे और यात्रा-मार्ग रहेंगे।

४. प्रत्येक तीर्थके यथावश्यक महत्त्वपूर्ण चित्र दिये जायेंगे।

प्रस्तुत भाग–१ की संयोजना

प्रस्तुत प्रथम भाग (उत्तर प्रदेश, दिल्ली और पंजाबके जैन तीर्थ) की रूपरेखा निम्न प्रकार तैयार की गयी है और उसके अनुसार सामग्री संयोजित की गयी है—

अ. उत्तर प्रदेश को सुविधाके लिए निम्नलिखित जनपदोंमें विभाजित कर दिया है—

(१) कुरुजांगल और शूरसेन, (२) उत्तराखण्ड, (३) पंचाल, (४) काशी और वत्स, (५) कोशल, (६) चेदि

आ. इन जनपदोंमें उत्तर प्रदेशके जैन तीर्थों का विभाजन इस प्रकार किया गया है—

१. कुरुजांगल और शूरसेन जनपद–हस्तिनापुर, पारसनाथ का किला, बड़ागाँव, मथुरा, आगरा, शौरीपुर, चन्दवार, मरसलगंज

२. उत्तराखण्ड जनपद–अष्टापद (कैलास), श्रीनगर

३. पंचाल जनपद—अहिच्छत्र, कम्पिला

४. काशी और वत्स जनपद–वाराणसी, सिंहपुरी, चन्द्रपुरी, प्रयाग, कौशाम्बी, पभोसा

५. कोशल जनपद–अयोध्या, रतनपुरी, त्रिलोकपुर, श्रावस्ती, काकन्दी, ककुभग्राम, पावा (नवीन)

६. चेदि (बुन्देलखण्ड) जनपद–देवगढ़, सीरोन, गिरार, सैरोन, पवा (पावागिरि), क्षेत्रपाल ललितपुर, बालाबेहट, चाँदपुर–जहाजपुर, दुधई, बानपुर, मदनपुर, करगुवाँ

इ. परिशिष्ट १. दिल्ली

ई. परिशिष्ट २. पोदनपुर–तक्षशिला

उ. परिशिष्ट ३. उत्तरप्रदेश के दिगम्बर जैन तीर्थों का संक्षिप्त परिचय और यात्रा मार्ग।

ऊ. इस भागके नक्शे भी इसीके अनुसार तैयार कराये गये हैं–सम्पूर्ण उत्तरप्रदेश का एक तथा छह जनपदोंके छह।

आभार-प्रदर्शन

यह ग्रन्थ जो भी कुछ बन पड़ा है, उसमें अनेक महनीय व्यक्तियों का आशीर्वाद और योगदान सर्व प्रमुख कारण रहा है। किन्तु यदि इसके लिए किसी एक ही व्यक्ति को श्रेय दिया जा सकता है तो वे हैं जैन समाज के हृदय सम्राट् साहू शान्तिप्रसादजी। उनकी औद्योगिक प्रतिभा, प्रबन्ध-पटुता, सभा-चातुर्य आदि विशेषताओंने देश-विदेशके असंख्य-व्यक्तियोंको उनका प्रशंसक बना दिया है। इस ग्रन्थके सन्दर्भमें जब मुझे उनके निकट सम्पर्कमें आनेका सौभाग्य मिला तब मुझे उनके गहन अध्ययन, साहित्यिक पकड़ और अद्भुत सूझ-बूझके दर्शन हुए। निश्चय ही मैं उससे बड़ा अभिभूत और विस्मित हुआ। वस्तुतः इस ग्रन्थकी रूपरेखा साहूजीके ही मस्तिष्क की देन है। उनका मुझे आशीर्वाद मिला है और सहज स्नेह भी। उनके प्रति मैं विनम्र भावसे हार्दिक आभार प्रकट करता हूँ। साथ ही, मैं भारतीय ज्ञानपीठ के मन्त्री बाबू लक्ष्मीचन्द्रजी का भी आभारी हूँ जिनका प्रेम, सहयोग और सुझाव सभी कुछ मिले। मैं अपने मित्र डॉ. गुलाबचन्द्र जैन को भी धन्यवाद देता हूँ जिन्होंने परिश्रमके साथ भाषा आदि का संशोधन किया।

इस ग्रन्थ पर विचार करने के लिए श्रीमान् साहूजी के सान्निध्यमें ज्ञानपीठके सहयोगियोंकी समय-समय पर बैठकें हुईं। इन बैठकोंमें सामग्री, शैली, भाषा, रूपरेखा आदि सभी दृष्टिसे विचार किया जाता रहा है। इसलिए कहा जा सकता है कि ग्रन्थके आन्तरिक सौन्दर्य-सृजनमें इन सभी सज्जनोंका बहुत बड़ा हाथ रहा है। उन सबके प्रति भी मैं अपना आभार प्रकट करता हूँ।

मैं भारतवर्षीय दिगम्बर जैन तीर्थक्षेत्र कमेटी, बम्बई की कार्यकारिणीका भी अत्यन्त आभारी हूँ कि उसने सामयिक और समयोपयोगी निर्णय करके भारतीय ज्ञानपीठके माध्यमसे मुझे यह अवसर प्रदान किया।

भारतीय ज्ञानपीठकी अध्यक्षा श्रीमती रमा जैनका भी मैं हृदयसे कृतज्ञ हूँ जिनकी स्नेहिल छायामें मैं इस दायित्वका निर्वाह कर सका।

वीर-परिनिर्वाण दिवस
१३ नवम्बर, १९७४

—बलभद्र जैन

विषय-सूची

उत्तर प्रदेश : इतिहास और कलाकी पृष्ठभूमि ३– १९

कुरुजांगल और शूरसेन जनपद २०– ८४

हस्तिनापुर, पारसनाथका किला, बड़ागाँव, मथुरा, आगरा, शौरीपुर, चन्दवार, मरसलगंज।

उत्तराखण्ड जनपद ८५– ९६

अष्टापद, श्रीनगर।

पंचाल जनपद ९७–११०

अहिच्छत्र, कम्पिला।

काशी और वत्स जनपद १११–१५२

वाराणसी, सिंहपुरी, चन्द्रपुरी, प्रयाग, कौशाम्बी, पभोसा।

कोशल जनपद १५३–१७८

अयोध्या, रतनपुरी, त्रिलोकपुर, श्रावस्ती, काकन्दी, ककुभग्राम, पावा (नवीन)।

चेदि (बुन्देलखण्ड) जनपद १७९–२०८

देवगढ़, सीरौन, गिरार, सैरौनजी, पवाजी (पावागिरि), क्षेत्रपाल (ललितपुर), बालाबेहट, चाँदपुर-जहाजपुर, दुधई, बानपुर, मदनपुर, करगुवाँ।

परिशिष्ट—१ .... २०९–२२२

देहली।

परिशिष्ट—२ .... २२३–२३८

पोदनपुर–तक्षशिला।

परिशिष्ट—३ .... २३९–२४९

उत्तर प्रदेशके दिगम्बर जैन तीर्थोंका संक्षिप्त परिचय और यात्रा-मार्ग।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची २५१–२५२

चित्र सूची २५३–२५५

चित्र २५७

उत्तरप्रदेशके दिगम्बर जैन तीर्थ

उत्तरप्रदेश

इतिहास और कलाकी पृष्ठभूमि

वर्तमान उत्तरप्रदेश श्रमण जैन संस्कृतिका आदि स्रोत रहा है। चौबीस तीर्थंकरोंमें-से अठारह तीर्थंकरोंका जन्म यहीं हुआ। समाज-व्यवस्था, राज-व्यवस्था, दण्ड-व्यवस्था, लिपि और विद्याओंका प्रारम्भ, वंश-स्थापना और यहाँतक कि धर्म-व्यवस्था यहींसे प्रारम्भ हुई। इसलिए उत्तरप्रदेशका अपना विशेष महत्त्व है। इस परिप्रेक्ष्यमें उत्तरप्रदेशकी पृष्ठभूमि समझनेके लिए जैनधर्मकी कुछ मौलिक मान्यताओंपर दृष्टिपात करना उपयोगी प्रतीत होता है।

काल-चक्र—काल सतत प्रवहमान है। उसका चक्र निरन्तर घूमता रहता है। कालका कहीं आदि नहीं और कहीं अन्त नहीं। यह सतत परिणमनशील और परिवर्तनशील है संसारकी सभी वस्तुएँ परिणमनशील हैं। परिणमन ही वस्तुका धर्म है और काल उसका मापक है।

जैनधर्मने इस काल-चक्रको अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी इन दो खण्डोंमें विभाजित किया है। इनमें-से प्रत्येकके ६ विभाग स्वीकार किये गये हैं—सुषमा-सुषमा, सुषमा, सुषमा-दुषमा, दुषमा-सुषमा, दुषमा और दुषमा-दुषमा। इन सब १२ कालोंका एक चक्र कल्प कहलाता है। प्रकृति स्वयं ही एक कल्पके आधे भागमें निरन्तर उत्कर्षणशील बनी रहती है। इसमें मनुष्यकी आयु, रूप, स्वास्थ्य आदि सभी क्षेत्रोंमें उत्कर्ष होता रहता है। अतः यह उत्सर्पिणी काल कहलाता है। जिस कालमें मनुष्यकी आयु, स्वस्थ शरीर, विश्वास आदिमें अपकर्ष होता रहता है, वह अवसर्पिणी काल कहलाता है।

एक कल्प व्यतीत होनेपर प्रकृतिमें भारी परिवर्तन होते हैं, तब दूसरे कल्पका प्रारम्भ होता है। काल इसी परिवर्तन, सृष्टि और विनाशकी धुरीपर निरन्तर चक्रकी तरह घूमता रहता है। प्रकृतिका सम्पूर्ण विनाश कभी नहीं होता, केवल रूप-परिवर्तन भर होता है। घड़ीके डायलमें सुई बारहके बाद छह बजे तक नीचेकी ओर जाती है और उसके बाद बारह बजेतक ऊपरको जाती है। कालकी भी यही स्थिति है। काल अखण्ड और अविभाज्य है, किन्तु व्यवहारकी सुविधा-के लिए हम एक-दो-तीन, घण्टा-घड़ी आदि कालके विभाग कर लेते हैं। कल्प और उसके छह भेदोंकी कल्पना भी व्यावहारिक सुविधाके लिए की गयी है। इस प्रकार कल्पका प्रारम्भिक काल सुविधाके लिए सृष्टिका आदि काल मान लिया गया है और उस कालमें रहनेवाला मानव आद्य मानव कहा जाता है।

कल्प-वृक्ष—मनुष्य-समाजके आरम्भिक और अविकसित रूपको 'युगलिया समाज'के नामसे सम्बोधित किया जाता है। तत्कालीन मानव समाजमें विवाह-प्रथाका प्रचलन नहीं था, अतः सह-जात बहन-भाई ही पति-पत्नीके रूपमें रहने लगते थे। वे अपनी सम्पूर्ण आवश्यकताओंकी पूर्तिके लिए वृक्षोंपर निर्भर रहते थे, जिन्हें कल्प-वृक्ष[1] कहा जाता था। उस समय मानव प्रकृतिसे सरल था। वह सहज जीवन व्यतीत करता था। उसकी आवश्यकताएँ सीमित थीं और आवश्यकता-

---

१. कल्पवृक्ष, १० प्रकारके होते हैं—१. मद्यांग, २. तूर्यांग, ३. विभूषांग, ४. माल्यांग, ५. ज्योतिरंग, ६. दीपांग, ७. गृहांग, ८. भोजनांग, ९. पत्रांग, १०. वस्त्रांग। ये अपने नामके अनुरूप ही फल देते थे।

पूर्तिके साधन असीम थे। अतः आवश्यकताओंकी पूर्ति कल्पवृक्षोंसे सरलतासे हो जाती थी। मानव-विकासका यह उषा-काल था। इस कालको भोग-युग कहा जाता है। और उस समयके मानवकी संस्कृतिको हम वन्य-संस्कृति कह सकते हैं। आधुनिक भाषामें इसे पूर्व पाषाण युग कहा जा सकता है।

कुलकर—प्रकृतिमें तेजीसे परिवर्तन हो रहे थे। कल्पवृक्षोंकी संख्या घटती जा रही थी। मनुष्योंके समक्ष नित नयी समस्याएँ और उलझनें उत्पन्न हो रही थीं। उस समय जिन महान् पुरुषोंने अपने विशेष ज्ञान और सूझ-बूझसे मानवकी उन समस्याओं और उलझनोंको सुलझाया, उन्हें कुलकर कहा जाता है। मानव समाजके नियामक और मार्गदर्शक कुलकर कहलाते हैं। उन्हें 'मनु' भी कहा जाता है। सम्भवतः मनुकी सन्तान होनेके कारण ही मानव या मनुष्य नाम पड़ा! कुलकर दक्षिण भारतमें उत्पन्न हुए थे। तबतक नगरों और ग्रामोंका निर्माण नहीं हुआ था। वे अन्य मानवोंके समान ही रहते थे। किन्तु अपने विशिष्ट ज्ञानके कारण उन्होंने तत्कालीन मानव समाजका नेतृत्व किया और मानव-जातिके हितके अनेक कार्य किये। सब कुलकर चौदह हुए थे, जिनके नाम इस प्रकार हैं—

१—पहले कुलकरका नाम प्रतिश्रुति था। एक दिन पूर्णमासीकी सन्ध्याको पश्चिममें सूर्य और पूर्वमें चन्द्र दिखाई पड़ा। उन्हें देखकर मनुष्य भयभीत हो गये। इससे पहले ज्योतिरंग नामक कल्पवृक्षोंकी तेजस्वी ज्योतिके कारण सूर्य और चन्द्रकी आभा धूमिल लगती थी। किन्तु जब ज्योतिरंग कल्पवृक्षोंकी ज्योति मन्द पड़ने लगी, तब सूर्य और चन्द्र दृष्टिमें आये। मनुष्य भयभीत होकर प्रतिश्रुतिके निकट पहुँचे। उन्होंने बताया—'मनुष्यो! भयका कोई कारण नहीं है। ये सूर्य और चन्द्र ज्योतिष्क मण्डलके तेजस्वी ग्रह हैं। इनसे तुम्हारा कोई अनिष्ट नहीं होगा।' मनुष्य सुनकर आश्वस्त हो गये।

२—प्रतिश्रुतिके पुत्र सन्मति द्वितीय कुलकर हुए। इन्होंने सूर्यग्रहण, चन्द्रग्रहण, ग्रह आदिका स्पष्टीकरण किया।

३—सन्मतिके पुत्र क्षेमंकर हुए। इनके समयमें सिंह-व्याघ्र आदि हिंस्र पशुओंसे मनुष्योंको भय उत्पन्न होने लगा। इन्होंने उसका निराकरण बताकर जनताको निर्भय किया।

४—क्षेमंकरके पुत्र क्षेमन्धर हुए। उन्होंने दुष्ट जानवरोंके लिए लाठी आदिका प्रयोग बताया। सम्भवतः शस्त्रों आदि रूपका आविष्कार इन्हींके कालमें हुआ था।

५—क्षेमन्धरके पुत्र सीमंकर हुए। अब कल्पवृक्षोंकी संख्या बहुत कम हो गयी। उनको लेकर प्रजामें कलह होने लगा। तब इन्होंने प्रत्येक परिवारके लिए कल्पवृक्षोंकी सीमा नियत कर दी।

६—सीमंकरके पुत्र सीमन्धर हुए। इनके समयमें कल्पवृक्षोंका तेजीसे ह्रास होने लगा था।

---

१. मानवकी उत्पत्ति और विकासको लेकर वैज्ञानिकोंने आदि मानव सभ्यताके विकासके कालको तीन भागोंमें विभाजित किया है—(१) पूर्व पाषाण युग (१ करोड़ वर्षसे ६ लाख वर्ष पूर्वतक) इस कालमें मनुष्य प्रायः असभ्य वन्य जीवन व्यतीत करता था। (२) पुरातन पाषाण युग—(६ लाख वर्ष पूर्वसे १५ हजार वर्ष पूर्वतक) इस कालमें ४-५ बड़े व्यापक बर्फीले तूफान आये। इस कारण इस युगको हिमयुग भी कहते हैं। किन्तु इसके अन्तिम चरणमें (लगभग ४०००० से १५००० वर्ष पूर्व-तक) मानव-सभ्यताका सहज विकास हुआ। (३) नव्य पाषाण युग—(ई. पूर्व १५००० वर्षसे ८००० वर्षतक) इस कालमें मानवकी सभ्यता और संस्कृतिने बड़े द्रुत वेगसे प्रगति की।

जनतामें कलह बढ़ने लगी थी, मारपीट भी होने लगी थी। तब इन्होंने हर एकके कल्पवृक्षोंपर चिह्न लगाकर कलह शान्त की।

७—सीमन्धरके पुत्र विमलवाहन हुए। इन्होंने हाथी, घोड़ा आदि जानवरोंको वशमें करके अंकुश, लगाम, पलान आदि द्वारा उनपर सवारी करना सिखाया।

८—विमलवाहनके चक्षुष्मान् पुत्र हुए। पहले माता-पिता पुत्र होते ही मर जाते थे। किन्तु इनके समयमें पुत्र उत्पन्न होनेपर कुछ कालतक माता-पिता जीवित रहते थे। कुलकरने जनताको इसका कारण समझाकर निर्भय किया।

९—चक्षुष्मान्के पुत्र यशस्वान् हुए। इन्होंने प्रजाको पुत्रका नाम रखना सिखाया।

१०—यशस्वान्के पुत्र अभिचन्द्र हुए। इनके उपदेशसे प्रजा अपने पुत्रोंको चन्द्रमाकी चाँदनीमें भी खिलाने लगी।

११—अभिचन्द्रके पुत्र चन्द्राभ हुए। अब इनके उपदेशसे प्रजा अपनी सन्तानको आशीर्वाद देने लगी और पुत्रके साथ माता-पिता कुछ समयतक खेलनेका आनन्द लेने लगे।

१२—चन्द्राभके पुत्र मरुदेव हुए। इनके प्रवचनसे माता-पिता अपने पुत्रोंकी तोतली बोली सुननेका आनन्द लेने लगे।

१३—मरुदेवके पुत्र प्रसेनजित हुए। इन्होंने पुत्र उत्पन्न होनेपर जरायु हटानेकी विधि सिखायी।

१४—प्रसेनजितके पुत्र नाभिराज हुए। ये अन्तिम कुलकर थे। इन्होंने बच्चोंके नाल काटनेकी विधि बतायी। इन्होंने मिट्टीके बरतन बनाना और स्वयं उगे हुए धान्योंका उपयोग करना सिखाया।

इस प्रकार ये चौदह कुलकर हुए और ये सभी एक ही वंश-परम्पराके रत्न थे। ये गंगा और सिन्धु नदियोंके बीच दक्षिण भरत क्षेत्रके निवासी थे। जनतापर इनका बहुत प्रभाव था। ये जनताका नियमन करते थे और आवश्यकता पड़नेपर दण्ड भी देते थे। किन्तु इनका दण्ड शारीरिक न होकर मनोवैज्ञानिक था। किसीसे अपराध होनेपर वे कहते 'हा'। यदि अपराध भारी हुआ या पुनः अपराध हुआ तो कहते थे 'मा'। यदि अपराधी फिर भी बाज न आया या अपराध अति भयानक हुआ—आजकी अपेक्षा नहीं, उस कालकी अपेक्षा—तो कहते 'धिक्'। यह दण्ड अत्यन्त कठोर माना जाता था। और तब, पुनः अपराध करनेका साहस नहीं होता था।

वैदिक परम्परामें स्वायम्भुव मनु मन्वन्तर परम्पराके आद्य प्रवर्तक माने गये हैं। स्वायम्भुवके प्रियव्रत, प्रियव्रतके आग्नीध्र, आग्नीध्रके नाभि और नाभिके पुत्र ऋषभदेव बताये गये हैं।

युगके प्रारम्भमें कर्म-व्यवस्था—जब श्री नाभिरायकी पत्नी मरुदेवीके गर्भमें प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव आनेवाले थे, तब सौधर्म स्वर्गके इन्द्रने कुबेरको त्रिलोकीनाथ भगवान्के उपयुक्त नगरीकी रचना करनेका आदेश दिया। तब देवोंने अयोध्याकी रचना की और इन्द्रने उस नगरीमें सर्वप्रथम जिन मन्दिरोंका निर्माण किया। भगवान् ऋषभदेवने युगके आदिमें यहींपर सबसे पहले असि, मसि, कृषि, विद्या, वाणिज्य और शिल्प इन छह कर्मोंका ज्ञान संसारको दिया था। यहींपर उन्होंने अपनी ब्राह्मी और सुन्दरी पुत्रियोंके माध्यमसे लिपि और अंक विद्याका आविष्कार किया था। अपने भरत आदि सौ पुत्रोंको बहत्तर कलाओंका शिक्षण भी उन्होंने यहीं दिया था। सामाजिक व्यवस्थाके लिए क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र वर्णकी स्थापना उन्होंने यहीं की। राजनीतिक

१. श्रीमद्भागवत ११।२।१५, मनुस्मृति १।६१।

व्यवस्थाके लिए पुर, ग्राम, खेट, कर्वट, नगर आदिकी व्यवस्था यहीं की। उन्होंने अयोध्यासे चलकर सिद्धार्थक वनमें दीक्षा ली, और छह माह निराहार रहनेके बाद प्रथम आहार राजा श्रेयांस द्वारा हस्तिनापुरमें अक्षय तृतीयाको लिया। पुरिमताल नगर स्थित वटवृक्षके नीचे उन्हें केवलज्ञान प्राप्त हुआ। इस अक्षय ज्ञानके कारण ही पुरिमतालका नाम प्रयाग हो गया और वह वटवृक्ष अक्षयवट कहलाने लगा।

उनके पुत्र भरतने सम्पूर्ण जनपदों, प्रदेशों और खण्डोंपर विजय प्राप्त कर प्रथम सार्वभौम साम्राज्यकी स्थापना की और बिखरी हुई सम्पूर्ण राजनीतिक इकाइयोंको सूत्रबद्ध करके उनका राजनीतिक केन्द्र अयोध्या बनाया और इस देशको 'भारतवर्ष' नाम दिया। इससे पूर्व इस देशका नाम अजनाभ वर्ष या नाभिखण्ड था। यह नाम नाभिराजके नामपर रखा गया था। भरतने तीर्थंकरोंकी प्रतिमाओं और स्तूपोंका निर्माण भी प्रारम्भमें यहीं कराया।

इसी कालमें स्वयंवर प्रथाका प्रारम्भ काशी नरेश अकम्पनकी पुत्री सुलोचनाके स्वयंवर द्वारा काशीमें हुआ।

उत्तरप्रदेशके जनपद—भगवज्जिनसेनके आदिपुराणके अनुसार भगवान् ऋषभदेवने भारतको ५२ जनपदोंमें विभाजित किया था। उन जनपदोंके नाम इस प्रकार हैं :

सुकोशल, अवन्ती, पुण्ड्र, उण्ड्र, अश्मक, रम्यक, कुरु, काशी, कलिंग, अंग, बंग, सुह्म, समुद्रक, काश्मीर, उशीनर, आनर्त, वत्स, पंचाल, मालव, दशार्ण, कच्छ, मगध, विदर्भ, कुरुजांगल, करहाट, महाराष्ट्र, सुराष्ट्र, आभीर, कोंकण, वनवास, आन्ध्र, कर्णाट, कोशल, चोल, केरल, दारु, अभिसार, सौवीर, शूरसेन, अपरान्तक, बिदेह, सिन्धु, गान्धार, यवन, चेदि, पल्लव, काम्बोज, आरट्ट, बाह्लीक, तुरुष्क, शक और कैकय।

इन देशोंमें-से निम्नलिखित देश उत्तरप्रदेशकी सीमाके अन्तर्गत हैं :

१. कुरुजांगल जनपद—इसकी राजधानी हस्तिनापुर थी, जो आजकल मेरठ जिलेमें है।
२. पंचाल जनपद—पश्चाद्वर्ती कालमें इस जनपदके दो भाग हो गये थे—उत्तर पंचाल और दक्षिण पंचाल। उत्तर पंचालकी राजधानी अहिच्छत्र थी, जो आजकल बरेली जिलेमें है। दक्षिण पंचालकी राजधानी कम्पिला थी, जो आजकल फर्रुखाबाद जिलेमें है।
३. कोशल जनपद—पश्चाद्वर्ती कालमें इस जनपदके भी दो भाग हो गये थे—उत्तर कोशल और दक्षिण कोशल। उत्तर-कोशलकी राजधानी श्रावस्ती थी जो वर्तमान बहराइच जिलेमें है।
   दक्षिण कोशल—इसकी राजधानी साकेत या अयोध्या थी। आजकल यह फैजाबाद जिलेमें है।
४. वत्स जनपद—इसकी राजधानी कौशाम्बी थी, जो आजकल इलाहाबाद जिलेमें है।
५. काशी जनपद—वर्तमान वाराणसी ही काशी जनपदकी राजधानी थी।
६. शूरसेन जनपद—इसकी राजधानी मथुरा थी।

भगवान् महावीरसे पहले भारतमें सोलह बड़े राज्य थे जो सोलह महाजनपद कहे जाते थे। वे महाजनपद इस प्रकार थे—मगध, बंग, काशी, कोशल, वज्जि, मल्ल, वत्स, चेदि, कुरु, पंचाल, शूरसेन, मत्स्य, अवन्ति, अश्मक, गान्धार और कम्बोज। इन महाजनपदोंमें काशी, कोशल, वत्स, कुरु, पंचाल और शूरसेन जनपद उत्तरप्रदेशमें हैं।

वर्तमान सभ्यताका आदि केन्द्र—वस्तुतः उत्तरप्रदेश भारतवर्षका हृदय है। जैन शास्त्रोंमें इसे मध्यदेश भी कहा गया है। यहीं मानवकी संस्कृति और सभ्यताका बीजारोपण हुआ। कल्पवृक्षोंका अन्त होनेपर भगवान् ऋषभदेवके उपदेशसे तत्कालीन जनताने इक्षु-रस और कृषि उद्योगके

द्वारा अपना जीवन-यापन करना प्रारम्भ किया। कृषि-उद्योगके आश्रयसे ही युगके आरम्भमें मानवीय संस्कृतिका ढाँचा निर्मित एवं विकसित हुआ। भोगयुगकी समाप्तिपर कर्मयुगका प्रारम्भ यहीं हुआ जिसका अर्थ था कि सभ्यता और संस्कृतिका सोना कर्मकी आगमें पड़कर ही आभामय बनता है। भोग तो उसका मैल है। कर्म स्फूर्त संस्कृति ही मानवकी श्रेष्ठ संस्कृति है।

वंश स्थापना—भगवान् ऋषभदेव इक्ष्वाकु वंशी थे। उनके दो प्रतापी पौत्रों—भरतपुत्र अर्ककीर्ति और बाहुबलीपुत्र सोमयशसे क्रमशः सूर्यवंश और चन्द्रवंशका प्रादुर्भाव हुआ। अपने राजनीतिक वर्चस्व और प्रभावके कारण सारे संसारमें इन दोनों ही राजवंशोंकी बड़ी ख्याति हुई। इन दोनों ही राजवंशोंने उत्तरप्रदेशमें अपने शक्तिशाली राज्य स्थापित किये।

समाजमें अनुशासन और व्यवस्था बनानेके लिए भगवान्‌ने हरि, अकम्पन, काश्यप और सोमप्रभ नामक चार क्षत्रियोंको महामण्डलेश्वर बनाया और उन चारोंसे क्रमशः हरिवंश, नाथ-वंश, उग्रवंश और कुरुवंश चले। मूलवंश इक्ष्वाकुवंश था, जो भगवान् ऋषभदेवसे चला था। शेष वंश इक्ष्वाकुवंशकी ही शाखा-प्रशाखा थे। त्रेसठ शलाकापुरुषोंमेंसे कई तीर्थंकर, चक्रवर्ती, बलभद्र, नारायण आदि इन्हीं वंशोंमें उत्पन्न हुए।

तीर्थंकरोंमें पार्श्वनाथ उग्रवंशमें, मुनिसुव्रतनाथ और नेमिनाथ हरिवंशमें, धर्मनाथ, कुन्थुनाथ और अरनाथ कुरुवंशमें तथा शेष तीर्थंकर इक्ष्वाकुवंशमें उत्पन्न हुए।

चक्रवर्तियोंमेंसे भरत, सगर, मघवा, सुभौम, पद्म, हरिषेण और जयसेन इक्ष्वाकुवंशमें, सनत्कुमार सूर्यवंशमें, शान्तिनाथ सोमवंशमें, कुन्थुनाथ और अरनाथ कुरुवंशमें उत्पन्न हुए थे।

भरत चक्रवर्ती भगवान् ऋषभदेवके समय और तीर्थमें हुए। सगर भगवान् अजितनाथके तीर्थमें, मघवा और सनत्कुमार धर्मनाथ और शान्तिनाथके अन्तरालमें, सुभौम भगवान् अरनाथ और मल्लिनाथके अन्तरालमें, पद्म भगवान् मल्लिनाथ और मुनिसुव्रतनाथके अन्तरालमें, हरिषेण भगवान् मुनिसुव्रतनाथ और नमिनाथके मध्यमें, जयसेन भगवान् नमिनाथ और नेमिनाथके अन्तरालमें और ब्रह्मदत्त भगवान् नेमिनाथ और पार्श्वनाथके मध्यवर्ती कालमें हुए। शान्तिनाथ, कुन्थुनाथ और अरनाथ चक्रवर्ती भी थे और क्रमशः १६वें, १७वें, १८वें तीर्थंकर भी।

चक्रवर्तियोंके समान बलभद्र, नारायण और प्रतिनारायण निम्नलिखित तीर्थंकरोंके तीर्थमें हुए थे। (यहाँ जो नाम दिये जा रहे हैं, वे क्रमशः बलभद्र, नारायण और प्रतिनारायणके समझने चाहिए)—

१. विजय, त्रिपृष्ठ—अश्वग्रीव	भगवान् श्रेयांसनाथके तीर्थमें
२. अचल, द्विपृष्ठ—तारक	भगवान् वासुपूज्यके तीर्थमें
३. धर्म, स्वयम्भू—मेरक	भगवान् विमलनाथके तीर्थमें
४. सुप्रभ, पुरुषोत्तम—मधुकैटभ	भगवान् अनन्तनाथके समयमें
५. सुदर्शन, पुरुषसिंह—निशुम्भ	भगवान् धर्मनाथके तीर्थमें
६. नन्दी, पुरुष पुण्डरीक—बलि	भगवान् अरनाथके तीर्थमें
७. नन्दिमित्र, पुरुषदत्त—प्रहरण	भगवान् मल्लिनाथके तीर्थमें
८. राम, लक्ष्मण—रावण	भगवान् मुनिसुव्रतनाथके तीर्थमें
९. पद्म, कृष्ण—जरासन्ध	भगवान् नेमिनाथके समयमें

तीर्थंकरोंकी लीलाभूमि—पौराणिक और सांस्कृतिक साहित्यके अनुशीलनसे यह निष्कर्ष निकलता है कि १८ तीर्थंकरोंके गर्भ, जन्म, दीक्षा और ज्ञान कल्याणक उत्तरप्रदेशमें हुए। भगवान् ऋषभदेवका निर्वाण कल्याणक भी इसी प्रदेशमें हुआ था।

अयोध्यामें भगवान् ऋषभदेव, भगवान् अजितनाथ, भगवान् अभिनन्दननाथ, भगवान् सुमतिनाथ और भगवान् अनन्तनाथका जन्म हुआ। वर्तमान भूमि मापके अनुसार अयोध्यासे २४ कि. मी. दूर रतनपुरीमें भगवान् धर्मनाथ उत्पन्न हुए। अयोध्यासे १०९ कि. मी. दूर श्रावस्तीमें भगवान् सम्भवनाथने जन्म लिया। देवरियासे १४ कि. मी. दूर काकन्दीमें भगवान् पुष्पदन्तका जन्म हुआ।

काशी भगवान् सुपार्श्वनाथ और पार्श्वनाथकी जन्मभूमि है। काशीसे २० कि. मी. दूर चन्द्रपुरी भगवान् चन्द्रप्रभ और ६ कि. मी. दूर सिंहपुरी भगवान् श्रेयांसनाथके जन्मसे पवित्र हुई। इलाहाबादसे ६० कि. मी. दूर कौशाम्बीमें भगवान् पद्मप्रभुका जन्म हुआ।

हस्तिनापुरमें भगवान् शान्तिनाथ, भगवान् कुन्थुनाथ और भगवान् अरनाथका जन्म हुआ। ये तीनों चक्रवर्ती भी थे। कम्पिला भगवान् विमलनाथकी तथा आगरासे ७५ कि. मी. दूर शौरीपुर भगवान् नेमिनाथकी जन्मभूमि है।

इन तीर्थंकरोंके समान अन्य तीर्थंकरोंका भी पुण्य विहार और समवशरण उत्तरप्रदेशमें होता रहा है। उनके लोकातिशायी पावन चरणोंकी धूलि इस प्रदेशके कण-कणमें व्याप्त है। इसलिए यहाँ-का कण-कण पावन तीर्थ है। उत्तरप्रदेशके समुन्नत भालकी तरह गर्वोन्नत हिमालयमें भगवान् ऋषभदेव, महामुनि भरत, महायोगी बाहुबली, आत्मपुरुषार्थी भगीरथ, महाबाहु बाली आदि असंख्य मुनियोंने सम्पूर्ण गंगा-तटपर, हिमालयकी कठोर शिलाओंपर, उत्तुंग हिमशिखरोंपर सर्वत्र विहार करके, तपस्या करके, विमल केवलज्ञान प्राप्त करके, दिव्य उपदेश देकर और निर्वाण-लाभ द्वारा इस विस्तृत पर्वत शृंखलाको ही तीर्थधाम बनाया था। आज भी वहाँका हर कंकड़ इन महामुनियोंकी चरण-रजको अपने भीतर संजोये हुए है, इसलिए वह वन्द्य पवित्रधाम हो गया है।

इतिहास—आदिकालसे लेकर यह प्रदेश विभिन्न राजवंशोंका शासनकेन्द्र रहा। गंगा, यमुना, सरस्वती, सरयू, घाघरा, गोमती आदि नदियोंसे सिंचित इस प्रदेशकी मिट्टी अत्यन्त उपजाऊ रही है। यहाँकी मिट्टी बीज निगलकर सोना उगलती है। इसलिए यह प्रदेश राजनीतिक षड्यन्त्रोंका केन्द्र रहा है और देश, विदेशके अनेक राजवंशोंको अपनी ओर आकर्षित करता रहा है। महाभारत युद्धके सर्वग्रासी परिणामोंको भोगकर यह प्रदेश बहुत लम्बे कालतक निर्बल रहा। उसके पश्चात् इसपर शिशुनाग, नन्द, मौर्य, शुंग, शक, कुषाण, गुप्त, नाग, मौखरी, प्रतिहार, भार, गाहड़वाल, मुसलिम, अँगरेज आदि वंशों और जातियोंका शासन रहा।

भारशिव, वाकाटक, चन्देल, कलचुरी, कच्छप प्रायः मुसलमानोंके आक्रमण और शासन-कालसे पहलेतक विशेषतः मौर्य, कुषाण, गुप्तवंश, प्रतिहार और गाहड़वाल वंशोंके शासनकालमें उत्तरप्रदेशमें जैन मन्दिरों, मूर्तियों, आयागपट्टों, स्तूपों आदिका विपुल संख्यामें निर्माण हुआ। आर्थिक दृष्टिसे भी यह समृद्धि-युग कहा जा सकता है।

इसके पश्चात् धर्मोन्मादसे ग्रस्त होकर कुछ लोगोंने यहाँ न केवल धन-सम्पदाको ही लूटा, बल्कि उन्होंने संस्कृति और कलाके केन्द्रोंका भी विध्वंस किया।

छठी शताब्दीमें हूण सरदार मिहिरकुलने मथुराका विध्वंस किया। इस विनाश लीलामें, लगता है, मथुराके जैन मन्दिर और स्तूप भी नष्ट कर दिये गये। महमूद गजनवीने भारतपर अपने नौवें अभियान सन् १०१७ में मथुरापर भयंकर आक्रमण किया। उसके एक कर्मचारी मीर मुन्शी अलउत्बीने 'तारीखे यामिनी' में लिखा है कि सुलतानने इस शहरमें एक ऐसी इमारत देखी जिसे यहाँके लोग मनुष्योंकी रचना न बताकर देवताओंकी कृति बताते थे। एक मन्दिरको देखकर तो सुलतानने यहाँतक कहा कि यदि कोई शख्स इस प्रकारकी इमारत बनवाना चाहे तो दस करोड़

दीनारसे कम खर्च न होंगे और शायद दो सौ साल उसके बनानेमें लग जायेंगे। यह मन्दिर कौन सा था, यह तो ज्ञात नहीं हो सका, किन्तु जिस इमारतको देवनिर्मित बताया गया है, वह सम्भवतः देवनिर्मित स्तूप रहा होगा और गजनीके उस बुतशिकन सुल्तानने उसे अवश्य तोड़ दिया होगा। क्योंकि उसके पश्चात् देवनिर्मित स्तूपका उल्लेख किसी यात्री या ग्रन्थकारने नहीं किया।

इस प्रकार अन्य कई बादशाहों और सरदारोंने बर्बरतापूर्वक इस प्रदेशकी सांस्कृतिक और आर्थिक बरबादी कर डाली। बरबादीका यह क्रम औरंगजेब तक बराबर चलता रहा। उन्होंने उत्तरप्रदेशके प्रायः सभी जैन तीर्थोंके मन्दिरों, मूर्तियों और स्तूपोंको नष्ट कर दिया।

कला और कलाकेन्द्रोंके इस दीर्घकालीन और व्यापक विनाशके कारण जैन संस्कृतिको गहरा आघात लगा है। पुरातत्त्वान्वेषक एवं इतिहासकार कलाके इन अवशेषोंको टटोलकर जैन संस्कृति और जैन इतिहासका अबतक सही मूल्यांकन नहीं कर सके हैं। कई विद्वानोंने भ्रमवश काकन्दी, श्रावस्ती, कौशाम्बी, अहिच्छत्र, कम्पिला आदि जैन तीर्थोंके कई जैन अवशेषों, मन्दिरों, मूर्तियों और स्तूपोंको बौद्ध लिख दिया। कई पुरातत्त्ववेत्ताओंकी यह धारणा बद्धमूल हो गयी है कि सभी प्राचीन स्तूप सम्राट् अशोक द्वारा निर्मित हैं किन्तु सम्राट् अशोकके पौत्र सम्राट् सम्प्रतिने जैनधर्मके प्रचारके लिए वही किया था जो अशोकने बौद्धधर्मके प्रचारके लिए किया था। उसने भी अशोककी तरह स्तम्भोंपर धर्माज्ञाएँ लिखवायी थीं; तीर्थंकरोंकी कल्याणक भूमियोंपर स्तम्भ और स्तूप भी बनवाये थे। उसने अपना नाम न देकर 'प्रियदर्शिन' ही लिखवाया था। स्तूपोंके समान कुछ धर्मचक्र, सिंहस्तम्भ, हाथी, घोड़ा आदि चिह्नित स्तम्भ, तीर्थंकरोंकी यक्ष-यक्षिणियोंकी मूर्तियाँ, चैत्यवृक्ष आदिको कुछ विद्वानोंने बौद्ध या हिन्दू लिख दिया है, जो वस्तुतः जैन संस्कृतिके प्रतीक हैं।

उत्तरप्रदेशके विभिन्न स्थानोंमें प्राचीन मन्दिरोंके भग्नावशेष मीलोंमें बिखरे पड़े हैं, जिनमें कुछ टीलोंका उत्खनन हो गया है। अनेक टीलोंकी खुदाई अबतक भी नहीं हो पायी है।

ये स्थान हैं—देवगढ़, हस्तिनापुर, मथुरा, अहिच्छत्र, कम्पिला, चन्दवार, शौरीपुर, कौशाम्बी, श्रावस्ती, अयोध्या, ककुभग्राम, काकन्दी, पारसनाथका किला आदि।

जैन कला

उत्तरप्रदेशमें विभिन्न स्थानोंके अन्वेषण और उत्खनन द्वारा जो जैन कलाकृतियाँ उपलब्ध हुई हैं, उन्हें हम सुविधाके लिए चार भागोंमें विभक्त कर सकते हैं—

१. तीर्थंकर मूर्तियाँ—देवगढ़, श्रावस्ती, प्रयाग, मथुरा, अहिच्छत्र, काकन्दी, कौशाम्बी, पभोसा और कम्पिलामें कुछ ऐसी मूर्तियाँ उपलब्ध हुई हैं, जिनका निर्माण काल ईसा पूर्व तीसरी-चौथी शताब्दीसे ईसाकी ५-६वीं शताब्दीतक है। जितनी मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं, उनमें पद्मासन प्रतिमाएँ अधिक हैं। कुछ खड्गासन प्रतिमाएँ भी हैं। देवगढ़में ऐसी प्रतिमाओंकी संख्या अधिक है। अधिकांश प्रतिमाओंके सिंहासन पीठपर उनका निर्माण-काल अभिलिखित है। कुछ प्राचीन प्रतिमाओंपर इस प्रकारके लेख अंकित नहीं हैं। जैन समाजमें ऐसी प्रतिमाओंको चतुर्थकाल अर्थात् ईसा पूर्व छठवीं या इससे पूर्वकी शताब्दियोंकी माननेका चलन है। ऐसी मूर्तियाँ बड़ागाँव, मथुरा, प्रयाग, चन्दवार, फिरोजाबाद, काकन्दी, ककुभग्राम, बहसूमा, देवगढ़ आदिमें हैं।

इतना तो प्रायः निश्चित है कि जिन प्रतिमाओंपर अभिलेख नहीं हैं, वे ईसा पूर्वसे लेकर गुप्तकाल अथवा उसके बादकी मानी गयी हैं। ऐसी प्रतिमाओंमेंसे कुछका परिचय पुरातत्त्वके छात्रों और शोधकर्ताओंके लिए बड़ा उपयोगी होगा।

काकन्दी—यहाँ भगवान् नेमिनाथकी सवा दो फुट ऊँची कृष्ण वर्णकी एक खड्गासन प्रतिमा है। यह एक शिलाफलकपर उत्कीर्ण है। उसके परिकरमें इन्द्र, देव, देवियाँ आदि हैं। एक भूरे पाषाणकी आठ इंची देवी-मूर्ति भूगर्भसे प्राप्त हुई थी। यह अम्बिकाकी मूर्ति है। ये दोनों ही मूर्तियाँ गुप्तकाल अथवा उससे कुछ पूर्वकी हैं। यहाँसे निकली कुछ मूर्तियाँ गोरखपुरके जैन मन्दिर-में भी रखी हैं।

ककुभग्राम—यहाँ एक टूटे-फूटे कमरेमें एक अलमारीमें पाँच फुटकी कायोत्सर्गासन एक तीर्थंकर-प्रतिमा रखी हुई है। मूर्ति खण्डित है। इस कमरेके सामने चबूतरेपर एक चार फुट अव-गाहनावाली मूर्ति पड़ी हुई है। ये दोनों ही मूर्तियाँ गुप्तकालकी लगती हैं।

प्रयाग—यहाँ किलेकी खुदाईमें १५०-२०० वर्ष पहले कुछ जैन मूर्तियाँ उपलब्ध हुई थीं, जो यहाँ चाहचन्द मुहल्लेके पार्श्वनाथ दिगम्बर जैन मन्दिर और पंचायती दि० जैन मन्दिरमें विराजमान हैं। इनमें पाषाण-मूर्तियाँ तीर्थंकरोंकी और धातु-मूर्तियाँ प्रायः शासन देवियोंकी हैं। तीर्थंकर मूर्तियों-पर कोई अभिलेख नहीं है। इस प्रकारकी तीर्थंकर मूर्तियोंकी संख्या दोनों मन्दिरोंमें तेरह हैं। ये सभी मूर्तियाँ शैली, विन्यास, भावाभिव्यंजना और पाषाणको देखकर लगभग एक ही कालकी लगती हैं। इनका निर्माणकाल ७-८वीं शताब्दी लगता है। देवी-मूर्तियाँ ५वींसे १९वीं शताब्दीतक-की हैं।

यहाँके संग्रहालयमें कुछ जैन मूर्तियाँ संग्रहीत हैं जो विभिन्न स्थानोंसे प्राप्त हुई हैं। ये मूर्तियाँ छठीसे बारहवीं शताब्दीतककी हैं। इनमें सर्वाधिक उल्लेखनीय है भगवान् चन्द्रप्रभ-प्रतिमा। यह पद्मासन है और भूरे पाषाणकी है। इसका आकार पौने चार फुट है। यह छठी शताब्दीकी मानी गयी है। यहाँ दो मूर्तियाँ दसवीं शताब्दीकी हैं, चार मूर्तियाँ बारहवीं शताब्दीकी हैं। यहाँ अम्बिका-की अत्यन्त मनोरम मूर्ति है, जो ६ फुट लम्बे और ३ फुट चौड़े फलकपर बनी हुई है। इस फलक-में अम्बिकाके अतिरिक्त २३ शासन देवियोंकी भी मूर्तियाँ अंकित हैं।

शौरीपुर—यहाँके मन्दिरोंमें चार तथा पंचमढ़ीमें तीन मूर्तियाँ काफी प्राचीन लगती हैं। संभवत: ये १०वीं शताब्दीकी होंगी। कुछ मूर्तियाँ अभिलिखित भी हैं, जिनके अनुसार वे ११-१२वीं शताब्दीकी हैं। यहाँसे उत्खननमें कुछ मूर्तियाँ निकली थीं जो लखनऊके संग्रहालयमें रखी हुई हैं।

वटेश्वरमें भी ५–६ मूर्तियाँ ११-१२वीं शताब्दीकी विराजमान हैं। यहाँ मूलनायक भगवान् अजितनाथकी प्रतिमा अत्यन्त सौम्य और प्रभावक है। इसकी प्रतिष्ठा आल्हा-ऊदलके पिता जल्हणने महोबामें संवत् १२२४ में करायी थी।

मथुरा—चौरासी क्षेत्रपर मूलनायक भगवान् अजितनाथकी प्रतिमा संवत् १४९४ की है। यह अत्यन्त प्रशान्त और सौम्य है। भगवान् पार्श्वनाथकी श्वेत वर्ण, पौने दो फुट अवगाहनाकी एक पद्मासन-प्रतिमा संवत् ११६८ (सन् १११२) की है। भूगर्भसे प्राप्त एक मूर्तिपद संवत् १८९ अंकित है।

मथुराके विभिन्न स्थानों—जैसे कंकाली टीला, सप्तर्षि टीला, कृष्ण जन्म-भूमि आदिसे उत्खनन द्वारा विपुल जैन सामग्री प्राप्त हुई है। कुछ मूर्तियाँ ईसवी सन्से भी प्राचीन हैं और कई मूर्तियाँ शक-कुषाण कालकी हैं। ऐसी मूर्तियोंमें भगवान् मुनिसुव्रतनाथ, आदिनाथ, नेमिनाथ, अरनाथ, शान्तिनाथ आदि तीर्थंकर मूर्तियाँ हैं।

चन्दवार—मन्दिरमें ५ प्रतिमाएँ संवत् १०५३ और १०५६ की हैं। यहाँकी कुछ प्रतिमाएँ फिरोजाबादमें 'छोटी-छिपैटी'के मन्दिरमें विराजमान हैं। वे भी लगभग इसी कालकी प्रतीत होती हैं।

पभोसा—यहाँ पर्वतकी एक शिलापर चार प्रतिमाएँ उकेरी हुई हैं, जो सम्भवतः ईसा पूर्व प्रथम-द्वितीय शताब्दीकी हैं।

अयोध्या—कटरा मुहल्लाके दिगम्बर जैन मन्दिरमें वेदी नं० २ में जो मुख्य प्रतिमा विराजमान है, वह संवत् १२२४ की है।

त्रिलोकपुर—नेमिनाथ मन्दिरमें मूलनायक भगवान् नेमिनाथकी कृष्णवर्णकी प्रतिमा संवत् ११९७ की है।

आगरा—मोतीकटराके दिगम्बर जैन बड़ा मन्दिरमें मूलनायक भगवान् सम्भवनाथकी प्रतिमा संवत् ११४७ की है। इसके अतिरिक्त संवत् १२७२ की कई प्रतिमाएँ हैं।

बड़ागाँव—में एक मूर्ति संवत् ११२७ की है तथा हस्तिनापुरमें शान्तिनाथ तीर्थंकरकी प्रतिमा संवत् १२३७ की है।

देवगढ़—की तीर्थंकर मूर्तियोंमें गुप्तकालसे लेकर आधुनिककालतककी मूर्तियाँ मिलती हैं।

दिल्ली—के नया मन्दिर और सेठके कूंचा मन्दिरमें संवत् १२५३ की प्रतिमाएँ विराजमान हैं।

मन्दिरोंके अतिरिक्त बनारस कला भवन, लखनऊ, सारनाथ, मथुरा और दिल्लीके संग्रहालयोंमें ईसा पूर्व चौथी शताब्दीतककी मूर्तियाँ विद्यमान हैं।

मूर्तियोंमें विविध प्रकारकी तीर्थंकर मूर्तियाँ मिलती हैं, जैसे सर्वतोभद्रिका, द्विमूर्तिकाएँ, त्रिमूर्तिकाएँ, चौबीस प्रतिमाएँ, नन्दीश्वर द्वीपकी ५२ प्रतिमाएँ, सहस्रकूट चैत्यालय आदि। विविध शैलीकी जटावाली पंचफणवाली, सप्तफणवाली, सहस्रफणवाली, सर्पासनवाली, नीचेसे ऊपरतक सर्पकी कुण्डलीवाली मूर्तियाँ भी मिलती हैं। ऋषभदेवके साथ मुनि भरत-बाहुबलीकी मूर्तियाँ भी मिलती हैं और नेमिनाथके साथ गृहस्थ दशामें कृष्ण-बलभद्रकी भी मूर्तियाँ मिली हैं।

उत्तरप्रदेशमें यों तो सभी तीर्थक्षेत्रोंपर प्राचीन और कलापूर्ण प्रतिमाएँ मिलती हैं, किन्तु दो स्थानोंका अत्यधिक महत्त्व है—मथुरा और देवगढ़। मथुरामें पुरातन कालकी जितनी जैन कला-सामग्री भूगर्भसे उपलब्ध हुई है, उतनी भारत भरमें अन्यत्र कहींसे प्राप्त नहीं हुई। इसी प्रकार देवगढ़में जितना कला-वैविध्य और मूर्तियोंका बाहुल्य विद्यमान है, उतना भारत भरमें अन्यत्र कहीं नहीं है। यहाँ तीर्थंकर माता, पाँच परमेष्ठी और शासन देवियोंकी पृथक् मूर्तियाँ भी विपुल संख्यामें मिलती हैं।

२. शासन देवताओंकी मूर्तियाँ—चौबीस तीर्थंकरोंमें प्रत्येकके सेवक एक यक्ष और एक यक्षिणी होते हैं। ये शासन देवता कहलाते हैं। तीर्थंकरोंके साथ भी इन देवताओंकी मूर्तियाँ मिलती हैं और देवगढ़, काकन्दी, मथुरा, प्रयाग, वाराणसी आदि कई स्थानोंपर यक्ष और यक्षिणीकी अलग मूर्तियाँ भी मिलती हैं। कहीं देवी-मूर्ति चतुर्भुजी मिलती है, कहीं दोभुजी। देवगढ़ आदिमें अधिक भुजावाली भी मिलती हैं। इन यक्ष-यक्षिणियोंका रूप, वाहन, आसन, मुद्रा, भुजाएँ, हाथोंमें लिये हुए पदार्थ आदिका जैन शास्त्रोंमें विस्तृत वर्णन मिलता है। उसे समझे बिना उन्हें हिन्दू या बौद्ध देवी-देवता माननेकी भूल हो जाती है, जैसी कि श्रावस्ती, काकन्दी, ककुभग्राममें हुई है। यक्षिणियोंमें अम्बिका, पद्मावती और चक्रेश्वरीकी मूर्तियाँ सर्वाधिक मिलती हैं।

३. आयागपट्ट आदि—इस श्रेणीमें हम स्तूप, आयागपट्ट, चैत्यवृक्ष, सर्वार्थवृक्ष और धर्मचक्रको लेंगे।

सम्राट् सम्प्रतिने ऐसे स्थानोंपर जैनधर्मकी अहिंसा आदि लोक-कल्याणकारी धर्मशिक्षाएँ स्तम्भों या स्तूपोंपर खुदवाकर लगवायी थीं जो तीर्थंकरोंके कल्याणक स्थान, अपने परिवारजनोंके मृत्युस्थान अथवा अपने जन्मस्थान थे। कौशाम्बी, प्रयाग, कालसी, सारनाथ आदिके स्तूप, सिंह स्तम्भ सम्राट् सम्प्रति द्वारा निर्मित हैं। सासारामके शिलालेखमें तो वीर नि० सं० २५६ दिया हुआ है।

दूसरी शताब्दीका एक आयागपट्ट मथुराके कंकाली टीलेसे प्राप्त हुआ था, जिसमें सूचित स्तूपको प्राचीन अनुश्रुतिके समान पुरातत्त्ववेत्ता भी देवनिर्मित स्वीकार करते हैं। देवगढ़, मथुरा-में और भी कई आयागपट्ट मिलते हैं। कौशाम्बीमें भी कई आयागपट्ट प्राप्त हुए हैं।

एक वृक्षके नीचे सुखासनसे बैठे हुए स्त्री-पुरुष होते हैं। उनकी गोदमें कभी-कभी बालक भी होता है। वृक्षके शीर्षपर अर्हन्त प्रतिमा होती है। ऐसे चैत्यवृक्ष कई स्थानोंपर प्राप्त हुए हैं।

धर्मचक्र मूर्तिके सिंहासन पीठपर लांछनके दोनों ओर बने होते हैं। कभी दो सिंहोंके बीचमें बना होता है। कहीं-कहीं सर्वाण्ह यक्ष अपने मस्तकपर धर्मचक्र उठाये हुए मिलता है। कौशाम्बी, देवगढ़में एक पाषाणमें बने हुए धर्मचक्र भी मिले हैं। तीर्थंकरोंके समवशरणमें द्वारपर धर्मचक्र रहता है। जब वे विहार करते हैं, उस समय धर्मचक्र उनके आगे-आगे चलता है। उनके प्रथम उपदेशको धर्मचक्र प्रवर्तन कहा जाता है। इन कारणोंसे धर्मचक्र जैनधर्मका महत्त्वपूर्ण प्रतीक है। इसमें ८, १६, २४, ३२ और एक हज़ारतक आरे रहते हैं।

४. विविध अलंकरण और वेदिका स्तम्भ—जैन स्तूपोंके चारों ओर पत्थरोंका घेरा बनाया जाता था। यह वेदिका कहलाता था। इसमें सीधे और आड़े पत्थर लगाये जाते थे। सीधे पत्थरोंपर लोक जीवन और प्राचीन आख्यानोंसे सम्बन्ध रखनेवाले विविध दृश्य अंकित किये जाते थे। आड़े पत्थरोंपर पशु-पक्षियों और प्रकृति-सौन्दर्यके दृश्य उत्कीर्ण किये जाते थे। इस प्रकारके स्तम्भ मथुरा और देवगढ़में प्रचुर मात्रामें उपलब्ध हुए हैं। देवगढ़के स्तम्भ गुप्तकाल या उसके पश्चाद्वर्ती कालके हैं, जबकि मथुराके स्तम्भ कुषाणकालके हैं। मथुराके वेदिका-स्तम्भोंमें स्त्रियोंके विविध मोहकरूपोंके दृश्य बहुतायतसे मिलते हैं। विविध शैलीके केशपाश, नाना जातिके अलंकार—कर्णकुण्डल, मुक्तकहार, केयूर, कटक, मेखला, नूपुर आदि और आकर्षक मुद्राएँ ये सब स्त्री-रूपोंकी विशेषताएँ हैं।

इन सबके अतिरिक्त यक्ष, किन्नर, गन्धर्व, सुपर्ण, नाग आदिकी मूर्तियाँ भी इन स्थानोंपर प्राप्त हुई हैं। देवगढ़ और मथुरामें धनके अधिष्ठाता कुबेर और उनकी स्त्री हारीतीकी कुछ मूर्तियाँ मिलती हैं।

मथुरा, कौशाम्बीमें लोक-जीवनको प्रगट करनेवाली अनेक मृण्मूर्तियाँ भी मिली हैं। ये मूर्तियाँ शुंगकालसे मध्यकाल तककी हैं। ये मूर्तियाँ मथुरा, प्रयाग और लखनऊके संग्रहालयोंमें सुरक्षित हैं।

वास्तुकला—वर्तमान कालमें जहाँपर जैन पुरातत्त्व सामग्री उपलब्ध होती है, वहाँ प्राचीन कालमें अनेक भव्य मन्दिर, स्तूप, मानस्तम्भ, वेदिका-स्तम्भ आदि रहे होंगे किन्तु कुछ अपवादों-को छोड़कर गुप्तकाल अथवा कुषाण कालकी कोई समूची कृति नहीं मिलती। देवगढ़ और श्रावस्तीमें कुछ मन्दिर जीर्ण अवस्थामें अवश्य खड़े हैं। उनके अतिरिक्त अवशेषोंमें तोरण, द्वार-स्तम्भ, गवाक्ष, आधार स्तम्भ आदि विपुल परिमाणमें मिलते हैं। इन सबको देखनेसे जैन वास्तुकला और स्थापत्य कलाकी समृद्ध दशाका कुछ अनुमान लगाया जा सकता है। जिन स्थानों-पर हिन्दुओं और बौद्धोंका कोई मन्दिर या मूर्ति नहीं है, केवल जैनोंका ही मन्दिर या मूर्ति मिलती

है, उन स्थानोंकी जैन स्थापत्य शैली और कला अवश्य दर्शनीय है। तोरण, आयागपट्ट, चैत्यवृक्ष, स्तूप, मानस्तम्भ, धर्मचक्र तथा अर्धोन्मीलित नेत्र, घुँघराले कुन्तल और श्रीवत्स लांछन-युक्त पद्मासन या खड्गासन प्रतिमाओंमें जैनत्व और जैनकलाकी ऐसी छाप अंकित होती है, जो अन्य धर्मोंकी कलासे जैन कलाको पृथक् कर देती है। वस्तुतः ये सब वस्तुएँ तीर्थंकरके समवसरण-की ही भाग होती हैं और इसे समझे बिना जैन कलाको समझनेमें भूल होना सम्भव है।

एक भ्रान्त धारणा—जैन कलाको समझनेके लिए उन विशेषताओंको समझना आवश्यक है, जो जैन कलाके अतिरिक्त अन्यत्र कहीं नहीं मिलतीं। तीर्थंकर मूर्तियाँ पद्मासन और खड्गासन दो ही आसनोंमें ध्यानावस्थामें मिलती हैं। सभी तीर्थंकरोंके परिचायक चिह्न होते हैं, जैसे वृषभ-देवका बैल, पार्श्वनाथका सर्प, महावीरका सिंह। कुछ मूर्तियाँ चिह्नरहित भी होती हैं। ऐसी मूर्तियोंके सम्बन्धमें जैन जनतामें ही बड़ा भ्रम है। चिह्न और लेखसे रहित मूर्तिको चतुर्थ काल (ईसवी सन्से छह शताब्दी या उसके पूर्व) की मान लिया जाता है। कुछ विद्वान् ऐसी मूर्तिको अवलोकितेश्वर या समाधिलीन शिवजीकी मूर्ति मान लेते हैं किन्तु ध्यानावस्थित जैन मूर्तिके निर्माणकी विधि जिन प्रतिष्ठापाठोंमें दी गयी है, उनमें इस सम्बन्धमें स्पष्ट उल्लेख मिलते हैं। आचार्य जयसेन कृत प्रतिष्ठापाठमें बताया है—

सल्लक्षणं भावविवृद्धिहेतुकं संपूर्णशुद्धावयवं दिगम्बरम्।
सत्प्रातिहार्यैर्निजचिह्नभासुरं संस्कारयेद् बिम्बमथार्हतः शुभम्॥

अर्थात् अर्हन्तकी मूर्ति शुभ लक्षणोंवाली, शान्तभावको बढ़ानेवाली, सम्पूर्ण सानुपातिक अंगोपांगोंसे युक्त दिगम्बर स्वरूप, अष्टप्रातिहार्य और अपने चिह्नसे सुशोभित बनानी चाहिए।

आगे सिद्ध परमात्माकी मूर्तिका स्वरूप बताया है—

सिद्धेश्वराणां प्रतिमापि योज्या तत्प्रातिहार्यादिविना तथैव।
आचार्यसत्पाठकसाधुसिद्धक्षेत्रादिकानामपि भाववृद्ध्यै॥१८१॥

अर्थात् सिद्ध परमेष्ठीका बिम्ब प्रातिहार्य और चिह्न आदिसे रहित होना चाहिए और आचार्य, उपाध्याय और साधु परमेष्ठी तथा सिद्धक्षेत्र आदिकी प्रतिमा भाव-विशुद्धिके लिए बनाना उचित है।

अर्हन्त प्रतिमाके वक्षपर श्रीवत्स (श्रीवृक्ष) का चिह्न रहता है, किन्तु सिद्ध-प्रतिमाके वक्षपर यह चिह्न भी नहीं होता। इसीलिए जयसेनाचार्यने अर्हन्त-प्रतिमाकी निर्माण-विधिमें कहा है—'उरोवितस्तिद्वयविस्तृतं स्याच्छ्रीवत्ससंभासि सुचूचुकं च।' अर्थात् वक्षस्थल दो वितस्ति हो और श्रीवत्स चिह्नसे भूषित हो और उसकी चूचक सुन्दर हो। इसी प्रकार इसी प्रकरणमें अन्यत्र कहा है—'श्रीवृक्षभूषितहृदयं।'

इससे स्पष्ट हो जाता है कि श्रीवत्स, अष्टप्रातिहार्य और लांछन (चिह्न) सहित अर्हन्त परमेष्ठीकी प्रतिमा होती है और जिस प्रतिमापर ये चिह्न नहीं होते, वह सिद्ध परमेष्ठीकी प्रतिमा होती है।

कुछ प्राचीन प्रतिमाओंपर श्रीवत्स नहीं मिलता। प्रारम्भमें श्रीवत्स छोटा होता था। किन्तु धीरे-धीरे इसका विकास हुआ। गुप्त कालमें यह कुछ बड़ा बनने लगा और प्रतिहार युगमें यह और अधिक विस्तृत हो गया।

अष्ट प्रातिहार्य—अशोक वृक्ष, पुष्पवर्षा, दुन्दुभि, आसन, दिव्यध्वनि, त्रिछत्र, दो चमर और प्रभामण्डल ये आठ प्रातिहार्य तीर्थंकरके होते हैं। प्राचीन कालमें तीर्थंकर प्रतिमामें पाषाणके ही छत्र चमरादि होते थे। दक्षिणमें जो प्राचीन जैन मूर्तियाँ मिलती हैं, वे सब छत्र चमरादि प्रातिहार्य

सहित ही मिलती हैं। उत्तर भारतमें भी जो मूर्तियाँ शिलाफलकपर बनायी जाती थीं, उनमें अष्ट प्रातिहार्य मिलते हैं। बादमें ये अलगसे बनाये जाने लगे।

तीर्थंकरोंके चिह्न—तीर्थंकरोंके चिह्न चरण-चौकीपर अंकित रहते हैं। ऋषभदेवकी कुछ जटायुक्त प्रतिमाएँ भी मिलती हैं। जटाएँ प्रायः कन्धोंपर होती हुई छाती और पीठपर लटकती मिलती हैं। किन्हीं प्रतिमाओंमें जटाओंका जूट या गुल्म भी प्राप्त होता है। जटावाली प्रतिमाएँ मथुरा, देवगढ़, चन्दवार, शौरीपुर, इलाहाबाद, वाराणसी आदिमें विद्यमान हैं। सुपार्श्वनाथकी प्रतिमापर कहीं-कहीं सर्पफणावली भी मिलती है, किन्तु उन सर्पफणोंकी संख्या पाँच होती है। पार्श्वनाथ प्रतिमा अधिकांशतः सर्पफण मण्डलसे मण्डित ही प्राप्त होती है और प्रायः फणोंकी संख्या सात होती है। कहीं-कहीं सहस्रफणवाली मूर्ति भी मिलती है। कुछ पार्श्वनाथ प्रतिमाओंके पीछे सर्पकुण्डली भी मिलती है। कहीं-कहीं नेमिनाथ अम्बिकादेवीके शीर्षपर और पार्श्वनाथ पद्मावतीके सर्पफण मण्डित शीर्षपर विराजमान पाये जाते हैं। तीर्थंकरोंके चिह्न क्रमशः इस प्रकार हैं—

तीर्थंकरोंके चिह्न

१. ऋषभदेव	बैल	१३. विमलनाथ	सूअर
२. अजितनाथ	हाथी	१४. अनन्तनाथ	सेही
३. सम्भवनाथ	घोड़ा	१५. धर्मनाथ	वज्रदण्ड
४. अभिनन्दननाथ	बन्दर	१६. शान्तिनाथ	हिरण
५. सुमतिनाथ	चकवा	१७. कुन्थुनाथ	बकरा
६. पद्मप्रभ	कमल	१८. अरनाथ	मछली
७. सुपार्श्वनाथ	साथिया	१९. मल्लिनाथ	कलश
८. चन्द्रप्रभ	अर्द्धचन्द्र	२०. मुनिसुव्रतनाथ	कछवा
९. पुष्पदन्त	मगर	२१. नमिनाथ	नीलकमल
१०. शीतलनाथ	कल्पवृक्ष	२२. नेमिनाथ	शंख
११. श्रेयान्सनाथ	गैण्डा	२३. पार्श्वनाथ	सर्प
१२. वासपूज्य	भैंसा	२४. महावीर	सिंह

शासन-देवता—तीर्थंकरोंके सेवक एक यक्ष और एक यक्षी होते हैं। इन्हें शासन-देवता भी कहा जाता है। प्राचीन कालमें शासन-देवताओंकी मूर्ति मन्दिरके द्वारपर रखी जाती थी। जब हिन्दू और बौद्धोंमें देवी-देवताओंकी मान्यता बढ़ी तो उसका प्रभाव जैनोंपर भी पड़ा और द्वारसे हटकर ये शासन-देवता मन्दिरके भीतर, गर्भगृहके द्वारपर पहुँच गये। धीरे-धीरे और जैसे-जैसे जनतामें ऐहिक मनोकामनाको प्रमुखता मिलती गयी और देवी-देवताओंसे अपनी मनोकामना-पूर्तिकी भावना प्रबल होती गयी, ये देवता तीर्थंकर प्रतिमाओंके अगल-बगलमें विराजमान किये जाने लगे। इन देवताओंके प्रति जैसे-जैसे निष्ठा बढ़ी, देवताओंका आकार भी उसी अनुपातसे बढ़ता गया। यहाँतक कि देवियोंके शीर्षपर तीर्थंकर विराजमान करनेकी प्रथाने जन्म लिया। इतना ही नहीं, देवी-मूर्तियाँ उन तीर्थंकर प्रतिमाओंसे बड़ी बनने लगीं और तीर्थंकर प्रतिमाएँ उनकी अपेक्षा छोटी रह गयीं। देव-देवियोंकी स्वतन्त्र मूर्तियोंका प्रचलन भी बढ़ा।

देवता-विषयक मान्यताका यह विकास किस काल-क्रमसे हुआ, यह निश्चित रूपसे कहना तो कठिन है। किन्तु ईसा पूर्वकी अथवा ईसवी सन्के प्रारम्भिक कालकी तीर्थंकर प्रतिमाओंके पार्श्वमें इन शासन-देवताओंकी मूर्तियाँ उपलब्ध नहीं होतीं। गुप्तकाल तक पहुँचते-पहुँचते शासन

देवताओंकी मूर्तियाँ प्रचुरतासे बनने लगीं। गुप्त-कालके पश्चात् कलचुरि-प्रतिहार और मौखरी युगमें इन देवताओंका महत्त्व बढ़ गया। इनकी स्वतन्त्र मूर्तियाँ तो बनने ही लगीं, किन्तु इनके शीर्षपर तीर्थंकर प्रतिमाएँ बनानेका प्रचलन भी चल निकला।

शासन-देवताओंके प्रभावसे प्रतिष्ठा पाठोंके रचयिता भी अछूते नहीं रहे। पं. आशाधर जीने प्रतिमाका लक्षण करते हुए स्पष्ट रूपसे कहा—रौद्रादिदोषनिर्मुक्तं प्रातिहार्यांकयक्षयुत्' अर्थात् रौद्र आदि बारह दोषोंसे रहित हो, अशोक वृक्षादि प्रातिहार्योंसे युक्त हो तथा दोनों ओर जिसके यक्ष-यक्षी हों।

श्री ठक्कुरफेरु ने दिगम्बर परम्परा के अनुसार 'वास्तुसार प्रकरण'में तीर्थंकरोंके सेवक इन यक्ष-यक्षियों का परिचय इस प्रकार दिया है—

१. ऋषभदेव—गोमुख यक्ष और चक्रेश्वरी (अप्रतिहतचक्रा) यक्षी।

गोमुख यक्ष—स्वर्ण जैसी कान्ति, गाय जैसा मुख, वृषभकी सवारी, मस्तकके ऊपर धर्मचक्र, चार भुजा। दायें हाथमें माला, एक दायाँ हाथ वरद मुद्रामें तथा बायें हाथोंमें परसु और बिजौरा।

चक्रेश्वरी—स्वर्ण वर्ण, कमलपर विराजमान, गरुड़का वाहन, चार भुजावाली, ऊपरके दोनों हाथोंमें चक्र तथा नीचेके बायें हाथमें बिजौरा और दायाँ हाथ वरद मुद्रामें। यह देवी ८, १२, १६, २०, २४ भुजाओंवाली भी मिलती है।

२. अजितनाथ—महायक्ष यक्ष और अजिता (रोहिणी) यक्षी।

महायक्ष यक्ष—स्वर्ण वर्ण, हाथीकी सवारी, ४ या ८ भुजावाला, चार मुखवाला, बायें हाथोंमें चक्र, त्रिशूल, कमल, अंकुश तथा दायें हाथोंमें तलवार, दण्ड, फरसी और एक हाथ वरद मुद्रामें।

अजिता (रोहिणी) देवी—स्वर्णकान्ति, लोहासनपर आसीन, चार भुजाएँ। एक हाथमें शंख, दूसरेमें चक्र, तीसरा और चौथा अभय और वरद मुद्रामें।

३. सम्भवनाथ—त्रिमुख यक्ष और प्रज्ञप्ति (नम्रा) यक्षी।

त्रिमुख यक्ष—कृष्ण वर्ण, वाहन मयूर, तीन मुख, तीन-तीन नेत्र, छह भुजाएँ, बायें हाथोंमें चक्र, तलवार, अंकुश और दायें हाथोंमें दण्ड, त्रिशूल, तेजधारवाली कैंची।

प्रज्ञप्ति (नम्रा)—श्वेत वर्ण, पक्षीका वाहन, छह भुजाएँ, हाथोंमें क्रमशः अर्धचन्द्र, फरसी, फल, तलवार और ईढ़ी।[1] दायाँ एक हाथ वरदान मुद्रामें।

४. अभिनन्दननाथ—यक्षेश्वर यक्ष और वज्रशृंखला (दुरितारी) यक्षी।

यक्षेश्वर यक्ष—कृष्ण वर्ण, हाथीकी सवारी, चार भुजाएँ, बायें हाथोंमें धनुष और ढाल तथा दायें हाथोंमें बाण और तलवार।

वज्रशृंखला (दुरितारी)—स्वर्ण जैसी कान्ति, हंसकी सवारी, चार भुजाएँ। हाथोंमें नाग-पाश, बिजौरा और माला। दायाँ एक हाथ वरदान मुद्रामें।

५. सुमतिनाथ—तुम्बरु यक्ष और पुरुषदत्ता (खड्गवरा) यक्षी।

तुम्बरु यक्ष—कृष्ण वर्ण, गरुड़की सवारी, सर्पको जनेऊकी भाँति लपेटे, चार भुजाएँ, ऊपरके दोनों हाथोंमें सर्प, नीचेका दायाँ हाथ वरद मुद्रामें और बायें हाथ में फल।

---

१. प्रतिष्ठा तिलकमें 'पिंडी' लिखा है। अनेकार्थ कोषमें इष्टीका अर्थ तूंबड़ी किया है।

पुरुषदत्ता (खड्गवरा)—स्वर्ण वर्ण, हाथीकी सवारी, चार भुजाएँ, हाथोंमें वज्र, फल और चक्र। एक हाथ वरद मुद्रा में।

६. पद्मप्रभ—पुष्प यक्ष और मनोवेगा (मोहिनी) यक्षी।

पुष्प यक्ष—कृष्ण वर्ण, हिरणकी सवारी, चार[१] भुजावाला, दायें एक हाथमें माला और दूसरा वरद मुद्रामें तथा बायें एक हाथमें ढाल और दूसरा अभय मुद्रामें।

मनोवेगा—स्वर्ण वर्ण, घोड़ेका वाहन, चार भुजाएँ। ऊपरके हाथोंमें फल। नीचेके एक हाथमें चक्र और दूसरा वरद मुद्रामें।

७. सुपार्श्वनाथ—मातंग यक्ष और काली (मानवी) यक्षी।

मातंग यक्ष—कृष्ण वर्ण, सिंहकी सवारी, कुटिल मुखवाला। दो हाथ जिनमें दायें हाथमें त्रिशूल और बायें हाथमें दण्ड है।

काली (मानवी)—सफेद वर्ण, बैलकी सवारी, चार भुजावाली, हाथोंमें घण्टा, फल और त्रिशूल। एक हाथ वरद मुद्रामें।

८. चन्द्रप्रभ—श्याम यक्ष और ज्वालामालिनी (ज्वालिनी) यक्षी।

श्याम यक्ष—कृष्ण वर्ण, कबूतरकी सवारी, तीन नेत्र और चार भुजावाला। बायें हाथोंमें फरसी और फल तथा दायें हाथोंमें माला और वरदान।

ज्वालामालिनी (ज्वालिनी)—श्वेत वर्ण, भैंसेकी सवारी, आठ भुजावाली। हाथोंमें चक्र, धनुष, नागपाश, ढाल, त्रिशूल, बाण, मछली और तलवार।

९. सुविधिनाथ—अजित यक्ष और महाकाली (भृकुटि) यक्षी।

अजित यक्ष—श्वेत वर्ण, कछुएकी सवारी और चार भुजावाला। दायें एक हाथमें अक्ष-माला और दूसरा वरद मुद्रामें तथा बायें हाथोंमें शक्ति और फल है।

महाकाली (भृकुटी)—कृष्ण वर्ण, कछुएकी सवारी, चार भुजावाली, हाथोंमें वज्र, फल और मुद्गर तथा एक हाथ वरद मुद्रामें।

१०. शीतलनाथ—ब्रह्मा यक्ष और मानवी (चामुण्डा) यक्षी।

ब्रह्म यक्ष—श्वेत वर्ण, कमलका आसन, चार मुख और आठ भुजावाला। बायें हाथोंमें धनुष, दण्ड, ढाल और वज्र तथा दायें हाथोंमें बाण, फरसी और तलवार तथा एक हाथ वरद मुद्रामें है।

मानवी (चामुण्डा)—हरित वर्ण, काले सूअरपर सवारी करनेवाली, चार भुजावाली। उसके हाथोंमें मछली, माला और बिजौरा, एक हाथ वरद मुद्रामें।

११. श्रेयान्सनाथ—ईश्वर यक्ष और गौरी (गौमेधकी) यक्षी।

ईश्वर यक्ष—श्वेत वर्ण, वृषभकी सवारी करनेवाला, तीन नेत्र और चार भुजावाला। बायें हाथोंमें त्रिशूल और दण्ड तथा दायें हाथोंमें माला और फल है।

गौरी (गौमेधकी)—स्वर्ण वर्ण, हिरनकी सवारी, चार भुजाएँ। हाथोंमें मुद्गर, कमल, कलश और एक हाथ वरद मुद्रामें।

१२. वासुपूज्य—कुमार यक्ष और गान्धारी (विद्युन्मालिनी) यक्षी।

कुमार यक्ष—श्वेत वर्ण, हंसकी सवारी, तीन मुखवाला और छह हाथोंवाला है। बायें हाथोंमें धनुष, बभ्रुफल और फल तथा दायें हाथोंमें बाण, गदा और वरदान मुद्रामें है।

---

१. वसुनन्दि प्रतिष्ठा कल्पके अनुसार दो भुजाएँ हैं।

गान्धारी (विद्युन्मालिनी) यक्षी—नीला वर्ण, मगरकी सवारी, चार भुजावाली। बायें हाथोंमें कमल और मूसल हैं। दायें एक हाथमें कमल और दूसरा हाथ वरद मुद्रामें है।

१३. विमलनाथ—चतुर्मुख यक्ष और वैरोटी देवी यक्षी।

चतुर्मुख यक्ष—हरित वर्ण, मोरका वाहन, चार मुख और बारह भुजावाला। ऊपरके आठ हाथोंमें फरसी और चार[1] हाथोंमें तलवार, माला, ढाल और दण्ड रहते हैं।

वैरोटी देवी—हरित वर्ण, साँपकी सवारी, चार भुजावाली। ऊपरके दो हाथोंमें सर्प तथा नीचेके दायें हाथमें बाण और बायेंमें धनुष है।

१४. अनन्तनाथ—पाताल यक्ष और अनन्तमती (विजृम्भिणी) यक्षी।

पाताल यक्ष—लाल वर्ण, मगरकी सवारी, तीन मुख, मस्तकके ऊपर साँपके तीन फण विद्यमान हैं। छह भुजाएँ हैं। दायें हाथोंमें अंकुश, त्रिशूल तथा कमल हैं तथा बायें हाथोंमें चाबुक, हल और फल हैं।

अनन्तमती (विजृम्भिणी) स्वर्ण वर्ण, हंसका वाहन, चार भुजाएँ। हाथोंमें धनुष, बिजौरा, बाण और वरदान मुद्रा धारण किये है।

१५. धर्मनाथ—किन्नर यक्ष, मानसी (परभृता) यक्षी।

किन्नर यक्ष—मूँगे जैसा वर्ण, मछलीका वाहन, तीन मुख और छह भुजाओंवाला। बायें हाथोंमें चक्र, वज्र और अंकुश हैं तथा दायें हाथ मुद्गर, माला और वरद मुद्रा सहित हैं।

मानसी (परभृता) मूँगे जैसा वर्ण, बाघका वाहन, छह भुजाएँ। हाथोंमें कमल, धनुष, अंकुश, बाण और कमल हैं। एक हाथ वरद मुद्रामें है।

१६. शान्तिनाथ—गरुड़ यक्ष, महामानसी (कन्दर्पा) यक्षी।

गरुड़ यक्ष—कृष्ण वर्ण, सूअरकी सवारी, वक्र मुख और चार भुजावाला। नीचेके दोनों हाथोंमें कमल और फल और ऊपरके दोनों हाथोंमें वज्र और चक्र हैं।

महामानसी (कन्दर्पा)—स्वर्ण वर्णवाली, मोरकी सवारी करनेवाली, चार भुजावाली है। हाथ क्रमशः चक्र, फल और वरद मुद्रा धारण किये हैं।

१७. कुन्थुनाथ—गन्धर्व यक्ष और जया (गान्धारी) यक्षी।

गन्धर्व यक्ष—कृष्ण वर्ण, पक्षीका वाहन, चार भुजाएँ हैं। ऊपरके दोनों हाथोंमें नागपाश हैं और नीचेके हाथोंमें धनुष और बाण हैं।

जया (गान्धारी)—स्वर्ण वर्ण, काले सूअरकी सवारी, चार भुजाएँ हैं। हाथोंमें चक्र, शंख और तलवार हैं। एक हाथ वरद मुद्रामें है।

१८. अरनाथ—खेन्द्र यक्ष और तारावती (काली) यक्षी।

खेन्द्र यक्ष—कृष्ण वर्ण, शंखकी सवारी, तीन नेत्र, छह मुख और चार भुजावाला है। बायें हाथोंमें धनुष, वज्र, पाश, मुद्गर और अंकुश हैं तथा एक हाथ वरद मुद्रामें है। दायें हाथोंमें बाण, कमल, बिजौरा और मोटी अक्षमाला तथा एक हाथ अभय मुद्रा धारण किये हुए है।

तारावती (काली)—स्वर्ण वर्णवाली, हंसकी सवारी करनेवाली और चार भुजावाली है। हाथोंमें साँप, हिरण और वज्र धारण किये है। एक हाथ वरद मुद्रामें है।

१९. मल्लिनाथ—कुबेर यक्ष और अपराजिता यक्षी।

कुबेर यक्ष—इन्द्रधनुष जैसे वर्णवाला, हाथीकी सवारी करनेवाला, चार मुख और आठ

---

१. प्रतिष्ठातिलकमें छह मुखवाला लिखा है।

भुजावाला है। हाथोंमें ढाल, धनुष, दण्ड, कमल, तलवार, बाण और नागपाश हैं। एक हाथ वरद मुद्रामें है।

अपराजिता देवी—हरित वर्णवाली, अष्टापदकी सवारी करनेवाली और चार भुजावाली है। हाथोंमें ढाल, फल और तलवार हैं। एक हाथ वरद मुद्रामें है।

२०. **मुनिसुव्रतनाथ**—वरुण यक्ष और बहुरूपिणी देवी यक्षी।

वरुण यक्ष—सफेद वर्णवाला, वृषभकी सवारी करनेवाला, जटाओंका मुकुट धारण किये हुए, तीन नेत्रवाला, आठ मुख और चार भुजाओंवाला है। बायें हाथोंमें ढाल तथा फल और दायें एक हाथमें तलवार और दूसरा हाथ वरद मुद्रामें है।

बहुरूपिणी देवी (सुगन्धिनी)—पीले वर्णवाली, काले सर्पकी सवारी करनेवाली और चार भुजावाली है। हाथोंमें ढाल, फल और तलवार तथा एक हाथ वरद मुद्रामें है।

२१. **नमिनाथ**—भृकुटि यक्ष और चामुण्डा (कुसुममालिनी) यक्षी।

भृकुटि यक्ष—लाल वर्णवाला, वृषभकी सवारी करनेवाला, चार मुख और आठ भुजावाला है। हाथोंमें ढाल, तलवार, धनुष, बाण, अंकुश, कमल और चक्र तथा एक हाथ वरद मुद्रामें है।

चामुण्डा (कुसुममालिनी)—हरितवर्ण, मकरवाहिनी और चार मुखवाली है। हाथोंमें दण्ड, ढाल, माला और तलवार लिये हुए है।

२२. **नेमिनाथ**—गोमेद यक्ष और आम्रा (कूष्माण्डिनी) यक्षी।

गोमेद यक्ष—कृष्ण वर्ण, तीन मुखवाला, पुष्पके आसनपर आसीन, मनुष्यकी सवारी करनेवाला और छह हाथवाला है। हाथोंमें मुद्गर, फरसी, दण्ड, फल, वज्र और वरदान मुद्रा धारण किये हुए है।

आम्रा (कूष्माण्डिनी)—हरितवर्ण, सिंहवाहिनी, आम्र छायामें रहनेवाली और दो भुजावाली है। बायें हाथमें आमकी डाली और दायें हाथमें पुत्र शुभंकरको लिये हुए है। इस देवीको अम्बा, अम्बिका भी कहते हैं।

२३. **पार्श्वनाथ**—धरणेन्द्र यक्ष और पद्मावती यक्षी।

धरणेन्द्र यक्ष—आसमानी वर्णवाला, कछुएकी सवारी करनेवाला, मुकुटमें सर्प-चिह्न सहित और चार भुजावाला है। ऊपरवाले हाथोंमें सर्प हैं तथा नीचेके बायें हाथमें नागपाश और दायाँ हाथ वरद मुद्रामें है।

पद्मावती—लाल वर्णवाली, [1]कमलके आसनवाली और चार भुजावाली है। हाथोंमें अंकुश, माला और कमल हैं। एक हाथ वरद मुद्रामें है। यह देवी छह और चौबीस भुजावाली भी है। छह हाथोंमें पाश, तलवार, माला, बाल चन्द्रमा, गदा और मूसल लिये हुए है। चौबीस हाथोंमें क्रमशः शंख, तलवार, चक्र, बाल चन्द्रमा, सफेद कमल, लाल कमल, धनुष, शक्ति, पाश, अंकुश, घण्टा, बाण, मूसल, ढाल, त्रिशूल, फरसी, माला, वज्र, माला, फल, गदा, पान, नवीन पानका गुच्छक और वरदान मुद्रा धारण किये हुए है।

२४. **महावीर**—मातंग यक्ष और सिद्धायिका यक्षी।

मातंग यक्ष—हरितवर्ण, हाथीकी सवारी करनेवाला, मस्तकके ऊपर धर्मचक्र धारण करने-

---

१. 'आशाधर प्रतिष्ठापाठ'में कुक्कुट सर्प इसका वाहन बताया है। और कमलके आसनपर बैठी हुई बताया है। उसके सिरके ऊपर तीन फणयुक्त सर्प हैं। 'पद्मावती कल्प' में चार भुजाओंमें पाश, फल, वरदान और अंकुश बताया है।

वाला और दो हाथवाला है। बायें हाथ में बिजौरा और दायाँ हाथ वरद मुद्रा में है।

सिद्धायिका—सुवर्ण वर्णवाली, भद्रासनमें बैठी हुई, सिंहकी सवारी करनेवाली और दो भुजावाली है। बायें हाथमें पुस्तक और दायाँ हाथ वरद मुद्रा में है।

मांगलिक चिह्न—जैन मन्दिरों में मांगलिक चिह्न भी अंकित मिलते हैं। वे चिह्न चरण-चौकी, वेदी, स्तम्भ, सिरदल और द्वारपर प्रायः मिलते हैं। जैसे स्वस्तिक, मीन-युगल, लक्ष्मीका अभिषेक करता गज-युगल, कमलपुष्प, पुष्पमाला, अष्टप्रातिहार्य, चैत्यवृक्ष, सिद्धार्थवृक्ष, शृंखलाओं में लटके हुए घण्टे, घण्टियोंकी वन्दनमाला, पताका, धर्मचक्र, सिंह, मकर, गंगा-यमुना, नाग, कीचक आदि। ध्वजाओंपर मयूर, हंस, गरुड़, माला, सिंह, हाथी, मकर, कमल, बेल और चक्रके चिह्न रहते हैं।

मानस्तम्भ—मन्दिर समवसरणके लघु प्रतीक हैं। समवसरणमें १२ श्रीमण्डप और उनके मध्यमें गन्धकुटी होती है, जिसमें अष्टप्रातिहार्य युक्त भगवान् विराजमान होते हैं। समवसरणके द्वारपर धर्मचक्र रहता है और आगे मानस्तम्भ रहता है। यही रचना मन्दिरमें रहती है। प्राचीन कालमें मन्दिरके साथ मानस्तम्भ अवश्य रहता था। मौर्य अथवा शक, कुषाण कालका कोई मन्दिर आज उपलब्ध नहीं है। सब ध्वस्त हो गये। गुप्त कालका एक मानस्तम्भ ककुभग्राम (कहाऊँ) में अब भी अपने मूल रूपमें सुरक्षित है। देवगढ़में भी प्राचीन मानस्तम्भ मिलते हैं। कुछ मानस्तम्भोंपर अभिलेख भी हैं, जिनके अनुसार इनका निर्माण काल संवत् ११०८, ११११, तथा ११२१ है।

स्तूप—समवसरणमें स्तूप भी होते हैं। स्तूप कई प्रकार के होते हैं। लोक स्तूप, मध्यलोक स्तूप, मन्दर स्तूप, कल्पवास स्तूप, ग्रैवेयक स्तूप, अनुदिश स्तूप, सर्वार्थसिद्धि स्तूप, सिद्ध स्तूप, भव्यकूट स्तूप, प्रमोद स्तूप, प्रबोध स्तूप। प्राचीन कालमें स्तूपोंकी रचना होती थी। मथुराके बौद्ध स्तूपके सम्बन्धमें तो ऐसे उल्लेख मिलते हैं कि वह सुपार्श्वनाथ तीर्थंकरके कालमें निर्मित हुआ था। फिर पार्श्वनाथ तीर्थंकरके कालमें उसका पुनरुद्धार हुआ। प्रथम-द्वितीय शताब्दीके लोग इसकी अद्भुत कलाको देखकर इसे देवनिर्मित कहने लगे थे। महमूद गजनवीके काल तक तो यह निश्चित रूपमें था। इसके पश्चात् इसके सम्बन्धमें कोई उल्लेख नहीं मिलता। सम्भवतः वह नष्ट कर दिया गया। इस स्तूपके अतिरिक्त और ५१४ स्तूप मथुरामें थे, साहित्यमें ऐसे उल्लेख मिलते हैं। ये भी किसी आक्रान्ताने मुगल काल में नष्ट कर दिये।

मथुराके स्तूपोंके अतिरिक्त उत्तरप्रदेशमें अन्य कहीं स्तूप बनाये गये, ऐसा कोई उल्लेख देखनेमें नहीं आया। सम्राट् सम्प्रतिके सम्बन्धमें यह धारणा व्याप्त है कि उसने जैनधर्मके लिए वैसा ही कार्य किया, जैसा अशोकने बौद्धधर्मके लिए किया। फिर भी क्या बात है कि भारतमें एक भी स्तम्भ और स्तूप सम्प्रतिका नहीं मिला। जितने मिले, सब अशोकके। इस सम्बन्धमें अवश्य भूल हुई हैं। इतिहासकारों और पुरातत्त्ववेत्ताओंको इस सम्बन्धमें एक बार पुनः सूक्ष्म अन्वेषण करना होगा।

सारनाथ संग्रहालयमें एक पाषाण स्तम्भके शीर्षपर चारों दिशाओंमें चार सिंह बने हुए हैं। उनके नीचे क्रमशः वृषभ, अश्व, सिंह और गज बने हुए हैं। इन पशुओंके बीचमें धर्मचक्र बने हैं। धर्मचक्रमें चौबीस आरे हैं। सिंहचतुष्टय और धर्मचक्र जैन मान्यताके अधिक निकट हैं।

सिंहचतुष्टय अरहन्तके अनन्तचतुष्टयका प्रतीक है तथा धर्मचक्र तीर्थंकरोंके धर्मका प्रतीक है। चौबीस आरोंका धर्मचक्र जैनोंका धर्मचक्र होता है। वृषभ, अश्व, सिंह और गज क्रमशः ऋषभदेव, सम्भवनाथ, महावीर और अजितनाथ तीर्थंकरोंके चिह्न हैं। यह स्तम्भ निश्चय ही जैनधर्मसे सम्बन्धित होना चाहिए। सिंहत्रयी और धर्मचक्रके सम्बन्धमें भी यही बात है। सिंहत्रयी रत्नत्रय-की प्रतीक है।

कुरुजांगल और शूरसेन जनपद

हस्तिनापुर
पारसनाथका किला
बड़ागाँव
मथुरा
आगरा
शौरीपुर
चन्दवार
मरसलगंज

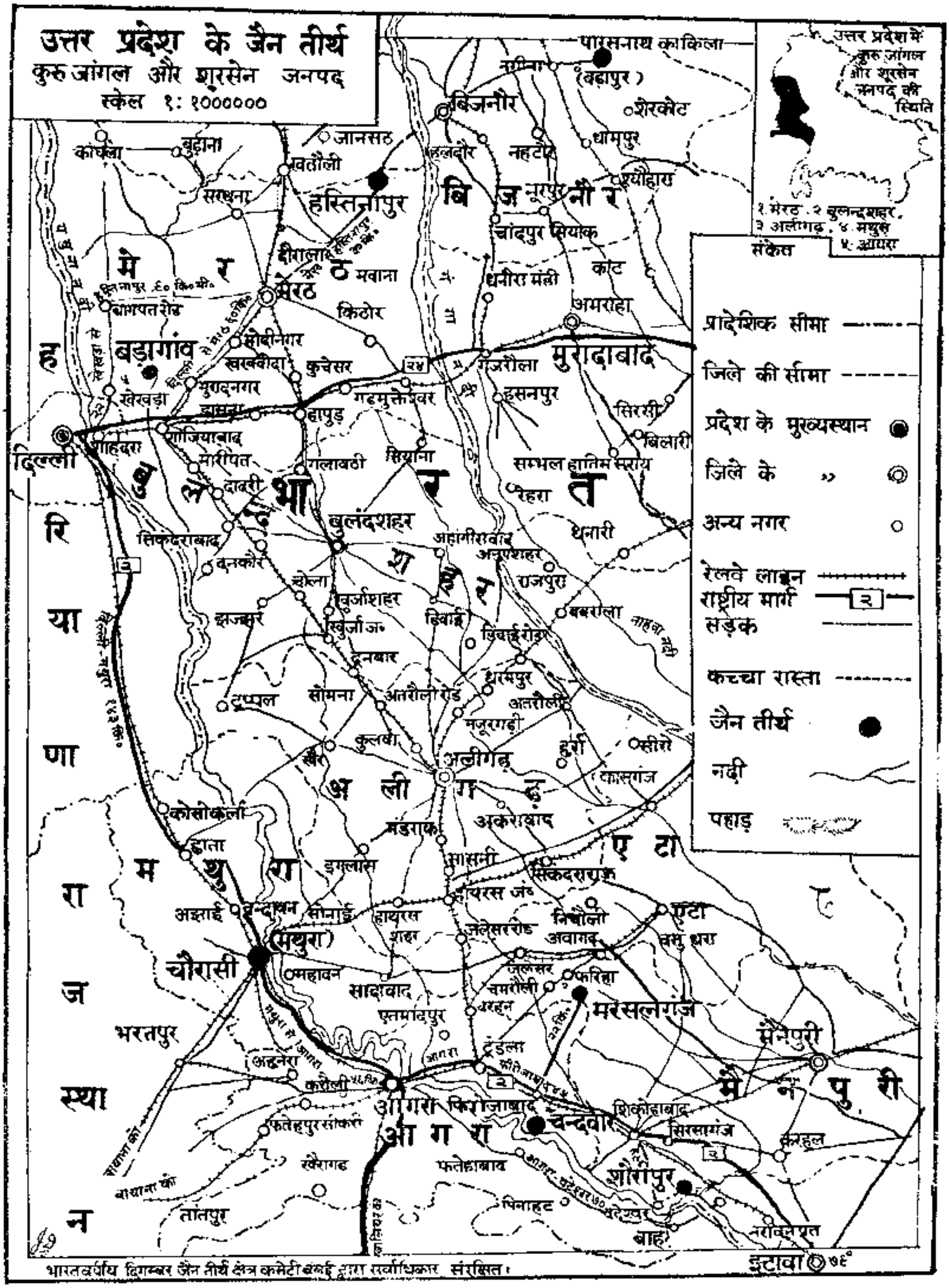

१. भारत के महासर्वेक्षक की अनुज्ञानुसार भारतीय सर्वेक्षण विभागीय मानचित्र पर आधारित।

२. मानचित्र में दिये गये नामों का अक्षर विन्यास विभिन्न सूत्रों से लिया गया है।

© भारत सरकार का प्रतिलिप्यधिकार, १९७१

हस्तिनापुर

मार्ग

हस्तिनापुर पश्चिमी उत्तरप्रदेशके मेरठ जिलेमें स्थित है। मेरठसे हस्तिनापुर तक पक्का रोड है। दिल्लीसे मेरठ ६० किलोमीटर है और मेरठसे मवाना होकर हस्तिनापुर ३७ किलोमीटर उत्तर-पूर्वमें है। यहाँ जानेका एकमात्र साधन बसें हैं, यहाँ पोस्ट-ऑफिस और पुलिस चौकी भी है। ठहरने के लिए क्षेत्रपर ५ जैन धर्मशालाएँ हैं।

कल्याणक क्षेत्र

अयोध्याके समान हस्तिनापुर भी अत्यन्त प्राचीन तीर्थ है। जिस प्रकार, जैन अनुश्रुतिके अनुसार अयोध्या की रचना [1]देवों ने की थी, इसी प्रकार युग के प्रारम्भ में हस्तिनापुर की रचना भी [2]देवों द्वारा की गयी थी। अयोध्यामें पाँच तीर्थंकरोंके १८ कल्याणक देवों और मनुष्योंने मनाये, जबकि हस्तिनापुरमें तीन तीर्थंकरोंके १२ कल्याणकोंकी पूजा और उत्सव मनाया गया। यहाँ सोलहवें तीर्थंकर शान्तिनाथ, सत्रहवें तीर्थंकर कुन्थुनाथ और अठारहवें तीर्थंकर अरनाथका जन्म हुआ था।

इन तीर्थंकरोंके जन्मके सम्बन्धमें प्रसिद्ध ग्रन्थ 'तिलोयपण्णत्ति' में विस्तारसे उल्लेख[3] है।

तीनों तीर्थंकरोंने हस्तिनापुरके ही सहस्राम्र वनमें या सहेतुक वनमें दीक्षा ली और वहीं उन्हें केवलज्ञान उत्पन्न हुआ। इस प्रकार यहाँपर तीन तीर्थंकरोंके गर्भ, जन्म, दीक्षा और केवलज्ञान इस प्रकार चार कल्याणक अर्थात् कुल १२ कल्याणक मनाये गये। अतः तीर्थंकरोंकी कल्याणक भूमि होनेके कारण यह नगर इतिहासातीत कालसे तीर्थक्षेत्रके रूपमें मान्य रहा है।

इनके अतिरिक्त भगवान् आदिनाथका धर्म-विहार जिन देशोंमें हुआ, उनमें कुरुदेश[4] भी था। हस्तिनापुर कुरुदेशकी राजधानी थी। अतः यहाँ कई बार भगवान्का समवसरण आया था। उन्नीसवें तीर्थंकर भगवान् मल्लिनाथका भी समवसरण यहाँ आया था।[5] यहाँ तेईसवें तीर्थंकर भगवान् पार्श्वनाथ दीक्षाके बाद पधारे थे और वरदत्तके घर पारणा की थी। वे केवलज्ञानके बाद भी यहाँ पधारे थे।

यहाँका राजा स्वयम्भू भगवान् पार्श्वनाथको केवलज्ञान प्राप्त होनेपर अहिच्छत्र गया था और उनका उपदेश सुनकर मुनि-दीक्षा धारण कर ली थी। वही भगवान्का प्रथम गणधर बना। उसकी पुत्री प्रभावती भगवान्के पास आर्यिका बन गयी। वह फिर प्रधान अर्जिका हुई।[6] भगवान् महावीर भी यहाँपर पधारे थे। पुराण शास्त्रोंमें महावीर भगवान्के पावन विहारका जो प्रामाणिक विवरण मिलता है, उसमें कुरु देश या कुरुजांगल देश भी है। आचार्य जिनसेन (हरिवंश पुराण ३।३-७) ने तो स्पष्ट लिखा है कि इन देशोंको भगवान्ने धर्मसे युक्त बना दिया। इसका अर्थ है कि भगवान्के विहार और उनके उपदेशके कारण इस प्रदेशमें भगवान्के धर्मको माननेवाले व्यक्तियोंकी संख्या प्रचुर थी। एक प्रकारसे सम्पूर्ण कुरु प्रदेश ही भगवान्का भक्त बन गया था।

---

१. आदिपुराण १२।७०-७७। २. वही, १६।१५२। ३. तिलोयपण्णत्ति ४।५४१-४३। ४. आदिपुराण २५।२८७। ५. विविध तीर्थकल्प, पृष्ठ २७। ६. पासनाहचरिउ १५।१२।

पौराणिक और ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

हस्तिनापुरकी गणना भारतके प्राचीनतम ऐतिहासिक और सांस्कृतिक नगरोंमें की जाती है। मानव-विकासके आदिकालसे ही यह राजनीतिक, सांस्कृतिक और आध्यात्मिक घटनाओंकी लीलाभूमि रहा है। आदितीर्थंकर भगवान् ऋषभदेवने ५२ आर्य देशोंकी स्थापना की थी। उनमें कुरुजांगल देश भी था। इस प्रदेशकी राजधानीका नाम गजपुर था। सम्भवतः इस प्रदेशके गंगा-तटवर्ती जंगलमें हाथियोंका बाहुल्य होनेके कारण यह गजपुर कहलाने लगा। पश्चात् कुरुवंशमें 'हस्तिन्' नामका एक प्रतापी राजा हुआ। उसके नामपर इसका नाम हस्तिनापुर हो गया। प्राचीन साहित्यमें इस नगरके कई नाम आते हैं। जैसे—[1]गजपुर, [2]हस्तिनापुर, [3]गजसाह्वयपुर, [3]नागपुर, आसन्दीवत, ब्रह्मस्थल, [4]शान्तिनगर, कुंजरपुर[5] आदि।

यहाँ सबसे प्रथम और सर्वविश्रुत घटना भगवान् ऋषभदेवके लिए राजकुमार श्रेयांसकुमार द्वारा दिये गये आहार-दानकी घटित हुई, जिसने सारे जगत्का ध्यान इस नगरकी ओर आकर्षित कर दिया। भगवान् ऋषभदेव मुनि-दीक्षा लेनेके पश्चात् छह माहके उपवासकी प्रतिज्ञा लेकर ध्यानमें लीन हो गये। अपने व्रतकी समाप्तिके पश्चात् वे आहारके लिए निकले। किन्तु मुनिजनोचित आहार-विधिका ज्ञान न होनेके कारण कोई उन्हें आहार नहीं दे सका। इस प्रकार भगवान्को ६ माह १३ दिन तक और निराहार रहना पड़ा। जब भगवान् प्रयागसे विहार करते हुए हस्तिनापुर पधारे तो बाहुबलीके पुत्र हस्तिनापुर-नरेश सोमप्रभके लघुभ्राता श्रेयान्सने उन्हें अपने महलकी छतसे देखा। देखते ही उसे पूर्व जन्ममें दिये हुए आहार-दानकी विधिका स्मरण हो आया। वह नीचे आया और भगवान्को भक्तिपूर्वक पड़गाहा और महलोंमें ले जाकर उन्हें इक्षु रसका शुद्ध आहार दिया। यह पुण्य दिवस वैशाख शुक्ला तृतीया था। भगवान्के इस सर्वप्रथम आहारके कारण हस्तिनापुरको महानता प्राप्त हो गयी। यह पवित्र दिन अक्षय तृतीयाके नामसे एक पर्वके रूपमें प्रसिद्ध हो गया। श्रेयांसको दानके प्रथम प्रवर्तकके रूपमें प्रतिष्ठा प्राप्त हुई। उसने आहार दानवाले स्थानपर एक रत्नमय स्तूपका निर्माण कराया। संसारमें दान देनेकी प्रथा इस आहार-दानके बाद ही प्रचलित हुई।

[6]सोमप्रभ और श्रेयांस दोनों बाहुबलीके पुत्र थे। भगवान् ऋषभदेवने जब अपने सौ पुत्रों-को राज्य दिये तो बाहुबलीको पोदनपुर और हस्तिनापुरके राज्य मिले। पोदनपुरमें स्वयं रहे और हस्तिनापुरमें उनका पुत्र सोमप्रभ[7] या सोमयश। इसीसे चन्द्रवंश चला। इसका दूसरा नाम कुरु भी था। कुरुवंश भी इसीके कारण प्रख्यात हुआ। इक्षुरसका आहार लेनेके कारण भगवान् इक्ष्वाकु कहलाये और उनका वंश इक्ष्वाकु वंश।

अनन्तर सोमप्रभके पुत्र मेघेश्वर जयकुमार और उनकी सुन्दर पत्नी सुलोचनाने हस्तिना-पुरको आकर्षणका केन्द्र बना दिया। जयकुमार प्रथम चक्रवर्ती भरतके प्रधान सेनापति थे और सुलोचना काशीनरेश अकम्पनकी पुत्री थी। अकम्पनसे ही नाथवंश चला था और भगवान् ऋषभदेवने इन्हें महामण्डलेश्वर बनाया था। काशीमें सुलोचनाका स्वयंवर किया गया। सुलोचनाने जयकुमारके गलेमें वरमाला डालकर उन्हें पतिरूपमें स्वीकार कर लिया। भारतमें यहींसे स्वयंवर प्रथाका सूत्रपात हुआ।

---

१. विमलसूरि कृत पउमचरिउ ९५-३४। २. श्रीमद्भागवत १-९-४८। ३. विमलसूरि कृत पउमचरिउ ६-७१,२०-१०। ४. वही, २०-१८०। ५. वही, ९५-३४। ६. हरिवंश पुराण १३।१६। ७. आदिपुराण १६।२५८। ८. वही, १६।२६०।

सुलोचनाके सतीत्व और शीलके चमत्कारपूर्ण प्रभावका वर्णन जैन वाङ्मयमें किया गया है। विवाहके पश्चात् जब गंगाके किनारे-किनारे जयकुमार सुलोचनाको लेकर सेनासहित जा रहा था, उस समय एक घटना घटी। जयकुमारने गंगा पार करनेके लिए हाथीको गंगामें प्रवेश कराया। जब हाथी सरयू और गंगाके संगमपर पहुँचा तो पूर्व जन्मकी वैरी कालीदेवीने मगरका रूप धारण कर हाथीको पकड़ लिया। उस समय सुलोचनाने भक्तिभावसे णमोकार मन्त्र पढ़ा। उसकी भक्तिसे प्रसन्न होकर गंगादेवीने आकर उनकी प्राण-रक्षा[1] की।

इसके पश्चात् तो हस्तिनापुरमें बड़े-बड़े महापुरुष होते रहे और लोकपर प्रभाव डालनेवाली घटनाओंका ताँता लगा रहा। भगवान् धर्मनाथ और शान्तिनाथके अन्तरालमें हुए चौथे चक्रवर्ती सनत्कुमारने इसे अपनी राजधानी बनाया। सोलहवें, सत्रहवें और अठारहवें तीर्थंकर भगवान् शान्तिनाथ, भगवान् कुन्थुनाथ और भगवान् अरहनाथ यहींपर उत्पन्न हुए। भगवान् ऋषभदेवसे भगवान् महावीर तकके कालमें जो बारह चक्रवर्ती हुए हैं, उनमें पाँचवें, छठे और सातवें चक्रवर्ती ये ही तीनों तीर्थंकर थे। इन तीनोंने ही भरत क्षेत्रके छहों खण्डोंको विजय करके एकछत्र साम्राज्यकी स्थापना की और हस्तिनापुरको सम्पूर्ण भरत क्षेत्रका राजनीतिक केन्द्र बनाया। तीनों तीर्थंकरोंके नामपर यहाँ पश्चाद्वर्तीकालमें एक-एक स्तूपका भी निर्माण हुआ। इस प्रकार हम देखते हैं कि इस नगरको यह महान् गौरव प्राप्त हुआ कि यहाँ तीन तीर्थंकर और चार चक्रवर्ती हुए। इस दृष्टिसे हस्तिनापुरको अयोध्याके पश्चात् दूसरा स्थान प्राप्त है।

जैन पुराणोंमें हस्तिनापुरसे सम्बन्ध रखनेवाली अन्य कई कथाएँ मिलती हैं।

—यहाँ गुरुदत्त नामक नरेश थे। यथासमय उन्हें संसारसे वैराग्य हो गया। द्रोणीमती पर्वतकी तलहटीमें वे ध्यानारूढ़ थे। एक भीलने उनके ऊपर घोर उपसर्ग किया। उनके शरीरपर चिथड़े लपेटकर आग लगा दी। मुनि आत्मध्यानमें लीन रहे। उन्हें केवलज्ञान हो गया और वहींसे मुक्त हुए।

—यहींपर राजा पद्मके बलि आदि मन्त्रियोंने आचार्य अकम्पन और उनके संघके सात सौ मुनियोंको प्राणान्तक कष्ट दिया था और उसका निवारण भी पद्म राजाके भाई मुनि विष्णुकुमारने अपनी विक्रिया ऋद्धि द्वारा वामन ब्राह्मणका रूप धारणकर किया था। यह घटना इस प्रकार है—

उज्जयिनी नरेश श्रीधर्माके चार मन्त्री थे—बलि, बृहस्पति, नमुचि और प्रह्लाद। एक बार महामुनि अकम्पन सात सौ मुनियोंके संघके साथ आकर उज्जयिनीके बाह्य वनमें विराजमान हुए। राजा श्रीधर्माको मुनि-संघके आगमनका समाचार मिला तो वह उनके दर्शनोंके लिए जाने लगा। जैन मुनियोंसे सहज द्वेष रखनेवाले मन्त्रियोंने महाराजको मुनियोंके सम्बन्धमें यद्वा तद्वा कहकर रोकना चाहा फिर भी वह दर्शनार्थ चला गया। मन्त्रियोंको भी साथमें जाना पड़ा। आचार्य महाराजने मुनिसंघको मौन रखनेका आदेश दे रखा था। जब राजा दर्शन करके लौटा तो मार्गमें श्रुतसागर नामक मुनि नगरसे आते हुए मिले। मन्त्रियोंने उनसे अनावश्यक विवाद छेड़ दिया। मुनि श्रुतसागरको गुरुकी आज्ञाका पता नहीं था। उन्होंने वाद-विवादमें मन्त्रियोंको निरुत्तर कर दिया।

फलतः उसी दिन रात्रिमें गुरुकी आज्ञासे मुनि श्रुतसागर उसी स्थानपर आये और प्रतिमायोग धारण कर बैठ गये। मन्त्री अपनी पराजयके कारण बहुत क्रोधित थे। अतः वे उक्त मुनिको मारनेके लिए रात्रिमें आये और उन्होंने मुनिपर तलवारसे जैसे ही वार करना चाहा कि वनदेवता-

---

१. आदिपुराण ४५।१४२–१५०

ने उन्हें कीलित कर दिया। प्रातःकाल होनेपर राजाको समाचार मिला तो राजाने मन्त्रियोंको अपमानित कर राज्यसे निकाल दिया।

चारों मन्त्री घूमते-फिरते हस्तिनापुर पहुँचे। वहाँके कुरुवंशी राजा पद्मने उन्हें अपना मन्त्री बना लिया। एक बार मन्त्रियोंकी युक्तिसे राजाने अपने शत्रु सिंहबल राजाको पकड़ लिया। राजाने प्रसन्न होकर बलिसे कहा—"मैं तुमसे बहुत प्रसन्न हूँ, कोई वर माँग लो।" बलिने सोचकर कहा—"अभी आवश्यकता नहीं है। जब आवश्यकता होगी, तब माँग लूँगा।"

किसी समय विहार करते हुए अकम्पनाचार्य मुनि संघके साथ हस्तिनापुर पधारे और वहीं वर्षायोग धारण करके नगरके बाहर विराजमान हो गये। तब बलिने अन्य मन्त्रियोंसे सलाह करके राजा पद्मसे निवेदन किया—'महाराज, आपने मुझे जो वर दिया था, मैं उसके फलस्वरूप सात दिनका राज्य चाहता हूँ।' राजाने स्वीकार करके उसे सात दिनके लिए राज्य सौंप दिया और स्वयं महलमें रहने लगा। बलिने राज्य प्राप्त करके मुनिसंघपर घोर उपसर्ग किया। तब सभी मुनियोंने नियम ले लिया कि यदि उपसर्ग दूर होगा तो आहार-विहार करेंगे, अन्यथा नहीं करेंगे। और वे ध्यानस्थ हो गये।

उस समय राजा पद्मके छोटे भाई विष्णुकुमार मुनि बनकर घोर तपस्या कर रहे थे। उन्हें विक्रिया आदि कई ऋद्धियाँ प्राप्त हो चुकी थीं। उनके गुरु मुनि श्रुतसागर उस समय मिथिला नगरीमें विराजमान थे। निमित्तज्ञानसे उन्हें इस उपसर्गका हाल मालूम हो गया। उनके मुखसे अकस्मात् ये शब्द निकले—'आज मुनिसंघपर दारुण उपसर्ग हो रहा है।' उस समय उनके पास पुष्पदन्त नामक एक क्षुल्लक बैठे हुए थे। उनके पूछनेपर गुरुने बताया—'इस उपसर्गको केवल विष्णुकुमार मुनि दूर कर सकते हैं।' उन्हें विक्रिया ऋद्धि प्राप्त हो गयी है, इसका ज्ञान ही नहीं था। उन्होंने परीक्षा की, तब विश्वास हुआ। वे तत्काल हस्तिनापुर पहुँचे और राजा पद्मसे मिले। जब राजासे वरदानकी बात ज्ञात हुई तो मुनि विष्णुकुमार वामन ब्राह्मणका रूप धारण कर बलिके पास यज्ञ-मण्डपमें पहुँचे। बलिने कहा—'महाराज! आपकी जो इच्छा हो, माँग लीजिए।' वामन रूपधारी विष्णुकुमार बोले—'मुझे कुछ भी इच्छा नहीं है। किन्तु आपका आग्रह ही है तो मुझे रहनेके लिए तीन पग धरती दे दीजिए।' बलिने जल लेकर संकल्प किया और कहा कि आप अपने पाँवोंसे नाप लीजिए। विष्णुकुमारने अपना शरीर बढ़ाया। उन्होंने एक पग सुमेरु पर्वतपर रखा, दूसरा मानुषोत्तर पर्वतपर रखा। तीसरे पगके लिए स्थान ही नहीं बचा, कहाँ रखें। तीनों लोकोंमें क्षोभ व्याप्त हो गया। देव और गन्धर्वोंने मुनि विष्णुकुमारकी स्तुति की। देवोंने आकर मुनियोंका उपसर्ग दूर किया। बलि भयके मारे विष्णुकुमारके चरणोंमें गिर पड़ा और उसने दीनतापूर्वक अपने अपराधकी क्षमा माँगी। सब लोगोंने अकम्पनाचार्य आदि सात सौ मुनियोंकी पूजा की। विष्णुकुमारने अपने गुरुके पास जाकर प्रायश्चित्त लिया और घोर तपस्या करके निर्वाण प्राप्त किया।

इस घटनाकी स्मृतिस्वरूप रक्षा-बन्धनका महान् पर्व प्रचलित हो गया जो श्रावण शुक्ल पूर्णिमाको उल्लासपूर्वक मनाया जाता है।

—भगवान् मुनिसुव्रतनाथके समय नागपुर (हस्तिनापुर) का राजा बहुवाहन था। उसकी पुत्री मनोहरा थी। उसका विवाह साकेतपुरीके राजा विजयके पुत्र वज्रबाहुके साथ हुआ। विवाहके बाद जब वह अपनी पत्नीको लेकर जा रहा था, तब वसन्तगिरिपर एक ध्यानस्थ मुनिको देखा, उनका उपदेश सुना। सुनकर बहुत प्रभावित हुआ और उसने २६ अन्य राजकुमारोंके साथ

मुनिराजसे मुनिदीक्षा[1] ले ली।

भगवान् मुनिसुव्रतनाथके ही समयमें हस्तिनापुरमें गंगदत्त श्रेष्ठी था। उसके पास सात करोड़ स्वर्णमुद्राएँ थीं। एक बार भगवान् हस्तिनापुर पधारे। श्रेष्ठीने भगवान्‌का उपदेश सुना। उसके मनमें वैराग्य उत्पन्न हो गया। उसने भगवान्‌के पास ही मुनि-व्रत अंगीकार कर लिये।

यहींपर कौरव और पाण्डव हुए थे और राज्यके प्रश्नपर दोनोंमें महाभारत नामक प्रसिद्ध युद्ध भी हुआ था। वरनाल नामक वह स्थान जहाँ दुर्योधनने लाखके घरमें पाण्डवोंको जलानेकी योजना की थी, इसके पास ही है। इस युद्धसे पूर्व पाण्डवोंने कृष्णके द्वारा कौरवोंसे बागपत, तिलपत, इन्द्रप्रस्थ, पानीपत और सोनीपत इन पाँच गाँवोंकी माँग की थी। ये नगर आज भी हस्तिनापुरके निकट मौजूद हैं।

एक बार मुनि दमदत्त हस्तिनापुर पधारे और उद्यानमें ठहर गये। कौरव उधरसे निकले। उन्होंने अपनी दुष्ट प्रकृतिके कारण मुनिको देखकर उनकी निन्दा की और उनपर पत्थर बरसाये। फिर थोड़ी देर बाद पाण्डव आये। उन्होंने मुनिकी चरण वन्दना की, स्तुति की और पत्थर हटाये। मुनि ध्यानलीन थे। उन्हें उसी समय केवलज्ञान हो गया। देवोंने आकर उत्सव मनाया।

पाण्डवोंके बाद कुछ समय तक यहाँ नागजातिका आधिपत्य हो गया। अर्जुनके पौत्र परीक्षित्‌की मृत्यु इन्हीं नागोंके हाथों हुई थी। तक्षशिला इनका प्रधान केन्द्र था। तक्षक इनका प्रधान था। पंजाब तथा पश्चिमोत्तर भारतमें नागजातिका बहुत जोर था। इन्होंने उधरसे आकर और परीक्षित्‌को मारकर कुछ समयके लिए तक्षशिलासे शूरसेन प्रदेश तक अधिकार कर लिया। परीक्षित्‌के पुत्र जनमेजयने इनके साथ सतत युद्ध करके इन्हें परास्त किया और पंजाबके आगे तक खदेड़ दिया। तो भी हस्तिनापुरपर नागोंके आक्रमण बराबर होते रहे।[2]

नाग लोग अपनी सुन्दरताके लिए बहुत प्रसिद्ध थे। नागकन्याओंकी तुलना अप्सराओंसे की जाती थी। प्राचीन साहित्यमें ऐसे स्थल अनेक बार आये हैं। आर्य लोगोंके साथ नागकन्याओंके विवाह भी होते थे। अर्जुनने नागकन्या उलूपीके साथ विवाह किया था। हिन्दू पुराणोंमें नागजातिके प्रभुत्वका विस्तृत विवरण मिलता है और विदिशा, कान्तिपुरी, मथुरा और पद्मावती (नरवरके पास पदमपवाया) को उनकी राजधानियाँ बताया है। ये नागजातिके शक्ति-केन्द्र थे।

नागजाति का अपना जातीय चिह्न 'नाग' था। मथुरा आदि कई स्थानोंपर सिक्के प्राप्त हुए हैं, जिनमें नाग नामान्तक कुछ राजाओंका परिचय मिलता है। भारशिव नरेश पद्मावती के नागवंशके थे। तीसरी-चौथी शताब्दीमें इनका विस्तृत प्रदेशपर आधिपत्य था। तीर्थंकरोंकी मूर्तियों के दायें-बायें बहुधा फणधारी नाग लोग खड़े पाये जाते हैं। इससे यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि नाग लोग जैन धर्म के अनुयायी रहे हैं। इन्हें वैदिक स्मृतियों में वेद-विरोधी व्रात्य कहा गया है।

नगरका विनाश और निर्माण

परीक्षित्‌की पाँचवीं पीढ़ीमें अधिसीम कृष्णका पुत्र निचक्षु हुआ। इसके राज्य-कालमें लाल[3] टिड्डियोंका भयानक प्रकोप हुआ, जिन्होंने सारी फसलको चट कर डाला। पेड़ोंपर पत्ते तक न

१. विमलसूरि कृत पउमचरिउ २१-४३।

२. विविधतीर्थकल्प, पृ. २७

३. 'णायकुमार चरिउ'—डॉ. हीरालाल जी, एम. ए., डी. लिट्. द्वारा लिखित भूमिका, पृष्ठ ३१-३२

४. भारतीय इतिहासकी रूपरेखा भाग—१, श्री जयचन्द्र विद्यालंकार, पृ. २८९

रहे। भीषण अकाल[1] पड़ा। तभी गंगामें भी भीषण बाढ़ आ गयी। उससे हस्तिनापुरका विनाश हो गया। इसके बाद गंगा इस नगरसे पूर्वकी ओर कई मील खिसक गयी। इससे नगरको जल मिलना भी दुर्लभ हो गया। फलतः निचक्षुने यहाँसे अपनी राजधानी हटाकर प्रयागके निकट कौशाम्बीमें[2] बनायी। यह हस्तिनापुर नगरका प्रथम विनाश था।

इसके पश्चात् यह नगर फिर बसा। किन्तु कुरुवंशके स्थानपर इसपर नागजातिका आधिपत्य हो गया। सम्भवतः नागजातिके आधिपत्य कालमें ही भगवान् पार्श्वनाथका समवसरण यहाँ आया था। भगवान् महावीरका भी समवसरण यहाँ आया और भगवान्के दिव्य उपदेशोंको सुनकर वहाँके राजा शिवराजने जैनधर्म स्वीकार कर लिया था। भगवान्की स्मृतिमें यहाँ एक स्तूपका भी निर्माण किया गया था। यह बस्ती ईसा पूर्व ३०० तक आबाद रही। फिर किसी भीषण अग्निकाण्डके कारण नष्ट हो गयी।

तीसरी बार जैन सम्राट् सम्प्रतिने इसे आबाद किया। यह सम्राट् अशोकका पौत्र था और जैनधर्मका अनुयायी था। इसने यहाँ अनेक जिनमन्दिरोंका निर्माण कराया। यह बस्ती २०० ई. तक रही।

इसके बाद यह चौथी बार १०-११वीं शताब्दीमें भारवंशी राजा हरदत्तरायके समय बसायी गयी और १४वीं शताब्दी तक रही।

सन् १६०० में हिन्दी जैन साहित्यके अमर कवि बनारसीदासने हस्तिनापुरकी सकुटुम्ब यात्रा की थी, इस प्रकारका विवरण उनके प्रसिद्ध आत्मचरित ग्रन्थ 'अर्धकथानक' में मिलता है। कविवर बनारसीदास शाहजहाँ बादशाहके समकालीन थे।[3] 'अर्धकथानक' से प्रतीत होता है कि बनारसीदासके समय यहाँ जैन यात्री तीर्थ यात्राके लिए बराबर आते रहते थे। प्राचीनकालमें यहाँ स्तूपोंके अतिरिक्त अनेक जैनमन्दिरों और निषधिकाओं (नशिया) का भी निर्माण हुआ था। सम्भवतः उनका भाग्य भी नगरके विध्वंस और निर्माणके इतिहाससे जुड़ा रहा।

जैनमन्दिर-निर्माणका इतिहास

कई राजनीतिक और प्राकृतिक कारणोंसे हस्तिनापुर मध्यकालके पश्चात् शताब्दियों तक उपेक्षित सा रहा। इसी उपेक्षाके परिणामस्वरूप, लगता है, यहाँके प्राचीन मन्दिर और निषधिकाएँ नष्ट हो गयीं। किन्तु तीर्थ स्थान तो यह बराबर बना रहा और भक्त लोग यात्राके लिए आते रहे। १८-१९वीं शताब्दीमें यहाँ मन्दिर और नशियोंकी हालत बड़ी जीर्ण-शीर्ण थी। सभी लोगोंकी इच्छा थी कि यहाँ मन्दिर अवश्य बनना चाहिए। लोगोंकी प्रार्थना पर सं. १८५८ (सन् १८०१) ज्येष्ठ

---

१. मटचीहतेषु कुरुष्वाटिक्या सह जाययोपस्तिर्ह चाक्रायण
इभ्यग्रामे प्रद्राणक उवास ॥१॥ —छान्दोग्य उपनिषद् अ. १, खण्ड १०
—ओलोंकी वर्षासे अन्नका नाश होनेपर कुरुदेशमें अकाल पड़ जानेके कारण चक्रके पुत्र उपस्तिने अपनी स्त्री आटिकीके साथ (अन्न न मिलनेके कारण) मरणासन्न दशामें हाथीवानोंके ग्राममें आकर आश्रय लिया।

२. अधिसीम कृष्णपुत्रो निचक्षुर्भविता नृपः। यो गंगयापहृते हस्तिनापुरे कौशाम्ब्यां निवत्स्यति ॥
रमेशचन्द्र मजूमदार कृत 'प्राचीन भारत', पृ. ५१।
पार्जीटर—Ancient Indian Historical Tradition (1922), page 285

३. कविवर बनारसीदास—डॉ. रवीन्द्रकुमार जैन, पृष्ठ ११२

वदी १३के मेलेमें दिल्ली निवासी राजा हरसुखराय, जो मुगल बादशाह शाह आलमके खजांची थे, ने मन्दिर-निर्माणके लिए अपनी स्वीकृति दे दी। यह इलाका उस समय बहसूमेके गूजर नरेश नैनसिंहके अधीन था। शाहपुरके गूजर यहाँ जैनमन्दिर निर्माणके अकारण विरोधी थे। राजा नैनसिंहके एक मित्र शाहपुर निवासी लाला जयकुमारमल थे। राजा हरसुखरायने उनसे अनुरोध किया कि आप राजा नैनसिंहसे कहकर यह कार्य करा दीजिए। उसी रातको लाला जीने राजा साहबसे इसकी चर्चा की और कहा कि राजा हरसुखरायने इसके लिए भरी पंचायतमें अपनी पगड़ी सबके समक्ष उतारकर रख दी है। राजा नैनसिंह राजा हरसुखरायके भी बड़े कृतज्ञ थे क्योंकि वे एक बार शाही खजानेके कर्जके एक लाख रुपये समयपर अदा नहीं कर सके थे, जिसको राजा हरसुखरायने स्वयं अदा किया था। बस, उन्होंने मन्दिर-निर्माणकी स्वीकृति दे दी। इतना ही नहीं, लाला जयकुमारमलके अनुरोधपर उन्होंने मन्दिरका शिलान्यास भी अपने हाथोंसे स्वीकार कर लिया।

दूसरे दिन राजा हरसुखराय, लाला जयकुमारमल और सैकड़ों जैनाजैन व्यक्तियोंकी उपस्थितिमें राजा नैनसिंहने धरातलसे चालीस फुट ऊँचे टीलेपर दिगम्बर जैन मन्दिरकी नींवमें अपने हाथोंसे पाँच ईंटें रखीं। इसके बाद राजा हरसुखरायके धनसे लाला जयकुमारमलकी देखरेखमें पाँच वर्षमें विशाल शिखरबन्द दिगम्बर जैन मन्दिरका निर्माण हुआ। कहते हैं, जब कलशारोहण और वेदी-प्रतिष्ठाका अवसर आया तो राजा हरसुखरायने पंचायतसे प्रार्थना की—'पंच सरदारो! मेरी जितनी शक्ति थी, मैंने उतना कर दिया। मन्दिर आप सबका है। अतः आप लोग भी इसके लिए सहायता करें।' उस समय जो लोग वहाँ उपस्थित थे, उनके सामने एक घड़ा रखा गया और सबने अपनी-अपनी शक्तिके अनुसार उस घड़ेमें दान डाला। किन्तु फिर भी यह राशि अत्यन्त अल्प थी। मन्दिरके निमित्त सभी जैन भाइयोंसे इस तरह रुपया एकत्रित करनेमें राजा साहबका उद्देश्य मन्दिरको सार्वजनिक बनाना और अपनेको अहंभावसे दूर रखना था।

तत्पश्चात् संवत् १८६३ में कलशारोहण और वेदी-प्रतिष्ठाका कार्य राजा साहबने समारोहपूर्वक कराया। उस समय मन्दिरमें देहलीसे लायी हुई भगवान् पार्श्वनाथकी बिना फणवाली प्रतिमा विराजमान की गयी। वि. सं. १८९७ में लाला जयकुमारमलने मन्दिरका विशाल सिंहद्वार बनवाया।

इस मन्दिरके चारों ओर धर्मशाला बनी है। मन्दिरके बाहर भी कई दिगम्बर जैन धर्मशालाएँ बनी हुई हैं। मन्दिरमें बहुत सा काम राजा हरसुखरायके पुत्र राजा सुगनचन्दने कराया था।

सन् १८५७ के गदरके समय गूजर लोगोंने इस मन्दिरको लूट लिया। वे लोग मूलनायक प्रतिमाको भी उठाकर ले गये। फलतः दिल्ली धर्मपुराके नये मन्दिरसे वि. संवत् १५४८ में भट्टारक जिनचन्द्र द्वारा प्रतिष्ठित भगवान् शान्तिनाथकी मूर्ति यहाँ लाकर मूलनायकके रूपमें विराजमान की गयी। तबसे यह मन्दिर शान्तिनाथ मन्दिर कहा जाने लगा। गदरके बाद भी एक बार फिर लुटेरोंने मन्दिरको लूटा। यह मन्दिर उस केन्द्रीय टीलेपर बनाया गया था, जहाँ सम्भवतः पहले भी कोई जैन मन्दिर था।

तीर्थ-दर्शन

यहाँ पहुँचते ही दायीं ओर श्वेताम्बर मन्दिर एवं धर्मशाला मिलती है। यह मन्दिर सन् १८७०में बना था। इस धर्मशालाके सामनेका चबूतरा दिगम्बर समाजका है तथा धर्मशालाके बराबर जो जमीन है, वह भी दिगम्बर समाजकी है। इस जमीनपर मेलेके समय सैकड़ों वर्षोंसे दिगम्बरोंका पण्डाल बनता आया है और अब भी प्रतिवर्ष बनता है। पहले यहाँ श्वेताम्बरोंका न कोई मन्दिर था, न धर्मशाला थी और न कोई भूमि थी। किन्तु दिगम्बर भाइयोंने श्वेताम्बरोंके अनुरोधपर भूमि आदि दिलवानेमें सहयोग दिया और अपनी भी कुछ भूमि उन्हें दे दी।

पण्डालकी भूमिसे मिली हुई दिगम्बर समाजकी एक विशाल धर्मशाला है।

बायीं ओर थोड़ी सी ऊँचाई चढ़कर दिगम्बर जैन मन्दिर और धर्मशालाका विशाल द्वार मिलता है। द्वारपर ही क्षेत्र-कार्यालय है। भीतर घुसते ही पुराना पक्का कुआँ और धर्मशाला है। फिर एक द्वार मिलता है जो मन्दिरका प्रवेश-द्वार है। द्वारके समक्ष ३१ फुट ऊँचा मानस्तम्भ बना हुआ है। चारों ओर खुले बरामदे और सहन हैं और बीचमें मन्दिर है। मन्दिर लगभग चार फुट ऊँची चौकी देकर बनाया गया है और मन्दिरके चारों ओर रेलिंगदार चबूतरा है। मन्दिरका केवल एक ही खण्ड है, जिसे गर्भगृह कह सकते हैं, किन्तु है काफी बड़ा। इस मन्दिरमें केवल एक ही वेदी है। वेदी तीन दरकी और काफी विशाल है। मूलनायक प्रतिमा भगवान् शान्तिनाथकी है। यह श्वेत पाषाणकी लगभग एक हाथ ऊँची पद्मासन है। यह मूर्ति जीवराज पापड़ीवालेने सं. १५४८ वैशाख सुदी ३ को भट्टारक जिनचन्द्र द्वारा प्रतिष्ठित करायी थी। इसके बायीं ओर अरनाथ और दायीं ओर कुन्थुनाथकी मूर्ति है। वेदीमें पंचबालयति (वासुपूज्य, मल्लिनाथ, नेमिनाथ, पार्श्वनाथ और महावीर) का एक प्रतिमाफलक काफी प्राचीन लगता है। बीचकी प्रतिमा पद्मासन है तथा बायीं ओर दो प्रतिमाएँ खड्गासन हैं। दायीं ओरकी दो प्रतिमाएँ नहीं हैं। सम्भवतः मुस्लिमकालमें खण्डित कर दी गयी होंगी। यह प्रतिमाफलक २५ वर्ष पहले जिला मुजफ्फरनगरके मारगपुर गाँवके जंगलमें मिला था, जो यहाँ ले आया गया। प्रतिमापर कोई लेख नहीं है। इसलिए लोग इसे चतुर्थ कालकी मानते हैं। किन्तु इस प्रतिमाकी बनावट और शैलीसे यह १०-११वीं शताब्दीकी प्रतीत होती है।

इनके अतिरिक्त दो प्रतिमाएँ नीले और हरे पाषाणकी हैं। अवगाहना प्रायः ६-६ इंच होगी। ये पद्मासन मुद्रामें हैं तथा अत्यन्त मनोज्ञ हैं। और भी ७ प्रतिमाएँ पीतलकी तथा एक सन्दूकमें पीतलकी छोटी-छोटी ७ अन्य प्रतिमाएँ रखी हैं।

मन्दिरपर जो शिखर है, उसकी विशेषता यह है कि वह न केवल सुन्दर और विशाल है, बल्कि उसके ऊपर एक कमरा है और उस कमरेके ऊपर दूसरा शिखर बना हुआ है। यह शिखर इतना विशाल है कि इसकी समानता कम मिलेगी।

इस मन्दिरके पीछे एक दूसरा मन्दिर है। यह मुख्य मन्दिरके बादका बना हुआ है। इसमें बायीं ओरकी वेदीमें भगवान् शान्तिनाथकी ५ फुट ११ इंच अवगाहनावाली खड्गासन प्रतिमा

विराजमान है। इसके मूर्तिलेखसे ज्ञात होता है कि इसकी प्रतिष्ठा संवत् १२३१ (सन् ११७४) वैशाख सुदी १२ सोमवारको देवपाल सोनी अजमेर निवासी द्वारा हस्तिनापुरमें हुई थी। यह प्रतिमा ४० वर्ष पहले उस टीलेकी खुदाईमें निकली थी, जिसके ऊपर श्वेताम्बरोंने अपनी नशिया बनायी थी। यह प्रतिमा हलके सलेटी रंगकी है। इसके चरणोंके दोनों ओर चँवरधारी खड़े हुए हैं। सिरके ऊपर पाषाणकी छत्रत्रयी सुशोभित है। छत्रके दोनों ओर हाथीपर बैठे हुए इन्द्र भगवान्के ऊपर पुष्प-वर्षा कर रहे हैं। चमरवाहकोंके नीचे हाथ जोड़े स्त्री-पुरुष खड़े हैं जो सम्भवतः प्रतिष्ठापक युगल हैं। पादपीठपर हरिणका लांछन और लेख है।

बीचकी वेदीके मध्यमें काले पाषाणकी पार्श्वनाथकी सवा दो फुट अवगाहना वाली प्रतिमा है। उसके दायें-बायें शान्तिनाथ और कुन्थुनाथकी प्रतिमाएँ विराजमान हैं। आगेकी पंक्तिमें १ श्वेत पाषाणकी, १ पीतलकी सर्वतोभद्रिका तथा २ पीतलकी अन्य प्रतिमाएँ हैं।

दायीं ओरकी वेदीमें भगवान् महावीरकी श्वेत पाषाणकी ७ फुटी प्रतिमा है। यह वीर नि. सं. २४६९ में प्रतिष्ठित हुई है।

यहाँ निकट ही एक स्थान है जो पक्का चबूतरा कहलाता है। वहाँ एक गुफा भी है। सम्भवतः यह मुनिजनोंके ध्यानादिके लिए प्रयुक्त होती थी।

मन्दिरसे उत्तर दिशामें ३ मीलकी दूरीपर चन्द टीलोंपर जैन नशियाँ बनी हुई हैं। मन्दिरसे चलकर वन-विभाग द्वारा संरक्षित वन पड़ता है। वन-विभागकी ओरसे बनी हुई कच्ची सड़कसे नशियोंको मार्ग जाता है। यह सड़क भी लगभग १ मील तक ठीक है। उसके पश्चात् रेतीला रास्ता आ जाता है। सबसे पहले शान्तिनाथकी नशिया मिलती है। टोंकमें स्वस्तिक बना हुआ है। टोंकके बगलमें खुली तिदरी बनी हुई है जो यात्रियोंकी सुविधाकी दृष्टिसे बनायी गयी है। टोंकके पूर्वमें भी एक छतरी है। सम्भवतः दिगम्बर मुनियोंके ध्यानके लिए यह स्थान बनाया गया है।

इस नशियाका जीर्णोद्धार मिति ज्येष्ठ कृष्णा १४ वीर सं. २४३८ वि. सं. १९४९ को दिगम्बर जैन समाजने पंचायती द्रव्यसे कराया था।

इस नशियासे दूसरी नशियाको जाते समय रास्तेमें एक पक्का कुआँ मिलता है, जिसका निर्माण लाला संगमलाल पन्नालाल शाहपुर (जिला मुजफ्फरनगर) ने कराया था।

इससे आगे जानेपर एक टेकरीपर कम्पाउण्ड बना हुआ है, जिसमें दो नशियाँ हैं—भगवान् अरहनाथकी और भगवान् कुन्थुनाथ की। ये दोनों क्रमशः बायीं और दायीं ओर हैं। दोनों नशियों (टोंकों) के नीचे एक-एक पाषाण लगा हुआ है, जिसमें दोनों तीर्थंकरोंका जीवन-परिचय लिखा है। जिन्होंने इन तीर्थंकरोंकी यह प्रशस्ति-शिला लगायी है, उन्होंने वास्तवमें बहुत प्रशंसनीय एवं अनुकरणीय कार्य किया है। इन दोनों नशियोंमें स्वस्तिक बने हुए हैं।

श्री अरहनाथ स्वामीकी नशियाका जीर्णोद्धार श्रीमती भगवानदेई धर्मपत्नी लाला मुसद्दीलाल सुपुत्र लाला केदारनाथ रईस सदर, मेरठने अपने पिता रायसाहब लाला प्रभुलाल जैन मेरठ निवासीके प्रबन्धसे वीर नि. सं. २४४४ वि. सं. १९७५ में कराया।

श्री कुन्थुनाथ स्वामीकी नशियाका पाषाणोद्धार श्रीमती भगवानदेईने अपनी स्वर्गीय सुपुत्री रतनदेई धर्मपत्नी लाला दिगम्बरप्रसाद सुपुत्र बा. शीतलप्रसाद रईस सहारनपुरकी ओरसे अपने

पिता रायसाहब लाला प्रभुलाल जैन मेरठ निवासीके प्रबन्धसे वीर नि. सं. २४४३ वि. सं. १९७४ में कराया।

इससे आगे चलकर एक कम्पाउण्डमें मल्लिनाथ भगवान्की टोंक है। इसमें केवल स्वस्तिक बना हुआ है। इसका जीर्णोद्धार लाला छेदालाल प्रद्युम्नकुमार सुपुत्र लाला भटरूमल जैन जारचा (बुलन्दशहर) निवासीने वि. सं. २००६ में कराया।

दूसरी नशियाके पास श्वेताम्बर नशिया है। आसपासमें कई समाधि-स्थान (छतरी) बने हुए हैं, जो अज्ञात दिगम्बर जैन मुनियोंके हैं।

क्षेत्रका वार्षिक मेला

दिगम्बर जैन समाजका वार्षिक मेला कार्तिकी (अष्टाह्निका) शुक्ला ८ से १५ तक होता है। इसमें हजारों यात्री आते हैं। यह बहुत प्राचीन समयसे होता आ रहा है। पहले यह केवल तीन दिनका होता था, किन्तु अब यह आठ दिनका होता है। कार्तिकी पूर्णिमाको यहाँ रथयात्रा निकलती है। इसके अतिरिक्त फाल्गुनी अष्टाह्निका और ज्येष्ठ कृष्णा १४ को भी छोटे मेले होते हैं।

श्वेताम्बर अपना मेला अक्षय तृतीयाको और हिन्दू वैशाख शुक्ला सप्तमीको करते हैं।

शिकार-निषेध

लगभग पचास वर्ष पूर्व जैनोंके प्रयत्नसे सरकारने इस पवित्र तीर्थंकर-भूमि (तीर्थ) में किसी प्रकारका शिकार खेलना निषिद्ध घोषित कर दिया था, जो अब तक लागू है। यह सरकारी आज्ञा पाषाणोंपर अंकित करा दी गयी है।

एक रोचक परम्परा

सरकारी कागजातके अनुसार मौजा हस्तिनापुर दो पट्टियों या महालोंमें विभाजित है—पट्टी कौरवान और पट्टी पाण्डवान। हस्तिनापुरका उत्तरी भाग, जो पट्टी कौरवान कहलाता है, दिगम्बर जैन मन्दिरकी सम्पत्ति है। दक्षिणी भाग, जो पट्टी पाण्डवान कहलाता है, का बहु-भाग श्वेताम्बर मन्दिरके अधीन है। अधिकांश जैन इमारतें और अवशेष पट्टी कौरवानमें स्थित हैं, जब कि मध्य-कालीन अवशेष और हिन्दू स्मारक प्रायः पट्टी पाण्डवानमें हैं।

इन दोनों महालोंके बीचमें एक पक्का मार्ग ही दोनों महालोंकी विभाजक रेखा है। बागमें बन्दर बहुत हैं। एक मनोरंजक बात यह है कि ये बन्दर भी दो विरोधी दलोंके रूपमें बँटे हुए हैं। एक दल रेखाके इस ओर रहता है और दूसरा दल उस ओर। कोई दल एक दूसरेकी रेखाका अतिक्रमण नहीं कर सकता। करनेपर युद्ध छिड़[1] जाता है।

पुरातत्त्व

प्राचीन कालमें हस्तिनापुरकी चहारदीवारीके निकटसे गंगा नदी बहती थी। लेकिन अब वह सात मील दूर चली गयी है। और अब उसीकी एक शाखा—जो बूढ़ी गंगा कहलाती है—

---

१. डॉ. ज्योतिप्रसाद, हस्तिनापुर

प्राचीन टीलोंके पास बहती है। भारत सरकारकी ओरसे इस सांस्कृतिक नगरीकी सन् १९५० में खुदाई हुई थी। यह खुदाई २४ फुट चौड़ी, ५०० फुट लम्बी और २५ फुट गहरी थी। इस खोजके फलस्वरूप यह सिद्ध होता है कि हस्तिनापुर नगर चार बार बसा और उजड़ा। प्रथम बार यह नगर गंगाकी बाढ़के कारण नष्ट हुआ। पुरातत्त्ववेत्ताओंने यहाँकी खुदाईसे तथा यहाँ उपलब्ध हुए मृत्पात्र, मुद्रा आदि पुरातन वस्तुओंसे यह अनुमान लगाया है कि नगरका प्रथम बार विनाश ईसा-से लगभग १०–१२ शताब्दी पूर्व हुआ होगा। उस समयसे पूर्व तक यह नगर अपनी उन्नतिकी चरम सीमापर था। नगरके सम्पूर्ण वैभव और कला, सभ्यता और सम्पदा सबको गंगा अपने साथ बहा ले गयी और अपने पीछे मीलोंमें इसके अवशेष छोड़ गयी। अभी तक जो भी खुदाई हुई है, वहाँ जैन मन्दिरों, स्तूपों और निषधिकाओंके चिह्न प्राप्त नहीं हुए। इससे लगता है कि जिन टीलोंको अछूता छोड़ दिया गया है, उनके नीचे जैन संस्कृतिका अतुल भण्डार दबा पड़ा है। आचार्य जिन-प्रभसूरिने वि. संवत् १३८९ में संघसहित यहाँकी यात्रा की थी (विविधतीर्थ कल्प)। इसी प्रकार कविवर बनारसीदासने कुटुम्बसहित यहाँकी यात्रा सन् १६००के लगभग की थी। उस समय यहाँ मन्दिर, नशिया और स्तूप विद्यमान थे। परवर्ती कालमें प्रकृतिके प्रकोपसे अथवा मुस्लिम शासकोंकी धर्मान्धताके कारण ये नष्ट हो गये। हमें विश्वास है, वे इन टीलोंमें दबे पड़े हैं। खुदाईके फलस्वरूप पुरातत्त्ववेत्ता इस निष्कर्षपर पहुँचे हैं कि हड़प्पाकी सिन्धु घाटी सभ्यतासे भी प्राचीन नर्मदा घाटीकी सभ्यता है, जो गुजरातसे माहिष्मती (मध्यप्रदेशमें स्थित महेश्वर) होती हुई गंगाके कांठे तक फैली हुई है। उसका सम्बन्ध हस्तिनापुरसे भी है। इस प्रकार उनके मतसे हस्तिनापुरकी सभ्यता और संस्कृति ईसासे लगभग ३००० वर्ष पूर्वकी हो जाती है।

क्षेत्रपर स्थित संस्थाएँ

इस समय क्षेत्रपर दिगम्बर जैन प्रान्तीय गुरुकुल, मुमुक्षु-आश्रम है। यहाँ त्यागीजन और ब्रह्मचारिणियाँ भी रहती हैं।

इस गुरुकुलकी स्थापना सन् १९४५ में पूज्य क्षुल्लक गणेशप्रसादजी वर्णी और मनोहरलाल-जी वर्णीके आशीर्वाद और प्रेरणासे सहारनपुरमें की गयी थी। वहाँ जलवायु अनुकूल न होनेके कारण यह सन् १९४९ में हस्तिनापुर आ गया। छात्रोंके निवासके लिए इसका अपना छात्रावास है। विद्यालय भवनका निर्माण हो रहा है। कुछ कमरोंका निर्माण हो भी चुका है।

मुमुक्षु आश्रममें पं. हुकुमचन्द्रजी सलावाके कारण शास्त्र-स्वाध्याय नियमित चलता है।

क्षेत्रकी व्यवस्था

इस क्षेत्रकी व्यवस्था एक रजिस्टर्ड कार्यकारिणी समिति द्वारा की जाती है, जिसके ४१ सदस्य हैं।

नवनिर्माण

पिछले मन्दिरके उत्तर और दक्षिणकी ओर दो भव्य शिखरबन्द मन्दिर श्री अरहनाथ और श्री कुन्थुनाथ भगवान्के बन चुके हैं।

मन्दिरके पीछे, १०० बीघेके उसके कैम्पिंग ग्राउण्डमें पाण्डुक शिलाका निर्माण हो रहा है।

पारसनाथका किला

बिजनौर जिलेमें नगीना रेलवे स्टेशनसे उत्तर-पूर्वकी ओर 'बढ़ापुर' नामक एक कस्बा है। वहाँसे चार मिल पूर्वकी ओर कुछ प्राचीन अवशेष दिखाई पड़ते हैं। इन्हें ही 'पारसनाथका किला' कहते हैं। इस स्थानका नामकरण तेईसवें तीर्थंकर भगवान् पार्श्वनाथके नामपर हुआ लगता है।

इस किलेके सम्बन्धमें अनेक जनश्रुतियाँ प्रचलित हैं। एक जनश्रुतिके अनुसार पारस नामक किसी राजाने यहाँ किला बनवाया था। उसने यहाँ कई जैनमन्दिरोंका भी निर्माण कराया था। इस समय यहाँ कोई मन्दिर नहीं है, अपितु प्राचीन मन्दिरों और किलेके भग्नावशेष चारों ओर कई वर्गमीलके क्षेत्रमें बिखरे पड़े हैं। इन अवशेषोंका अब तक विधिवत् अध्ययन नहीं हुआ है। कुछ उत्खनन अवश्य हुआ है। समय-समयपर यहाँ जैन मूर्तियों या जैनमन्दिरोंसे सम्बन्धित अन्य सामग्री उपलब्ध होती रहती है। उपलब्ध सामग्रीके अध्ययनसे ज्ञात हुआ है कि प्राचीन कालमें यह स्थान जैनोंका प्रमुख केन्द्र था। यहाँ कई तीर्थंकरोंके पृथक्-पृथक् मन्दिर बने हुए थे। 'पारसनाथका मन्दिर' इन सबमें प्रमुख था। इसीलिए इस स्थानका नाम पारसनाथ पड़ गया।

निश्चय ही मध्यकालमें यहाँ एक महत्त्वपूर्ण मन्दिर था। वह सुसम्पन्न और समृद्ध था। मन्दिरके चारों ओर सुदृढ़ कोट बना हुआ था, इसीको पारसनाथका किला कहा जाता था। सन् १९५२ से पूर्व तक इस स्थानपर बड़े भयानक जंगल थे। इसलिए यहाँ पहुँचना कठिन था। सन् १९५२ में पंजाबसे आये पंजाबी काश्तकारोंने जंगल साफ करके भूमिको कृषि योग्य बना लिया है और उसपर कृषि-कार्य कर रहे हैं। प्रारम्भमें कृषकोंको बहुत सी पुरातन सामग्री मिली थी। अब भी कभी-कभी मिल जाती है। अब तक जो सामग्री उपलब्ध हुई है, उसमें से कुछका परिचय यहाँ दिया जा रहा है—

—भगवान् महावीरकी बलुए श्वेत पाषाणकी पद्मासन प्रतिमा। अवगाहना लगभग पौने तीन फुट। यह प्रतिमा एक शिलाफलकपर है। महावीरकी उक्त मूर्तिके दोनों ओर नेमिनाथ और चन्द्रप्रभ भगवान्की खड्गासन प्रतिमा है। इसका अलंकरण दर्शनीय है। अलंकरणमें तीनों प्रतिमाओंके प्रभामण्डल खिले हुए कमलकी शोभाको धारण करते हैं। भगवान् महावीर अशोकवृक्षके नीचे विराजमान हैं। वृक्षके पत्रोंका अंकन कलापूर्ण है। प्रतिमाके मस्तकपर छत्रत्रयी सुशोभित है। मस्तकके दोनों ओर पुष्पमालाधारी विद्याधर हैं। उनके ऊपर गजराज दोनों ओर प्रदर्शित हैं। तीनों प्रतिमाओंके इधर-उधर चार चमरवाहक इन्द्र खड़े हैं।

प्रतिमाके सिंहासनके बीचमें धर्मचक्र है। उसके दोनों ओर सिंह अंकित हैं। चक्रके ऊपर कीर्तिमुख अंकित है। सिंहासनमें एक ओर धनका देवता कुबेर भगवान्की सेवामें उपस्थित है और दूसरी ओर गोदमें बच्चा लिये हुए अम्बिकादेवी है।

सिंहासनपर ब्राह्मीलिपिमें एक अभिलेख भी उत्कीर्ण है जो इस प्रकार पढ़ा गया है—

'श्री विरुद्धमनसमिदेवः। सं. १०६७ राणलसुत्त भरथ प्रतिम प्रठपि' अर्थात् संवत् १०६७ में राणलके पुत्र भरतने श्री वर्धमान स्वामीकी प्रतिमा प्रतिष्ठापित की।

—भगवान् पार्श्वनाथकी एक विशाल पद्मासन प्रतिमा बढ़ापुर गाँवके एक मुसलमान झोजेके घरसे मिली थी, जिसे वह उक्त किलेके सबसे ऊँचे टीलेसे उठा लाया था। इसको उलटा रखकर वह नहाने और कपड़े धोने आदिके कामोंमें लाता था। एक वर्षके भीतर वह और उसका सारा परिवार नष्ट हो गया। घर फूट गया। लोगोंका विश्वास है कि भगवान्की अविनयका ही यह

परिणाम है। यह खण्डित कर दी गयी है। इसके हाथ, पैर और मुँह खण्डित हैं। सर्प-कुण्डलीके आसनपर भगवान् विराजमान हैं। उनके सिरपर सर्पफण मण्डल है। उनके अगल-बगलमें नाग-नागिन अंकित हैं। चरणपीठपर दो सिंह बने हुए हैं। जिस सातिशय मूर्तिके कारण इस किले को पारसनाथका किला कहा जाता था, सम्भवतः वह मूर्ति यही रही हो।

इन मूर्तियोंके अतिरिक्त कुछ सिरदल-स्तम्भ आदि भी मिले हैं। एक सिरदलके मध्यमें कमल-पुष्प और उनके ऊपर बैठे हुए दो सिंहोंवाला सिंहासन दिखाई देता है। सिंहासनके ऊपर मध्यमें पद्मासन मुद्रामें भगवान् ध्यानलीन हैं। उनके दोनों ओर दो खड्गासन तीर्थंकर मूर्तियोंका अंकन किया गया है। फिर इन तीनों मूर्तियोंके इधर-उधर भी इसी प्रकारकी तीन-तीन मूर्तियाँ बनी हुई हैं। इन तीनों भागोंके इधर-उधर एक-एक खड्गासन मूर्ति अंकित है।

कुछ द्वार-स्तम्भ भी मिले हैं। एक द्वार-स्तम्भमें मकरासीन गंगा और दूसरे स्तम्भमें कच्छपवाहिनी यमुनाका कलात्मक अंकन है। इन देवियोंके अगल-बगलमें उनकी परिचारिकाएँ हैं। ये सभी स्तनहार, मेखला आदि अलंकरण धारण किये हुए हैं। स्तम्भमें ऊपरकी ओर पत्रावलीका मनोरम अंकन है। स्तम्भोंपर गंगा-यमुनाका अंकन गुप्तकालसे मिलता है।

कुछ स्तम्भ ऐसे भी प्राप्त हुए हैं, जिनपर दण्डधारी द्वारपाल बने हैं। देहलीके भी कुछ भाग मिले हैं, जिनपर कल्पवृक्ष, मंगलकलश लिये हुए दो-दो देवता दोनों ओर बने हुए हैं। एक पाषाण-फलकपर संगीत-सभाका दृश्य उत्कीर्ण है। इसमें अलंकरणके अतिरिक्त नृत्य करती हुई एक नर्तकी तथा मृदंग-मंजीरवादक पुरुष दिखाई पड़ते हैं।

किलेसे कुछ अलंकृत ईंटें भी मिली हैं। यहाँके कुछ अवशेष और मूर्तियाँ नगीना और बिजनौरके दिगम्बर जैनमन्दिरोंमें पहुँच गयी हैं। शेष अवशेष यहीं एक खेतमें पड़े हुए हैं।

इन पुरातत्त्वावशेषों और अभिलिखित मूर्तियोंसे हम इस निर्णयपर पहुँचते हैं कि ९-१०वीं या उससे पूर्वकी शताब्दियोंमें यह स्थान जैनधर्मका महत्त्वपूर्ण केन्द्र रहा है। यहाँ जो व्यापक विध्वंस दिखाई पड़ता है, उसके पीछे किसका हाथ रहा है, निश्चित रूपसे नहीं कहा जा सकता। यदि यहाँकी खुदाई करायी जाये तो सम्भव है, यहाँ से अनेक प्राचीन कलाकृतियाँ मिल सकें और यहाँके इतिहासपर भी कुछ प्रकाश पड़ सके।

यह स्थान तथा इसके आसपासके नगर जैनधर्मके केन्द्र रहे हैं, इस बातके कुछ प्रमाण प्रकाशमें आये हैं। यह स्थान नगीनेके बिलकुल निकट है। नगीनेमें जैनमन्दिरके पासका मुहल्ला 'यतियोंका मुहल्ला' कहलाता है। यति जैन त्यागी वर्गका ही एक भेद था। इस नामसे ही इस नगरके इस भागमें जैन यतियोंके प्रभावका पता चलता है।

नगीनेसे ८ मीलकी दूरीपर नहटौर नामक एक कस्बा है। सन् १९०५ में इस कस्बेके पास ताँबेका एक पिटारा निकला था जिसमें २४ तीर्थंकरोंकी मूर्तियाँ थीं। सम्भवतः ये मुस्लिम आक्रमण-कारियोंके भयसे जमीनमें दबा दी गयी होंगी। ये मूर्तियाँ अब नहटौरके जैनमन्दिरमें हैं। नहटौरके पास गांगन नामकी एक नदी है। उसमें-से १९५६-५७ में एक पाषाण फलक निकला था। उसके ऊपर पाँच तीर्थंकर-मूर्तियाँ हैं। यह जैनमन्दिर भी नहटौरमें स्थापित है।

नहटौरसे तीन मीलकी दूरीपर पाडला गरीबपुर नामका एक ग्राम है। उस ग्रामके बाहर एक टीलेपर एक पद्मासन जैनप्रतिमा मिट्टी में दबी पड़ी थी। उसका कुछ भाग निकला हुआ था। ग्रामीण लोग इसे देवता मानकर पूजते थे। १९६९-७० में जैनियोंने यहाँकी खुदाई करायी। खुदाई-के फलस्वरूप भगवान् ऋषभदेवकी प्रतिमा निकली। अब नहटौरकी जैन समाजने वहाँ मन्दिर बनवा दिया है।

बिजनौर हस्तिनापुरसे केवल १३ मीलकी दूरीपर गंगानदीके दूसरे तटपर स्थित है। हस्तिनापुरके समीप होने और उपर्युक्त मूर्तियाँ निकलने से स्पष्ट है कि बिजनौर जिलेमें कुछ स्थान विशेषतः 'पारसनाथका टील्य'के आसपासका सारा प्रदेश जैनधर्मका प्रमुख केन्द्र और प्रभाव-क्षेत्र रहा है।

बड़ागाँव

मार्ग

रावण उर्फ बड़ागाँवका दिगम्बर जैन मन्दिर अतिशय क्षेत्रके रूपमें प्रसिद्ध है। यहाँ पहुँचनेका मार्ग इस प्रकार है—

दिल्ली-सहारनपुर सड़क मार्गसे सड़कके किनारे खेकड़ा बस-स्टैण्ड है। खेकड़ा उत्तर प्रदेशमें मेरठ जिलेकी तहसील नागपतमें गुड़, गल्लेकी प्रसिद्ध मण्डी है। दिल्लीसे खेकड़ाका बस-स्टैण्ड २२ किलोमीटर है। स्टैण्डसे खेकड़ाका बाजार २ किलोमीटर है। स्टैण्डपर हर समय ताँगे और रिक्शे मिलते हैं। बाजारसे बड़ागाँव ५ किलोमीटर है। ४ किलोमीटर तक पक्की सड़क है तथा १ किलोमीटर कच्ची सड़क है जो निकट भविष्यमें पक्की होने जा रही है। खेकड़ासे मेरठ जाने वाली बससे बड़ागाँव जा सकते हैं अथवा साइकिल रिक्शासे जा सकते हैं। गाँवमें होकर मन्दिरके लिए रास्ता है। मन्दिर गाँव के बिलकुल पास है।

अतिशय क्षेत्र

इस मन्दिरकी प्रसिद्धि अतिशय क्षेत्रके रूपमें है। लगभग ५० वर्ष पहले यहाँ एक टीला था, जिसपर झाड़-झंखाड़ उगे हुए थे। देहातके लोग यहाँ मनौती मनाने आते रहते थे। अपने जानवरोंको बीमारीमें या उन्हें नजर लगनेपर वे यहाँ बड़ी श्रद्धासे आते थे और दूध चढ़ाकर मनौती मनाते थे। और उनके पशु रोगमुक्त हो जाते थे। बहुत-से लोग अपनी बीमारी, पुत्रप्राप्ति और मुकद्दमोंकी मनौती मनाने भी आते थे और इस टीलेपर दूध चढ़ाते थे। इससे उनके विश्वास-के अनुरूप उनकी मनोकामना पूर्ण हो जाती थी। सम्भवतः किसी जमानेमें यहाँ विशाल मन्दिर था। किन्तु मुस्लिम कालमें धर्मान्धता अथवा प्राकृतिक प्रकोपके कारण यह नष्ट हो गया और टीला बन गया।

एक बार ऐलक अनन्तकीर्ति जी खेकड़ा ग्राममें पधारे। उस समय प्रसंगवश वहाँके लोगोंने उनसे इस टीलेकी तथा उसके अतिशयोंकी चर्चा की। फलतः वे उसे देखने गये। उन्हें विश्वास हो गया कि इस टीलेमें अवश्य ही प्रतिमाएँ दबी होंगी। उनकी प्रेरणासे वैशाख वदी ८ संवत् १९७८-को इस टीलेकी खुदाई करायी गयी। खुदाई होनेपर प्राचीन मन्दिरके भग्नावशेष निकले और उसके बाद बड़ी मनोज्ञ १० दिगम्बर जैन प्रतिमाएँ निकलीं, जिनमें ७ पाषाणकी तथा तीन धातुकी थीं। लगभग ५ अंगुलकी एक हीरेकी भी प्रतिमा निकली थी। किन्तु वह खण्डित थी। अतः यमुना नदीमें प्रवाहित कर दी गयी। धातु प्रतिमाओंपर कोई लेख नहीं है। किन्तु पाषाण प्रतिमाओं पर (दोको छोड़कर शेषपर) मूर्तिलेख हैं। उनसे ज्ञात होता है कि इन प्रतिमाओंमें कुछ १२वीं शताब्दीकी हैं और कुछ १६वीं शताब्दीकी।

इससे उत्साहित होकर यहाँ एक विशाल दिगम्बर जैन मन्दिरका निर्माण किया गया और

ज्येष्ठ शुक्ला ९ संवत् १९७९ को यहाँ भारी मेला हुआ। इसके बाद संवत् १९८९ में यहाँ समारोह-पूर्वक शिखरकी प्रतिष्ठा हुई।

जिस स्थानपर खुदाई की गयी थी, वहाँ एक पक्का कुआँ बना दिया गया। कुआँ १८ फीट गहरा है। इस कुएँका जल अत्यन्त शीतल, स्वादिष्ट और स्वास्थ्यवर्धक था। इसके जलसे अनेक रोग दूर हो जाते थे। धीरे-धीरे इस कुएँकी ख्याति दूर-दूर तक फैल गयी और यहाँ बहुत-से रोगी आने लगे। इतना ही नहीं, इस कुएँका जल कनस्तरोंमें रेल द्वारा बाहर जाने लगा। प्रत्यक्ष-दर्शियोंका कहना है कि खेकड़ाके स्टेशनपर प्रतिदिन १००-२०० कनस्तर जाते थे। वहाँसे उन्हें बाहर भेजा जाता था। अब इसके जलमें वह विशेषता नहीं रह गयी है।

मन्दिरमें मनौती मनानेवाले जैन और अजैन बन्धु अब भी आते हैं। जिनके जानवर बीमार पड़ जाते हैं, वे भी यहाँ मनौती मनाने आते हैं।

वर्तमान स्थिति

यह मन्दिर शिखरबन्द है। शिखर विशाल है। उसका निचला भाग कमलाकार है। मन्दिर-में केवल एक हालनुमा मोहनगृह है। हालके बीचोंबीच तीन कटनीवाली गन्धकुटी है। गन्धकुटी एक पक्के चबूतरेपर बनी हुई है। वेदीमें मूलनायक भगवान् पार्श्वनाथकी श्वेत पाषाणकी पद्मासन प्रतिमा विराजमान है। इसकी अवगाहना १ हाथके लगभग है। प्रतिमा सौम्य और चित्ताकर्षक है। इसकी प्रतिष्ठा वैशाख सुदी ३ संवत् १५४७ में भट्टारक जिनचन्द्रने की थी। इस प्रतिमाके अतिरिक्त एक पीतलकी प्रतिमा इस वेदीमें विराजमान है।

मन्दिरके चारों ओर बरामदा बना हुआ है। बरामदेके चारों कोनोंपर शिखरबन्द मन्दरियाँ बनी हुई हैं। पूर्वकी वेदीमें ऋषभनाथ भगवान्‌की मटमैले रंगकी पद्मासन प्रतिमा विराजमान है। इसकी अवगाहना डेढ़ हाथकी है। यह प्रतिमा १५वीं शताब्दीकी है तथा यह भूगर्भसे निकली थी।

दक्षिणकी वेदीमें मूलनायक भगवान् विमलनाथकी भूरे पाषाणकी पद्मासन प्रतिमा है। नीचेके हाथकी उँगलियाँ खण्डित हैं। इसका लांछन मिट गया है किन्तु परम्परागत मान्यताके अनुसार इसे विमलनाथकी मूर्ति कहा जाता है। मूर्तिके नीचे इतना लेख स्पष्ट पढ़नेमें आया है—

'संवत् ११२७ माघ सुदी १३ श्रीशं लभेथे'

इसी वेदीमें भगवान् पार्श्वनाथकी एक कृष्ण पाषाणकी मूर्ति है। यह पद्मासन है। अवगाहना १ फुट है। हाथ खण्डित हैं। इसपर कोई लेख नहीं है। पालिश कहीं-कहीं उतर गयी है। यह मूर्ति भी विमलनाथकी प्रतिमाके समकालीन लगती है। ये दोनों भूगर्भसे निकली थीं।

पश्चिमकी वेदीमें भगवान् पार्श्वनाथकी श्वेत पाषाणकी एक हाथ अवगाहनावाली पद्मासन प्रतिमा है। पीतलकी एक ६ इंची वेदीमें चारों दिशाओंमें पीतलकी चार खड्गासन चतुर्मुखी प्रतिमाएँ हैं। पीतलकी दो प्रतिमाएँ और हैं जो क्रमशः सवा दो इंची और डेढ़ इंची हैं। ये सभी भूगर्भसे निकली थीं।

उत्तरकी वेदीमें भगवान् महावीरकी मटमैले रंगकी पद्मासन प्रतिमा है। इसकी अवगाहना डेढ़ हाथ है। यह पूर्वकी वेदीके भगवान् ऋषभनाथकी प्रतिमाके समकालीन है तथा दोनोंका पाषाण भी एक ही है। यह भी भूगर्भसे प्राप्त हुई थी।

इन प्रतिमाओंके अतिरिक्त सभी वेदियोंमें पीतलकी एक-एक प्रतिमा और यन्त्र हैं, जो सभी आधुनिक हैं।

मन्दिरके चारों ओर धर्मशाला है, जिसका द्वार पूर्व दिशामें है। धर्मशालाके बाहर पक्का चबूतरा और एक पक्का कुआँ है जो मन्दिरकी सम्पत्ति है। धर्मशालाके दक्षिणकी ओरके कमरोंके बीचमें एक कमरेमें नवीन मन्दिर है, जिसमें दो वेदियाँ हैं। बड़ी वेदीमें मूलनायक चन्द्रप्रभु भगवान्‌की प्रतिमा है। इनके अतिरिक्त तीन पाषाणकी तथा एक धातुकी प्रतिमा है। इनमें एक पाषाण प्रतिमा भूगर्भसे निकली थी। यह एक भूरे पाषाण-खण्डमें उकेरी हुई है जो प्रायः पाँच अंगुलकी है।

छोटी वेदीमें शीतलनाथ भगवान्‌की खड्गासन, पाषाणकी दो पद्मासन और एक पीतलकी खड्गासन प्रतिमा विराजमान है।

मानस्तम्भका शिलान्यास

लगभग १५ वर्ष पहले यहाँ क्षुल्लक सुमतिसागरजी पधारे थे। उन्होंने इस क्षेत्रपर मानस्तम्भके निर्माणकी प्रेरणा दी। किन्तु उस समय यह कार्य सम्पन्न नहीं हो सका। सन् १९७१ में स्वर्गीय आचार्य शिवसागरजीके शिष्य मुनि श्री वृषभसागरजी महाराजने दिल्ली चातुर्मासके समय लोगों को इस कार्य के लिए पुनः प्रेरित किया। फलतः ८ नवम्बर सन् १९७१ को महाराजजीके तत्त्वावधानमें मन्दिरके सामने मानस्तम्भका शिलान्यास हो गया। यहाँ मकरानेके संगमरमरके मानस्तम्भ-निर्माणकी योजना है, जिसका कार्य चालू है।

वार्षिक मेला

यहाँ प्रति वर्ष फाल्गुन शुक्ला ८-९-१० को मेला भरता है और आसौज कृष्णा १ को जलयात्रा होती है।

यहाँ की जलवायु बड़ी स्वास्थ्यवर्धक है।

व्यवस्था

यहाँकी व्यवस्था स्थानीय और बाहरके जैनोंकी एक कमेटी द्वारा होती है।

मथुरा

सिद्ध क्षेत्र

मथुरा प्राचीन कालसे तीर्थक्षेत्र रहा है। प्राकृत निर्वाणकाण्डमें एक गाथा निम्न प्रकार है—

महुराए अहिछित्ते वीरं पासं तहेव वंदामि।
जम्बु मुणिन्दो वन्दे णिव्वुइं पत्तोवि जंबुवणगहणे॥

अर्थात् मैं मथुराके महावीर भगवान् और अहिच्छत्रके पार्श्वनाथ भगवान्‌की वन्दना करता हूँ। तथा गहन जम्बू वनमें निर्वाण प्राप्त करनेवाले जम्बू मुनिराजकी वन्दना करता हूँ।

—मथुरा शूरसेन जनपदकी राजधानी थी। शूरसेन जनपदमें महावीर भगवान्‌का समवसरण आया था और उनके उपदेशोंको सुनकर नगर सेठ जिनदत्तके पुत्र अर्हद्दास, मथुराके नरेश उदितोदय (अथवा भीदाम), उसके मन्त्री, राज्याधिकारी और अनेक नागरिक भगवान् महावीरके धर्मानुयायी बन गये।[1]

१. व्रजका सांस्कृतिक इतिहास—श्री प्रभुदयाल मीतल, पृ. ३४५।

—भगवान् महावीरके निर्वाण होनेपर उनके प्रमुख गणधर गौतम स्वामीको केवलज्ञान हुआ। जिस दिन गौतम स्वामीका निर्वाण हुआ, उस दिन सुधर्माचार्यको केवलज्ञान हुआ। जिस दिन सुधर्मस्वामीका निर्वाण हुआ, उस दिन उनके मुख्य शिष्य जम्बूस्वामीको विपुलाचलपर केवलज्ञान हुआ।[1] केवलज्ञानी जम्बूस्वामीने अड़तीस वर्ष तक धर्मका प्रकाश संसारको दिया। वे विहार करते हुए अपने शिष्य समुदायके साथ जम्बूवनमें पधारे। वहींपर योग निरोध कर उन्होंने शेष अघातिया कर्मोंको नष्ट कर निर्वाण प्राप्त किया।

प्राचीनकालमें मथुरामें चौरासी वन थे, जिनमें बारह बड़े वन थे और बहत्तर छोटे वन या उपवन थे। ये वन मथुराके चारों ओर दूर-दूर तक फैले हुए थे। इन चौरासी वनोंमें-से कुछ वनोंके नामपर अब नगर बस गये हैं, जैसे वृन्दावन, विधिवन, महावन, मधुवन, तालवन, कुमुदवन, बहुलावन, बिहारवन, कामवन, गह्वरवन, वत्सवन, भद्रवन, भाण्डारवन, बेलवन, खेलनवन, लोहवन, बृहद्वन। इनके अतिरिक्त शेष वन समयके प्रभावसे समाप्त हो गये और उनके स्थानपर खेती होने लगी अथवा गाँव-नगर बस गये।

इन चौरासी वनोंमें एक जम्बूवन भी था। तालवन, कुमुदवन, बेलवन आदिकी तरह उस वनका भी नाम जम्बूवन इसलिए पड़ा, कि वहाँ जम्बू वृक्षोंकी बहुलता थी। निश्चय ही यह वन बहुत गहन और विशाल था। इसी वनमें आकर अन्तिम केवली जम्बूस्वामीने निर्वाण प्राप्त किया था।

जम्बूस्वामीका चरित्र अत्यन्त प्रभावक है। वे राजगृह नगरके प्रसिद्ध श्रेष्ठी अर्हद्दासके पुत्र थे। उनकी माताका नाम जिनमती था। वे रूपमें कामदेवके समान थे। उनके शरीरमें अपार बल था। उन्होंने अनेक युद्धोंमें शौर्य प्रदर्शित कर शत्रुओंपर विजय प्राप्त की थी। चार श्रेष्ठियोंने अपनी-अपनी कन्याओंका वाग्दान जम्बूकुमारके लिए कर दिया। एक बार दक्षिणके प्रबल पराक्रमी विद्याधर नरेश रत्नचूलको जीतकर जम्बूकुमार मगध सम्राट् श्रेणिक बिम्बसारके साथ लौट रहे थे। राजगृहके उपवनमें उन्होंने पाँच सौ शिष्योंसे युक्त सुधर्म स्वामीके दर्शन किये और उनका उपदेश सुना। उपदेश श्रवणकर उनके मनमें वैराग्यकी भावना जागृत हुई। घर पहुँचकर उन्होंने अपने माता-पितासे मुनि-दीक्षाके लिए अनुमति माँगी। माता-पिताने अपने पुत्रको मुनि-दीक्षाके निश्चयसे विरत करनेका बड़ा प्रयत्न किया। जम्बूकुमार अपने निश्चयपर अडिग रहे।

यह समाचार उन वाग्दत्ता कन्याओंके माता-पिताके कानोंमें पहुँचा। वे बिना विलम्ब किये अर्हद्दास श्रेष्ठीके पास दौड़े आये और उनसे परामर्श करके जम्बूकुमारको इस बातपर राजी कर लिया कि आज ही चारों कन्याओंके साथ उनका विवाह हो जाये। यदि उन्हें दीक्षा ही लेनी हो तो विवाहके पश्चात् कभी भी ले सकते हैं। तदनुसार उसी दिन चारों श्रेष्ठियोंने अपनी-अपनी कन्याओंका विवाह जम्बूकुमारके साथ कर दिया और दहेजमें अपार धन दिया। सम्भवतः उन्हें यह विश्वास था कि देवांगनाओं जैसी रूपवती नवपरिणीता स्त्रियोंकी मोहिनीके पाशमें युवक जम्बूकुमारका मन अवश्य उलझ जायेगा। किन्तु उनकी युक्ति सफल न हो सकी। चारों वधुओंने रात भर अपने विरागी पतिको रिझाने और उन्हें अपने संकल्पसे विरत करनेके लिए हाव-भाव विलासके अपने सभी अचूक कहे जानेवाले अस्त्र अजमाये, किन्तु स्वामीके अडिग संकल्पकी शिलासे टकराकर वे सब व्यर्थ हो गये।

---

१. तिलोय पण्णत्ति, चतुर्थ अधिकार, गाथा १४७६–७७।

दहेजकी विपुल धनराशिके प्रति आकर्षित होकर उस युगका कुख्यात डाकू विद्युच्चर अपने साथियोंके साथ उसी रात जम्बूकुमारके महलोंमें घुसा। कुमारके माता-पिता, परिजन, दास-दासियाँ धड़कते दिल और आशंकित मनसे उस 'सुहागरात' के परिणामकी प्रतीक्षामें थे। किसीको दहेज या घरकी सुरक्षाका ध्यान नहीं था। विद्युच्चर धनकी टोहमें राजप्रासादके उस कक्षके पास पहुँचा जहाँ वर और वधुओंके बीच वार्तालाप हो रहा था। कुतूहलवश वह भी उस वार्तालापको सुनने लगा। सारी वार्ता सुहागरातमें वर-वधूके बीच प्रायः होनेवाले रतिविलासके वार्तालापसे भिन्न थी। राग और विरागके इस हृदयस्पर्शी वार्तालापके प्रभावसे विद्युच्चर इतना अभिभूत हुआ कि प्रकट होकर वह भी उस वार्तालापमें सम्मिलित हो गया।

जीत जम्बूकुमारकी हुई। सूर्यकी किरणोंने फैलकर जहाँ जगत्का बाह्य अन्धकार दूर किया, जम्बूकुमारकी विरागभरी बातोंने नववधुओं और चोरोंके हृदयका अन्धकार दूर कर दिया। प्रातः होते ही माता-पितासे आज्ञा लेकर जम्बूकुमार मुनि-दीक्षा लेने चल दिये और उनके पीछे चारों वधुएँ, माता-पिता, विद्युच्चर और उनके साथी चल पड़े। दीक्षित हो सब तपश्चरण करने लगे।

केवलज्ञान-प्राप्तिके पश्चात् भगवान् जम्बूस्वामी कई बार मथुरा पधारे और धर्मोपदेश दिया। अन्तमें मथुराके जम्बूवनमें आकर उनका निर्वाण हुआ। उनके निर्वाणके कारण यह स्थान सिद्धक्षेत्र हो गया।

---

१. इस सम्बन्धमें शास्त्रोंमें कुछ मतभेद प्रतीत होता है। वीर कवि कृत 'जम्बूसामिचरित' में इस सम्बन्ध में लिखा है—

विउलइरि सिहरि कम्मट्ठ चक्षु।
सिद्धालय सासय सोक्खपत्तु॥ सन्धि १०, कडवक २४

इसी प्रकार कवि राजमल्लने 'जम्बूस्वामिचरितम्' में लिखा है—

ततो जगाम निर्वाणं केवली विपुलाचलात्।
कर्माष्टकविनिर्मुक्तशाश्वतानन्दसौख्यभाक्॥

इन दोनों ग्रन्थोंके अनुसार जम्बूस्वामीका निर्वाण विपुलाचलसे हुआ था। किन्तु निर्वाण काण्डकी गाथा-में जिस जम्बूवनका उल्लेख है, वह विपुलाचलपर कभी रहा है, यह विचारणीय है। किन्तु कवि राज-मल्लकी निम्न सूचनाके अनुसार मथुरा सिद्धक्षेत्र रहा है और कविने साहू टोडरके साथ सं. १६३० के लगभग इस सिद्धक्षेत्रकी यात्रा की थी। इस सम्बन्धमें वे लिखते हैं—

अथैकदा महापुर्यां मथुरायां कृतोद्यमः।
यात्रायै सिद्धक्षेत्रस्य चैत्यानामगमत्सुखम्॥ जम्बूस्वामिचरितम् १-७८

भट्टारक ज्ञानसागरजीने 'सर्वतीर्थवन्दना' लिखी है। ज्ञान सागर काष्ठासंघ नन्दीतट गच्छके भट्टारक श्रीभूषणके शिष्य थे। उनका काल १६वीं शताब्दीका अन्तिम चरण और १७वीं शताब्दीका प्रथम चरण माना जाता है। उन्होंने अपने 'सर्वतीर्थ वन्दना' स्तवनमें मथुराके सम्बन्धमें कुछ विशेष लिखते हुए उसे ही जम्बूस्वामीकी निर्वाण भूमि माना है।

मथुरा नयर विसाल गोवर्धनगिरिपासई।
यमुनातट अभिराम जंबु स्वामि सुखरासई॥
पर हरिया सवि भोग योग अभ्यास सदा रत।
जंबूवनइ मझार चोर शत पंच शिवंगत॥

कुछ समय पश्चात् मुनिराज विद्युच्चर प्रभव आदि पाँच सौ मुनियों सहित मथुराके वनमें पधारे। मुनिराज विद्युच्चर ग्यारह अंगके पाठी थे। शेष मुनि भी ज्ञानी और घोर तपस्वी थे। रात्रिमें व्यन्तरोंने उनके ऊपर घोर उपसर्ग किया किन्तु धीर वीर मुनि उनसे तनिक भी चल-विचल नहीं हुए। वे आत्म-चिन्तनमें लीन रहे। ये उपसर्ग प्राणान्तक सिद्ध हुए। सभी मुनियोंका समाधिमरण हुआ। मुनिराज विद्युच्चर सर्वार्थसिद्धि विमानमें अहमिन्द्र हुए। वे मनुष्य भव धारण करके मुक्ति प्राप्त करेंगे। शेष मुनि भी अपने गतिबन्धके अनुसार विभिन्न स्वर्गोंमें गये।[1]

मुनिराज जम्बूस्वामीके निर्वाण और मुनिराज विद्युच्चरके उपसर्गकी घटनाएँ सर्वविश्रुत हैं। इससे पूर्व भगवान् मुनिसुव्रतनाथके कालमें भी यहाँ एक ऐसी ही घटना घटित हुई थी। उस

नारि च्यारि परिहरि करी जंबुदेव शिवपद लह्यो।
ब्रह्म ज्ञानसागर वदति अनंत सुख पद पामियो ॥२२

इसी प्रकार पण्डित दिलसुखने 'अकृत्रिम चैत्यालय जयमाला' लिखी है। उसमें एक छन्द इस प्रकार है—

'सन्मथुरायां जम्बू स्वामी। सुद्धान्तिम केवलि शिवगामी'

इस प्रकार इन दोनों विद्वानोंने जम्बूस्वामीका निर्वाण मथुरासे माना है।

१. व्यतीते चोपसर्गेऽथ मुनिर्विद्युच्चरो महान्।
व्यग्रे व्योम्नि यथादित्यो तेजःपुञ्ज इव द्युतः ॥१३।१६४
प्रातःकालेऽथ संजाते प्रान्त्यसंलेखनाविधौ।
चतुर्विधाराधनां कृत्वागमत्सर्वार्थसिद्धिके ॥१३।१६५
शतानां पञ्च संख्याकाः प्रभवादिमुनीश्वराः।
अन्ते सल्लेखनां कृत्वा दिवं जग्मुर्यथायथम् ॥१३।१६९—कवि राजमल्ल कृत जम्बूस्वामिचरितम्

२. मुनिराज विद्युच्चरके संघपर जो देवकृत उपसर्ग हुआ, वह कहाँ हुआ, इस सम्बन्धमें भी शास्त्रोंमें ऐकमत्य नहीं है। वीर कवि उस स्थानका नाम ताम्रलिप्ति (तमलुक-पश्चिम बंगाल) बताता है। जैसा कि उसने लिखा है—

अह सवणसंघसंजुउ पवरु, एयार संगधरु विज्जुचरु।
विहरंतु तवेण विराइयउ, पुरि तामलित्ति संपाइयउ ॥—जम्बूसामिचरिउ १०।२४।१३

किन्तु कवि राजमल्ल उस स्थानको मथुरा बताता है।

अथान्येद्युः स निस्संगो मुनिपञ्चशतैर्वृतः।
मथुरायां महोद्यानप्रदेशेऽवगमन्मुदा ॥ जम्बूस्वामिचरितम् १२।१२६

प्रसंगवश इन मतभेदोंकी चर्चा आ गयी। किन्तु इतना निश्चित है कि कवि राजमल्लके समयमें भी मथुराकी सिद्धक्षेत्रके रूपमें प्रसिद्धि थी। चौरासीपर जम्बूस्वामीके प्राचीन चरण स्थापित हैं। कवि राजमल्लने स्वयं मथुरामें जम्बूस्वामी और विद्युच्चरादि मुनियोंके पाँच सौ एक स्तूप या निषिधिकाएँ देखी थीं, जो बहुत प्राचीन थीं। निषिधिकाएँ मुनिजनोंकी समाधि स्थान होती हैं।

३. आचार्य रविषेणकृत पद्मपुराण, पर्व ८९ से ९२।

समय मथुरापर रावणके दामाद मधुका शासन था। वह बड़ा प्रतापी नरेश था। चमरेन्द्रने प्रसन्न होकर उसे शूलरत्न नामक शस्त्र दिया था, जिससे वह अपनेआपको अजेय समझता था। उसका पुत्र लवणार्णव भी बड़ा महारथी था।

जब रावणपर विजय प्राप्त कर मर्यादापुरुषोत्तम रामचन्द्र और लक्ष्मण अपने मित्र राजाओंके साथ अयोध्या लौटे तो उन्होंने राक्षसवंशी, वानरवंशी और ऋक्षवंशी मित्र राजाओंको विभिन्न देशोंके राज्य दिये, अपने लघु भ्राता शत्रुघ्नको उसकी इच्छानुसार मथुराका राज्य दिया। शत्रुघ्नने सेना लेकर मथुरापर चढ़ाई कर दी। इस युद्धमें मधुका पुत्र लवण काम आया। यहाँ मधुने युद्धसे विरत हो मुनिदीक्षा ले ली। राज्य पर शत्रुघ्नका अधिकार हो गया। और वह अयोध्या लौट गया।

शूलरत्न शस्त्रके अधिष्ठाता चमरेन्द्रको जब इस घटनाका पता चला तो उसने क्रुद्ध होकर मथुरा नगरमें महामारी फैला दी। रोग इतने भयानक वेगसे फैला कि उससे नगरमें त्राहि-त्राहि मच गयी। मनुष्य कीड़े-मकोड़ोंकी तरह मरने लगे। एक दिन चातुर्मास प्रारम्भ होनेसे पूर्व सप्तर्षि आकाशमार्गसे मथुरा पधारे और नगरके समीप एक वटवृक्षके नीचे वर्षायोगका नियम लेकर विराजमान हो गये। ये सातों ऋषि प्रभापुरनरेश श्रीनन्दनके पुत्र थे जिन्होंने प्रीतिकर केवलीके निकट जाकर मुनिदीक्षा ग्रहण की और तपश्चरण द्वारा अनेक ऋद्धियाँ प्राप्त कर ली थीं। उनके ऋद्धि-प्रभावसे महामारीका प्रकोप शान्त हो गया। मथुराकी जनता सप्तर्षियोंके इस चामत्कारिक प्रभावसे उनकी भक्त बन गयी। शत्रुघ्न भी सप्तर्षियोंके दर्शन करनेके लिए अयोध्यासे मथुरा आये। उन्होंने सप्तर्षियोंकी पूजा की। सप्तर्षियोंके उपदेशसे शत्रुघ्नने और नगरवासियोंने नगरमें अनेक जिन-मन्दिर बनवाये और उनमें जिन-प्रतिमाएँ स्थापित करायीं। उन्होंने मन्दिरोंमें उन सप्तर्षियों-की भी प्रतिमाएँ विराजमान करवायीं।[1] सप्तर्षि जिस स्थानपर ठहरे थे, उस स्थानपर भी जिन-मन्दिरका निर्माण कराया। कालान्तरमें वह मन्दिर नष्ट हो गया और वहाँ टीला बन गया। वह स्थान सप्तर्षिटीला कहलाने लगा। युद्ध और महामारीके कारण नगरकी सुन्दरता नष्ट हो गयी थी। अतः शत्रुघ्नने नये नगरका निर्माण कराया। इस नगरके चारों ओर कोट और परिखा थी। यह नगर तीन कोसमें फैला हुआ था।

मथुरा नगरीसे सम्बन्धित कतिपय अन्य पौराणिक घटनाएँ भी महत्त्वपूर्ण हैं। नौवें नारायण श्रीकृष्णका जन्म यहीं हुआ। वे आगामी कालमें तीर्थंकर होंगे।

उत्तरपुराणमें एक रोचक घटनाका वर्णन है जिसके अनुसार भगवान् महावीर पहले एक भवमें विश्वनन्दी राजकुमार थे। वे राजगृहके राजा विश्वभूतिके पुत्र थे। उनके शरीरमें अतुल बल था। उन्होंने अपने चचेरे भाई विशाखनन्दके समक्ष मुक्कोंसे पाषाणका खम्भा तोड़ दिया था।

---

१. नगर्यां बहिरन्तश्च शत्रुघ्नः प्रतिमास्ततः।
अतिष्ठिपज्जिनेन्द्राणां प्रतिमारहितात्मनाम् ॥९२।८१
सप्तर्षिप्रतिमाश्चापि काष्ठासु चतसृष्वपि।
अस्थापयन्मनोज्ञाङ्गा सर्वेतिकृतवारणाः ॥९२।८२ पद्मपुराण।

एक बार मुनि अवस्थामें वे मथुरा पधारे।[1] तपके कारण उनका शरीर अत्यन्त कृश हो रहा था। एक गायका धक्का उन्हें लगा तो वे गिर गये। विशाखनन्द वहाँ वेश्याकी एक छतपर बैठा देख रहा था। उसने विश्वनन्दी मुनिका मजाक उड़ाया। मुनि संयम न रख सके। क्रोधमें आकर उन्होंने बल प्राप्त करनेका निदान किया। मरकर वे महाशुक्र स्वर्ग गये और अनन्तर वे त्रिपृष्ठ नामक पहले नारायण हुए।

मथुराके राजा वरुणकी पत्नी रानी रेवतीकी कथा बहुत प्रसिद्ध है। रत्नकरण्डश्रावकाचार-के कर्ता स्वामी समन्तभद्रने उन्हें अमूढ़दृष्टि नामक चतुर्थ अंगके पालनेवाले व्यक्तियोंमें श्रेष्ठ बताया है। घटना इस प्रकार है—दक्षिणके मेघकूट नगरके नरेश चन्द्राभने आचार्य मुनिगुप्तसे क्षुल्लक दीक्षा ले ली। एक बार क्षुल्लक चन्द्राभने आचार्यसे उत्तर मथुराकी यात्रा करनेकी आज्ञा माँगी। आचार्यने आज्ञा दे दी। उन्होंने मथुरामें रानी रेवतीके लिए आशीर्वाद कहा, उण्डरुड़ मुनिके लिए प्रतिवन्दना कही किन्तु जनविश्रुत भव्यसेन मुनिके लिए प्रतिवन्दना नहीं कही। क्षुल्लक महाराज-को बड़ा आश्चर्य हुआ। उन्होंने मथुरा पहुँचकर तीनों व्यक्तियोंकी परीक्षा की। अपने विद्याबलसे ब्रह्मा, विष्णु, महादेव और तीर्थंकर महावीरका रूप बनाकर यथाक्रम मथुरामें प्रकट हुए। हजारों व्यक्ति उनके दर्शनोंके लिए गये। किन्तु अनेक व्यक्तियों द्वारा कहनेपर भी रानी रेवती नहीं गयी। उसे भगवान् जिनेन्द्रदेवकी वाणीपर पूर्ण श्रद्धा थी। 'भगवान् ऋषभदेवने जनताको जीवन-पालनके उपाय बताकर उसकी रक्षा की, अतः वे विष्णु हैं। समवसरणमें भगवान्‌के मुख चारों दिशाओंमें दिखाई पड़ते थे इस कारणसे तथा उन्होंने कृतयुगका प्रारम्भ किया, इस कारणसे वे ही ब्रह्मा कहलाते थे। भगवान् ऋषभदेव तो हो चुके, वे अब कहाँ आ सकते हैं। रुद्र ग्यारह होते हैं। वे भी हो चुके, यह बारहवाँ रुद्र कहाँसे आ गया। इसी प्रकार महावीर स्वामीका निर्वाण हुए बहुत समय बीत गया। निर्वाण प्राप्तिके पश्चात् पुनरागमन नहीं होता। अतः दैनंदिन घटित होनेवाली ये घटनाएँ किसी मायावीके चमत्कार हैं, यथार्थ नहीं।' यह विचार कर रेवती अपने सम्यग्दर्शनपर दृढ़ रही। क्षुल्लकजीने प्रकट होकर रेवतीकी बड़ी प्रशंसा की और आचार्य महाराजका आशीर्वाद कहा।

क्षुल्लकजीने उण्डरुड़ और भव्यसेन दोनों मुनियोंकी भी परीक्षा की और पाया कि उण्डरुड़ मुनि वस्तुतः भावलिंगी मुनि हैं और भव्यसेन द्रव्यलिंगी हैं। यही कारण था कि आचार्य महाराजने उण्डरुड़को प्रतिवन्दना कही थी और भव्यसेनको कुछ भी नहीं कहा।[2]

यह घटना भगवान् महावीरके बादमें घटित हुई। उस समय मथुराके स्त्री-पुरुषोंमें जैनधर्म-के प्रति गहरी आस्था थी।

इतिहास

मथुरा भारतकी अत्यन्त प्राचीन सांस्कृतिक नगरी है। प्राचीन भारतीय साहित्यमें इसके कई नाम मिलते हैं। जैसे—मधुपुरी, मधुपुर, मधुरा, मथुरा, महुरा, मधुला, मधूलिका, मधुपघ्ना। इसका मूल नाम मधुरा था। यह नाम हरिवंशी राजा हरिवाहनके तेजस्वी पुत्र और प्रतिअर्धचक्रेश्वर रावणके जामाता मधु राजाके नामपर पड़ा। वह इस नगरका प्रतापी नरेश था। महापुराण,

---

१. कुर्वन् घोरं तपो विश्वनन्दी देशान् परिभ्रमन्।
कृशीभूतः क्रमात् प्राप्य मथुरां स्वतनुस्थितेः। उत्तर पुराण ७४।११२

२. आचार्य नयसेन कृत धर्मामृत।

हरिवंशपुराण, आदिपुराण ग्रन्थोंके अनुसार कृतयुगके प्रारम्भमें भगवान् ऋषभदेवने ५२ जनपदोंकी स्थापना की थी। उनमें एक शूरसेन जनपद भी था। शत्रुघ्नके प्रतापी पुत्र शूरसेनके कारण यह अधिक प्रसिद्ध हो गया। इसके पश्चात् जनपदका नाम शूरसेन और उनके प्रमुख नगर या राजधानीका नाम मथुरा शताब्दियों तक चलता रहा। किन्तु ईसाकी प्रथम शताब्दीसे शूरसेन नाम अप्रचलित हो गया और अपनी प्रसिद्धिके कारण मथुरा एक नगरकी तरह एक जनपदके रूपमें भी प्रयुक्त होने लगा। यही बादमें ब्रज कहलाने लगा।

बीसवें तीर्थंकर भगवान् मुनि सुव्रतनाथके तीर्थमें और उन्हींके वंशमें सत्यवादी राजा वसु हुआ। एक बार झूठका समर्थन करनेके कारण उसे नरककी यातनाएँ भोगनी पड़ीं। वसुके दस पुत्र थे, जिनमें-से आठ क्रमशः राजगद्दीपर बैठे। किन्तु वे थोड़े ही दिनोंमें मृत्युको प्राप्त हो गये। इस विभीषिकासे आतंकित होकर सुवसु नागपुर जाकर रहने लगा और बृहद्ध्वज मथुरामें जा बसा। सुवसुके वंशमें आगे चलकर राजगृहमें जरासन्ध हुआ, जो नौवाँ प्रतिनारायण था। बृहद्ध्वजके सुबाहु, उसके दीर्घबाहु, उसके वज्रबाहु, उसके लब्धाभिमान आदि सन्तानें हुईं। बृहद्ध्वजके वंशमें आगे चलकर मिथिलापुरीमें इक्कीसवें तीर्थंकर नमिनाथ हुए।

हरिवंशमें यदु नामका एक प्रतापी राजा हुआ। उसीसे यादव वंश चला। यदुका पुत्र नरपति हुआ। नरपतिके दो पुत्र हुए—शूर और सुवीर। शूर कुशद्य देशमें शौरीपुर नगर बसाकर रहने लगा। सुवीरको मथुराका राज्य मिला। शूरसे अन्धकवृष्णि आदि अनेक वीर पुत्र उत्पन्न हुए। मथुरा नरेश सुवीरसे भोजकवृष्णि आदि हुए। अन्धकवृष्णिकी रानी सुभद्रासे दस पुत्र, दो पुत्रियाँ उत्पन्न हुईं—समुद्रविजय, अक्षोभ्य, स्तिमितसागर, हिमवान्, विजय, अचल, धारण, पूरण, अभिचन्द्र और वसुदेव। कुन्ती और मद्री दो पुत्रियाँ थीं। समुद्रविजयके पुत्र बाईसवें तीर्थंकर भगवान् नेमिनाथ हुए। शौर वसुदेवके नौवें नारायण श्रीकृष्ण और नौवें बलभद्र बलराम उत्पन्न हुए। कुन्ती और मद्री हस्तिनापुरके राजा पाण्डुके साथ ब्याही गयीं, जिनसे पाँच पाण्डव उत्पन्न हुए।[1]

मथुराके राजा भोजकवृष्णिकी रानी पद्मावतीसे उग्रसेन, महासेन तथा देवसेन नामक तीन पुत्र उत्पन्न हुए। उग्रसेनके कंस नामक पुत्र और देवकी एवं राजमती नामकी पुत्रियाँ थीं। कंस जब गर्भमें था, तभीसे वह उग्र प्रकृतिका था। उसकी उग्रतासे भयभीत होकर माता-पिताने उसे कांसकी मंजूषामें बन्द करके तथा साथमें उसके नामकी मुद्रिका और पत्र रखकर यमुनामें बहा दिया। उस मंजूषाको कौशाम्बीमें मंजोदरी नामक मदिरा बनाने वाली एक स्त्रीने नदीसे निकाल लिया। वह बालकका लालन-पालन करने लगी। कंस ज्यों-ज्यों बड़ा होता गया, उसके उपद्रव बढ़ते गये। अतः मंजोदरीने उसे घरसे निकाल दिया।

वह घूमते-फिरते शौरीपुर आया। वहाँ कुमार वसुदेव कुछ शिष्योंको शस्त्र-संचालनका शिक्षण देते थे। कंस भी उनसे शस्त्र-विद्या सीखने लगा। एक दिन राजगृहके सम्राट् जरासन्धने घोषणा की—'सिंहपुर नरेश सिंहरथ बड़ा उद्दण्ड है। जो मनुष्य उसे जीवित पकड़कर मेरे समक्ष उपस्थित करेगा, उसे राजकीय सम्मानके साथ अपनी सुन्दरी पुत्री जीवद्यशा भी दूँगा।'

यह घोषणा सुनकर कुमार वसुदेव कंस आदि शिष्योंको लेकर राजगृह पहुँचे। वहाँसे विद्यानिर्मित सिंहोंके रथपर आरूढ़ होकर सिंहपुर पहुँचे। पताका कंसको थमायी और सिंहरथ नरेशसे युद्ध किया। अवसर मिलते ही कंसने गुरुकी आज्ञासे सिंहरथको बाँध लिया और राज-

---

१. हरिवंश पुराण सर्ग १८।

गृह पहुँचकर सम्राट् जरासन्धके समक्ष उसे उपस्थित कर दिया। सम्राट् अत्यन्त प्रसन्न हुआ। उसने वसुदेव और कंसका राजकीय सम्मान किया। सम्राट्ने कंसके वंशादिका परिचय पूछा तो उसने स्पष्ट कह दिया कि मैं मदिरा बनानेवाली एक स्त्रीका पुत्र हूँ। किन्तु सम्राट्को कंसके शौर्य, तेज आदिको देखकर विश्वास नहीं आया। उसने राज्याधिकारी भेजकर कौशाम्बीसे मंजोदरी को बुलवाया। मंजोदरीने सम्पूर्ण सत्य घटना सुना दी तथा प्रमाणस्वरूप मुद्रिका और पत्र भी उपस्थित कर दिया। सम्राट् जरासन्धने अपनी पुत्रीका विवाह कंसके साथ कर दिया।

कुछ समय पश्चात् सम्राट्के पूछनेपर कंसने मथुराका राज्य माँगा, सम्राट्ने अपनी स्वीकृति दे दी। तब कंस सेना सजाकर मथुरा जा पहुँचा। उस समय मथुराके ऊपर राजा उग्रसेन शासन कर रहे थे। कंसने अपने पिता उग्रसेनको युद्धमें पराजित करके बन्दी बना लिया और उनका अपमान करनेके उद्देश्यसे नगरके मुख्य द्वारके ऊपर उन्हें कैद कर दिया। इस प्रकार वह मथुराका राजा बन गया।

कंस अपने गुरु वसुदेवके प्रति अत्यन्त कृतज्ञ था। उन्हींकी बदौलत वह सम्राट् जरासन्ध-की पुत्री जीवद्यशा जैसे स्त्री-रत्नको प्राप्त कर सका। अतः कृतज्ञतास्वरूप उसने अपनी बहन देवकीका विवाह कुमार वसुदेवके साथ कर दिया। पश्चात् कंसके आग्रहसे वसुदेव और देवकी मथुरा-में ही रहने लगे। एक अवधिज्ञानी मुनिसे जब यह ज्ञात हुआ कि देवकीके गर्भसे उत्पन्न होनेवाला पुत्र ही कंस और जरासन्धका मारनेवाला होगा, तब उसने कुमार वसुदेवसे यह वचन ले लिया कि जब भी अवसर आवेगा, बहन देवकीकी प्रसूति मथुराके मेरे महलोंमें ही होगी। वसुदेवको इस बारेमें कुछ पता नहीं था। अतः उन्होंने वचन दे दिया। किन्तु बादमें जब ज्ञात हुआ तो उन्हें बड़ा दुःख हुआ।

देवकीके क्रमशः तीन युगल पुत्र उत्पन्न हुए। इन्द्रकी आज्ञासे सुनैगम देवने उत्पन्न होते ही उन पुत्रोंको लेकर सुभद्रिल नगरके सेठ सुदृष्टिकी स्त्री अलकाके यहाँ पहुँचा दिया और सद्यःजात मृत पुत्रोंको लाकर देवकीके पास सुला दिया। कंसने आकर उन मृत पुत्रोंको पैरोंसे पकड़कर शिलापर पछाड़ दिया। ये छहों पुत्र अलका सेठानीके यहाँ शुक्ल पक्षके चन्द्रमाकी भाँति बढ़ने लगे। उनके नाम थे—नृपदत्त, देवपाल, अनीकदत्त, अनीकपाल, शत्रुघ्न और जितशत्रु।

देवकीके सातवें पुत्र नारायण कृष्ण उत्पन्न हुए। वे सातवें माहमें उत्पन्न हुए थे। उस समय घनघोर वर्षा हो रही थी। उस अन्धकारमें बलदेव और वसुदेव नवजात शिशुको लेकर चल दिये। बरसातकी यमुना समुद्र बनी हुई थी। किन्तु नारायणके पुण्य प्रतापसे वे नदीसे पार हो गये। उन्होंने जाकर नन्द और यशोदाको शिशु सौंप दिया और यशोदाकी नवजात कन्याको ले आये। लाकर उन्होंने उसे देवकीके बगलमें सुला दिया। कंसको प्रसूतिका पता चला। उसने कन्याको मारा तो नहीं, सिर्फ दबाकर उसकी नाक चपटी कर दी।

नारायण श्रीकृष्णके हाथ-पैरोंमें गदा, खड्ग, चक्र, अंकुश, शंख और पद्मके चिह्न थे। वे महान् पुण्य लेकर उत्पन्न हुए थे। वे धीरे-धीरे नन्दके घरमें बढ़ने लगे। किसी दिन किसी निमित्त-ज्ञानीने कंसको बताया कि तेरा शत्रु कहीं आसपासमें बढ़ रहा है। यह सुनकर वह बड़ी चिन्तामें पड़ गया। जब उसे श्रीकृष्णके सम्बन्धमें विश्वास हो गया कि यही मेरा शत्रु है तो उसने उन्हें मारनेके अनेक उपाय किये, किन्तु वे सब व्यर्थ हो गये।

एक दिन कंसने कृष्ण सहित समस्त गोपोंको मल्लयुद्धके लिए आमन्त्रित किया। वसुदेवने आशंकित होकर शौरीपुरसे अपने भाइयोंको बुला लिया। अखाड़ेमें चाणूर और मुष्टिक मल्लोंको

श्रीकृष्ण और बलभद्रने देखते-देखते समाप्त कर दिया। जब कंस तलवार लेकर श्रीकृष्णको मारने दौड़ा तो श्रीकृष्णने उसे भी यमलोक पहुँचा दिया। उन्होंने राजा उग्रसेनको कारागारसे मुक्त करके उन्हें पुनः मथुराका शासन सौंप दिया।

जीवद्यशा अपने पतिकी मृत्यु होनेपर अपने पिता जरासन्धके पास पहुँची और रो-रोकर शोक-समाचार सुनाया। जरासन्ध पुत्रीके मुखसे इस दारुण समाचारको सुनते ही आगबबूला हो गया। उसने अपने पुत्र कालयवनको विशाल सेनाके साथ मथुरापर चढ़ाई करनेके लिए भेजा। किन्तु वह मथुराके मैदानोंमें पीठ दिखाकर लौटा। इस प्रकार उसने सत्रह बार यादवोंपर आक्रमण किया। अपने अन्तिम आक्रमणमें वह श्रीकृष्णके हाथों अतुल मालावर्त पर्वतपर मारा गया। उसके बाद जरासन्धने अपने भाई अपराजितको भेजा। उसकी मृत्यु भी श्रीकृष्णके हाथों हुई।

सम्राट् जरासन्धके क्रोधका पार नहीं रहा। वह स्वयं विशाल सेना लेकर यादवोंपर आक्रमण करने चल दिया। यादवोंको जब यह समाचार मिला तो उन्होंने मन्त्रणा की और निर्णय किया कि रणनीतिके तौरपर इस समय हमें यह नगर छोड़कर कहीं दूर चले जाना चाहिए। इस निर्णयके अनुसार मथुरा, शौरीपुर और वीर्यपुरके[1] रहनेवाले यदुवंशी चल दिये और पश्चिम दिशामें सागर तटपर द्वारावती नगरी बसाकर रहने लगे। वहाँका शासन-सूत्र नारायण श्रीकृष्णने सम्भाल लिया।

एक दिन सम्राट् जरासन्धके दरबारमें कुछ परदेशी व्यापारी पहुँचे। उन्होंने सम्राट्की सेवामें कुछ बहुमूल्य रत्न भेंट किये। उन अनर्घ्य रत्नोंको देखकर सम्राट्को बड़ा आश्चर्य हुआ। उसने व्यापारियोंसे पूछा—'इतने अमूल्य रत्न तुमने कहाँ प्राप्त किये?' व्यापारियोंने बताया—द्वारिकापुरीसे। उसके पश्चात् यादववंशियों, महाराज कृष्ण और द्वारिकाकी श्रीसमृद्धि और वैभवकी जो उन्होंने प्रशंसा की तो जरासन्ध विस्मयविमूढ़ हो सोचने लगा कि 'ओह! जिन शत्रुओंको मैं मृत समझ रहा था, वे तो अभी जीवित हैं और समुद्रके बीचमें कोट, नगर बनाकर सुखपूर्वक रह रहे हैं।' उसने सेनापतिको बुलाकर सेना सज्जित करनेका आदेश दे दिया तथा अपने सभी मित्र राजाओं, माण्डलिक राजाओं आदिको तुरन्त सेना सहित आनेका आदेश भेज दिया। जब सब तैयारियाँ हो गयीं तो विशाल वाहिनीको लेकर वह चल दिया।

उधर महाराज श्रीकृष्णको भी अपने चरों द्वारा तथा नारद द्वारा जरासन्धकी तैयारी और सेनाके कूच करनेके समाचार मिले। अतः उन्होंने भी अपने सभी मित्र राजाओंको निमन्त्रण भेज दिये। जब राजा लोग अपनी फौजोंको लेकर आ गये तो श्रीकृष्ण भी विशाल सेनाको लेकर चल पड़े।

दोनों पक्षकी सेनाओंका आमना-सामना कुरुक्षेत्रके विशाल मैदानमें हुआ। भीषण युद्ध हुआ। जरासन्धने श्रीकृष्णके ऊपर चक्रका प्रहार किया। किन्तु देवाधिष्ठित चक्र श्रीकृष्णकी प्रदक्षिणा देकर उनकी भुजापर आकर ठहर गया। तब श्रीकृष्णने चक्र घुमाकर जरासन्धके ऊपर फेंका और क्षणमात्रमें उसका सिर कटकर अलग जा पड़ा। जिसने आधे भरतक्षेत्रपर निर्बाध शासन किया, वह भूलुण्ठित हो गया। नारायणने पाञ्चजन्य शंख बजाया। नेमिनाथने शाक्र शंख, अर्जुनने देवदत्त शंख और सेनापति अनावृष्टिने अपना बलाहक नामक शंख फूँका। इस प्रकार यादवोंके पक्षमें युद्धका अन्त हुआ।

---

१. उत्तरपुराणके अनुसार मथुरा, शौरीपुर और हस्तिनापुर ये तीन स्थान यादवोंने छोड़े। अर्थात् उस समय मथुरा और शौरीपुरके समान हस्तिनापुरमें भी यादव लोग रहते थे। (उत्तरपुराण ७१।१२)

हरिवंशपुराणसे एक और रोचक तथ्यपर प्रकाश पड़ता है। एक बार देवर्षि नारद हस्तिनापुर पधारे। पाण्डवोंने उनका बड़ा स्वागत-सत्कार किया। वहाँसे निवृत्त होकर नारदजी द्रौपदीके महल में पहुँचे। उस समय द्रौपदी शृंगार करती हुई किसी विचारमें मग्न थी। असहिष्णु नारद कब आये और कब क्रुद्ध होकर वहाँसे चले गये, इसका उसे कुछ पता ही नहीं चला। नारदने इसे अपना अपमान समझा। उन्होंने इस अपमानका बदला लेनेका निश्चय किया। वे वहाँसे आकाशमार्ग द्वारा पूर्वधातकीखण्डके भरतमें स्थित अंग देशकी अमरकंकापुरी नगरीमें पहुँचे। वहाँके राजा पद्मनाभने उनका बड़ा सत्कार किया। अवसर पाकर नारदजीने द्रौपदीके रूप-लालित्य-और अनिद्य सौन्दर्यका ऐसा वर्णन किया कि पद्मनाभ द्रौपदीके प्रति अनुरक्त हो उठा। नारदजी द्रौपदीके द्वीप, क्षेत्र, नगर और भवनका पता बताकर वहाँसे चल दिये।

राजा पद्मनाभने अत्यन्त उत्कण्ठासे संगम नामक देवकी साधना की और उसके द्वारा द्रौपदीको रात्रिमें पलंग समेत उठवाकर अपने महलोंमें मँगा लिया। प्रातःकाल जागनेपर द्रौपदी विस्मयाच्छन्न भावसे इधर-उधर देख रही थी, तभी पद्मनाभ आया और उसने प्रणय-निवेदन करते हुए सारी घटना बता दी। सती द्रौपदीको परिस्थिति समझते देर न लगी। उसने पद्मनाभको बुरी तरह फटकारा। सतीके तेजपूरित बचन सुनकर कामविह्वल पद्मनाभ सिटपिटा गया।

उधर हस्तिनापुरमें प्रातःकाल होनेपर पता चला कि महारानी द्रौपदी पलंग सहित गायब हैं। पाँचों पाण्डवोंने मिलकर परामर्श किया। चारों ओर पता लगाने सैनिक भेजे गये। नारायण श्रीकृष्णको बुलानेके लिए चर भेजा गया। श्रीकृष्ण समाचार सुनते ही आये। किन्तु अभी तक द्रौपदीका कहीं पता नहीं चला था। इतनेमें नारदजी आ गये। श्रीकृष्णके पूछनेपर उन्होंने पूरा पता बता दिया। तब विचार-विमर्शके पश्चात् पाँचों पाण्डव और श्रीकृष्ण धातकीखण्डके लिए चल दिये। समुद्रतटपर पहुँचनेपर नारायणने समुद्रके अधिष्ठाता देवकी आराधना की और उसकी सहायतासे सब लोगोंने समुद्र पार किया और अमरकंकापुरी जा पहुँचे। पद्मनाभकी सेनाओंसे इन छह महारथियोंका युद्ध हुआ। सेना हार गयी। भयके मारे पद्मनाभ द्रौपदीकी शरणमें जा पहुँचा और प्राण-दानकी भिक्षा माँगी। द्रौपदीने अभय दान दिया। तब पद्मनाभने द्रौपदीको आदरसहित पाण्डवोंके पास पहुँचा दिया। सब लोग आनन्दपूर्वक समुद्रमार्गसे वापस लौटे। जब तटपर पहुँच गये, तब भीमने श्रीकृष्णके साथ मजाक किया। उससे श्रीकृष्ण इतने कुपित हुए कि उन्होंने पाण्डवोंको हस्तिनापुरसे निकल जानेका आदेश दे दिया। हस्तिनापुरकी गद्दीपर अभिमन्युके पुत्रका अभिषेक कर दिया। पाण्डव अपने अनुकूल जनोंके साथ दक्षिण दिशाकी ओर चले गये। वहाँ उन्होंने एक नगरी बसायी, जिसका नाम उन्होंने मथुरा रखा।[1]

यह मथुरा दक्षिण मथुरा कहलाती थी। बादमें उसका नाम मथुरा रह गया।

मथुराके एक और यदुवंशी राजासे सम्बद्ध घटनाका उल्लेख मिलता है। उस राजाका नाम साकार (या सान्तार) था। उसकी रानीका नाम श्रियला था। उसके जिनदत्त नामक एक पुत्र था। एक बार राजा एक भील कन्यापर मोहित हो गया। उसके षड्यन्त्रसे राजा अपने पुत्रको मारनेको तैयार हो गया। तब जिनदत्त छिपकर दक्षिणकी ओर चला गया और हुम्मचमें एक

१. प्रगत्य दाक्षिण्यभृता सुदक्षिणां, जनेन काष्ठां मथुरां न्यवेशयन् ॥ हरिवंश पुराण ५४।७३

नये यादव राज्यकी स्थापना की।[1] इसीके वंशज वीर पाण्ड्यने वि. सं. १४८२ में कारकलमें बाहुबलीकी ४१॥ फुट ऊँची प्रतिमा बनवायी।

ईसा पूर्व प्रथम शताब्दीमें कलिंगमें सम्राट् खारवेल हुआ। उस समय मगधपर शुंगवंशी बृहस्पति मित्रका शासन था। इन्हीं दिनों भारतपर ग्रीक लोगोंके आक्रमण पुनः प्रारम्भ हो गये। दुर्दान्त यवनराज देमित्रियस (Demetrius) पंजाबको रौंदता मगधकी ओर बढ़ता हुआ मथुरा आ पहुँचा। सम्राट् खारवेल भी कलिंगसे मगधकी ओर बढ़ रहे थे। तीन सौ वर्ष पहले नन्दवंशी महापद्मनन्द कलिंग-विजयके समय कलिंगवासियोंके आराध्य 'कलिंग[2] जिन'की रत्नप्रतिमा ले आया था। खारवेल उस प्रतिमाको वापस लेना चाहते थे। वे राजगृहके निकट पहुँच गये थे। तभी उन्होंने विदेशी आक्रान्ता देमित्रियस द्वारा मथुरा-विजयकी बात सुनी। मगधसे उनकी घरू लड़ाई थी, उससे तो कभी भी निपटा जा सकता था। किन्तु विदेशी आक्रान्ता तो सम्पूर्ण राष्ट्रका शत्रु था। अतः वे मगधको छोड़ राष्ट्रभक्तिसे प्रेरित होकर मथुराकी ओर बढ़े। उनके शौर्य-पराक्रमकी कथाएँ सुनकर ही देमित्रियस मथुरा छोड़ अपने देश लौट गया।

यद्यपि मथुरापर अनेक राजवंशोंने शासन किया, किन्तु लगता है, यादवोंके पश्चात् शक और कुषाणोंने उसे राजधानी होनेका गौरव प्रदान किया। इस कालमें जैन मूर्तिकला, स्थापत्य और वास्तुकलाकी बड़ी उन्नति हुई। अनेक मूर्तियों, स्तूपों, आयागपट्टों आदिका निर्माण हुआ।

पुरातत्त्व

जैन साहित्य में कृत्रिम ही नहीं, अकृत्रिम चैत्यालयों और चैत्यों (मूर्तियों) का विस्तृत वर्णन मिलता है। इस कल्पके तृतीयकालमें, सर्वप्रथम इन्द्रने अयोध्या नगरीकी रचना की थी और नगरीके निर्माणसे भी पूर्व उसने पाँच मन्दिरोंका निर्माण कराया था—चारों कोनोंपर चार और एक मध्यमें। मानव जातिमें सर्वप्रथम भगवान् ऋषभदेवके ज्येष्ठ पुत्र, प्रथम चक्रवर्ती सम्राट् भरतने अयोध्या, कैलास आदिमें जैन मन्दिरों और मूर्तियोंका निर्माण कराया था। स्तूपों, आयागपट्टों, धर्मचक्रों, सिंहस्तम्भों, स्वस्तिक और प्रतीक चिह्नों आदिका निर्माण भी इसी कालमें प्रारम्भ हो गया था। आदि तीर्थंकर भगवान् ऋषभदेवके समवसरणमें ये सब चीजें बनी हुई थीं। अन्य तीर्थंकरोंके समवसरणोंमें भी इनकी रचना अनिवार्य मानी गयी है। इसका अर्थ यह है कि जैन धर्ममें मूर्ति, मन्दिर, स्तूप आदिके प्रचलनका इतिहास उतना ही पुराना है, जितना मानव-सभ्यताका इतिहास।

---

१. मद्रास व मैसूर प्रान्तके प्राचीन जैन स्मारक, पृ. २९५।
ब्रजका सांस्कृतिक इतिहास, पृ. ३३२।

२. 'कलिंग जिन' की यह प्रतिमा आजकल जगन्नाथ पुरीके मन्दिरमें विराजमान है। इस मन्दिरमें अन्य वैष्णव मन्दिरोंकी अपेक्षा कई बातें बड़ी अद्भुत हैं। वैष्णव मन्दिरोंमें एकादशीको प्रसाद नहीं बाँटा जाता किन्तु यहाँ बाँटा जाता है। मन्दिरके द्वारपर दि. जैन प्रतिमा है। १२ वर्ष बाद यहाँ विग्रह बदला जाता है। जब विग्रहमें भगवान् स्थापित किये जाते हैं, तब पण्डाकी आँखोंपर पट्टी रहती है। तब वह लकड़ीके खोलमें भगवान्को रखता है।

बौद्धधर्ममें महात्मा बुद्धकी मूर्तियाँ कुषाणकालमें बननी प्रारम्भ हुईं। इससे पहले उनका पूजन विविध चिह्नों—जिनमें भिक्षापात्र, वज्रासन, उष्णीष्, त्रिरत्न, स्तूप, बोधिवृक्षके रूपमें होता था। कुषाण-कालमें बुद्धकी मानुषी प्रतिमाका निर्माण होने लगा। वैदिक धर्ममें पहले प्रकृतिके विविध तत्त्वोंकी उपासनाका प्रचलन था। कुषाण कालमें ही विष्णु, दुर्गा, शिव, सूर्य आदि देव-देवियोंकी मूर्तियाँ बनने लगीं। मथुरामें हिन्दुओंके सबसे प्राचीन जिस मन्दिरका उल्लेख मिला है, वह राजा शोडाश (शासनकाल ई. पू. ८० से ई. पू. ५७) के राज्यकालमें निर्मित हुआ। एक सिरदलपर उत्कीर्ण शिलालेखसे ऐसा ज्ञात हुआ है। शक-कुषाण काल (लगभग ई. पू. १०० से ई. सन् २०० तक) में मथुरामें तीनों धर्मोंकी मूर्तियाँ और मन्दिर विपुल परिमाणमें निर्मित हुए। उनकी सही संख्या तो ज्ञात नहीं की जा सकी, किन्तु खुदाईके द्वारा मथुराके विभिन्न स्थानोंसे जो पुरातत्त्व सामग्री उपलब्ध हुई है, वह महत्त्व और संख्याकी दृष्टिसे अन्य स्थानों—जहाँ पिछले १०० वर्षोंमें खुदाई हुई है, की अपेक्षा बहुत अधिक है। सबसे अधिक सामग्री कंकाली टीलासे प्राप्त हुई है। यह आगरा-गोवर्धन सड़कके एक कोनेमें मथुराके दक्षिण-पश्चिमी किनारेपर है। यह सात टीलोंका समूह है। यहाँ कंकाली देवीका एक छोटा-सा मन्दिर है जो विशेष प्राचीन नहीं है। उसके कारण यह कंकाली टीला कहलाने लगा है। वैसे इन टीलोंसे चौरासी मन्दिर और उसके आसपास टीलोंकी लम्बी शृंखला चली गयी है। कंकाली टीलेसे जैन पुरातत्त्व की जो सामग्री मिली है, उसमें अनेक स्तूप, मूर्तियाँ, सर्वतोभद्र प्रतिमाएँ, शिलालेख, आयागपट्ट, धर्मचक्र, तोरण, स्तम्भ, वेदिका स्तम्भ तथा अन्य बहुमूल्य कलाकृतियाँ हैं। सन् १८८८ से १८९१ तककी खुदाईमें केवल इस टीलेसे ही ७३७ कलाकृतियाँ मिली थीं। ४७ फुट व्यासका ईंटोंका एक स्तूप तथा दो प्राचीन मन्दिरोंके अवशेष भी मिले थे। यहाँ जो पुरातन अवशेष प्राप्त हुए वे प्रायः सभी जैन हैं। अभिलेखों और प्राचीन साहित्यसे स्पष्ट ज्ञात होता है कि ईसाके कई सौ वर्ष पूर्वसे ग्यारहवीं शताब्दी तक यह जैनोंका केन्द्र रहा था। इसके अतिरिक्त सप्तर्षि टीला, कृष्ण जन्मभूमि आदिसे भी कुछ जैन मूर्तियाँ मिली थीं। यह सम्पूर्ण सामग्री मथुरा, लखनऊ, कलकत्ता, लन्दन आदिके म्यूजियमोंमें सुरक्षित है। पुरातत्त्व-वेत्ताओंके मतानुसार यह सामग्री ईसा पूर्व चौथी शताब्दीसे ईसाकी बारहवीं शताब्दी तककी है।

जो पुरातत्त्व सामग्री प्राप्त हुई है, उसमें ईसाकी दूसरी शताब्दीकी भगवान् मुनिसुव्रतनाथकी एक प्रतिमा भी है। उसके सिंहासनपर एक महत्त्वपूर्ण लेख है, जो इस प्रकार है—

पंक्ति १–सं. ७९ व्र ४ दि. २० एतस्यां पूर्व्वायां
कोट्टिये गणो वैरायां शाखायां
पंक्ति २–को अथ वृधहस्ति अरहतो नन्दि (आ) वर्तस
प्रतिमं निर्वर्तयति
पंक्ति ३–भार्य्यये श्राविकाये (दिनाये) दानं प्रतिमा वोद्वे
थूपे देवनिर्मित प्र........

अर्थात् वर्ष ७९ की वर्षा ऋतुके चतुर्थ मासके बीसवें दिन कोट्टिय गणकी वैर शाखाके आचार्य वृद्धहस्तिने अर्हत् नन्द्यावर्तकी प्रतिमाका निर्माण कराया और उन्हींके आदेशसे भार्या श्राविका दिना द्वारा यह प्रतिमा देवनिर्मित बौद्धस्तूपमें दान स्वरूप प्रतिष्ठापित हुई।

कुछ विद्वान् नन्द्यावर्तके स्थानपर मुनिसुव्रतस पढ़ते हैं जो अधिक संगत लगता है।

—जैन शिलालेख संग्रह भाग २, पृ. ४२

इसमें मूर्ति-प्रतिष्ठापनाके स्थानके बारेमें लिखा है—'थूपे देवनिर्मिते'। यह स्तूप बौद्ध स्तूप कहलाता था। यह इतना सुन्दर था कि लोग यह कल्पना तक नहीं कर सकते थे कि यह मनुष्यकी कृति हो सकती है। यह लेख निश्चित रूपसे कुषाण कालका है। उस काल अर्थात् दूसरी शताब्दी तक लोग स्तूपके निर्माताका नाम भी भूल चुके थे तथा उस स्तूपकी अनिन्द्य कलाको देखकर यह विश्वास करने लगे थे कि ऐसी कलाकृतिका निर्माण किसी पुरुष द्वारा न होकर देवों द्वारा ही सम्भव हो सकता है। पुरातत्त्वविद् विन्सेण्ट स्मिथका भी विश्वास है कि यह स्तूप निश्चित रूपसे भारतमें ज्ञात स्तूपोंमें सबसे प्राचीन है।

इस स्तूपका पुरातात्त्विक महत्त्व असाधारण है। यह तो अभी तक निर्णय नहीं हो पाया कि कंकाली टीलेकी खुदाईके समय फ्यूररको ईंटोंका जो प्राचीन स्तूप मिला था, क्या वह वही स्तूप है, जिसकी ओर उपर्युक्त मूर्ति-लेख संकेत करता है। दूसरा प्रश्न निर्णयके लिए यह भी रह जाता है कि जिस स्तूपको देवनिर्मित कहा गया है, वह कितना प्राचीन है।

इस स्तूपके इतिहास और काल-निर्णयके लिए जैन साहित्य हमें समुचित सहायता प्रदान करता है। आचार्य जिनप्रभसूरि (४१वीं शताब्दी) ने 'विविध तीर्थकल्प' नामक ग्रन्थमें 'मथुरा कल्प' लिखा है। उसमें उन्होंने लिखा है—

सातवें तीर्थंकर सुपार्श्वनाथके तीर्थमें धर्मरुचि और धर्मघोष नामक दो मुनि थे। वे एक बार विहार करते हुए मथुरा पधारे। तब मथुरा बारह योजन लम्बी और नौ योजन चौड़ी थी। वह जमुनातटपर स्थित थी और प्राकारसे परिवेष्टित थी। वे मुनि भूतरमण उपवनमें पहुँचे और चातुर्मास योग धारण कर लिया। उनकी कठोर तपस्यासे प्रभावित होकर उस वनकी अधिष्ठात्री देवी कुबेरा उनके चरणोंमें आकर बोली—'भगवन्, आपसे मैं प्रसन्न हूँ। आप कोई वरदान माँग लीजिए।' साधु बोले—'देवी! हम तो निर्ग्रन्थ मुनि हैं, हमें क्या चाहिए।' तब देवीने बड़ी भक्तिसे रातमें सोने और रत्नोंसे मण्डित, तोरणमालासे अलंकृत, शिखरपर तीन छत्रोंसे सुशोभित एक स्तूपका निर्माण किया। उसकी चारों दिशाओंमें पंचवर्ण रत्नोंकी मूर्तियाँ विराजमान कीं। उसमें मूलनायक प्रतिमा श्री सुपार्श्वनाथ स्वामीकी थी।

दूसरे दिन लोग उस अद्भुत स्तूपको देखकर आश्चर्य करने लगे। उन मुनियों और चतुर्विध संघको बड़ा आनन्द हुआ। वे मुनि यथासमय वहींसे कर्मनष्ट करके सिद्ध परमात्मा बने। तबसे यह सिद्धक्षेत्र कहलाने लगा।

भगवान् पार्श्वनाथ—तेईसवें तीर्थंकरके कालमें मथुराका राजा बड़ा लोभी था। उसने जब इस रत्न-स्वर्णमय स्तूपको देखा तो उसने आदेश दिया कि स्तूपको तोड़ कर इसका स्वर्ण और रत्न राजकोषमें जमा कर दो। सिपाही कुल्हाड़ा चलाने लगे। कुल्हाड़ा स्तूपके ऊपर चलता और घाव राजा और सिपाहियोंके होते। वे त्रस्त हो गये। देवताने क्रुद्ध होकर कहा—'पापियो! जैसा राजा पापी है, वैसे ही तुम भी पापी हो। जो जिनेन्द्र भगवान्‌की पूजा करेगा, उसका घर बचेगा, शेष घर नष्ट हो जायेंगे। यहाँका जो राजा जिन-प्रतिमाकी प्रतिष्ठा करायेगा, केवल वही बचेगा।' देवताके वचन सुनकर राजा-प्रजा सबने वैसा ही किया।

एक बार पार्श्वनाथ भगवान्‌का समवसरण यहाँ आया, उनका उपदेश हुआ। जब वे अन्यत्र विहार कर गये, तब देवताने कहा—'भगवान्‌ने कहा है कि दुषमाकाल आने वाला है। उसमें राजा और प्रजा लोभग्रस्त हो जायेंगे। अतः अब इस स्तूपको ढँक देना उचित रहेगा। तब उसे ईंटोंसे ढँक दिया। मुख्य स्तूपके बाहर एक पाषाण मन्दिर भी बनवाया गया।

भगवान् महावीरके निर्वाण-गमनके १३०० वर्ष बाद बप्पभट्ट सूरि हुए। उन्होंने ८वीं शताब्दीमें उसका जीर्णोद्धार कराया। कूप, कोट बनवाये। ईंटें खिसक रही थीं, उनको हटाकर स्तूपको पत्थरोंसे वेष्टित कर दिया।

स्तूपके सम्बन्धमें आचार्य जिनप्रभ सूरिने जो कुछ भी लिखा है, वह सब स्वयं अपनी आँखों-से प्रत्यक्ष देखकर या अनुश्रुतियोंके आधारपर लिखा है। इससे यह सिद्ध हो जाता है कि मथुरामें एक प्राचीन स्तूप आचार्य महाराजके काल तक भी विद्यमान था। इसके पूर्व इस स्तूपकी चर्चा आचार्य सोमदेव सूरिने 'यशस्तिलक चम्पू' में की है। इनके पौने तीन सौ वर्षके पश्चात् होनेवाले कवि राजमल्ल द्वारा रचित 'जम्बूस्वामी चरित्र'से यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि राजमल्ल सिद्धक्षेत्र-की वन्दनाके लिए साहू टोडरके साथ मथुरा गये थे। साहू टोडर कोल (अलीगढ़) जिलेके रहने-वाले थे और टकसालके काममें दक्ष थे। जब वे मथुरा पहुँचे तो उन्होंने देखा कि बीचमें जम्बू-स्वामीका स्तूप (निःसही स्थान) बना हुआ है। उनके चरणोंमें विद्युच्चर मुनिका स्तूप था। आसपासमें अन्य मुनियोंके स्तूप बने हुए थे। इन मुनियोंके स्तूप कहीं पाँच, कहीं आठ, कहीं दस और कहीं बीस इस तरह बने हुए थे।

तत्रापश्यत्स धर्मात्मा निःसहीस्थानमुत्तमम्।
अन्त्यकेवलिनो जम्बूस्वामिनो मध्यमादिमम् ॥८१॥
ततो विद्युच्चरो नाम्ना मुनिः स्यात्तदनुग्रहात्।
अतस्तस्यैव पादान्ते स्थापितः पूर्वसूरिभिः ॥८२॥
क्वचित्पञ्च क्वचिच्चाष्टौ क्वचिद्दश ततः परम्।
क्वचिद् विंशतिरेव स्यात् स्तूपानां च यथायथम् ॥८७॥

—कथामुखवर्णन, जम्बूस्वामी चरित्र

स्तूपोंकी जीर्णशीर्ण दशा देखकर उनके मनमें उनके उद्धारकी भावना आयी। उन्होंने विपुल व्यय करके ५०१ स्तूपोंका एक समूह और १३ स्तूपोंका दूसरा समूह—इस तरह ५१४ स्तूपोंका उद्धार किया। इन स्तूपोंके पास ही १२ द्वारपालों आदिकी भी स्थापना करायी। यह कार्य वि. सं. १६३० ज्येष्ठ शुक्ला १२ बुधवारको समाप्त हुआ।

इस विवरणसे यह स्पष्ट हो जाता है कि १६वीं शताब्दीके अन्त और १७वीं शताब्दीके प्रथम पादमें मथुरामें ५१४ स्तूप मौजूद थे और उनका जीर्णोद्धार हुआ था। कंकाली टीलेकी खुदाईमें एक स्तूप और दो जिन-मन्दिरोंके अवशेष प्राप्त हुए तथा सैकड़ों जैन मूर्तियाँ मिली हैं। इससे यह प्रतीत होता है कि प्राचीन कालमें यह स्थान तथा इसके आसपास चौरासी क्षेत्र तकका इलाका जैनधर्मका केन्द्र था। सम्भवतः अति प्राचीन कालमें यहाँ वन था। जम्बू स्वामीका निर्वाण और विद्युच्चर आदि ५०० ~~मुनियोंका स्वर्गवास~~ यहीं हुआ था। अतः शहरके निकट, निर्वाण भूमि-पर ही ये स्तूप या निषधिकाएँ बनायी गयी थीं। इन पाँच सौ एक मुनियोंके अतिरिक्त अन्य मुनियोंने भी यहाँसे निर्वाण या स्वर्ग प्राप्त किया। अतः उनके भी स्तूप बनाये गये। फिर सिद्धक्षेत्र होनेके कारण यहाँ मन्दिरोंका भी निर्माण हुआ। इस प्रकार यह स्थान सातवें तीर्थंकर सुपार्श्वनाथके कालसे ही – जब कि धर्मरुचि धर्मघोष मुनियोंका निर्वाण यहाँसे हुआ—जैन धर्मका केन्द्र बन गया था।

मथुरामें जैनोंका दूसरा केन्द्र सप्तर्षि टीला रहा है। श्रीमनु आदि सप्तर्षियोंने मथुरामें जिस स्थानपर चातुर्मास किया था, वह स्थान ही सप्तर्षि टीला कहलाने लगा। महाराज शत्रुघ्न और

प्रजाने सप्तर्षियोंके आदेशसे इस स्थानपर तथा अन्यत्र अनेक जैनमन्दिर बनवाये थे। सप्तर्षि टीलेमें-से उपलब्ध जैन मूर्तियोंको देखकर यह सहज ही विश्वास होता है कि यहाँ टीलेके स्थानपर प्राचीनकालमें कोई विशाल जैनमन्दिर रहा होगा। श्री सिद्धसेन सूरि (१२-१३वीं शताब्दी) द्वारा विरचित 'सकलतीर्थस्तोत्र' के अनुसार मथुरामें पार्श्वनाथ और नेमिनाथके स्तूप थे।[1] 'विविध तीर्थ-कल्प' के अनुसार यमुना तटपर अनन्तनाथ और नेमिनाथके मन्दिर थे।[2]

उपर्युक्त विवरणके अनुसार प्राचीनकालसे—विशेषतः ईसा पूर्व ८-९वीं शताब्दीसे अर्थात् तेईसवें तीर्थंकर पार्श्वनाथके कालसे—मथुरामें विभिन्न स्थानोंपर स्तूपों, मन्दिरों और मूर्तियोंका निर्माण बराबर होता रहा। शुंग, कुषाण और गुप्तकालमें निर्माण प्रचुरतासे हुआ। कुषाणकालमें जिनमूर्तियोंका निर्माण हुआ, उनमें कला-पक्षका विशेष निखार हुआ। शासन देवताओंकी मूर्तियाँ प्रायः गुप्तकाल की हैं। तीर्थंकर प्रतिमाओं और शासन देवताओंकी मूर्तियोंके अतिरिक्त जो कला-कृतियाँ उपलब्ध हुई हैं, वे प्रायः ईसवी सन्‌के प्रारम्भसे पाँचवीं शताब्दी तककी हैं। इस कालमें कलाका शृंगार पक्ष विशेष समुन्नत हुआ। नारी-मूर्तियों का अलंकरण कलाके विकसित रूपका प्रमाण है। अष्ट मंगलद्रव्य, अष्ट प्रातिहार्य, तीर्थंकरोंके चिह्नोंकी प्रतीकात्मक योजना, धर्मचक्र, स्वस्तिक, सिद्धार्थवृक्ष, चैत्यवृक्ष आदिने भी मथुरा शैलीके इस विकसित रूपमें अपना उचित स्थान ग्रहण किया है। यहाँके कई आयागपट्टों और शिलापट्टोंपर सुपर्णों, नागों, गन्धर्वों और नृत्यांगनाओंके नृत्य, गानके द्वारा कलाके ललित पक्षका भी प्रदर्शन मुखर हुआ है। आनन्दके प्रतीक धनपति कुबेरकी तोंद, ललनाओंके केश-प्रसाधन और केशविन्यासमें पाषाणपर जो सजीव और स्पष्ट रेखांकन हुआ है, उससे कला धन्य हो गयी है। नर-नारीके वस्त्रोंकी चुन्नटोंका ऐसा कौशल-पूर्ण तक्षण सम्भवतः अन्यत्र दुर्लभ है। यहाँ उपलब्ध जैन शिलालेखोंकी संख्या ११० है।

जैनोंकी पूजा-पद्धतिमें निम्नलिखित प्रतीकोंका स्थान महत्त्वपूर्ण रहा है—

धर्मचक्र, स्तूप, त्रिरत्न, चैत्यस्तम्भ, चैत्यवृक्ष, सिद्धार्थवृक्ष, पूर्णघट, श्रीवत्स, शरावसम्पुट, पुष्पपात्र, पुष्पपडलग, स्वस्तिक, मत्स्ययुग्म और भद्रासन।

इनके अतिरिक्त जैनअर्चाका एक और प्रतीक था आयागपट्ट। आयागपट्ट एक चौकोर शिलापट्ट होता था, जिसपर मध्यमें तीर्थंकर प्रतिमा बनी होती थी। उसके चारों ओर स्वस्तिक, नन्द्यावर्त, श्रीवत्स, भद्रासन, वर्धमानक्य, मंगलघट, दर्पण और मत्स्य-युगल बने रहते थे। ये 'अष्टमंगल द्रव्य' कहे जाते हैं। एक आयागपट्टपर आठ दिशाओंमें आठ देवियोंको नृत्य-मुद्रामें अंकित किया गया है। अन्य आयागपट्टोंपर वेदिका सहित तोरण और अलंकरण अंकित हैं। इनमें-से कुछ आयाग-पट्टोंके नीचे ब्राह्मी लिपिमें लेख भी अंकित हैं। इनसे पता चलता है कि ये पूजाके उद्देश्यसे स्थापित किये जाते थे।

मथुरामें कुषाणकालके कई आयागपट्ट मिले हैं। इनमें-से एक समूचा आयागपट्ट तथा दूसरा खण्डित आयागपट्ट, जिसपर तीर्थंकर प्रतिमा बनी हुई है, विशेष महत्त्वपूर्ण है। समूचे आयागपट्टपर एक जैनस्तूप, उसका तोरणद्वार, सोपान मार्ग और दो चैत्यस्तम्भ बने हैं जिनपर क्रमशः धर्मचक्र और सिंहकी आकृतियाँ बनी हुई हैं। सिंह तीर्थंकर महावीर स्वामीका चिह्न है।

---

१. सिरि पासनाह सहियं रम्मं, सिरिनिम्मियं महाथूनं।
　कलिकाल विसुतित्थं, महुरा नयरीउ वंदामि॥

२. 'विविध तीर्थकल्प' में चतुरशीतिमहातीर्थ नाम संग्रह कल्प।

एक आयागपट्टपर लेख अंकित है। उसके अनुसार 'लवणशोभिका नामक एक वेश्याकी लड़की वसुने यह आयागपट्ट दानमें दिया था। इसपर एक स्तूप तथा वेदिकाओं सहित तोरणद्वार बना हुआ है। यह आयागपट्ट ईसाकी पहली-दूसरी शताब्दीका अनुमान किया जाता है।

कंकाली टीलासे प्राप्त एक शिलापट्टपर संवत् ७२ का [2] ब्राह्मी लेख खुदा है। इसके अनुसार स्वामी महाक्षत्रप शोडास (ई. पू. ८०-५७) के राज्य-कालमें जैन मुनिकी शिष्या अमोहिनीने एक जैन आयागपट्टकी स्थापना की।

इसके अतिरिक्त गौतीपुत्रकी स्त्री कौशिक कुलोद्भूत शिवमित्रा, फल्गुयश नर्तककी पत्नी शिवयशा, मथुरा निवासी लवाड़की पत्नी, कौशिकी पुत्र सिंहनन्दिक, भद्रनन्दीकी पत्नी अचला, और त्रैवर्णिक नन्दी घोषने भी आयागपट्टोंकी स्थापना करायी थी।

कुषाणकालमें तीर्थंकर प्रतिमाओंका एक नवीन रूप विकसित हुआ। एक पाषाणके चारों ओर चार तीर्थंकर प्रतिमाएँ बनी रहती हैं। इन प्रतिमाओंको सर्वतोभद्र प्रतिमा कहा जाता है। यहाँपर ऐसी दो सर्वतोभद्र प्रतिमाएँ प्राप्त हुई हैं। ये दोनों ही कुषाणकाल की हैं। एक प्रतिमाके लेखके अनुसार मुनि जयभूतिकी प्रशिष्या वसुलाके कहनेपर वेणी नामक सेठकी प्रथम पत्नी कुमारमिताके द्वारा यह दान [3] की गयी थी। दूसरी प्रतिमामें सर्पफण-मण्डप है। वह प्रतिमा

---

१. १—नमो आरहतो वधमानस दण्दाये गणिका—
२—ये लेणशोभिकाये धितु शमणसाविकाये
३—नादाये गणिकाये वासये आरहता देविकुला
४—आयगसभा प्रपा शीलपटा पतिष्ठापितं निगमा—
५—ना अरहतायतने स (ह) मातरे भगिनिये धितरे पुत्रेण
६—सविन च परिजनेन अरहत पुजाये।

अर्थ—अर्हत् वर्धमानको नमस्कार हो। श्रमणोंकी उपासिका (श्राविका) गणिका नादा, गणिका दन्दाकी बेटी वासा, लेणशोभिकाने अरहन्तोंकी पूजाके लिए व्यापारियोंके अर्हत् मन्दिरमें अपनी माँ, अपनी बहन, अपनी पुत्री, अपने लड़केके साथ और अपने सारे परिजनोंके साथ मिलकर एक वेदी, एक पूजागृह, एक कुण्ड, और पाषाणासन बनवाये।

—जैनशिलालेख संग्रह, भाग २, पृ. १५

२. १. नम अरहतो वर्धमानस
२. स्व (!) मिस महक्षत्रपस शोडासस संवत्सरे ४० (?) २ हेमन्त मासे २ दिवसे ९ हरितिपुत्रस पालस भयाये समसाविकाये
३. कोछिये अमोहिनिये सहा पुत्रेहि पालघोषेन पोठ घोषेन धनघोषेन आयवती प्रतिथापिता प्राय-(भ)
४. आर्यवती अरहत पुजाये

—जैनशिलालेख संग्रह, भाग २, पृ. १२

अर्थात् अर्हत् वर्धमानको नमस्कार हो। स्वामी महाक्षत्रप शोडासके ४२ वें (?) वर्षकी शीत ऋतुके दूसरे महीनेके नौवें दिन हरिति (हरिती या हारिती माता) के पुत्र पालकी स्त्री तथा श्रमणोंकी श्राविका कोछि (कोत्सी) अमोहिनीके द्वारा अपने पुत्रों—पालघोष, पोठघोष और धनघोषके साथ आयवती (आर्यवती) की स्थापना की गयी।

३. (१) अ—........सं. १० ५ गृ ३ दि १ अस्या पूर्व्वं (।) य
ब—....हिकातो कुलातो अर्य्यजयभूति....

पार्श्वनाथ भगवान्की है। वह स्थिरा नामक महिलाके द्वारा दान[1] की गयी थी।

मथुरा म्यूजियममें एक शिलापट्टपर भगवान् ऋषभदेवकी प्रतिमा उत्कीर्ण है। इसपर ब्राह्मी लिपिका लेख अंकित है। लेखके अनुसार यह प्रतिमा कुषाण नरेश शाही वासुदेव (१३८-१७६ ई.) के राज्यके चौरासीवें वर्षमें एक मठमें विराजमान की गयी थी।

कुषाणकालकी तीर्थंकर प्रतिमाएँ दो ही आसनोंमें मिलती हैं—एक तो पद्मासन ध्यानस्थ प्रतिमाएँ और दूसरी जाँघसे हाथोंको सटाकर सीधी खड़ी प्रतिमाएँ। ये खड्गासन या कायोत्सर्ग मुद्रावाली प्रतिमाएँ कहलाती हैं। तीर्थंकरोंके मस्तक या तो मुण्डित हैं या छोटे-छोटे घुँघराले केशोंसे अलंकृत हैं। आँखें अर्धोन्मीलित हैं। कान कन्धों तक लटकनेवाले नहीं हैं। प्रतिमाओंकी हथेलियोंपर धर्मचक्र और पैरके तलुओंपर त्रिरत्न और धर्मचक्र बने रहते हैं। वक्षस्थलके बीचोंबीच श्रीवत्स चिह्न बना रहता है। कुछ प्रतिमाओंके हाथकी उँगलियोंके पोरपर भी श्रीवत्सादि मंगल चिह्न बने रहते हैं। इस कालमें प्रतिमाओंपर परिचायक लांछनोंका अभाव है। इस कालकी जितनी तीर्थंकर प्रतिमाएँ यहाँ उपलब्ध हुई हैं, वे सब दिगम्बर हैं। यहाँ तीन प्रतिमाएँ ऐसी भी मिली हैं जिनमें दिगम्बर साधु वस्त्र खण्ड हाथमें पकड़े हुए दिखाई पड़ते हैं। ये अर्धकालक सम्प्रदायके अनुयायी हैं। ये मूर्तियाँ आजकल लखनऊ संग्रहालयमें हैं।

यहाँ भगवान् नेमिनाथकी कई ऐसी मूर्तियाँ मिली हैं जिनमें भगवान् नेमिनाथके अगल-बगलमें नारायण श्रीकृष्ण और बलराम खड़े हैं। कृष्ण चतुर्भुज हैं। बलराम हाथमें चषक लिये हुए हैं, तथा मस्तक पर नागफण है। कृष्ण विष्णुके अवतार रूपमें तथा बलराम शेषनागके अवतारके

स—स्य शिशीनिनं अर्य्यसंगमिकये शिशीनि....

द—अर्य्यवसुलये (निर्वर्त) नं

(२) अ....लस्य धी (तु)....ि....धुवेणि

ब—श्रेष्ठि (स्य) धर्मपत्निये भट्द्रि (से) नस्य

स....(मातु) कुमारमितयो दनं भगवतो (प्र)....

द....मा सब्वतो भद्रिका

अर्थात् (सफलता हो) १५वें वर्षकी ग्रीष्म ऋतुके तीसरे महीने के पहले दिन भगवान् की एक सर्वतोभद्रिका प्रतिमाको कुमरमिता (कुमारमित्रा) ने (मेहिक) कुलके अर्य्यजयभूतिकी शिष्या अर्य्य संगमिकाकी शिष्या अर्य्य वसुलाके आदेशसे समर्पित की। कुमारमित्रा....लकी पुत्री....की वधू और श्रेष्ठी वेणीकी धर्मपत्नी और भट्टिसेनकी माँ थी।

१. अ—सिद्धको (ट्टि) यतो गणतो उचेन गरितो शखतो ब्रह्मादासि अतो कुलतो शिरिग्रिहतो संभोकतो अय्य जेष्ट हस्तिस्य शिष्यो

अ (र्य्यमि) (हि) लो।

ब—त्तस्य शिष्य (ो) अय्यक्षेर (को) वाचको तस्य निर्वतन वर (ण) हस्ति (स्य)

स—(च) देवयच धित जयदेवस्य वधु मोषिनिये वधु कुठस्य कसुथस्य

द—धम्रप (ति) ह स्थिरए दन शवदोभद्रिक सर्व सत्वनहितसुखये।

अर्थात् कोट्टियगण, उचेनगरी (उच्चनागरी) शाखा (और) ब्रह्म-दासिक कुल शिरिग्रह संभोगके अय्य ज्येष्ठहस्तिन्के शिष्य अर्य्यमिहिल (आर्य मिहिर) थे। उनके शिष्य वाचक अर्य्य क्षेरक थे। उनके कहनेसे वरणहस्ती और देवी दोनोंकी पुत्री, जयदेवकी बहू तथा मोषिनीकी बहू, कुठ कसुथकी धर्मपत्नी स्थिराके दानसे सर्वजीवोंके कल्याण और सुखके लिए सर्वतोभद्रिका प्रतिमा दी गयी।

रूपमें अंकित हैं। एक अन्य मूर्तिमें नेमिनाथके दोनों ओर बलराम और कृष्ण द्विभुजी बनाये गये हैं।

गुप्तकालकी प्रतिमाओंके सिर घुँघराले कुन्तलोंसे अलंकृत हैं। प्रभामण्डल विविध प्रकारके और अलंकृत मिलते हैं। प्रतिमाओंके पीठासनोंपर लांछन अंकित करनेकी प्रथा प्रारम्भ हो जाती है। इस कालकी जो प्रतिमाएँ मिलती हैं, उनमें एक प्रतिमाकी चरण-चौकीपर मीन युगल बना हुआ है। इससे ज्ञात होता है कि यह प्रतिमा अठारहवें तीर्थंकर अरनाथकी है। इसी प्रकार एक प्रतिमाके नीचे दो मृगोंके बीचमें धर्मचक्र अंकित है। यह प्रतिमा सोलहवें तीर्थंकर शान्तिनाथ भगवान् की है।

मथुरामें ऐसी भी तीर्थंकर प्रतिमाएँ मिली हैं, जिनकी कटिमें लंगोटका चिह्न है। किन्तु ऐसी प्रतिमाओंकी संख्या अत्यल्प है। दूसरी बात यह भी है कि ऐसी प्रतिमाएँ माथुरी वाचना[1] (वीर नि. सं. ८४० अर्थात् ई. सन् ३१४) के पश्चात्कालकी है। तीसरी बात यह है कि ऐसी प्रतिमाओंमें उन्मीलित नेत्र नहीं हैं।

यहाँ जैन देव और देवियों की मूर्तियाँ भी मिली हैं जो कुषाणकालकी हैं। इनमें एक है नैगमेश या हरिनैगमेशी। यह देव बच्चोंसे घिरा हुआ मिलता है। दूसरी देवीका नाम रेवती या षष्ठी है। इस देवीका मुख बकरेका होता है। इसका सम्बन्ध भी बच्चोंसे है। तीसरी देवी है सरस्वती। जैन सरस्वतीकी प्राचीनतम मूर्ति कंकाली टीलेसे निकली है। इस समय वह लखनऊ म्यूजियममें है। इसका एक हाथ अभयमुद्रामें उठा हुआ है। दूसरे हाथमें ग्रन्थ है। इनके अतिरिक्त अम्बिका, चक्रेश्वरी आदि देवियोंकी मूर्तियाँ भी प्राप्त हुई हैं।

यहाँ वेदिकाके बहुत खण्डित भाग मिले हैं। जैन स्तूपके चारों ओर तोरणसहित वेदिका बनानेकी प्रथा थी।

हिन्दू अनुश्रुतिके अनुसार मथुरा सप्त महापुरियोंमें मानी जाती है। नारायण श्रीकृष्णके जीवनके साथ मथुराका दीर्घकालीन सम्बन्ध रहा है। किन्तु यह आश्चर्यकी बात है कि कुषाण युगमें श्रीकृष्णकी कोई प्रतिमा उपलब्ध नहीं हुई। हाँ, इस कालकी विष्णुकी कुछ प्रतिमाएँ मिली हैं।

यहाँ उपलब्ध अभिलेखोंके अध्ययनसे एक विशेष बातपर प्रकाश पड़ता है कि मथुरामें आयागपट्ट, प्रतिमाएँ, शिलास्तम्भ आदि स्थापित करानेवालोंमें सभी वर्गके लोग सम्मिलित थे। उनमें उच्चवर्णके अतिरिक्त गणिका, नर्तकी, लुहार, सार्थवाह, गन्धी, पुजारी, सुनार, घाटी या नाविक आदि भी थे। ऐसा लगता है कि शक-कुषाणकालसे गुप्तकाल और उसके कुछ बाद तक मथुरामें जैनधर्म सर्वसाधारणका धर्म था।

---

१. माथुरी वाचना भगवान् महावीरके निर्वाणके ८४० वर्ष बाद श्रीस्कन्दिलाचार्यकी अध्यक्षतामें मथुरामें एक सभा हुई, जिसमें द्वादशांगका संकलन किया गया। यही माथुरी वाचना कहलाती है। किन्तु इस वाचनासे कुछ लोगोंको सन्तोष नहीं हुआ। तब उसी वर्ष वलभीमें श्रीनागार्जुनकी अध्यक्षतामें दूसरी वाचना हुई। इसमें भी श्वेताम्बर परम्परा और साहित्यकी तसवीर पूरी और साफ नहीं बन पायी। तब फिर इस वाचनाके १४० वर्ष बाद अर्थात् वीर नि. सं. ९८० में श्री देवर्द्धि गणी क्षमाश्रमणकी अध्यक्षतामें वलभीमें सभा हुई और वहाँ शास्त्रोंको अन्तिम रूप दिया गया। वे शास्त्र ही श्वेताम्बरोंको मान्य हुए।

धर्मायतनों और कलाका विनाश

पाँचवीं शताब्दीके अन्तिम दिनोंकी बात है। मथुरानगर उन दिनों अत्यन्त समृद्ध था। नगरमें जैन, हिन्दू और बौद्धोंके स्तूप, कलापूर्ण मन्दिर, भव्य मूर्तियाँ और संघाराम विद्यमान थे। श्रेष्ठियोंकी अनगिनत हर्म्य और ऊँची-ऊँची अट्टालिकाएँ थीं। हूणोंने वि. सं. ५८० के लगभग आकर उन कलायतनों और कलाका विध्वंस कर दिया। एक भी मन्दिर और मूर्ति साबुत नहीं बची। इमारतोंमें आग लगा दी। नगर बरबाद कर दिया। इस विध्वंस-लीला में कंकाली टीला, सप्तर्षि टीला और चौरासी (जम्बू टीला) के मन्दिर, मूर्ति और स्तूप नहीं बच पाये। सब नष्ट हो गये। सत्ता और धर्मके उन्मादका जो नग्न ताण्डव नृत्य उस समय मथुरामें हुआ, उसमें श्रद्धा और कलाके ये आगार नष्ट-भ्रष्ट हो गये। बड़े-बड़े गगनचुम्बी स्तूप और मन्दिर मलबेके टीले बन गये, अनेक मूर्तियाँ खण्डित हो गयीं। इन हूणोंका नेतृत्व सरदार मिहिरकुल कर रहा था।

इन हूणोंको सम्राट् स्कन्दगुप्तने भारतसे खदेड़ दिया और लगभग पाँच सौ वर्ष तक मथुरापर कोई बड़ा विदेशी आक्रमण नहीं हुआ। इस अन्तरालमें पुनः धर्मश्रद्धालुओंने वहाँ अनेक मन्दिरों, मूर्तियों और स्तूपोंका निर्माण कर लिया। किन्तु ग्यारहवीं शताब्दीके आरम्भमें भारतपर उत्तर-पश्चिम सीमाकी ओरसे आक्रमण प्रारम्भ हो गये। गजनीका सुलतान महमूद गजनवी सत्रह बार भारतपर चढ़कर आया। अपना नौवाँ आक्रमण सन् १०१७ में उसने मथुरापर किया। महमूदके मीर मुंशी अलउत्बी कृत 'तारीखे यामिनी' के अनुसार इस शहरमें सुलताननें निहायत उम्दा ढंगकी बनी हुई एक इमारत देखी, जिसे स्थानीय लोगोंने मनुष्योंकी रचना न बताकर देवताओंकी कृति बताया। शहरके बीचमें बने हुए एक सुन्दर मन्दिरके बारेमें खुद सुलताननें लिखा कि यदि कोई व्यक्ति इस प्रकारकी इमारत बनवाना चाहे तो उसे दस करोड़ दीनारसे कम नहीं खर्चने पड़ेंगे और उसके निर्माणमें दो सौ वर्ष लगेंगे[1]।

यह लूट और बरबादी लगातार बीस दिनों तक होती रही। लोगोंने जिस इमारतको देवताओंकी कृति बताया था, वह अवश्य ही वह स्तूप होगा, जो देवनिर्मित स्तूपके रूपमें प्रसिद्ध था। इस बरबादीकी पैशाचिक लीलामें शायद वह न बच पाया। मूर्तियाँ तोड़ डालीं, मन्दिरोंमें आग लगा दी, स्वर्ण-रत्न और चाँदीको सौ ऊँटोंपर लाद-लादकर गजनी भेज दिया।

इसके पश्चात् तो बरबादीका यह क्रम मुहम्मद गोरीसे लेकर लोदीवंश तक बराबर चलता रहा। इसमें भी सिकन्दर लोदी (सन् १४८८ से १५१६ तक) ने तो विध्वंस-लीलाका ऐसा आयोजन किया जिसमें तारीखे दाऊदीके लेखक अब्दुल्लाके अनुसार मथुरामें मन्दिर पूरी तरह नष्ट कर दिये गये। इन सब आक्रमणोंको मात देनेवालोंमें बादमें औरंगजेब और अहमदशाह अब्दाली हुए, जिन्होंने रहे-सहे, बचे हुए मन्दिरोंको विस्मार कर दिया।

इस बरबादीके बाद जैनोंका एक भी बड़ा मन्दिर नहीं बच पाया। इस विनाशकालमें भक्तोंने मूर्तियोंको बचानेके लिए कहीं कुओं या जमुना नदीमें डाल दिया, कहीं जमीन में गाड़ दिया। ऐसे समयमें भक्तोंने चौरासीमें जम्बू स्वामीके चरणोंको एक छतरीमें विराजमान कर दिया। किन्तु यह छतरी भी प्रकृतिका प्रकोप अधिक दिनों तक न सह सकी। वह छतरी टूट-फूट गयी और धीरे-धीरे चरण मिट्टीमें दब गये। उसके ऊपर बेर आदिकी झाड़ियाँ उग आयीं।

उस संकट कालमें सुरक्षाके लिए जिन मूर्तियोंको कुओंमें, नदीमें या जमीनमें छिपा दिया गया था, वे अब कभी-कभी मिल जाती हैं। मुसलमान बादशाहोंके बर्बर और धर्मान्धतापूर्ण

१. ब्रजका इतिहास—लेखक श्रीकृष्णदत्त वाजपेयी, पृ. १३१-३२।

आक्रमणोंके कारण जो असंख्य मूर्तियाँ और स्तूप मन्दिरोंके मलबेके नीचे दब गये और वहाँ टीले बन गये, उनकी खुदाईके फलस्वरूप कुछ प्राचीन कलावैभव भूगर्भसे प्राप्त हुआ है। ऐसे प्राचीन टीलोंकी संख्या कम नहीं है, जिनकी खुदाई नहीं हुई है। अकेले कंकाली क्षेत्रमें सात टीले हैं। उनमें-से केवल चार टीलोंकी ही खुदाई हो पायी है, जिसके फलस्वरूप हजारों कलाकृतियाँ उपलब्ध हुई हैं। यदि सभी टीलोंकी खुदाई योजनापूर्वक की जाये तो यहाँकी धरतीकी छातीके नीचेसे अब भी संस्कृति और कलाका विपुल भण्डार मिल सकता है।

किंवदन्ती

चौरासी नामक प्राचीन स्थानपर नवीन मन्दिर-निर्माणकी कथा अत्यन्त रोचक है। इस सम्बन्धमें एक बहुप्रचलित किंवदन्ती इस प्रकार है—

एक बार डीग (भरतपुर) के एक सज्जन हुण्डावाले सेठको रात्रिमें स्वप्न आया कि चौरासीमें अमुक स्थानपर जम्बूस्वामीके चरण जमीनमें गड़े हुए हैं, उसे तुम जाकर निकालो और वहाँ मन्दिर बनवाओ। प्रातःकाल उसने उठकर अन्य जैनबन्धुओंसे इस स्वप्नकी चर्चा की और वे सब लोग चलकर चौरासी पहुँचे। निर्दिष्ट स्थानको खोदा तो उन्हें जम्बूस्वामीके चरण मिले। सबने मिलकर आपसमें मन्दिरके लिए धन-संग्रह किया। किन्तु वह धन इतना न था जिससे मन्दिरका निर्माण हो सकता। तब वे मथुराके सेठ मनीराम टोंग्याके पास गये जो सेठ राधामोहन पारिखके मुनीम थे, और टोंग्याजीने पारिखजीके परामर्शसे एक विशाल दिगम्बर जैन मन्दिरका निर्माण कराया। उन्हीं दिनों ग्वालियर राज्यमें भगवान् अजितनाथकी एक मनोज्ञ श्वेतपाषाणकी पद्मासन प्रतिमा खुदाईमें निकली थी। यह समाचार टोंग्याजी तक भी पहुँचा। इन्होंने इस प्रतिमाको लानेके लिए पारिखजी द्वारा ग्वालियर सरकारसे आज्ञा प्राप्त कर ली। किन्तु प्रतिमा अधिक वजनदार थी। अतः टोंग्याजी को चिन्ता हुई कि इसे मथुरा कैसे पहुँचाया जाये। उन्हें उसी रातको स्वप्न हुआ कि यदि कोई धर्मात्मा व्यक्ति इस प्रतिमाको अकेले ही उठाकर बैलगाड़ीमें रखेगा तो यह प्रतिमा आसानीसे मथुरा पहुँच जायेगी। सुबह होते ही उन्होंने इस स्वप्नकी चर्चा अपने कुटुम्बीजनोंसे की। तुरत ही उनके पौत्र सेठ रघुनाथ दासकी भावना हुई। उन्होंने पवित्र वस्त्र पहनकर पहले तो भक्तिभाव पूर्वक भगवान् अजितनाथकी पूजा की। तत्पश्चात् उन्होंने णमोकार मन्त्र पढ़कर उस प्रतिमाको उठाया तो वह ऐसे उठ गयी, मानो वह फूलोंकी बनी हुई हो। उसे गाड़ीपर विराजमान करके चौरासी ले गये और दिगम्बर आम्नायके अनुसार धूम-धामके साथ उसकी प्रतिष्ठा करायी।

वार्षिक मेला

पहले यहाँ प्रतिवर्ष कार्तिक वदी १ से ८ तक वार्षिक मेला भरता था। किन्तु अब कुछ वर्षोंसे यह मेला चार दिनका होने लगा है। प्रारम्भ और अन्त के दिन यहाँ रथ निकलता है। पहले मेलेके अवसर पर आसपासके बहुतसे स्थानोंसे जैन लोग समोसरण लेकर आते थे। इसी अवसर-पर भारतवर्षीय दिगम्बर जैन महासभाका अधिवेशन भी हुआ करता था। समोसरण के लिए आसपासके सभी स्थानोंके प्रत्येक घरसे एक रुपया वार्षिक चन्दा (लाग) भी आता था। किन्तु व्यवस्था आदिकी कमी होनेके कारण मेले और चन्देका वह रूप अब नहीं रहा। समोसरणकी व्यवस्था मथुराकी दिगम्बर जैन समाज करती है। कुछ सदस्य बाहरके भी लिये जाते हैं। सेठ-घराना (सेठ मनीरामके वंशज) इसकी व्यवस्थामें बराबर रुचि लेता है।

वर्तमान स्थिति

यह मन्दिर लगभग २० फुट ऊँची चौकीपर स्थित है। यहाँ पहुँचने के लिए लगभग तीस सीढ़ियाँ चढ़ना पड़ता है। सीढ़ियाँ दोनों ओर हैं। सीढ़ियोंके बाद मण्डप है। अन्दर जानेपर तीन ओर विशाल बरामदे और बीचमें एक लम्बा-चौड़ा सहन है। दायीं ओरके बरामदे में क्षेत्रपाल विराजमान हैं। मन्दिरमें बड़े-बड़े और डबल पाषाण-स्तम्भोंका प्रयोग किया गया है। गर्भगृह काफी बड़ा है। गर्भगृहके चारों ओर प्रदक्षिणा-पथ है। एक प्रदक्षिणा-पथ मन्दिरके बाहर, सीढ़ियोंके बगलसे भी है। मन्दिरके ऊपर शिखर है।

मुख्य वेदी भगवान् अजितनाथकी है। लगभग ३ फुट ऊँची चौकीपर तीन कटनीदार गन्धकुटीमें अजितनाथ तीर्थंकरकी तीन फुट ऊँची श्वेत पाषाणकी पद्मासन प्रतिमा विराजमान है। सिंहासन-पीठपर मध्यमें हाथीका लांछन है और उसके दोनों ओर धर्मचक्र बने हुए हैं। इसके तीन ओर अभिलेख है। अभिलेखके अनुसार इस मूर्तिकी प्रतिष्ठा संवत् १४१४ वैशाख सुदी १० बुधवारको काष्ठासंघ मथुरान्वय पुष्करगच्छके भट्टारक श्री यशकीर्ति, तच्छिष्य भट्टारक सहस्रकीर्ति, उनके पट्टधर भट्टारक गुणकीर्ति और उनके पट्टधर सुकर्मने गोपाचल दुर्गपर तोमरवंशी राजा गणपतिदेव, उनके पुत्र महाराज डूँगरसिंहके राज्यकालमें करायी थी। इस प्रतिमा की विरागरंजित मुसकान अत्यन्त प्रभावोत्पादक है। इस वेदीके सामने इसी वेदीकी चौकीपर जम्बूस्वामीके चरण विराजमान हैं। चरण अति प्राचीन हैं। चरणचौकीपर लेख भी उत्कीर्ण है, किन्तु वह काफी घिस गया है, अतः पढ़नेमें नहीं आता।

इस वेदीकी चौकीके सामने एक पक्का चबूतरा है जो भट्टारकीय युगका प्रतीक है।

इस मुख्य वेदीके पीछेकी वेदीमें भगवान् पार्श्वनाथकी प्रतिमा विराजमान है। यह कृष्ण पाषाणकी सवा फुट अवगाहनावाली फणमण्डित प्रतिमा है। यह प्रतिमा मथुरा-वृन्दावनके बीच घौरैरा गाँवके समीपवर्ती अक्रूर घाटके पास दि. १९-६-१९६६ को भूगर्भसे प्राप्त हुई थी। इसके पीठासनपर संवत् १८९ अंकित है, जो इसका प्रतिष्ठाकाल है। यह प्रतिमा शक-कुषाणकालकी है। इस दृष्टिसे इसका विशेष महत्त्व है। इस वेदीमें एक प्रतिमा श्वेतवर्णकी सं. १५४८ की है।

इस वेदीके पीछे डेढ़ फुट ऊँचे पाषाण-फलकपर नन्दीश्वर द्वीपकी रचना है, जिसमें ५२ कोष्ठकों (चैत्यालयों) में मूर्तियाँ बनी हुई हैं। पाषाण हलके कत्थई रंगका है।

इस प्रतिमाके दायीं ओरकी वेदीमें भगवान् पार्श्वनाथकी श्वेत पाषाणकी पद्मासन प्रतिमा है। यह सर्पफणसे मण्डित है और अवगाहना पौने दो फुट है। इस मूर्तिकी प्रतिष्ठा विजयादित्यके राज्यमें संवत् ११६८ में लम्बकंचुक जातीय बुढेले गोत्रके धन्नू और प्रभावतीके प्रपौत्र बनवारीने करायी थी। इस वेदीमें पद्मप्रभ भगवान्की सवा फुट अवगाहनाकी एक रक्त वर्णवाली पद्मासन प्रतिमा विराजमान है। यह संवत् १४५१ में प्रतिष्ठित हुई थी। दो प्रतिमाएँ भगवान् चन्द्रप्रभु और अजितनाथकी संवत् १५४८ की हैं। ये श्वेत वर्ण हैं। ये इसी वेदीमें विराजमान हैं।

बायीं ओरकी वेदीमें भगवान् पार्श्वनाथकी श्वेत वर्ण पाषाण प्रतिमा है। इसके आगे खड्गासनमें सात साधु मूर्तियाँ हैं। ये मन्वादि सप्तर्षि हैं, जिनके प्रभावसे मरी रोग दूर हो गया था।

इस मन्दिरमें ९ वेदियाँ और एक चरण-युगल है। प्रतिमाओंकी कुल संख्या ६८ है। इनमें २० पाषाण-प्रतिमाएँ और शेष धातु-प्रतिमाएँ हैं।

चौरासीका यह मन्दिर दिल्ली-मथुरा 'बाई-पास' तथा मथुरा गोवर्धन सड़कके किनारे बना हुआ है।

क्षेत्रपर मन्दिरके तीन ओर एक विशाल धर्मशाला है, जिसमें ५० कमरे हैं। सामने मानस्तम्भ है। सन् १९२९ में चारित्रचक्रवर्ती आचार्य शान्तिसागरजीका मुनि-संघ दक्षिणसे तीर्थराज सम्मेदशिखरजीकी ओर बिहार करता हुआ यहाँ पधारा था। उस समय ही यह धर्मशाला और मानस्तम्भ बने थे। उस समय आचार्य संघके आगमनके उपलक्ष्यमें यहाँ एक विशाल मेला भी भरा था। भगवान् जिनेन्द्रदेवकी रथयात्रा भी निकली थी। इस निमित्तसे भगवान्का बिहार सारे शहरमें हुआ था। इसके बाद ऐसा विशाल मेला और रथयात्रा क्षुल्लक गणेशप्रसादजी वर्णीके चौरासी आगमनके उपलक्ष्यमें हुआ था। सन् १९६० में मानस्तम्भकी प्रतिमाओंकी पंच कल्याणक प्रतिष्ठाके अवसरपर आचार्यरत्न श्री देशभूषणजी महाराज और उनके संघके अतिरिक्त बाहरसे हजारों व्यक्ति पधारे थे। इन सभी अवसरोंपर शहरके मुख्य-मुख्य बाजारोंसे रथयात्रा निकली थी।

क्षेत्रके निकट ही राधानगर और कृष्णानगर नामसे शरणार्थी बस्तियाँ बनी हुई हैं। राधानगरमें ऋषभदेव दि. जैन ब्रह्मचर्याश्रम (गुरुकुल), ऋषभ जैन इण्टर कालेज, भारतवर्षीय दिगम्बर जैन संघ और साप्ताहिक जैन सन्देशका कार्यालय है।

इस स्थानका नाम चौरासी क्यों पड़ा, इसका कोई तर्कसंगत कारण खोजनेपर भी नहीं मिल सका।

मथुराके जैन मन्दिर

मथुरा शहरमें चार दिगम्बर जैन मन्दिर और एक चैत्यालय है। चौरासी क्षेत्र स्थित मन्दिरके अतिरिक्त घियामण्डी, घाटी और जयसिंहपुरामें मन्दिर हैं तथा सेठजीकी हवेलीमें एक चैत्यालय है। एक दिगम्बर जैन मन्दिर वृन्दावनमें है जो मथुरा शहरसे प्रायः चार मील है।

घियामण्डीमें दिगम्बर जैन धर्मशाला भी है।

दैवी अतिशय

चौरासी क्षेत्रपर स्थित मन्दिरमें कभी-कभी दैवी अतिशय भी हो जाते हैं। कहा जाता है कि सन् १९४६ में यहाँ लगातार सात दिन तक केशरकी वर्षा होती रही। शहर तथा बाहरके हजारों व्यक्तियोंने इस दैवी चमत्कारको अत्यन्त आश्चर्यके साथ देखा था। गर्भगृह, बरामदे, चौक, छत, दीवारें, ऊपर-नीचे सर्वत्र केशर ही केशर दिखाई पड़ती थी। कभी-कभी तो पूजा करनेवालोंके कपड़े और सामग्री केशरमें रँग जाते थे। सारा मन्दिर केशरकी सुगन्धिसे महकता रहता था। यह चमत्कार केवल मन्दिरकी मुख्य भूमि तक ही सीमित था।

हिन्दू तीर्थ

मथुरा नारायण श्रीकृष्णकी लीलाभूमि रहा है। यह हिन्दुओंका प्रसिद्ध तीर्थ है। यहाँ और आसपासके बहुतसे स्थानोंपर हिन्दू जनता दर्शनोंके लिए जाती है। जैसे कृष्ण जन्मभूमि, द्वारकाधीशजीका मन्दिर, वृन्दावनमें रंगजीका मन्दिर, बाँकेविहारीजीका मन्दिर। इसके अतिरिक्त हिन्दू लोग गोकुल, नन्दगाँव, बरसाना, दाऊजी, गोवर्धन, राधाकुण्ड आदिको जो श्रीकृष्णसे किसी भी रूपमें सम्बन्धित रहे हैं, तीर्थ मानते हैं और श्रद्धाके साथ वहाँकी यात्रा करते हैं।

मार्ग

मथुरा दिल्ली-आगरा (ग्राण्ड-ट्रंक) रोडपर दिल्लीसे १४५ कि. मी. और आगरासे ५४ कि. मी. दूर है। दिल्लीसे रेल और सड़क मार्ग दोनोंसे ही यह जुड़ा हुआ है। मथुरा जंकशनसे चौरासी सिद्धक्षेत्र तीन मील है। मथुरा कैण्ट और बस स्टैण्डसे प्रायः दो मील है। यह उत्तरी रेलवे और पश्चिमी रेलवेकी बड़ी और छोटी लाइनों द्वारा दिल्ली, कानपुर, भरतपुर, आगरा, हाथरससे सम्बद्ध है। कुछ वर्ष पूर्व तक चौरासी क्षेत्र मथुरा शहरसे अलग-अलग सा पड़ा हुआ था। किन्तु जबसे इसके निकट शरणार्थी बस्तियाँ बसी हैं और दिल्ली-आगरा-रोडका 'बाई-पास' चौरासीके बगलमें होकर निकला है, तबसे चौरासी मुख्य शहरसे मिल गया है। अब वहाँ सवारी, नल, बिजली, टेलीफोन आदि सभी सुविधाएँ उपलब्ध हैं।

आगरा

इतिहास

आगरा एक ऐतिहासिक नगर है। इसकी स्थापना कब, किसने की, यह अभी तक सुनिश्चित नहीं हो सका है। मि. टाड आदि पुरातत्त्ववेत्ताओंके विचारमें इसका नामकरण अग्रवाल जातिके कारण पड़ा। यूनानी इतिहासकार क्विण्टस कर्टिअस (Quintus Curtius) की मान्यता है कि प्राचीनकालमें यह नगर भारतीय नरेश अग्रभेशकी राजधानी था। सम्भवतः यह अग्निकुलका क्षत्रिय था। उसीके नामपर नगरका नाम आगरा (आगर, आगरा) पड़ गया। तीसरी मान्यता है कि यहाँकी मिट्टी आगरयुक्त (लवणक्षारवाली) होती है, इसलिए इस नगरका नाम ही आगरा पड़ गया। एक और भी मान्यता सामने आयी है। कृष्ण-साहित्यमें चौरासी वनोंका उल्लेख आता है। उनमें एक अग्रवन भी था और यह यमुनाके तटपर फैला हुआ था। यादवोंके कालमें यह वन यादवोंके आधिपत्यमें था। मथुरामें कृष्ण अपनी लीलाएँ दिखा रहे थे और शौरीपुरमें उनके चचेरे भाई नेमिनाथ। मथुरासे शौरीपुरके लिए इसी अग्रवनमें होकर मार्ग जाता था। निश्चित रूपसे नहीं कहा जा सकता कि अग्रवनके स्थानपर अथवा उसके कुछ भागमें इसी कालमें (यादवोंके शासनकालमें) अथवा उसके पश्चात् किसी समय नगर बस गया। उसका नाम अग्रवनपुर, अग्रपुर, या अर्गलपुर पड़ गया। वही बिगड़ते-बिगड़ते आगरा बन गया। जैन साहित्यमें संस्कृतमें 'अर्गलपुर' और प्राकृत भाषामें 'अग्गलपुर' नाम मिलता है। हिन्दीभाषी कवियोंने अर्गलपुर और आगरा, इन नामोंका व्यवहार किया है। शिलालेखों और ग्रन्थ-प्रशस्तियोंमें इसका नाम उग्रसेनपुर भी आता है। किन्तु सर्वसाधारणमें इसका नाम आगरा प्रचलित हो गया और वही नाम अब तक बराबर चल रहा है। बादशाह अकबरने इस नगरका नाम बदलकर अकबराबाद कर दिया था।

पुरातत्त्ववेत्ता ए. सी. ऐल कार्लाइलको सन् १८६९ में यहाँ खुदाईमें एक स्थानपर २००० चाँदीके सिक्के मिले थे। इनके ऊपर 'गुहिल श्री' अंकित था। सम्भवतः ये सिक्के मेवाड़के गहलौतवंशके संस्थापक गुहादित्य अथवा गुहिलसे सम्बन्धित थे। यह भी सम्भावना प्रकट की गयी है कि शीशौदिया वंशके शीलादित्यके पुत्र ग्रहादित्य अथवा गुहके ये सिक्के रहे हों। कुछ भी हो, इतना तो निश्चित लगता है कि छठी-सातवीं शताब्दीमें आगरामें गुहिल या गहलौतवंशियोंका शासन था।

यहाँपर एक उद्यान और उसमें एक प्राचीन महल बना हुआ है, जो राजा भोजका महल कहलाता है। अनुश्रुति है कि यह भोज मालवपति भोज थे और उन्होंने इस पवित्र ब्रजभूमिमें अपना महल बनवाया था। यदि यह अनुश्रुति सत्य हो तो आगराका इतिहास पाँचवीं-छठवीं शताब्दी तक जा पहुँचता है।

अनन्तर मुसलिमकाल तक आगराका इतिहास अन्धकाराच्छन्न है। सर्वप्रथम लोदी वंशके सिकन्दर-बिन-बहलोल लोदीकी राजधानीके रूपमें आगराको हम पाते हैं। उसकी मृत्यु यहींपर सन् १५१५ में हुई थी। उसने सिकन्दरामें सन् १४९५ में अपना महल बनवाया था, जो कि बारहदरीके नामसे प्रसिद्ध है। इस स्थानका सिकन्दरा नाम भी उसीके कारण पड़ा था।

सिकन्दर लोदीके बाद उसका पुत्र इब्राहीम लोदी यहाँ रहा। मुगल सम्राट् बाबरने इब्राहीम-को हराकर मई सन् १५२६ में दिल्ली और आगरापर अधिकार कर लिया। बाबरके पश्चात् हुमायूँने भी प्रायः यहीं रहकर शासन किया। उसने जितने भी अभियान किये, सब यहीं से किये। सम्भवतः बाबर और हुमायूँके महल ताजमहलके सामने यमुनाके दूसरे तटपर थे।

बादशाह अकबर सन् १५५७ के लगभग गद्दीपर बैठा और फतहपुर सीकरीमें अपने महल बनवाये। सन् १५६८ में वह फतहपुर सीकरी छोड़कर आगरामें रहने लगा। प्रारम्भमें वह ईदगाहके निकट सुल्तानपुरामें आकर रहा। उसके नौकर-चाकर खवासपुरामें रहते थे। जब लाल किला तैयार हो गया तो वह किलेमें जाकर रहने लगा और यहीं रहकर देशपर शासन किया। इसके बाद जहाँगीर और शाहजहाँने भी दिल्लीकी अपेक्षा आगरामें ही रहकर शासन-संचालन किया। शाहजहाँने संसार प्रसिद्ध ताजमहल अपनी बेगम मुमताजमहल (उर्फ मुमताज जमान उर्फ बानूबेगम) की स्मृतिमें यहीं बनवाया। औरंगजेबने गद्दीपर बलात् अधिकार करके शाहजहाँ बादशाहको यहीं लाल किलेमें कैद किया था। इसके बाद स्थायी तौरपर दिल्ली ही भारतकी राजधानी बन गयी और तबसे आगरेकी राजनीतिक प्रमुखता और प्रभुत्व समाप्त हो गया।

जैन साहित्यमें आगरा

मुगलकालमें आगरामें जैनोंका अच्छा प्रभाव था। उन दिनों अनेक जैन उच्च सरकारी पदोंपर थे। व्यापारिक और राजनीतिक केन्द्र होनेके कारण बाहरसे अनेक जैन यहाँ आते रहते थे और बहुत-से बाहरसे आकर स्थायी रूपसे यहीं बस गये थे। बहुत-से जैन विद्वान् भी यहाँ आते रहते थे। कुछ यहाँ भी रहते थे। स्थानीय और बाहरके जैन बन्धुओंने यहाँ अनेक जैन मन्दिरोंका निर्माण कराया था। इन मन्दिरोंमें सुबह और शाम शास्त्रप्रवचन और तत्त्वगोष्ठी होती थी। इन गोष्ठियोंमें अनेक सरकारी जैन कर्मचारी और अन्य बन्धु सम्मिलित होते थे। इस जमानेमें तीन स्थानोंकी तत्त्वगोष्ठियाँ बहुत प्रसिद्ध थीं—आगरा, जयपुर और मुल्तान। बाहरके लोग अपनी शास्त्रीय शंकाएँ इन स्थानोंकी गोष्ठियोंमें समाधानके लिए भेजा करते थे या स्वयं इन गोष्ठियोंमें आकर अपनी शंकाओंका समुचित समाधान प्राप्त करते थे।

मुगलकालीन कुछ जैन कवियोंकी रचनाओंसे तत्कालीन धार्मिक और सामाजिक परिस्थितियों-पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है। उन रचनाओंसे उस समयके आगरामें स्थित जैन मन्दिरोंके सम्बन्धमें भी महत्त्वपूर्ण जानकारी उपलब्ध होती है। पं. भगवतीदासजी बूढ़िया (जिला अम्बाला) के लाला किशनदास अग्रवालके पुत्र और दिल्लीके भट्टारक महेन्द्रसेनके शिष्य थे। वे एक बार रामनगरके श्रावक संघके साथ यात्रार्थ यहाँ आये थे। उन्होंने यहाँ ४८ जैन मन्दिरोंके दर्शन किये थे। उनकी छोटी-बड़ी सब रचनाओंकी संख्या लगभग पचास होगी। उनमें कुछ प्रकाशित हो चुकी हैं और

कुछ विभिन्न स्थानोंपर गुटकोंमें मिलती हैं। सन् १५९४ में उन्होंने अपनी आगरा-यात्राका पद्यबद्ध विवरण लिखा था, जिसका नाम है 'अर्गलपुर जिनवन्दना'। इस रचनामें कुल २१ छन्द हैं और प्रत्येक छन्दमें १२ पंक्तियाँ हैं। यह रचना पं. परमानन्दजी शास्त्रीको अजमेरके एक शास्त्र-भण्डारके एक गुटकेमें प्राप्त हुई थी और वह अब तक अप्रकाशित है।

इस रचनामें शाहजहाँ बादशाहके कालमें आगराके जैनमन्दिरों, मन्दिर-निर्माताओं, प्रमुख विद्वानों और विदुषी स्त्रियोंका वर्णन है। आगराके इन धार्मिक आयतनों आदिका इतना प्रामाणिक विवरण सम्भवतः अन्यत्र कहीं नहीं मिलता। उन्होंने जिन ४८ जैनमन्दिरोंके दर्शन किये थे, उनका नाम और उनके बनवानेवाले धार्मिकजनों एवं उनमें पूजापाठ करनेवाले पाण्डे और पण्डितोंके नाम दिये हैं। कविके अनुसार उस समय यहाँपर निम्नलिखित मन्दिर थे—

शहजादी मण्डी, नूरगंज, सुल्तानपुर, शाहगंज, कल्याणपुर, साहिल साहूका मन्दिर, प्रतापुरा, मंडई (सम्भवतः भाण्डई) असमपुरा, नौतनदेरा, सहस्रकीर्ति भट्टारकका मन्दिर, इतवारीखाँका कटरा, नाईकी मण्डी, फूटा दरवाजा, खवासखाँकी मण्डी (खवासपुरा), संगही अभैराजका मन्दिर, नूरी दरवाजा, केसोशाहका मन्दिर, मेधा साहुका जिनालय, तिहुणा साहुका देवालय, नगरके मध्यमें खासा साहुका देउरा, मुनि रत्नकीर्तिका मन्दिर, हजरतकी मण्डी, नालेकी मण्डी, दलपतरायका मन्दिर, बसई, मदार दरवाजा, नूपपुर, बाजारका देवालय, दीनाशाहका मन्दिर, पद्मावती पुरवाल मन्दिर, विजयसेनका मन्दिर, कालीदास खण्डेलवालका मन्दिर, अमीपालका मन्दिर, टोडरसाहूका मन्दिर, साहू नरायनीका मन्दिर, धर्मदास जैसवालका मन्दिर, भीकाकी मण्डी, खिड़की और मुल्तानी टोला।

इन मन्दिरोंके अतिरिक्त कविने शुभकीर्ति और जगतभूषण भट्टारकोंका भी वर्णन किया है। शुभकीर्ति भट्टारक तिहुणा साहूके चैत्यालयमें रहते थे और जगतभूषण भट्टारक साहू नरायनीके मन्दिरमें रहते थे।

जिन व्यक्तियोंने आगरामें मन्दिरोंका निर्माण कराया था, उनके कुछ नाम भी इस रचनामें दिये गये हैं जैसे—सोहिल साहू, सहस्रकीर्ति भट्टारक, पुण्यसागर यति, संघपति अभयराज, केशोशाह, मेघासाहू, तिहुणा साहू, खासा साहू, रत्नकीर्ति भट्टारक, उगरु साहू, दलपतराय, दीना साह, विजयसेन, कालिदास खण्डेलवाल, टोडर साहू, अमीपाल, साहू नरायनी।

उस कालमें कुछ स्त्रियाँ बड़ी विदुषी थीं और मन्दिरोंमें रहकर अपना साधनामय जीवन व्यतीत करती थीं। ऐसी स्त्रियोंमें तेजमती बाई, परिमलबाई, साहमती, ननरीबाई, भानमती, कमलाबाई, हमीरीबाई मुख्य थीं।

सुल्तानपुरा मुहल्लेमें चिन्तामणि पार्श्वनाथकी एक सातिशय प्रतिमा विराजमान थी।

कविवर बनारसीदासजीका भी बहुत वर्षों तक आगरेसे सम्बन्ध रहा था। उन्होंने 'अर्धकथानक' में अपने वैविध्यपूर्ण जीवनका वर्णन किया है। उनके जीवनकी एक बहुत ही रोचक घटना है—उनके पिता खरगसेनने सं. १६६७ में (कविवरकी २४ वर्षकी आयुमें) बनारसीदासको गृहभार सौंप दिया और कुछ जवाहरात, बीस मन घी, दो कुप्पे तेल, दो सौ रुपयेका कपड़ा और कुछ नकद रुपया व्यापारके लिए दिया। बनारसीदास सब सामान लेकर व्यापार करने आगरा पहुँचे। किन्तु व्यापारमें अनाड़ीपनके कारण, और कुछ दूसरों द्वारा ठगे जानेके कारण भी व्यापारमें हानि हुई। जवाहरात और रुपयोंका भी ऐसा ही किस्सा हुआ। कहीं गिर गये, कहीं चूहे खींच ले गये। तब हालत यह हो गयी—

घरकी वस्तु बनारसी बेंचि बेंचि सब खांहि।
लटा कुटा जो किछु हुतौ सो सब खायौ डारि॥

जब घरमें कुछ भी नहीं बचा, तब मोतीकटराके एक कचौड़ीवालेसे हर रोज एक सेर कचौड़ियाँ उधार लेकर खाते रहे। जब १-१। माह इसी प्रकार करते बीत गया, तब भी कचौड़ीवालेने कभी तकाजा नहीं किया। तब बनारसीदासने उससे स्वयं ही अपनी हालत साफ शब्दोंमें बयान कर दी।

तुम उधार कीनौ बहुत, आगे अब जिन देहु।
मेरे पास किछू नहीं, दाम कहाँसे लेहु॥

किन्तु वाहरे आगरेके कचौड़ीवाले! इतनेपर भी उसने अपनी उदारतासे मुँह नहीं मोड़ा—

कहै कचौड़ीवाल नर, बीस रुपैया खाहु।
तुमसों कोउ न कछु कहे, जहाँ भावै तहाँ जाहु॥

और वाहरे खरीदार! कचौड़ीवालेकी उदारताका भरपूर उपयोग किया और छह महीने तक यों ही उधार कचौड़ियाँ खाते रहे। तब आगरेके तांबी ताराचन्दजी, जो इनके श्वसुर लगते थे, पता लगनेपर उन्हें अपने घर ले गये। फिर इन्होंने धर्मचन्द जौहरीके साझेमें दो महीने व्यापार किया। तब इन्होंने कचौड़ीवालेके १४ रुपये चुकाये। फिर दो वर्ष और व्यापार किया। कुल २०० रुपये कमाये। ख़र्च भी इतना ही हुआ। आय-व्यय बराबर रहे।

इसके पश्चात् भी ये आगरा रहे, व्यापार भी किया। किन्तु कभी धनवान् न बन पाये।

संवत् १६८० में खैराबाद निवासी अर्थमलजी ढोरने कविवरको टीका सहित समयसार स्वाध्यायके लिए दिया। उसे पढ़कर वे निश्चयाभासी बन गये। सं. १६९२ में पण्डित रूपचन्द पाण्डे आगरा पधारे। लोगोंके आग्रहसे आप 'गोम्मटसार' का प्रवचन करने लगे। बनारसीदासजी भी सुनने जाते थे। वहाँ कर्म प्रकृतियों और गुणस्थानोंकी चर्चा सुनकर उनकी आँखें खुल गयीं और वे व्यवहार-निश्चयके समन्वयात्मक दृष्टि-बिन्दुको ही जैनधर्म समझने लगे। वस्तुतः उनमें अध्यात्मकी लगन तभी जागी। परिणामतः सं. १६९३ में उन्होंने 'नाटक समयसार'की रचना की।

शाहगंजके मन्दिरमें अध्यात्म गोष्ठी होती थी। इस गोष्ठीकी प्रसिद्धि दूर-दूर तक थी। इसमें बड़े-बड़े विद्वान् प्रतिदिन भाग लेते थे। पं. रूपचन्द पाण्डे, पं. बनारसीदास, पं. भूधरदास, पं. भगवतीदास, कवि द्यानतराय, कवि दौलतराम आदि। बसवा निवासी दौलतराम काशलीवालने इस गोष्ठीकी बदौलत ही जैनधर्मकी ओर रुचि प्राप्त की थी। द्यानतराय भी इस गोष्ठीके कारण ही जैनधर्मकी ओर आकर्षित हुए थे।

आगरामें अनेक कवि हुए हैं। इन कवियोंकी रचनाओंसे हिन्दी साहित्यका भण्डार अति समृद्ध हुआ है। इन कवियोंकी निम्नलिखित रचनाएँ उपलब्ध हैं—

पं. भगवतीदास—सुगति रमणी चूनड़ी, लघुसीता सतु, मनकरहा रास, जोगीरास, चतुर वनजारा, वीर जिनन्दगीत और राजमती नेमीसुर ढयाल, टंडाणारास, अनेकार्थ नाममाला, मृगांकलेखा चरित, आदित्यव्रत रास, ज्योतिषसार, वैद्यविनोद तथा अनेक रास और स्तवन।

पाण्डे रूपचन्द—परमार्थी दोहाशतक, गीत परमार्थी, मंगलगीत प्रबन्ध, नेमिनाथ रासा, खटोलना गीत आदि।

कविवर बनारसीदास—नाममाला, नाटक समयसार, बनारसी विलास (इसका संग्रह आगरेके दीवान जगजीवनने किया था), अर्द्ध कथानक, मोह-विवेक-युद्ध।

कवि कुँवरपाल—समकित बत्तीसी।

जगजीवन—एकीभाव स्तोत्र, अनेक पद।

पं. हीरानन्द—पंचास्तिकाय टीका, द्रव्यसंग्रह भाषा, समवसरण स्तोत्र, एकीभाव स्तोत्र।

कविवर द्यानतराय—धर्मविलास, पूजा-स्तोत्र और आरती साहित्य।

भैया भगवतीदास—ब्रह्मविलास।

बुलाकीदास—वचनकोष, प्रश्नोत्तर श्रावकाचार, पाण्डवपुराण, जैन चौबीसी।

बिहारीदास—सम्बोध पंचासिका, जखडी, जिनेन्द्र स्तुति, आरती।

भूधरदास—जैन शतक, भूधरविलास, पदसंग्रह, परमार्थ जखड़ी, गुरुस्तुति, बारह भावना, जिनेन्द्र स्तुति, पार्श्वनाथ स्तोत्र, एकीभाव स्तोत्र, पार्श्व पुराण।

आगराके कुछ वर्तमान विशिष्ट जैन मन्दिर

इस समय आगरामें मन्दिर और चैत्यालयोंकी कुल संख्या ३६ है। पं. भगवतीदासने 'अर्गलपुर जिनवन्दना' में जिन ४८ जिन-मन्दिरोंका उल्लेख किया है, उनमेंसे कुछ रहे नहीं, कुछ नये बन गये। किन्तु इन मन्दिरोंमें-से यहाँ तीन मन्दिरोंका उल्लेख करना अप्रासंगिक न होगा, जो मूर्तियोंकी प्राचीनता और अतिशयके कारण अत्यधिक प्रसिद्ध हैं। इनमें एक है ताजगंजके मन्दिरकी चिन्तामणि पार्श्वनाथकी प्रतिमा। दूसरी शीतलनाथ भगवान्‌की भुवन मोहन मूर्ति है, और तीसरा है मोतीकटराका पंचायती बड़ा मन्दिर।

ताजगंज

पं. भगवतीदासने सुल्तानपुरेकी जिस चिन्तामणि पार्श्वनाथकी प्रतिमाका उल्लेख किया है, विश्वास किया जाता है कि वह प्रतिमा ताजगंजके मन्दिरमें विराजमान है। यह मूलनायक है। पालिशदार कृष्ण पाषाणकी इस प्रतिमाकी अवगाहना सवा दो फुट है। यह पद्मासन मुद्रामें है। इसकी प्रतिष्ठा संवत् १६७७ फागुन सुदी ३ बुधवारको की गयी थी। पं. बनारसीदास, पं. भूधरदास आदि प्रतिदिन इसकी पूजा उपासना करते थे। उस कालमें इसकी बड़ी ख्याति थी और लोग मनोकामना पूर्तिके लिए इसके दर्शनको आते थे।

कविवर बनारसीदासने कई स्थानोंपर इस प्रतिमाके माहात्म्यका वर्णन किया है। उन्होंने चिन्तामणि पार्श्वनाथकी एक स्तुतिकी भी रचना की है जो इस प्रकार है—

चिन्तामणि स्वामी साँचा साहिब मेरा।
शोक हरै तिहुँ लोक को उठ लीजउ नाम सवेरा।....
बिम्ब विराजत आगरे थिर थान थयो शुभ बेरा।
ध्यान धरै विनती करै बनारसि बन्दा तेरा॥

इससे ज्ञात होता है कि बनारसीदास जैसे अध्यात्मरसिक व्यक्ति भी जिस प्रतिमाको तीनों लोकोंका शोक हरनेवाली बताते हैं, वह कितनी चमत्कारपूर्ण होगी।

कविवर भूधरदासने भी इस चिन्तामणि पार्श्वनाथकी प्रतिमाकी एक स्तुति रची है। उसमें वे कहते हैं—

सुख करता जिनराज आजलों हिय न आये।
अब मुझ माथे भाग चरन चिन्तामणि पाये॥
श्रीपार्सदेवके पदकमल हिये धरत विनसै विघन।
छूटै अनादि बन्धन बंधे कौन कथा विनसै विघन॥

वस्तुतः यह प्रतिमा इतनी मनोरम है कि इसके दर्शन करने मात्रसे मनमें भक्तिकी तरंगें आन्दोलित होने लगती हैं।

मन्दिर शीतलनाथजी

भगवान् शीतलनाथ स्वामीकी यह प्रतिमा जामामसजिदके पास रोशन मुहल्लेके जैन मन्दिरमें विराजमान है। यह कृष्णवर्ण है और लगभग साढ़े चार फुट अवगाहनाकी पद्मासन मुद्रामें आसीन है। ऐसी भुवनमोहन रूप वाली प्रतिमा अन्यत्र मिलना कठिन है। इसका सौन्दर्य अनिन्द्य है। वीतरागता प्रभावोत्पादक है। इसके अतिशयोंकी अनेक किंवदन्तियाँ बहु प्रचलित हैं। जैन ही नहीं, अनेक अजैन भी मनोकामनाएँ लेकर इसके दर्शनको आते हैं। अनेक व्यक्ति ऐसे मिलेंगे जिनका प्रातःकाल छह बजे भगवान्‌के अभिषेकके समय उनकी मोहनी छविके दर्शन करने और शामको आरती करके दीपक चढ़ानेका नियम है। अष्टमी, चतुर्दशी और पर्वके दिनोंमें मन्दिरमें प्रातः और सन्ध्याके समय दर्शनार्थियोंकी भारी भीड़ रहती है।

इस मन्दिरमें दिगम्बर और श्वेताम्बर दोनों ही सम्प्रदायोंकी प्रतिमाएँ विराजमान हैं। दिगम्बर प्रतिमा तो केवल एक है शीतलनाथ स्वामीकी। किन्तु श्वेताम्बर प्रतिमाएँ और वेदियाँ कई हैं। शीतलनाथ भगवान्‌का पूजा-प्रक्षाल दोनों ही सम्प्रदायवाले अपनी ही आम्नायके अनुसार करते हैं।

शीतलनाथजीके मन्दिरमें गर्भगृहके दायीं ओर दीवालपर लाल पाषाणका २ × १॥ फुटका एक शिलालेख श्वेताम्बरोंने कुछ वर्ष पहले लगा दिया है, जिसमें सात श्लोक संस्कृतके हैं तथा हिन्दीके दो सवैया हैं। सवैयाकी प्रथम दो पंक्तियाँ इस प्रकार हैं—

प्रथम वसन्त सिरी सीतल जु देवहुकी प्रतिमा नगन गुन दस दोय भरी है।
आगरे सुजन साँचे अठारह सै दस आठै माह सुदी दस च्यार बुध पुष धरी है॥

यह शिलालेख कुल १८ पंक्तियोंमें है। इसके आगे चार यन्त्र बने हुए हैं।

मोतीकटराका पंचायती दिगम्बर-जैन बड़ा मन्दिर

यह आगराका बड़ा मन्दिर कहलाता है। यह मन्दिर जैसा ऊपर बना है इसका भोंयरा (तलघर) भी हूबहू वैसा ही बना हुआ है। यहाँ तक कि वेदी भी वैसी ही बनी है। संकटकालमें प्रतिमाएँ नीचे पहुँचा दी जाती थीं।

इसमें मूल वेदी भगवान् सम्भवनाथकी है। गन्धकुटीमें कमलासनपर विराजमान सम्भवनाथ भगवान्‌की प्रतिमा श्वेत पाषाणकी एक फुटकी है। भगवान् पद्मासनमें विराजमान हैं। नीचे घोड़ेका लांछन है। मूर्ति लेखके अनुसार इस प्रतिमाकी प्रतिष्ठा संवत् ११४७ माघ मासकी शुक्ला पंचमी गुरुवारको हुई थी।

इस प्रतिमामें बड़े अतिशय हैं। देवलोग रात्रिमें इसकी पूजाके लिए आते हैं, इस प्रकार प्रत्यक्षदर्शियोंने मुझसे कहा।

बायीं ओरकी पहली वेदीमें भगवान् पार्श्वनाथकी सवा तीन फुट अवगाहना, पद्मासन मुद्रा, श्वेत पाषाणकी फणमण्डित प्रतिमा है। यह सं. १२७२ माघ सुदी ५ को प्रतिष्ठित हुई थी।

दायें हाथकी वेदीमें मटमैले पाषाणकी दो भव्य चौबीसी हैं। एक शिलाखण्डमें बीचमें एक भव्य तोरणके नीचे पार्श्वनाथकी मूर्ति है। इधर-उधर दो-दो पंक्तियोंमें १०-१० प्रतिमाएँ हैं। इनके ऊपर एक-एक प्रतिमा विराजमान है। मध्यवर्ती प्रतिमाके ऊपर दो हाथी बने हुए हैं। उनके ऊपर एक प्रतिमा विराजमान है। ये चौबीसी वि० संवत् १२७२ माघ सुदी ५ को प्रतिष्ठित हुई थीं।

यहाँका हस्तलिखित शास्त्र-भण्डार अत्यन्त समृद्ध है। इसमें लगभग दो हजार हस्तलिखित ग्रन्थ हैं। यहाँ पाषाण और धातुकी मूर्तियोंकी संख्या लगभग छह सौ है।

प्राचीन कालमें जैनोंका प्रभाव

मुगलकालसे पूर्व और उस कालमें भी इस नगरमें शासन और प्रजा पर जैनोंका बड़ा प्रभाव रहा। बादशाह अकबरके नवरत्नोंमें एक साहू टोडर भी थे जो बादशाहके कोषाध्यक्ष थे तथा टकसालके काममें निपुण थे। वे राज्यमें आर्थिक मामलोंके विशेषज्ञ माने जाते थे। उन्होंने राजस्व पद्धति तथा अन्य आर्थिक मामलोंमें बड़े सुधार किये थे। वे भटानिया कोल (अलीगढ़) से यहाँ आये थे। उन्होंने आगरामें एक जिनमन्दिर बनवाया था। वि० संवत् १६३१ में उन्होंने मथुरामें ५१४ स्तूपोंका जीर्णोद्धार कराया था।

श्वेताम्बराचार्य जगद्गुरु हीरविजय सूरिको सम्राट् अकबरने बड़े आग्रहके साथ निमन्त्रण देकर बुलाया था और उनका राजकीय सम्मान किया था। आचार्य महाराजसे बादशाहने जैन तत्त्वोंका वर्णन सुना था और प्रभावित होकर उसने जैन पर्वों तथा कई अन्य अवसरोंपर राज्य भरमें पशुहिंसा न करनेका आदेश प्रचारित किया था।

ताजगंज, नुनिहाई और सिकन्दरामें पर्यूषण पर्वके बाद भगवान्के कलशाभिषेकका उत्सव बहुत समय से होता आ रहा है। इन उत्सवोंमें हजारों जैन नर-नारी धार्मिक श्रद्धासे भाग लेते हैं और उत्सवके बाद ताजमहल, ऐतमादुद्दौला तथा सिकन्दराकी शाही इमारतोंके उद्यानोंमें सब लोग भोजन करते हैं। दुकानों, जल आदिकी व्यवस्था होती है। ये मेले अपने ढंगके निराले ही हैं। इस तरहके मेले किसी सम्प्रदायके नहीं होते। इन मेलोंके लिए जैनोंको शाही कालसे आज्ञा मिली हुई है।

इस प्रदेशमें जैनोंके धार्मिक आचार-विचारका सर्व-साधारणपर अत्यधिक प्रभाव रहा है। आगराके कलैक्टर मि. नेविलने आगरा गजैटियर (सन् १९०५) में लिखा है—आगरासे इटावा तकका प्रदेश—यमुना, चम्बल और क्वारी नदीके त्रिकोणमें बसा हुआ क्षेत्र पूर्णतया अहिंसक है। इस क्षेत्रमें कोई शिकार तक नहीं खेलता, न मांस खाता है। इससे जैन व वैष्णव प्रभाव प्रकट होता है।

अग्गलदेव की सातिशय प्रतिमा

प्राकृत निर्वाणभक्ति (अतिशयक्षेत्र-काण्ड) में एक गाथामें कहा है—"अग्गलदेव वंदमि" अर्थात् मैं अर्गलदेवकी वन्दना करता हूँ। ये अर्गलदेव या आगलदेव कौन हैं और कहाँ विराजमान हैं? निर्वाणभक्ति में केवल 'अग्गलदेव' ही कहा है, स्थानका नाम निर्देश नहीं किया।

पश्चात्कालीन लेखकोंमें इस सम्बन्धमें मतभेद रहा है। उदयकीर्तिने अपभ्रंश भाषाकी 'तीर्थ-वन्दना' नामक रचनामें कहा है—'करकंडरायणिम्मियउ भेउ। हउं वंदउं आगलदेव

वेउ ॥११॥' अर्थात् करकण्डु नरेश द्वारा निर्मित आगलदेवकी मैं वन्दना करता हूँ। इसमें तेरापुरकी उस पार्श्वनाथ प्रतिमाको आगलदेव कहा है, जिसका निर्माण करकण्डु राजाने कराया था।

इन्हींका अनुकरण भट्टारक गुणकीर्तिने मराठी 'तीर्थ-वन्दना' में 'धाराशिव नगरि आगलदेवासि नमस्कारु माझा' अर्थात् धाराशिवके आगलदेव कहकर किया है। इसी प्रकार भट्टारक ज्ञानसागरने गुजराती 'तीर्थजयमाला' में धाराशिवके आगलदेव मानकर वन्दना की है।

कुछ विद्वानोंके मतमें अर्गलदेव आगराकी कोई प्रसिद्ध प्रतिमा थी। स्थानोंके नामपर मूर्तियोंका नाम रखनेकी परम्परा अति प्राचीन कालसे चली आ रही है। इतिहासमें 'कलिंग जिन' प्रतिमा बहुत प्रसिद्ध रही है, जिसे राजा नन्द कलिंग अभियानमें सफल होनेपर पाटलिपुत्र ले आया था और बादमें खारवेलने मगधपर आक्रमण करके उसे पुनः कलिंगमें ले जाकर प्रतिष्ठित किया था। सम्भव है, अर्गलदेवकी जिस सातिशय प्रतिमाका उल्लेख निर्वाण-भक्ति में किया गया है, वह अर्गलपुर (आगरा) के नामपर कोई प्रसिद्ध प्रतिमा रही हो।

आगरामें जैन पुरातत्त्व

आगरासे १४ मील दूर एक प्रसिद्ध 'बुढ़ियाका ताल' है, जिसके सिंघाड़े बहुत मशहूर हैं। उसमें-से कुछ मूर्तियाँ सौ वर्ष पहले प्राप्त हुई थीं। उनमें एक मूर्ति सिद्धार्थ वृक्षके नीचे बैठे यक्ष-यक्षिणी की है। पीठासनके नीचेके भागमें विभिन्न देवी-देवता वृक्षकी पूजाके लिए विभिन्न वाहनोंपर आरूढ़ होकर आते हुए दिखाई देते हैं।

एक पद्मासन मूर्ति ध्यानावस्थित अवस्थाकी भी प्राप्त हुई थी। इसी प्रकारकी एक और भी जैन मूर्ति मिली थी। एक मूर्ति चक्र लिये हुए यक्षकी मिली थी जो सम्भवतः सर्वाण्ह[1] यक्ष है।

इसी वर्ष आगराके लाल किलेके जलद्वार और यमुनाके बीचमें एक प्राचीन जैन मन्दिरके पाषाण-स्तम्भ और कुछ अवशेष मिले थे तथा काले पाषाणकी जैन तीर्थंकरकी एक सुन्दर प्रतिमा भी मिली थी। कनिंघमने इस सम्बन्धमें अपनी [2]रिपोर्टमें इस प्रकार विवरण दिया है—

"मुस्लिम कालसे पूर्वके प्राचीन अवशेष आगरामें बहुत थोड़े हैं। आगरा किलेके जलद्वारके बाहर, किले और यमुना नदीके बीचमें काले पाषाणके कुछ स्तम्भ खुदाईमें प्राप्त हुए थे और एक काले पाषाणकी कलापूर्ण बहुत विशाल मूर्ति, जो जैनोंके बीसवें तीर्थंकर श्री मुनिसुव्रतनाथकी थी, खुदाईमें मिली थी। इसपर कुटिला लिपिमें संवत् १०६३ खुदा हुआ था। इसमें कोई सन्देह नहीं है कि ये स्तम्भ किसी प्राचीन जैनमन्दिरके उस द्वारके थे जो नदीकी ओर था और जब किला बनाया गया था, उस समय वह शायद गिरा दिया या नष्ट कर दिया गया[3] था।"

१. Archeological Survey of India, Report for the Year 1871-72, Vol. IV, by A. C. L. Carlleyle, pp. 207-8.

२. Archeological Survey of India, Report for the Year 1873-74, pp. 221, 247. Monumental antiquities and inscriptions N. W. P. and Oudh, Vol. II, 1891, p. 76.

३. Its original text is as following :
The ancient remains at Agra of the pre-moselman period are very few. Outside the watergate of the fort of Agra, between the fort and river, several square pillars of black basalt have been unearthed, as well as a

कार्लाइलने भी इस सम्बन्धमें अपनी रिपोर्टमें इसी आशयका विवरण दिया है। उन्होंने लिखा है कि किले और यमुनाके बीचमें काले पाषाणके तीन स्तम्भ और छतके पत्थर मिले थे। मेरे विचारमें ये स्तम्भ जैन मन्दिरके रहे हैं। उनकी आकृति और शैली अन्य प्राचीन जैन मन्दिरोंके स्तम्भोंसे मिलती-जुलती है। तीर्थंकर मुनिसुव्रतनाथ की मूर्ति भी इसी स्थानसे निकली थी।

यह मूर्ति लखनऊ म्यूजियममें सुरक्षित है।

शौरीपुर

पावन क्षेत्र

शौरीपुर (प्राचीन नाम शौर्यपुर) में बाईसवें तीर्थंकर भगवान् नेमिनाथके गर्भ और जन्म-कल्याणक हुए थे। हरिवंश पुराणमें इस सम्बन्धमें निम्न प्रकार उल्लेख है—

जिनस्य नेमेस्त्रिदिवावतारतः पुरैव षण्मासपुरस्सरा सुरैः।
प्रवर्तिता तज्जननावधिर्गृहे हिरण्यवृष्टिः पुरुहूतशासनात् ॥३७।२॥

—भगवान् नेमिनाथके स्वर्गावतारसे छह माह पहलेसे लेकर जन्म पर्यन्त पन्द्रह मास तक इन्द्रकी आज्ञासे (शौरीपुर निवासी) राजा समुद्रविजयके घर देवोंने रत्नोंकी वर्षा जारी रखी।

इसी प्रकार 'तिलोयपण्णत्ति' ग्रन्थमें भगवान् नेमिनाथके जन्मके सम्बन्धमें आवश्यक ज्ञातव्य बातोंपर प्रकाश डालते हुए लिखा है—

सउरीपुरम्मि जादो सिवदेवीए समुद्दविजएण।
वइसाह तेरसीए सिदाए चित्तासु णेमिजिणो ॥५४७॥

—नेमि जिनेन्द्र शौरीपुरमें माता शिवदेवी और पिता समुद्रविजयसे वैशाख शुक्ला १३ को चित्रानक्षत्रमें उत्पन्न हुए।

इन उल्लेखोंसे स्पष्ट है कि बाईसवें तीर्थंकर भगवान् नेमिनाथने शौरीपुर नगरमें राजा समुद्रविजयके यहाँ जन्म लिया। इसके उपलक्ष्यमें इन्द्रों और देवोंने भगवान्के गर्भ और जन्म कल्याणकोंका महान् उत्सव शौरीपुरमें मनाया। भगवान्के इन दो कल्याणकोंके कारण यहाँकी भूमि अत्यन्त पावन हो गयी।

भगवान्के इन दो कल्याणकोंके अतिरिक्त यहाँपर कई अन्य मुनियोंको केवलज्ञान और निर्वाण-प्राप्तिके उल्लेख भी पौराणिक साहित्यमें उपलब्ध होते हैं।

---

very massive and elaborately sculptured statue of black basalt representing Munisubratnath, the 20th Jain Tirthankar with a dedicatory inscription in Kutila characters dated Sambat 1063 or A. D. 1006.

There can be no doubt that these pillars formed the collonnade to the entrance from the river, of some ancient Jain temple, which was probably pulled down and destroyed, when the fort was built.—page 69.

१. रविषेण कृत पद्मपुराण सर्ग २०।५८, जयसिंहनन्दी कृत वरांगचरित्र २७।८५।

—शौरीपुरमें गन्धमादन नामक पर्वतपर रात्रिके समय सुप्रतिष्ठ नामक मुनिराज ध्यान मुद्रामें विराजमान थे। सुदर्शन नामक एक यक्षने पूर्व जन्मके विरोधके कारण मुनिराजपर घोर उपसर्ग किया। मुनिराज अविचल रहे। अनन्तर उन्हें लोकालोक प्रकाशक केवलज्ञानकी प्राप्ति हो गयी। वे सर्वज्ञ-सर्वदर्शी बन गये। इन्द्रों और देवोंने आकर भगवान्‌की पूजा की और उत्सव मनाया।

जातु शौर्यपुरोद्याने गन्धमादननामनि ॥२९॥
रात्रौ प्रतिमया तस्थौ सुप्रतिष्ठः प्रतिष्ठितः।
पूर्ववैराद्यतेस्तस्य चक्रे यक्षः सुदर्शनः ॥३०॥
अग्निपातं महावातं मेघवृष्ट्यादि दुःसहम्।
उपसर्गं स जित्वाप केवलं घातिघातकृत् ॥३१॥

कुछ समय पश्चात् शौरीपुर नरेश यादववंशी अन्धकवृष्णि और मथुरा नरेश भोजकवृष्णि ने, जो दोनों भाई-भाई थे, इन्हीं केवली भगवान्‌के निकट मुनि-दीक्षा ले ली।

—हरिवंश पुराण, सर्ग १८

—अमलकण्ठपुरके राजा निष्ठसेनके पुत्र धन्य ने भगवान् नेमिनाथके उपदेशसे मुनि दीक्षा धारण कर ली। एक दिन बिहार करते हुए मुनि धन्य शौरीपुर पधारे। वहाँ यमुना-तटपर वे ध्यानारूढ़ हो गये। शौरीपुरका राजा शिकारसे लौटा। शिकार न मिलनेके कारण वह मनमें बड़ा खिन्न हो रहा था। मुनिराजको देखते ही उसे लगा—'हो न हो, इस नग्न मुनिके कारण ही मुझे सारे दिन भटकनेपर भी शिकार नहीं मिल पाया।' यह सोचकर अपने निराशाजन्य क्रोधके कारण उस मूर्खने उन वीतराग मुनिको तीक्ष्ण बाणोंसे बींध दिया। मुनि धन्य शुक्ल ध्यान द्वारा कर्मोंको नष्ट कर सिद्ध पदको प्राप्त हुए। उस समय इन्द्रों और देवोंने आकर उनका निर्वाण महोत्सव मनाया।

—श्री नेमिदत्त विरचित आराधना कथाकोष, कथा ७१

—हरिषेण कथाकोष—१४१ में भी यह कथा इसी रूपमें निम्न प्रकार से दी गयी है और शौरीपुरको सिद्धक्षेत्र स्वीकार किया गया है—

विहरन् स मुनिः प्राप तदानीं शूरपत्तनम् ॥१४१।४३॥
तत्पुरोत्तरदिग्भागे यमुना पूर्वरोधसि।
तस्थौ प्रतिमया धीरः स मुनिः कर्महानये ॥१४१।४४॥
अथ सौरिपुरे राजा साधितारातिमण्डलः।
बभूव यमुनापङ्को यमुनापतिरुग्रधीः ॥१४१।४५॥
मृगयार्थं महासैन्यः कोपारुणनिरीक्षणः।
जगाम यमुनापङ्कस्तां दिशं दैवयोगतः ॥१४१।४६॥
ततो निवर्तमानः सन् प्रतिमास्थं तकं मुनिम्।
विलोक्य स नराधीशः सहसायं रुषं ययौ ॥१४१।४७॥
दर्शनेनास्य नग्नस्य शकुनोऽपि न मेऽभवत्।
जगाम स्वपुरं राजा पूरयित्वा शरैरिमम् ॥१४१।४८॥

उपसर्गं सहित्वास्य धीरो धान्यमुनिस्तदा ।
मोक्षं जगाम शुद्धात्मा निहताशेषकर्मकः ।।१४१।४९
मुनेर्धान्यकुमारस्य सिद्धिक्षेत्रं तदद्भुतम् ।
विद्यते पूज्यतेऽद्यापि भव्यलोकैरनारतम् ।।१४१।५०
स नृपो यमुनापङ्कः प्राप्य कुष्ठं हि तद्भवे ।
जगाम नरकं घोरं रौद्रध्यानपरायणः ।।१४१।५१

अर्थात् विहार करते हुए वे (धान्य कुमार) मुनि शूरपत्तन--(शौरीपुर) पधारे और नगरके उत्तर दिक्-प्रदेशमें यमुनातटपर प्रतिमायोग धारण कर स्थित हो गये। शौरीपुरमें यमुनापंक नामक राजा था, जो बड़ा प्रचण्ड था। उसने शत्रुओंको अपने वशमें कर रखा था। एक विशाल सेना लेकर वह शिकार खेलने चल दिया। संयोगसे वह उसी दिशामें गया, जिधर मुनि धान्यकुमार तपस्या कर रहे थे। जब वह निराश लौटा तो उसने ध्यान मुद्रामें खड़े हुए मुनिको देखा। उन्हें देखते ही उसे बड़ा क्रोध आया। वह सोचने लगा कि इस नग्नके देखनेसे ही मुझे अशकुन हो गया। उसने बाणोंसे मुनिको बींध दिया और अपने नगरको चला गया। उन धीर-वीर मुनिराज धान्यकुमारने यह उपसर्ग शान्तिसे सहन किया और सम्पूर्ण कर्मों-का नाश कर मोक्ष प्राप्त किया। मुनि धान्यकुमारका वह अद्भुत सिद्धक्षेत्र अब भी विद्यमान है और भव्य लोग उसकी पूजा करते हैं। वह यमुनापंक राजा उसी जन्ममें कोढ़ी हो गया और रौद्रध्यान सहित मरकर नरकमें गया।

—उज्जयिनी नरेश प्रजापालका रत्नपारखी सुदृष्टि नामक एक व्यक्ति था। उसकी स्त्री विमलासे अलसत्कुमार नामका पुत्र उत्पन्न हुआ। जब वह युवावस्थामें पहुँचा, उसे संसारसे विरक्ति हो गयी और मुनि अभिनन्दनके निकट दीक्षा ले ली। वह घोर तप करने लगा। एक दिन विहार करते हुए मुनि अलसत्कुमार शौरीपुर आये। वहाँ यमुना-तटपर तपमें लीन हो गये। उन्होंने योग-निरोध किया। कर्मोंकी शृंखलाएँ टूटने लगीं। उन्हें केवलज्ञान हो गया और फिर निर्वाण प्राप्त किया।

नानातपः प्रकुर्वाणो मन्दरस्थिरमानसः ।
वरोत्तरदिशाभागं प्राप्य शौरीपुरस्य सः ।।१८।।
अथालसत्कुमारोऽयं स्थित्वा पश्चिमरोधसि ।
यमुनायाः समाधानान्निर्वाणं गतवानसौ ।।१९।।

अर्थात् मुनि अलसत्कुमार नाना तप करते हुए शौरीपुरके उत्तर भागमें आये। वहाँ यमुनाके पश्चिम तटपर ध्यानलीन हो गये और निर्वाण प्राप्त किया।

—हरिषेण-कोश, कथा १५३

—भगवान् महावीरके समय यम नामक एक अन्तःकृत् केवली भी यहींसे मोक्ष गये हैं।

—भगवान् ऋषभदेव, भगवान् नेमिनाथ, भगवान् पार्श्वनाथ और भगवान् महावीरके पावन विहारसे यह भूमि पवित्र हुई थी।

—शौरीपुरमें राजा वसुदेव थे। उनकी महादेवीका नाम रोहिणी था। उनके एक पुत्र था, जिसका नाम बलभद्र था। बड़ा होनेपर भी वह सदा अपनी माताके पास रहता था। किन्तु कुछ पनिहारिनोंमें ऐसी कुत्सित चर्चा चल पड़ी कि हमारी महादेवी अपने पुत्रमें ही अनुरक्त हैं। यह चर्चा एक गोपीने भी सुनी। वह रोती हुई रोहिणीके पास पहुँची और उसने रो-धोकर

उन्हें सारी बात सुनायी। यह बात महाराज वसुदेवके कानोंमें पहुँची। सुनकर वे स्तब्ध रह गये। निन्दकोंके प्रति उन्हें बड़ा क्रोध आया। किन्तु महादेवीके समझानेपर वे शान्त हुए और तब यह निश्चय हुआ कि रोहिणीके शीलकी परीक्षा की जाये, उन्हें चढ़ी हुई यमुनामें छोड़ दिया जाये। यदि वे सती होंगी तो नहीं डूबेंगी, अन्यथा डूब जायेंगी।

जनतामें जब यह समाचार पहुँचा तो अनेक लोगोंने आकर महाराजको समझाया। उन्होंने महाराजको रोकना चाहा किन्तु महाराजने एक नहीं सुनी। उन्होंने रानीकी परीक्षा ली। महारानीके सतीत्वके प्रभावसे यमुना-जलका स्तम्भन हो गया और वह जल नगर की ओर बहने लगा। नगरमें हाहाकार मच गया। सब लोगोंने महारानी रोहिणीसे प्रार्थना की, प्राण-भिक्षा माँगी। सब उनकी स्तुति करने लगे—'तुम महासती हो, माँ! हमें बचाओ।'

जनताकी आर्त पुकार सुनकर रोहिणीदेवीका हृदय करुणासे भर गया उन्होंने यमुना-को आज्ञा दी कि वह यहाँपर दक्षिणकी बजाय उत्तरकी ओर बहना प्रारम्भ कर दे। वैसा ही हुआ। लोगोंके प्राण बच गये। सबने सती महादेवीकी जय जयकार की। निन्दकोंने क्षमा माँगी।

यमुनाका प्रवाह तबसे आज तक यहाँ उत्तर की ओर है।

—मुनि श्रीचन्द्रकृत 'कहाकोसु', सन्धि ३५, कडवक १-३

—यह स्थान दानी कर्णकी जन्म भूमि है।

—प्रसिद्ध दार्शनिक विद्वान् आचार्य प्रभाचन्द्रके गुरु आचार्य लोकचन्द्र यहीं हुए थे। आचार्य प्रभाचन्द्रने जैन न्यायके सुप्रसिद्ध ग्रन्थ प्रमेयकमलमार्तण्डकी रचना यहींपर की थी, इस प्रकारकी अनुश्रुति है।

इस प्रकार यह केवल गर्भ, जन्म और ज्ञान कल्याणक भूमि ही नहीं, बल्कि निर्वाण-भूमि अर्थात् सिद्धक्षेत्र भी है।

इतिहास

इक्कीसवें तीर्थंकर नमिनाथके तीर्थमें हरिवंशमें एक प्रतापी राजा हुआ, जिसका नाम यदु था। इसी यदुसे यादव वंश चला। यदुका पुत्र नरपति हुआ। नरपतिके दो पुत्र हुए। शूर और सुवीर। सुवीरको मथुराका राज्य मिला और शूरने शौरीपुर बसाया। शूरसे अन्धकवृष्णि हुए और सुवीरसे भोजकवृष्णि। शौरीपुर कुशद्य देशकी राजधानी और सर्वाधिक समृद्ध नगरी थी। यह नगरी शूरसेन जनपदसे, जिसकी राजधानी मथुरा थी, कौशाम्बी, श्रावस्ती जानेवाले जल-मार्गपर अवस्थित थी। कुशद्य छोटा सा ही जनपद था। यही बादमें भदावर कहलाने लगा।

उस कालमें यादववंशियोंके दो राज्य थे—(१) शूरसेन जनपद जिसकी राजधानी मथुरा थी और (२) कुशद्य जनपद, जिसकी राजधानी शौरीपुर या शौर्यपुर थी। शौरीरपुरके नरेश अन्धकवृष्णिकी महारानी सुभद्रासे दस पुत्र और दो पुत्रियाँ हुईं, जिनके नाम थे—समुद्रविजय, अक्षोभ्य, स्तिमितसागर, हिमवान्, विजय, अचल, धारण, पूरण, अभिचन्द्र और वसुदेव। पुत्रियोंके नाम कुन्ती और मद्री थे। इसी प्रकार मथुराके राजा भोजकवृष्णिकी पद्मावती नामक रानीसे तीन पुत्र हुए—उग्रसेन, महासेन और देवसेन। बादमें दोनों चचेरे भाइयोंने सुप्रतिष्ठ केवलीके पास जाकर मुनिदीक्षा ग्रहण कर ली।

अन्धकवृष्णि और भोजकवृष्णि द्वारा मुनिदीक्षा धारण करनेके पश्चात् मथुराका शासन-सूत्र उग्रसेनने और शौरीपुरका शासन-सूत्र समुद्रविजयने सँभाला। उग्रसेनके कंस नामक पुत्र तथा देवकी, और राजमती (जिन्हें राजुल भी कहते हैं) पुत्रियाँ हुईं। समुद्रविजयकी महारानी शिवा देवीसे नेमिनाथ हुए और समुद्रविजयके सबसे छोटे भाई वसुदेवके बलराम और कृष्ण हुए। नेमिनाथ बाईसवें तीर्थंकर थे। बलराम और कृष्ण क्रमशः अन्तिम बलभद्र और नारायण थे। इन महापुरुषोंके उत्पन्न होनेके पूर्वसे ही शौरीपुरका प्रभाव, वैभव आदि बढ़ने लगा था।

कंसने अपने पिताको नगरके मुख्यद्वारके ऊपर कारागारमें डाल दिया। उस युगमें सर्वाधिक प्रभावशाली नरेश जरासन्ध था, जो राजगृहका अधिपति था। जरासन्धने अपनी पुत्री जीवद्यशाका विवाह वसुदेवके कहनेसे कंसके साथ कर दिया। कंस वसुदेवके इस आभारसे दबा हुआ था। अतः उसने अपनी बहन देवकीका विवाह वसुदेवके साथ कर दिया और अत्यन्त आग्रह करके वसुदेव और देवकीको मथुरा रहनेके लिए राजी कर लिया। इस समय तक वस्तुतः मथुरा और शौरीपुर राजगृह नरेश जरासन्धके माण्डलिक राज्य थे।

निमित्तज्ञानसे यह जानकर कि कृष्ण द्वारा मेरा वध होगा, कंसने कृष्णको मारनेके लिए कई बार गुप्त प्रयास किये, किन्तु वह सफल नहीं हो सका। तब उसने कृष्णको मल्लयुद्धके लिए मथुरा बुलाया। वसुदेवने भी आशंकित हो शौरीपुरसे समुद्रविजय आदि भाइयोंको बुला लिया। मथुरामें कृष्णने कंसके मल्लोंको अखाड़ेमें पछाड़कर कंसको भी समाप्त कर दिया। अब यादवोंका राज्य एक प्रचण्ड शक्तिके रूपमें भारतके राजनीतिक मानचित्रपर उभरा। मथुरा उसका शक्ति-केन्द्र बन गया। उस समय भी महाराज समुद्रविजय शौरीपुरमें रहकर राज्य-शासन चला रहे थे।

अब जरासन्धकी ओरसे यादवोंपर आक्रमण होने लगे। एक बार जरासन्ध विशाल वाहिनी लेकर स्वयं युद्ध करने चला। साथमें अनेक राजा थे। उस समय वृष्णिवंश और भोजवंशके प्रमुख पुरुषोंने रणनीतिपर विचार किया और निश्चय किया कि—

स्वीकृत्य वारुणीमाशां कानिचिद् दिवसानि वै।
विगृह्यासनमेवं हि कार्यसिद्धिरसंशया॥

—हरिवंश पुराण, ४०।१७

अर्थात् इस समय हम लोगोंके लिए पश्चिम दिशाकी ओर जाकर कुछ दिनों तक चुप बैठ रहना ही उचित है। ऐसा करनेसे कार्यकी सिद्धि अवश्य होगी।

यह निश्चय होते ही वृष्णिवंशी और भोजवंशी लोगोंने मथुरा और शौरीपुरसे प्रस्थान कर दिया। इस निष्क्रमणके बारेमें आचार्य जिनसेन लिखते हैं—

माथुर्यः शौर्यपूर्यश्च वीर्यपूर्यः प्रजास्तदा।
समं स्वाम्यनुरागेण स्वयमेव प्रतस्थिरे॥

—हरिवंशपुरण, ४०।२१

अष्टादशेति संख्याताः कुलकोट्यः प्रमाणतः।
अप्रमाणधनाकीर्णा निर्यान्ति स्म यदुप्रियाः॥

—हरिवंशपुराण, ४०।२३

अर्थात् मथुरा, शौरीपुर और वीर्यपुरकी प्रजाने स्वामीके प्रति अनुरागवश उनके साथ ही प्रस्थान कर दिया। उस समय अपरिमित धनसे युक्त अठारह कोटि यादव शौरीपुरसे बाहर चले गये थे।

इस निष्क्रमणके समय नेमिनाथ भगवान् बालक ही थे। यादवोंने पश्चिम समुद्र तटपर जाकर द्वारका नगरी बसायी। भोजवंशी उग्रसेनको गिरनगरका राज्य दे दिया। गये हुए यादव पुनः शौरीपुर या मथुरा नहीं लौटे। महाभारतके पश्चात् ये नगर पाण्डवोंके ताबेमें आ गये। पश्चात्कालीन इतिहासमें मथुरा समय-समयपर इतिहासपर अपना प्रभाव अंकित करता रहा, किन्तु शौरीपुर सम्भवतः इतिहासकी कोई निर्णायक भूमिका अदा करनेकी स्थितिमें नहीं रह गया।

वर्तमान मन्दिर

प्राचीन शौरीपुर धीरे-धीरे उजड़ गया और अब केवल उसके ध्वंसावशेष ही बचे हुए हैं। शौरीपुर क्षेत्रकी प्राचीनताके स्मारक केवल जैनमन्दिर रह गये हैं। इनमें सर्व-प्राचीन दिगम्बर जैन मन्दिर है। इसका जीर्णोद्धार समय-समयपर होता रहा है। एक मन्दिरका, जिसे आदि मन्दिर कहते हैं, उसका निर्माण संवत् १७२४ (ई. सन् १६६७) में हुआ था। दिगम्बर जैन मन्दिरके भीतर पीठिका की दीवालपर एक शिलालेख है जो इस प्रकार है—

"श्री मूलसंघे बलात्कारगणे सरस्वतीगच्छे श्री कुन्दकुन्दाचार्यान्वये श्री जगतभूषण श्री भ. विश्वभूषण देवाः स्वरीपुर (शौरीपुर) में (क्षेत्रे) जिन मन्दिर प्रतिष्ठा संवत् १७२४ वैशाख वदी १३ को कारापिता।"

इस प्रकार इस मन्दिरका निर्माण भट्टारक विश्वभूषणके उपदेशसे हुआ है।

बरुवामठ—यह मन्दिर कुछ सीढ़ियाँ चढ़कर है। एक बड़ा चबूतरा है। उससे आगे यह मन्दिर है। यहाँका यह सबसे प्राचीन मन्दिर कहलाता है। यहाँकी कुछ प्रतिमाएँ चोरी चली गयीं और कुछ मध्य मन्दिरमें विराजमान कर दी गयीं। तब आगराके स्व. सेठ सुमेरचन्द जी बरोल्याके सुपुत्र सेठ प्रतापचन्द्र जी, पौत्र आनन्दकुमार-विमलकुमार-शशिकुमार जी ने वीर सं. २४८० मार्गशीर्ष कृष्णा ८ को यहाँ भगवान् नेमिनाथकी अत्यन्त भव्य प्रतिमाकी प्रतिष्ठा करायी। यह काले पाषाणकी कायोत्सर्गासनमें है। इसकी अवगाहना पीठासन सहित आठ फुट है। इसके सिरपर पाषाणका छत्र है। पाषाणमें ही कलापूर्ण भामण्डल है। चरण-पीठपर आमने-सामने दो सिंह बने हुए हैं। बीचमें शंखका लांछन है।

यादववंशियोंमें जो जैन हैं, उनमें किसीकी मृत्यु होनेपर कार्तिक सुदी १४ को दीपक चढ़ानेकी प्रथा है, जो यहीं चढ़ाया जाता है। वैष्णव यदुवंशियोंका दीपक वटेश्वरमें यमुनामें चढ़ता है।

शंखध्वज मन्दिर

यह मन्दिर दूसरी मंजिलपर है। सामनेवाले गर्भगृहमें चार वेदियाँ हैं। मूलनायक भगवान् नेमिनाथ मध्यकी वेदीमें विराजमान हैं। उसके पीछे बायीं ओरकी वेदीमें एक खड्गासन प्रतिमा बलुआई पाषाण की है। अवगाहना ३ फुट है। चरणोंके निकट दोनों ओर चमरवाहक खड़े हैं। सिरके दोनों ओर देवियाँ हाथोंमें पारिजात पुष्पोंकी मालाएँ लिये हुए अंकित हैं। इस मूर्तिपर कोई लांछन या लेख नहीं है।

इस मूर्तिके निकट एक शिलाफलकमें उत्कीर्ण मूर्ति है। यह पद्मासन पाँच इंची है। मूर्ति तो अखण्डित है, किन्तु वह शिलाफलक ऊपर की ओरसे खण्डित है।

ये दोनों ही प्रतिमाएँ अनुमानतः ११-१२वीं शताब्दी की हैं।

दायीं ओर दो वेदियाँ हैं। दोनोंमें ही दो-दो आधुनिक प्रतिमाएँ विराजमान हैं।

बायीं ओरके गर्भालयमें एक वेदी है। इसमें श्वेत पाषाणकी ढाई फुट अवगाहना-वाली पद्मासन प्रतिमा है। पाद-पीठपर गेंडेका चिह्न बना हुआ है। अतः यह भगवान् विमलनाथकी प्रतिमा है। इसके इधर-उधर पार्श्वनाथ और चन्द्रप्रभ भगवान् विराजमान हैं। प्रतिमा-लेखके अनुसार इसकी प्रतिष्ठा वि. सं. १३५७ (ई. १३००) जेठ सुदी १४ को हुई थी।

दायीं ओरके गर्भगृहमें एक वेदीमें श्वेत पाषाणकी ढाई फुट अवगाहनावाली पद्मासन प्रतिमा विराजमान है। मूर्ति-लेखके अनुसार यह संवत् १३०८ (सन् १२५१) में प्रतिष्ठित हुई थी। इस प्रतिमाके आगे चन्द्रप्रभ भगवान्‌की आधुनिक प्रतिमा रखी है।

उक्त वेदीके दायीं ओर एक वेदीमें दो प्राचीन प्रतिमाएँ हैं। मध्यमें एक प्रतिमा कायोत्सर्गा-सनमें स्थित है। एक शिलाफलकमें बायीं ओरको चार प्रतिमाओंका अंकन किया गया है और दूसरे शिलाफलकके दायीं ओर भी ऐसा ही अंकन है। वस्तुतः ये दोनों ही शिलाफलक एक मूर्तिके दो भाग हैं जिनपर पंच बालयतिकी ये प्रतिमाएँ उकेरी गयी हैं। नीचे की ओर यक्षमूर्ति है। उसके बायें हाथमें कोई फल या बिजौरा है और दायें हाथमें शक्ति है।

ये दोनों ही प्रतिमाएँ बाह (जिला आगरा) से आगे नदगवाँ गाँवके निकट हतकान्त (हस्तिकान्तपुर) के जैनमन्दिर से सन् १९३८ में ऊँटपर रखकर लायी गयी थीं। हतकान्तमें बहुत प्राचीन दोमंजिला दिगम्बर जैनमन्दिर हैं। यहाँ कभी जैनोंकी अच्छी बस्ती थी। व्यापारिक कारणोंसे यहाँके कुछ जैन कलकत्ता, इटावा, आगरा आदि शहरोंमें चले गये। जो वहीं जमीन-जायदादके मोहसे पड़े रहे, उन्हें डाकुओंके आतंकके कारण अपनी जन्म-भूमिका त्याग करना पड़ा, क्योंकि यह इलाका नितान्त दस्यु-प्रभावित है। ऐसी दशामें वहाँकी कुछ मूर्तियाँ इटावाकी जैन धर्मशालावाले मन्दिरमें ले जाकर विराजमान कर दी गयीं और उपर्युक्त दो मूर्तियाँ यहाँ लाकर स्थापित कर दी गयीं। हतकान्तके मन्दिरमें अभी कुछ मूर्तियाँ विद्यमान हैं।

हतकान्त एक ऐतिहासिक नगर रहा है। यह धन-धान्यपूर्ण और श्रीसम्पन्न नगर था। ऐसे भी उल्लेख प्राप्त हुए हैं, जिनसे पता चलता है कि यहाँ ५१ प्रतिष्ठाएँ हुई थीं। सन् १३८९ में सुलतान फ़िरोजशाहने इस नगरपर आक्रमण करके इसे भारी क्षति पहुँचायी। यहाँके मन्दिर बरबाद कर दिये गये।

पंचमठी-शंखध्वज मन्दिर के बायीं ओर एक मैदानमें, जिसके चारों ओर दीवालें हैं, प्राचीन टोंकें और छतरियाँ बनी हुई हैं। यह स्थान पंचमठी कहलाता है। यहाँ तीन मूर्तियाँ मैदानमें रखी हुई हैं। ये मूर्तियाँ सन् १९४०-४१ में यहीं भूगर्भसे निकली थीं। ये तीनों ही मूर्तियाँ खण्डित कर दी गयी हैं। मूर्तियाँ बलुआई पाषाणकी भूरे रंगकी हैं। तीनोंका आकार लगभग साढ़े तीन फुट है। एक मूर्तिके सिंहासन पीठपर भगवान् महावीरका चिह्न सिंह है। दूसरी मूर्तिपर कमल या नीलकमलका चिह्न है, जिससे यह मूर्ति पद्मप्रभु या नमिनाथ तीर्थंकरकी जान पड़ती है। तीसरी मूर्ति महावीर स्वामीकी है जिसपर सिंहका लांछन अंकित है। प्रतिमाओंके ऊपर दोनों ओर चमरी वाहक, गज और मूर्तियाँ बनी हुई हैं। किसी मूर्तिपर कोई लेख नहीं है। किन्तु इन मूर्तियोंका आनुमानिक निर्माण-काल ११-१२वीं शताब्दी लगता है।

यहाँ एक छतरीके नीचे यम मुनिके चरण अंकित हैं। उत्तर दिशाकी छतरीके नीचे धन्य मुनिके चरण स्थापित हैं। दक्षिण दिशाकी टोंकमें भी किसी मुनिके चरण विराजमान हैं। दो प्राचीन टोंकें बनी हुई हैं जो खाली पड़ी हैं। बीचमें ऊँचे पायेकी एक टोंक बनी है। इसकी वेदीकी प्रतिमा चोरी चली गयी है। तबसे वेदी सूनी है। वेदीके आगे चरण बने हुए हैं, जहाँ वि. सं. १८२८

का लेख अंकित है। लेखके अनुसार सं.१८२८ कार्तिक सुदी ११ शनिवारको भट्टारक जिनेन्द्र भूषणके उपदेशसे ये चरण स्थापित किये गये हैं। यह टोंक दोमंजिली है। नीचेका भाग जमीनके भीतर है।

इस पंचमठीके पीछे दक्षिण की ओर अन्तकृत् केवली धन्यकी बहुत प्राचीन टोंक है। वह बिलकुल जीर्ण है। इसमें अब कोई चरण या मूर्ति नहीं है। प्राचीन मन्दिरके उत्तर-पूर्व की ओर एक प्राचीन टोंक थी। उसमें चरण विराजमान थे। किसी समय भट्टारकोंने धर्म-वात्सल्यके नाते श्वेताम्बरोंको इसके दर्शन-पूजनकी सुविधा दे दी थी। किन्तु कालान्तरमें श्वेताम्बरोंने इसपर अपना अधिकार कर लिया और चरण हटाकर मन्दिर बना लिया और प्रतिमा स्थापित कर दी। इसके दक्षिणमें भी एक प्राचीन मन्दिरका भग्न भाग था। केवल दालान बचा था। उसमें भगवान् नेमिनाथकी प्रतिमा विराजमान थी। इसपर श्वेताम्बरोंने अपना अधिकार कर लिया।

यहाँपर १६ फुट चौड़ा एक प्राचीन कुआँ है। इसका जल बड़ा स्वादिष्ट और स्वास्थ्यवर्धक है। दिगम्बर समाजने यहाँ एक धर्मशाला और आदिमन्दिरके दक्षिणमें एक कुआँ और बनवा लिया है।

मूलतः यह दिगम्बर तीर्थ है। जितने प्राचीन मन्दिर, मूर्तियाँ और चरण हैं, सभी दिगम्बर परम्पराके हैं। आसपासके जैन स्त्री-पुरुष यहाँ मुण्डन, कर्ण-वेधन आदि संस्कार कराने आते हैं। यह क्षेत्र मूलसंघाम्नायी भट्टारकोंका स्थान रहा है। भट्टारक जगतभूषण और विश्व-भूषणकी परम्परामें अठारहवीं शताब्दीमें जिनेन्द्रभूषण भट्टारक हुए हैं। ये मन्त्रवेत्ता सिद्धपुरुष थे। इनके चमत्कारोंके सम्बन्धमें अनेक किंवदन्तियाँ अब तक प्रचलित हैं। उन्होंने भिण्ड, ग्वालियर, आरा, पटना, सम्मेदशिखर, सोनागिर, मसार आदि कई स्थानोंपर विशाल मन्दिर तथा धर्मशालाएँ बनवायीं, जो अब तक विद्यमान हैं। वटेश्वरका दिगम्बर मन्दिर भी उन्हींके आग्रहसे बनवाया गया था।

वटेश्वर

वटेश्वरके दिगम्बर मन्दिरके सम्बन्धमें कहा जाता है कि जब शौरीपुर यमुना नदीके तटसे अधिक कटने लगा और बीहड़ हो गया, तब उक्त भट्टारकजीने वटेश्वरमें विशाल मन्दिर और धर्मशाला बनवायी। यह मन्दिर महाराज बदनसिंह द्वारा निर्मापित घाटके ऊपर वि. सं. १८३८ में तीन मंजिलका बनवाया गया था। उसकी दो मंजिलें जमीनके नीचे हैं। इस मन्दिरमें महोबासे लायी हुई भगवान् अजितनाथकी पाँच फुट ऊँची कृष्ण पाषाणकी सातिशय पद्मासन प्रतिमा विराजमान है। इसकी प्रतिष्ठा संवत् १२२४ वैशाख वदी ७ सोमवारको परिमाल राज्यमें आल्हा-ऊदलके पिता जल्हड़ने करायी थी।

इस मन्दिरके सम्बन्धमें एक किंवदन्ती बहुप्रचलित है। एक बार भदावर नरेशने भट्टारक जिनेन्द्रभूषणजीसे तिथि पूछी तो भूलसे वे अमावस्याको पूर्णिमा कह गये। किन्तु जब उन्हें अपनी भूल प्रतीत हुई तो भूलको सत्य सिद्ध करनेके लिए मन्त्र-बलसे एक काँसेकी थाली आकाशमें चढ़ा दी जो बारह कोस तक चन्द्रमाकी तरह चमकती थी। इस बातका पता ब्राह्मणोंको लग गया और उन्होंने महाराजको यह बात बता दी। इससे वे अप्रसन्न नहीं हुए, बल्कि उलटे प्रसन्न ही हुए और उन्होंने भट्टारकजीसे सहर्ष कुछ माँगनेका आग्रह किया। तब भट्टारकजीने मन्दिर बनवानेकी आज्ञा माँगी। महाराजने स्वीकृति तो दे दी किन्तु ब्राह्मणों द्वारा उसमें बाधा डाल दी गयी। फलतः यह आज्ञा संशोधित रूपमें इस प्रकार आयी कि मन्दिर यमुनाकी बीच धारामें बनाया जाये। भट्टारकजीने इस आज्ञाको स्वीकार कर लिया और यमुनाकी धारामें ही स्वयं

खड़े होकर मन्दिर बनवाया। यद्यपि अब यमुना वहाँसे कुछ दूर हट गयी है किन्तु वर्षा ऋतुमें अब भी मन्दिर यमुनामें डूब जाता है।

महाराज भदावरने जैनमन्दिरोंकी रक्षार्थ कुछ जमीन भी दी थी जो जतीके चकके नामसे प्रसिद्ध रही। जब उत्तरप्रदेशमें जमींदारी प्रथा समाप्त हुई, तब यह जमीन अपने अधिकारसे निकल गयी।

भगवान् अजितनाथकी प्रतिमा पालिशदार है। उसका बायाँ हाथ जुड़ा हुआ है, ऐसा लगता है। मूर्ति अत्यन्त प्रभावक और सातिशय है।

इस वेदीपर बाईस धातु प्रतिमाएँ विराजमान हैं।

इस मुख्य वेदीके बायीं ओरके गर्भगृहमें एक वेदीके मध्यमें एक शिलाफलकपर भगवान् शान्तिनाथकी चार फुट ऊँची कायोत्सर्गासन प्रतिमा है। इसके परिकरमें बायीं ओर एक खड्गासन और दायीं ओर एक पद्मासन तीर्थंकर प्रतिमा है। चरणोंके नीचे दो भक्त श्रावक बैठे हुए हैं। उनके बीचमें दो स्त्रियाँ मुकुलित करपल्लव मुद्रामें आसीन हैं। दो चमरवाहक इन्द्र इधर-उधर खड़े हैं। ऊपर पाषाणकी छत्रत्रयी है। ऊपर वीणावादिनी और मृदंगवादक बैठे हैं। पीठासनपर हरिण अंकित है।

इस मूर्तिका प्रतिष्ठा-काल (मूर्ति लेखके अनुसार) वि. संवत् ११५० वैशाख बदी २ है।

इस मूर्तिके अतिरिक्त इस वेदीमें वि. सं. १६८८ की एक कत्थई रंगकी और वि. सं. १८३८ की एक श्वेत पाषाणकी प्रतिमाएँ हैं। बीस अन्य छोटी-छोटी पाषाण-प्रतिमाएँ और चरण हैं, जो कई शताब्दी पूर्वकी हैं।

मुख्य वेदीके दायीं और बायीं ओरकी वेदियोंपर तीन-तीन पाषाण प्रतिमाएँ हैं। प्रतिमाओं-पर लेख या लांछन कुछ नहीं है। किन्तु ये प्रतिमाएँ काफी प्राचीन—अनुमानतः ११-१२वीं शताब्दीकी प्रतीत होती हैं।

दायीं ओरके कमरेकी वेदीमें काले पाषाणकी पौने तीन फुटकी भगवान् नेमिनाथकी पद्मासन प्रतिमा है तथा लगभग १५० धातु प्रतिमाएँ हैं।

स्टोरमें एक प्राचीन प्रतिमा पेटीमें रखी हुई है। यह बलुआ पाषाणकी भूरे रंगकी सवा दो फुट अवगाहनावाली पद्मासन प्रतिमा है। यह एक पाषाण फलकमें उत्कीर्ण है। प्रतिमाके नीचे दो सिंह बने हुए हैं। एक ओर यक्ष-यक्षिणी है। मध्यमें शंखका चिह्न है और दायीं ओर हाथ जोड़े हुए सेविका खड़ी है। चरणोंके दोनों ओर चँवरवाहक हैं। उनके ऊपर दो अश्व बने हुए हैं और दो चतुर्भुजी यक्ष उत्कीर्ण हैं। ऊपर दो विद्याधर पुष्पवृष्टि करते हुए दीखते हैं। मूर्तिके चारों ओरका अलंकरण आकर्षक है। यह मूर्ति लगभग ११-१२वीं शताब्दीकी लगती है। यह मूर्ति बीचमें जुड़ी हुई है।

वटेश्वरमें एक जैन धर्मशाला थी। एक और धर्मशाला दानमें प्राप्त हुई है। यह धर्मशाला पुरानी है। इसके जीर्णोद्धारकी आवश्यकता है। यह जिस घाटपर अवस्थित है, वह घाट भी टूटा हुआ है। इसकी मरम्मतकी अविलम्ब आवश्यकता है।

पुरातत्त्व

जैन मान्यतानुसार शौरीपुरका इतिहास महाभारत कालसे भी कुछ पूर्वसे प्रारम्भ होता है। इस जैन मान्यताका समर्थन भारतीय पुरातत्त्व सर्वेक्षण विभागकी ओरसे मार्च सन् १९७२ में किये गये सर्वेक्षणसे भी होता है। केन्द्रीय कार्यालयके निर्देशसे आगरा स्थित पुरातत्त्व सर्वेक्षण विभागकी ओरसे सहायक अधिकारी श्री जगदीशसहाय निगमने वटेश्वर, शौरीपुर आदि स्थानों-

का सर्वेक्षण किया था। फलस्वरूप आपको इस क्षेत्रमें महाभारतकालीन मिट्टीके बरतनोंके अवशेष प्राप्त हुए। ये टुकड़े चाक मिट्टीके बने हुए सिलेटी रंगके हलके और चिकने हैं। ये 'पेण्टैड ग्रेवेयर' किस्मके हैं। 'कार्बन टेस्ट' द्वारा इनका काल महाभारत काल अर्थात् ई. पू. १००० अनुमानित किया गया है। बरतनोंके दूसरे अवशेष मौर्यकालीन हैं अर्थात् ६०० ई. पू. से २०० ई. पू. के। इनपर सुनहरी पालिश है। पुरातत्त्व विशेषज्ञ इन्हें एन. बी. पी. किस्मके अन्तर्गत रखते हैं। इस प्रकार महाभारत कालसे मौर्य काल तककी कड़ीका पता इससे लग चुका है। इस कालमें यह नगर अत्यन्त समृद्ध था। किन्तु कालकी कराल गतिसे इसका अब केवल नाम शेष रह गया है। नगरका प्राचीन वैभव और उसकी सांस्कृतिक समृद्धि टीलोंके नीचे दबी पड़ी है। प्राचीन नगरके ध्वंसावशेष चारों ओर बिखरे पड़े हैं। एक बार क्षेत्र कमेटीने आदिमन्दिरके दक्षिणकी ओर एक टीलेकी खुदाई करायी थी। फलत: उसमें अनेक सांगोपांग तथा खण्डित जैन प्रतिमाएँ निकली थीं। इसी प्रकार एक बार आदिमन्दिरका जीर्णोद्धार करते समय किसी प्राचीन जैनमन्दिरका पलस्तरयुक्त नीचेका भाग मिला था। उसमें एक शिलालेख भी मिला था जिसमें वि. संवत् १२२४ में इस मन्दिरके जीर्णोद्धार होनेका उल्लेख है।

प्रसिद्ध इतिहासविद् टाडने एक लेख[1]में लिखा है--

"एक बार मैं प्राचीन नगरोंके सम्बन्धमें ग्वालियरके एक प्रख्यात जैन भट्टारकके एक शिष्यसे बात कर रहा था, उन्होंने मुझे ३५ वर्ष पूर्वकी एक घटना सुनायी कि शौरीपुरमें एक व्यक्तिको अवशेषोंके बीचमें शीशेका एक टुकड़ा मिला। उसने ले जाकर उसे एक सुनारको दिखाया, जिसने एक रुपया देकर वह खरीद लिया। वास्तवमें यह हीरा था। सुनारने इसे आगरामें जाकर पाँच हजार रुपयेमें बेच दिया। उस गरीबको जब यह पता चला तो उसने सुनारसे उस राशिमेंसे कुछ हिस्सा माँगा। सुनार साफ मुकर गया तो उस व्यक्तिने सुनारसे बहुत झगड़ा किया। इतना ही नहीं, उसने सुनारका खून कर दिया। बादमें उसके ऊपर मुकद्दमा चला।"

"यह कहानी सुनकर मैंने अपने एक मुद्रासंग्राहकको शौरीपुर भेजा। कुछ समय पश्चात् उसने मुझे अपोलोडोटस और पार्थियन राजाओंके कई सिक्के लाकर दिये।"

मि. टाडके इस विवरणसे ज्ञात होता है कि शौरीपुर नगर ईसा पूर्व तीसरी शताब्दीमें व्यापारिक केन्द्र था। बाख्त्री वंशके यूनानी राजा अपोलोडोटस (अपलदत्त) और पार्थववंशी नरेशोंका काल ईसा पूर्व दूसरी-तीसरी शताब्दी माना जाता है। उनके सिक्के व्यापारिक उद्देश्यसे यहाँ लाये गये होंगे।

सरकारकी ओरसे यहाँ सौ वर्ष पहले ए. सी. एल. कार्लाइल आये थे और उन्होंने कुछ खुदाई भी करायी थी। उसके सम्बन्धमें सरकारकी ओरसे रिपोर्ट[2] प्रकाशित हो चुकी है। उसमें कार्लाइलने यहाँके विस्तृत भग्नावशेषोंके सम्बन्धमें लिखा है—

"आसपासमें यहाँ लोगोंमें एक किंवदन्ती प्रचलित है कि एक बार प्राचीन कालमें एक रानी इधरसे जा रही थी। उसने सामने खड़े हुए भवनोंके बारेमें पूछा कि ये भवन कैसे हैं। जब उसे यह पता चला कि ये भवन जैनोंके हैं तो उसने आज्ञा दे दी कि इन्हें नष्ट कर दिया जाये। उसकी आज्ञानुसार सारे भवन और मन्दिर नष्ट कर दिये गये।"

---

१. Royal Asiatic Society. Vol I, p. 314.

२. Archeological Survey of India, Report for the year 1871-72, Vol. IV, by A. C. L. Carlleyle.

इस विवरणसे यह तो पता नहीं चलता कि इस किंवदन्तीमें कितना तथ्य है तथा यह रानी कौन थी और कब हुई। किन्तु इससे यह अवश्य विश्वास होता है कि किसी समय शौरीपुर जैनोंका प्रसिद्ध केन्द्रीय नगर था और वह किसी कारण नष्ट किया गया।

कार्लाइलकी रिपोर्टसे ज्ञात होता है कि उन्हें शौरीपुरमें एक गड्ढेमें एक पद्मासन जैन-प्रतिमा मिली थी। उसके दोनों ओर सेवक थे और शीर्षपर दोनों ओर गज थे। मूर्तिपर कोई लेख नहीं था। मूर्तिका आकार दो फुटका था। वह बलुआ पाषाणकी भूरे वर्णकी थी।

एक मन्दिरकी दीवारमें उन्हें एक शिलालेख मिला था, जिसे वे पढ़ नहीं सके। मन्दिरके निचले भागमें उन्हें तीन विशाल पद्मासन जैन मूर्तियाँ मिलीं जो मिट्टीमें गरदन तक दबी हुई थीं। इनमें दो ठीक थीं किन्तु एकका सिर खण्डित था। ये मूर्तियाँ उन्होंने बाहर निकलवायीं। बड़ी मूर्तिपर वि. संवत् १०८२ या ९२ पढ़ा गया था। यह आदिनाथकी प्रतिमा थी। शेष दोनों प्रतिमाएँ भी इसीके समकालीन होंगी।

कहा जाता है कि यहाँ कोई तहखाना है जहाँ बड़ी संख्यामें प्राचीन मूर्तियाँ और पुरावशेष रखे हैं। उन्होंने यह स्थान खुदवाया तो असफल रहे। वहाँ कुदाली भी काम नहीं दे सकी।

नालेमें और उसके आसपास खुदाई करनेपर उन्हें प्राचीन जैनमन्दिरोंके अवशेष प्राप्त हुए। मन्दिरोंके पीछे ४४ फुट लम्बी-चौड़ी पुरानी नींव भरी हुई है। सम्भवतः वह किसी निर्माणाधीन मन्दिरकी रही होगी। उसमें जिन ईंटोंका प्रयोग किया गया है, उनकी लम्बाई १४-१५ इंच तक है।

एक टीलेपर अनेक मूर्तियोंके भाग इधर-उधर पड़े या दबे मिले, जिनसे विश्वास होता है कि प्राचीन कालमें यहाँ कई मन्दिर रहे होंगे। इन टीलों और खाइयोंमें न जाने कितना पुरातन इतिहास और कला-सामग्री छिपी पड़ी है। वर्षा और बाढ़ोंसे यह सामग्री अधिकाधिक नीचे धसती गयी है।

कार्लाइलको पाँच फुट, चार इंच मोटी प्राचीन दीवार, सुरंग, गोदमें बच्चा लिये हुए पद्मावतीकी मूर्ति दो फुट, तीन इंच ऊँची बादामी रंगकी सर्वतोभद्रिका प्रतिमा भगवान् पार्श्वनाथकी प्रतिमाएँ, अकेले सर्प-फण-मण्डल तथा अनेक खण्डित-अखण्डित प्रतिमाएँ और अन्य सामग्री मिली, जो अधिकांशतः या सर्वांशतः जैन है। इससे यह प्रमाणित होता है कि यह स्थान अति प्राचीन कालसे जैनधर्मका प्रमुख केन्द्र रहा है।

व्यवस्था

पहले क्षेत्रका प्रबन्ध भट्टारक जिनेन्द्रभूषणकी परम्पराके शिष्य और पंचायत द्वारा होता था। यति रामपाल खरौआ इस परम्पराके अन्तिम शिष्य थे। किन्तु दिगम्बर-श्वेताम्बर-संघर्षके समय वि. संवत् १९८१ के श्रावण मासमें इनका कत्ल कर दिया गया। तबसे यहाँका प्रबन्ध निर्वाचित दिगम्बर जैनतीर्थक्षेत्र कमेटी द्वारा होता है।

वार्षिक मेला

बटेश्वर शौरीपुरके निकट यमुना नदीके किनारेपर अवस्थित है। यहाँ यमुनाके किनारे महाराज बदनसिंह द्वारा बनवाये हुए चार मील लम्बे घाट हैं। यहाँ कार्तिक शुक्ला ५ से मगसिर वदी २ तक जैन मेला भरता है। इन्हीं दिनों जैन रथोत्सव होता है। भगवान्की सवारी सम्पूर्ण मेलेके बाजारमें निकलती है। शामको कलशाभिषेक होते हैं। हजारोंकी भीड़

होती है। अजैन लोग भगवान् अजितनाथकी प्रतिमाको मणियादेव कहकर पूजते हैं। यह हिन्दुस्तानका सम्भवतः सबसे बड़ा और प्रसिद्ध मेला है।

मार्ग

आगरासे दक्षिण-पूर्व की ओर वाह तहसीलमें, ७० कि. मी. दूर बटेश्वर कस्बा है। यहाँसे ५ कि. मी. दूर यमुनाके खारोंमें शौरीपुर क्षेत्र है। आगरासे बटेश्वर तक पक्की सड़क है। सरकारी बसें जाती हैं। वाहके लिए भी आगरासे बसें जाती हैं। वाहसे यह स्थान ८ कि. मी. है। शिकोहाबादसे यह २५ कि. मी. है। सड़क पक्की है। मोटर व इक्का जाते हैं। बटेश्वरसे शौरीपुर तक मार्ग कच्चा है। किन्तु कार आदि जा सकती है। पैदल मार्गसे बहुत पास पड़ता है।

चन्दवार

इतिहास

यह फ़ीरोज़ाबादसे चार मील दूर दक्षिणमें यमुना नदीके बायें किनारेपर, आगरा जिलेमें अवस्थित है। यह एक ऐतिहासिक नगर रहा है। आज भी इसके चारों ओर मीलों तक खण्डहर दिखाई पड़ते हैं। यह एक अतिशय क्षेत्र है।

वि. सं. १०५२ में यहाँका शासक चन्द्रपाल नामक दिगम्बर जैन पल्लीवाल राजा था। कहते हैं, उस राजाके[1] नामपर ही इस स्थानका नाम चन्दवार या चन्द्रपाठ पड़ गया। इससे पहले इस स्थानका नाम असाईखेड़ा था। इस नरेशने अपने जीवनमें कई प्रतिष्ठा करायीं। वि. सं. १०५३ में इसने एक फुट अवगाहनाकी भगवान् चन्द्रप्रभकी स्फटिक मणिकी पद्मासन प्रतिमाकी प्रतिष्ठा करायी। इस राजाके मन्त्रीका नाम रामसिंह हारूल था, जो लम्बकंचुक था। इसने भी वि. सं. १०५३-१०५६ में कई प्रतिष्ठाएँ करायी थीं। इसके द्वारा प्रतिष्ठित कतिपय प्रतिमाएँ चन्दवारके मन्दिरमें अब भी विद्यमान हैं। ऐसे भी उल्लेख प्राप्त होते हैं कि चन्दवारमें ५१ प्रतिष्ठाएँ हुई थीं।

इतिहास ग्रन्थोंसे ज्ञात होता है कि चन्दवारमें १०वीं शताब्दीसे लेकर लगभग १५-१६वीं शताब्दी तक जैन नरेशोंका ही शासन रहा है। इस कालमें पल्लीवाल और चौहान वंशका शासन रहा। इन राजाओंके मन्त्री प्रायः लम्बकंचुक (लबेंचू) या जैसवाल होते थे। इन मन्त्रियोंने भी अनेक मन्दिरोंका निर्माण और मूर्तियोंकी प्रतिष्ठाएँ करायीं। इन राजाओंके शासन कालमें यह नगर जन और धन-धान्यसे परिपूर्ण था। नगरमें अनेक जैनमन्दिर थे। राजा सम्भरीरायके समय यदुवंशी साहू जसरथ या दशरथ उनके मन्त्री थे जो जैनधर्मके प्रतिपालक थे। सम्भरीरायके पुत्र सारंग नरेन्द्रके समय दशरथके पुत्र गोकुल और कर्णदेव मन्त्री बने। बादमें वासाधर मन्त्री बनाये गये। कविवर धनपाल कृत बाहुबली चरित्र (रचना काल वि. संवत् १४५४) में लिखा है कि उस समय चन्दवारमें चौहानवंशी सारंग नरेश राज्य कर रहे थे। संघाधिप साहू वासाधर

---

१. हिन्दी विश्वकोष (डॉ. नगेन्द्रनाथ वसु) भाग ७, पृष्ठ १७१ में लिखा है कि चन्द्रपाल इटावा अंचलके एक राजाका नाम था। कहा जाता है कि राजा चन्द्रपालने राज्य-प्राप्तिके बाद चन्द्रवाडमें संवत् १०५३ में एक प्रतिष्ठा करायी थी। इनके द्वारा प्रतिष्ठापित स्फटिक मणिकी एक मूर्ति, जो एक फुटकी अवगाहनावाली है, आठवें तीर्थंकर चन्द्रप्रभ की थी।

उनके मन्त्री थे। ये लम्बकंचुक वंशके थे। इनके पिता सोमदेव कर्णदेव राजाके मन्त्री थे। कविने वासाधरकी प्रेरणासे उक्त काव्य-ग्रन्थकी रचना की थी। इनके पूर्वज वोकर्ण, सोमदेव भी चन्दवार-के नरेशोंके मन्त्री थे। कविवर धनपालने 'बाहुबलि देवचरिउ' में यहाँ अनेक जैनमन्दिर होनेकी सूचना देते हुए लिखा है—

उत्तुंग धवलु सिरि-कय-कलसु
तहि जिणहरु णं वासहर जसु।
मइ गंपि पलोयउ जिण भवणु
बहु समणालउणं सम-सरणु॥
सिरि अरह बिंब पुणु बंदियउ।

कविने नगरका यह वर्णन स्वयं अपनी आँखोंसे देखकर किया है। इस सूचनाके अनुसार एक विशेष बातपर भी प्रकाश पड़ता है कि उस नगरमें भगवान् अरहनाथकी एक प्रतिमा विशेष उल्लेखनीय थी। सम्भवतः यह प्रतिमा अत्यन्त सातिशय थी और उस युग में उस प्रतिमा की ख्याति अत्यधिक थी।

यहाँके कुछ राजाओंके नाम इस प्रकार मिलते हैं जो चौहानवंशी थे—सम्भरीराय, सारंग नरेन्द्र, अभयचन्द्र, जयचन्द, रामचन्द्र। इनके लम्बकंचुक (लबेंचू) मन्त्रियोंके नाम इस प्रकार थे—साहू हल्लण, अमृतपाल, साहू सेढू, कृष्णादित्य। ये सब जैन थे। अमृतपालने एक सुन्दर जिनमन्दिर बनवाया था। कृष्णादित्यने रायवद्दियके जैनमन्दिरका जीर्णोद्धार कराया था।

वि. सं. १२३० में कविवर श्रीधर ने 'भविसयत्त कहा' की रचना इसी नगरमें की थी। उन्होंने इस ग्रन्थकी रचना चन्द्रवाड़ नगर निवासी माथुरवंशी साहू नारायणकी पत्नी रुप्पिणीदेवीके अनुरोधसे की थी।

चन्दवारके निकट ही रपरी नामक एक स्थान है। यहाँ भी जैन राजा राज्य करते थे। जायसवंशी (जैसवाल) कवि लक्ष्मणने रायवद्दिय (रपरी) का वर्णन किया है। यह कवि त्रिभुवनगिरिका रहनेवाला था। यह स्थान बयानासे १४ मील है। सूरसेनवंशी राजा तहनपालने सन् १०४३ में विजयगढ़ (बयाना) या श्रीपथ बसाया था और उसके पुत्र त्रिभुवनपालने त्रिभुवनगिरि बसाया। इसीका नाम बिगड़कर तहनगढ़ बन गया। जब सन् ११९६ में मुहम्मद गोरीने इसपर आक्रमण करके अधिकार कर लिया और अत्याचार किये तो कवि लक्ष्मण वहाँसे भागकर विलराम (एटा जिला) में पहुँचे। वहाँ कुछ समय ठहरकर वे रायवद्दिय (रपरी) आ गये। उस समय यहाँका राजा आहवमल्ल था, जो चन्द्रवाड़ नगरके चौहान वंशसे सम्बन्धित था। इसीने सर्वप्रथम रपरीको अपनी राजधानी बनाया था। इसी राजाके मन्त्री कृष्णादित्यकी प्रेरणासे कविने वि. सं. १३१३ में 'अणुवय रयण पईव' ग्रन्थकी रचना की थी। जब मुहम्मद गोरी-ने यहाँ आक्रमण किया, उस समय यहाँका राजा रपरसेन था। वह गोरीके साथ युद्धमें करखा नामक स्थानपर मारा गया। यहाँ उस कालमें जैनोंकी आबादी बहुत थी।

ऐतिहासिक महत्त्व

इस नगरका अपना ऐतिहासिक महत्त्व भी रहा है और यहाँके मैदानों तथा खारोंमें कई बार इस देशकी भाग्य-लिपि लिखी गयी है। यहाँ कई बार तो ऐसे इतिहासप्रसिद्ध युद्ध हुए हैं, जो भारतपर शासन-सत्ता और आधिपत्यके लिए भी निर्णायक हुए।

इतिहास-ग्रन्थोंसे ज्ञात होता है कि चन्दवारमें एक दुर्भेद्य किला था। सन् ११९४ में

मुहम्मद शहाबुद्दीन गोरी कन्नौज और बनारसकी ओर बढ़ रहा था। कन्नौज नरेश जयचन्द गोरीके उद्देश्यको समझ गया और उसे कन्नौजपर आक्रमण करनेसे रोकनेके लिए भारी सैन्यदल लेकर चन्दवारके मैदानोंमें आ डटा। यहाँ दोनों सेनाओंके बीच भीषण युद्ध हुआ। जयचन्द हाथीपर बैठा हुआ सैन्य संचालन कर रहा था। तभी शत्रुका एक तीर आकर जयचन्दको लगा और वह मारा गया। जयचन्दकी सेना भाग खड़ी हुई। गोरीकी फौजें चन्दवार नगरपर टूट पड़ीं। यहाँसे गोरी लूटका सामान पन्द्रह सौ ऊँटोंपर लादकर ले गया।

सन् १३८९ में सुल्तान फ़ीरोज़शाह तुगलकने चन्दवारके निकटस्थ हतिकान्त नगर, चन्दवार और रपरीपर अधिकार कर लिया। उसके पोते तुगलकशाहने चन्दवारको बिलकुल नष्ट-भ्रष्ट कर दिया। जो मूर्तियाँ बचायी जा सकीं, वे जमुनाकी धारामें छिपाकर बचा ली गयीं। जो रह गयीं वे नष्ट कर दी गयीं।

लोदी-वंशके शासन-कालमें चन्दवार और रपरीपर कई जागीरदारोंने शासन किया। सन् १४८७ में बहलोल लोदीसे रपरीमें जौनपुरके नवाब हुसैन खाँकी करारी मुठभेड़ हुई, जिसमें नवाब बुरी तरह हारा। सन् १४८९ में सिकन्दर लोदीने चन्दवार, इटावाकी जागीर अपने भाई आलमखाँको प्रदान कर दी। उसने रुष्ट होकर बाबरको बुला भेजा। बादमें चन्दवारमें हुमायूँने सिकन्दर लोदीको हरा दिया। शेरशाह सूरीने हुमायूँको हराकर चन्दवारपर अधिकार कर लिया। प्रजामें विद्रोह होनेपर शेरशाहने हतिकान्तमें रहकर विद्रोह को दबा दिया। धीरे-धीरे चन्दवार और उसके आसपासके रपरी, हतिकान्त आदि स्थान, जहाँ कभी जैनोंका वर्चस्व और प्रभाव था, अपना प्रभाव खोते गये। उनकी समृद्धि नष्ट हो गयी। ये विशाल नगर दुर्भाग्य-चक्रमें फँसकर आज मामूली गाँव रह गये हैं, जहाँ थोड़ेसे कच्चे-पक्के घर हैं और चारों ओर प्राचीन खण्डहर बिखरे पड़े हैं, जो इनके प्राचीन वैभवके स्मारक और साक्षी हैं।

क्षेत्रकी स्थिति

यह क्षेत्र फ़ीरोज़ाबादसे चार मील है। मार्ग कच्चा है। केवल एक मन्दिर ही अवशिष्ट है जो गाँवके एक कोनेमें खड़ा है। निकट ही जमुना नदी बहती है। यहाँ चारों ओर खादर और खार बने हुए हैं। यहाँ बस्तीमें कोई जैन घर नहीं है। यहाँका प्रबन्ध फ़ीरोज़ाबादकी दिगम्बर जैन पंचायत करती है। किन्तु डाकूग्रस्त क्षेत्र होनेके कारण यहाँ वर्षमें कुछ इने-गिने जैन ही आनेका साहस करते हैं। अन्यथा तो यह नितान्त उपेक्षित पड़ा हुआ है। संसार कितना परिवर्तन-शील है, यह इस मन्दिरको देखकर स्पष्ट हो जाता है। इस मन्दिर और यहाँकी मूर्तियोंने समृद्धिके उस कालका भोग किया था, जहाँ भक्तोंकी पूजा और स्तुतिगानों, उत्सव और विधानोंसे यह सदा गुंजरित और मुखरित रहता था। किन्तु आज वहाँ भगवान्‌की पूजा तो दूर रही, उनकी मिट्टी और गर्द झाड़नेवाला तक कोई नहीं है।

मन्दिरमें प्रवेश करते ही सहन पड़ता है, जिसके दो ओर दालान बने हुए हैं। उसके आगे एक विशाल गर्भालय है। गर्भालयमें प्रवेश करते ही मुख्य वेदी मिलती है। वेदी चार फुट ऊँची चौकीपर बनी हुई है। वेदी पाषाणकी है और उसके आगे पक्का चबूतरा बना हुआ है। किन्तु वेदीमें कोई मूर्ति नहीं है।

इस वेदीके अतिरिक्त दो वेदियाँ दायें और बायें दालानमें तथा दो वेदियाँ मुख्य वेदीके पीछे दीवालमें बनी हुई हैं। बायीं ओरके दालानकी वेदीमें बलुआ भूरे पाषाणकी एक पद्मासन

प्रतिमा विराजमान है। अवगाहना तीन फुट है। सिंहासन-पीठपर सामने दो सिंह बने हैं। सिरके ऊपर पाषाणका त्रिछत्र सुशोभित है। लांछन और लेख अस्पष्ट हैं।

मुख्यवेदीके पृष्ठ भागमें स्थित बायीं वेदीमें बलुआ भूरे पाषाणकी ढाई फुट ऊँची पद्मासन प्रतिमा है। नीचे सिंहासन-फलकपर दो सिंहोंके बीच वृषभका अंकन है, जिससे स्पष्ट है कि यह आदिनाथ तीर्थंकर की प्रतिमा है। दोनों ओर चमरीवाहक इन्द्र हैं। सिरके ऊपर छत्रत्रयी और पुष्पवर्षिणी देवियाँ अंकित हैं।

पृष्ठ भागकी दायीं वेदीमें हलके कत्थई पाषाणकी ढाई फुट-अवगाहनावाली पद्मासन ऋषभदेवकी प्रतिमा है। दोनों ओर कन्धोंपर जटाएँ पड़ी हुई हैं। जटाओंकी तीन-तीन लटें हैं। इसकी प्रतिष्ठा वि० संवत् १०५६ मार्गशीर्ष सुदी पंचमीको हुई थी। इस प्रकारका लेख मूर्तिके नीचे उत्कीर्ण है।

दायीं ओरके बरामदेकी वेदीमें बलुआ भूरे पाषाणकी पद्मासन प्रतिमा है जो भगवान् ऋषभदेवकी है। इसकी अवगाहना सवा तीन फुट है। चरणोंके नीचे दो सिंह बने हुए हैं। दोनों ओर चमरवाहक इन्द्र खड़े हैं। सिरके दोनों ओर पुष्पमालाएँ हाथोंमें लिये हुए दो देवियाँ दिखाई पड़ती हैं। कन्धोंपर जटाएँ बिखरी हुई हैं। सिरके ऊपर त्रिछत्र हैं। छत्रके दोनों ओर गजराज अपनी सूँड़से कलश उठाये हुए भगवान्का अभिषेक करते दीख पड़ते हैं।

इन वेदियोंकी प्रतिमाओंके अतिरिक्त एक प्रतिमा और भी है, जो विशेष रूपसे उल्लेखनीय है। यह सर्वतोभद्रिका प्रतिमा है। चारों दिशाओंमें चार प्रतिमाएँ खड्गासन मुद्रामें बनी हुई हैं। इसकी अवगाहना ढाई फुट है। प्राचीन जैन मूर्तिकलामें सर्वतोभद्र प्रतिमाओंका भी विशिष्ट स्थान रहा है। ऐसी प्रतिमाएँ अपनी अनिन्द्य कला और अप्रतिम सौन्दर्यके लिए विख्यात रही हैं। प्रस्तुत प्रतिमा भी उसका अपवाद नहीं है। यह भी सम्भव जान पड़ता है कि यह यहाँके मानस्तम्भकी मूर्ति रही हो। आजकल इसे सम्भवतः सुरक्षाकी दृष्टिसे जीनेके ऊपर असुरक्षित दशामें डाल दिया गया है।

उपर्युक्त सभी मूर्तियाँ प्रायः वि० संवत् १०५३ और १०५६ की हैं और यहाँके राजा चन्द्रपालके मन्त्री रामसिंह हारूल द्वारा प्रतिष्ठित जान पड़ती हैं।

किन्तु श्रद्धा और संस्कृतिके आगार इस पुरातन क्षेत्रका, उसके मन्दिरों और मूर्तियोंका विध्वंस कुछ धर्मोन्मत्त मुस्लिम शासकों द्वारा बहुत बुरी तरह किया गया। उनके भग्नावशेष नगरके चारों ओर बिखरे हुए अब तक मिलते हैं। इन अवशेषोंके नीचेसे और मल्लाहोंकी बस्तीके आसपास अब भी कभी-कभी जैन प्रतिमाएँ निकलती हैं। फ़ीरोजाबादके मन्दिरोंमें यहाँसे निकली हुई कई प्रतिमाएँ विराजमान हैं। यह उल्लेखनीय है कि चन्दवारकी जो मूर्तियाँ फ़ीरोज़ाबादके दिगम्बर जैन मन्दिरोंमें अथवा चन्दवारके दिगम्बर जैन मन्दिरमें विराजमान हैं, वे सभी दिगम्बर परम्परा की हैं। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि प्रारम्भसे अर्थात् जबसे यहाँ जैन मन्दिरोंका निर्माण हुआ, अबतक, यह क्षेत्र दिगम्बर परम्पराका रहा और सभी तीर्थंकर मूर्तियाँ दिगम्बर परम्पराकी रहीं। क्षेत्रका अधिकार भी दिगम्बर जैन समाजके हाथोंमें रहा है।

वि० संवत् १४६८ में राजा रामचन्द्रके शासन-कालमें चन्द्रवाड़में भट्टारक अमरकीर्तिका 'षट्कर्मोपदेश' नामक ग्रन्थ लिखा गया जो मूलसंघी गोलालारान्वयी पण्डित असवालके पुत्र विद्याधरने लिखा था।

कविवर रइधूने 'पुण्णासव कहा कोस' की प्रशस्तिमें चन्द्रवाड़ नगरके सम्बन्धमें वर्णन करते

हुए लिखा है—'चन्द्रवाड़ पट्टन कालिन्दी (यमुना) नदीसे चारों तरफ घिरा हुआ है। फिर भी वह धन-कन-कंचन और श्रीसमृद्धिसे परिपूर्ण है।'

इस समय यह नगर व्यापारिक केन्द्र बन गया था। यमुनासे घिरा होनेके कारण बाहरका व्यापार नावों द्वारा होता था। बाहरके अनेक व्यापारी यहाँ आकर व्यापार करते थे। अनेक व्यापारी तो यहींपर स्थायीरूपसे बस गये थे। इनमें से एक व्यापारी योगिनीपुर (दिल्ली) के निवासी साहू तोसउ अग्रवालके चार पुत्रोंमें ज्येष्ठ साहू नेमिदासने यहाँ आकर अतुल धन कमाया। इन्होंने विद्रुम, रत्न और पाषाणकी अनेक जिनमूर्तियाँ बनवायीं और यहाँ एक विशाल जिनमन्दिरका निर्माण करा कर उन्हें इसमें प्रतिष्ठित किया। कविवर रइधूने इस सम्बन्धमें उक्त ग्रन्थमें लिखा है कि—

"बहुविह धाउ-फलिह्-विद्दुम-मउ
कारावेप्पिणु अगणिय पडिमउ।
पातिट्ठाविवि सुहु आवज्जिउ
सिरि तित्थेसर-गोत्तु समज्जिउ।
जि णह-लग्ग सिहरु चेईहरु
पुणु णिम्माविय ससिकर-पह हरु।
णेमिदास णामें संघाहिउ
जिं जिण, संघ, मार णिव्वाहिउ॥"

इन्हीं नेमिदास साहूकी प्रेरणासे कविने इस ग्रन्थकी रचना की थी।

वि. संवत् १५११ में पण्डित धर्मधरने दत्तपल्लीनगरमें जो चन्द्रवाड़के निकट ही था, 'नाग कुमार चरिउ' नामक एक संस्कृत काव्य-ग्रन्थकी रचना की थी। उसमें लिखा है कि धनेश्वरके पुत्र साहू नल्हने चन्द्रवाड़ नगरके जिनालयका जीर्णोद्धार कराया था।

इससे ज्ञात होता है कि इस समय तक राजा रामचन्द्रके पुत्र प्रतापरुद्रके शासन-काल तक यह नगर सम्पन्न रहा। यद्यपि इससे पूर्व भी सन् ११९४ में मुहम्मद गोरीने यहाँ लूटमार की थी किन्तु तब वह नष्ट नहीं हुआ था। किन्तु फ़ीरोजशाह तुगलक और उसके पोते तुगलकशाहने इस नगरको बुरी तरह नष्ट-भ्रष्ट कर दिया। राजा चन्द्रसेनके पुत्र सावन्त सिंहने जब अपनेआपको घिरा हुआ देखा तो उन्होंने भगवान् चन्द्रप्रभकी विख्यात स्फटिक मूर्ति तथा अन्य मूर्तियोंको जमुनामें डाल दिया, जिससे वे नष्ट होनेसे बच जायें। राजा एक सुरंगसे जमुनाके मार्ग द्वारा निकलकर भाग गया। यह भी मान्यता है कि उसने उड़ीसामें जाकर अपना राज्य कायम कर लिया।

अबसे लगभग चार सौ वर्ष पहले फ़ीरोजशाह सूबेदारने चन्दवारका बुरी तरह विध्वंस किया। मन्दिरों और मूर्तियोंको तोड़ डाला, नगर बरबाद कर दिया, और वहाँसे तीन मील हटकर एक नया शहर बसाया, जिसका नाम फ़ीरोज़शाहके नामपर फ़ीरोज़ाबाद रखा गया। यह नगर आगरा जिलेमें आगरा-मैनपुरी रोडपर स्थित है। यह आगरासे ४५ कि. मी. दूर है। यह उत्तर रेलवेके दिल्ली-हावड़ा मुख्य लाइनपर प्रसिद्ध स्टेशन है। यहाँ जानेके लिए रेल और सड़क दोनोंसे ही सुविधा है।

अब तो यह नगर काँचकी चूड़ीके व्यवसायके कारण सारे भारतमें प्रसिद्ध है। यहाँकी बनी हुई चूड़ियाँ न केवल देशमें, अपितु विदेशोंमें भी जाती हैं। यहाँके चूड़ीके व्यवसायने कला और परिमाण, गुण और विस्तार, सभी दृष्टियोंसे विकास किया है।

इस नगरमें कुल २१ दिगम्बर जैन मन्दिर और चैत्यालय हैं। मुहल्ला बड़ामें बड़ा मन्दिर है तथा मुहल्ला चन्द्रप्रभमें विख्यात चन्द्रप्रभ मन्दिर है। चन्द्रप्रभ भगवान्‌की मूर्ति स्फटिक की है। सिंहासन सहित इस मूर्तिकी अवगाहना डेढ़ फुट है। मूर्तिके पीछे दर्शनीय भामण्डल लगा हुआ है। स्फटिककी इतनी बड़ी मूर्ति अन्यत्र कहीं नहीं है।

छोटी छिपैटीके मन्दिरमें भी कुछ प्रतिमाएँ उल्लेख योग्य हैं। यहाँ कुछ ऐसी प्रतिमाएँ हैं जो चन्दवारसे लाकर यहाँ विराजमान की गयी हैं—

यहाँकी मुख्य वेदीमें भगवान् ऋषभदेवकी मूलनायक प्रतिमा विराजमान है। यह सिंहासन समेत दो फुटकी है। यह कृष्ण पाषाणकी पद्मासन मूर्ति है। मूर्ति-लेखसे ज्ञात होता है कि यह वि० संवत् १४३८ में प्रतिष्ठित हुई थी। यह प्रतिमा चन्दवारसे लाकर यहाँ विराजमान की गयी है।

एक शिलाफलकमें १२० प्रतिमाएँ अंकित हैं, जो १५-१५ की आठ पंक्तियोंमें हैं। फलक लाल पाषाणका है। इसकी प्रतिष्ठा वि० संवत् १४६८ कार्तिक सुदी १४ को हुई थी। इस सम्बन्धमें मूर्तिपर लेख भी उत्कीर्ण है।

पीछेकी दो वेदियोंमें चन्दवारसे लायी हुई कुछ मूर्तियाँ विराजमान हैं। एक शिलाफलकमें पाँच बालयतिकी मूर्तियाँ हैं। इसके दोनों ओर दो पद्मासन प्रतिमाएँ हैं जो क्रमशः हलके कत्थई और हरे कत्थई वर्णकी हैं।

एक पाषाण खण्डमें सात प्रतिमाएँ हैं। मध्यमें एक पद्मासन प्रतिमा है। इसके दोनों ओर दो-दो पद्मासन और दो-दो खड्गासन प्रतिमाएँ विराजमान हैं।

किंवदन्ती

भगवान् चन्द्रप्रभकी इस स्फटिक मूर्तिके बारेमें एक किंवदन्ती बहुप्रचलित है। लगभग दो सौ वर्ष पहले यमुनामें भीषण बाढ़ आनेके कारण चन्दवार-मन्दिरकी मूर्तियाँ बह गयीं। यह स्फटिक मूर्ति भी बह गयी थी। तभी फ़ीरोज़ाबादके पंचोंको रातमें इस सम्बन्धमें स्वप्न हुआ। प्रातःकाल होते ही पंचोंने अपने स्वप्नकी चर्चा की। सबको एक सा ही स्वप्न सुनकर सारे नगरमें सनसनी व्याप्त हो गयी। तब उत्सुक जनसमूहके साथ पंच लोग चन्दवार पहुँचे। स्वप्नके अनुसार उन्होंने सावन-भादोंकी घहराती हुई यमुनामें फूलोंकी एक टोकरी छोड़ी। वह टोकरी जहाँ रुक गयी, वहाँ धीरे-धीरे पानी उतरता गया। कुछ भक्तजन शुद्ध वस्त्र पहन और णमोकार मन्त्रका स्मरण कर जहाँ फूलोंकी टोकरी स्थिर हो गयी थी, वहाँ पानीके भीतर घुसे। पानीमें तलाश करनेपर मय सिंहासनके चन्द्रप्रभ भगवान्‌की मूर्ति मिली। मूर्ति प्राप्त होते ही जन-जनके मानसमें हर्षकी तरंग लहराने लगी। सभीने बड़े भक्तिभावसे भगवान्‌के दर्शन किये और मूर्तिको फ़ीरोज़ाबाद ले जाकर मन्दिरमें विराजमान किया। तभीसे यहाँ उस प्रतिमाकी बड़ी मान्यता है और उसके सम्बन्धमें जनतामें नाना भाँतिके चमत्कारोंकी किंवदन्तियाँ प्रचलित हैं।

जनतामें इस मूर्तिके सम्बन्धमें यह भी धारणा व्याप्त है कि यह मूर्ति चतुर्थकालकी है। अर्थात् इस मूर्तिका निर्माण भगवान् महावीर या उनसे पूर्ववर्ती कालमें हुआ होगा।

जैन मेला-भूमि

यहाँ नगरके बाहर जैन नशियाके समीप ही एक विशाल भूमि-खण्ड है, जिसे जैन मेला-भूमि कहते हैं। यहाँ दिगम्बर जैन पंचायतकी ओरसे यह मेला भरता है। यह मेला आगरा जिलेके

धार्मिक मेलोंमें अपना प्रमुख स्थान रखता है। सरकारकी ओरसे मेलेके लिए बहुत सी विशेष सुविधाएँ भी दी जाती हैं। इस भूमिपर शताब्दियोंसे जैनोंका अधिकार चला आ रहा है। सन् १९६८ में एक व्यक्तिने इस भूमिपर बलात् अधिकार करनेका प्रयत्न किया था। किन्तु जैनोंने अपने परम्परागत शान्तिपूर्ण और अहिंसात्मक ढंगसे इसका प्रतिरोध किया। मामला बढ़ता गया। फलतः अपने धार्मिक अधिकारोंकी रक्षाके लिए सैकड़ों जैन बन्धुओंने कारावास भी स्वीकार किया।

दर्शनीय जिन-मन्दिर

सन् १९५१ में यहाँके प्रसिद्ध उद्योगपति सेठ छदामीलालजीने एक पारमार्थिक ट्रस्टकी स्थापना की और वेदी-प्रतिष्ठाका आयोजन किया। उसके साथ औद्योगिक प्रदर्शनी और अन्य कई सांस्कृतिक आयोजन भी रखे गये। इस समय आचार्य सूर्यसागरजी तथा क्षुल्लक गणेशप्रसादजी वर्णी भी पधारे थे। इस अवसरपर सेठ छदामीलाल जी ने बीस लाख रुपयोंसे 'श्री छदामीलाल जैन पारमार्थिक ट्रस्ट' नामसे एक ट्रस्टकी स्थापनाकी घोषणा भी की। इसी ट्रस्टकी ओरसे जैन नगरमें एक विशाल और कलापूर्ण जैन मन्दिरका निर्माण किया गया। सम्पूर्ण मन्दिर संगमरमरका बना हुआ है। इसमें खुली हुई वेदीमें भगवान् महावीरकी सात फुट अवगाहनावाली श्वेत पाषाणकी पद्मासन प्रतिमा कमलासनपर विराजमान है। यह मन्दिर मोती पार्कमें बना हुआ है। मन्दिरके दोनों पार्श्वोंमें सरस्वती देवी जैन धर्मशाला, कानजी स्वामी पुस्तकालय, मोतीलाल जैन पारमार्थिक औषधालयके भवन बने हुए हैं। मन्दिरके पृष्ठ भागमें पुष्प-वाटिका और जैन म्यूजियम बना है। म्यूजियमके सामने तीस फुट ऊँची बाहुबली स्वामीकी संगमरमरकी प्रतिमा स्थापित करनेकी योजना है। यह प्रतिमा निर्माणाधीन है। ट्रस्टकी ओरसे छदामीलाल जैन डिग्री कॉलेज भी चल रहा है। मन्दिर दर्शनीय है।

मरसलगंज

अतिशय क्षेत्र

श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र ऋषभनगर मरसलगंज उत्तर प्रदेशके आगरा जिलेमें फ़ीरोज़ाबादसे २२ किलोमीटर दूर है। यहाँ अब जैनोंका कोई घर नहीं है। किन्तु इसके पास ही, लगभग चार फर्लांगपर फरिहा नामक एक कस्बा है, जहाँ जैनोंके ३५ घर हैं। कहा जाता है, पहले मरसलगंजमें जैनोंकी अच्छी आबादी थी, लगभग दो सौ जैन घर थे। उस समय यह नगर धन-धान्य पूर्ण था और यहाँ एक छोटा-सा जैन मन्दिर बना हुआ था। पन्द्रहवीं शताब्दीमें बाबा ऋषभदास नामक एक क्षुल्लक यहाँ पधारे। ये दक्षिणके रहनेवाले ब्राह्मण थे, किन्तु जैन धर्मके कट्टर अनुयायी थे। ये मन्त्र-तन्त्रके भी अच्छे जानकार थे। उनकी प्रेरणा और प्रयत्नसे उस छोटे से मन्दिरके स्थानपर वर्तमान विशाल मन्दिरका निर्माण किया गया और बड़े समारोहपूर्वक उसकी प्रतिष्ठा भी उन्हीं बाबाजी द्वारा की गयी। बाबा ऋषभदासके सम्बन्धमें उस समयकी अनेक चामत्कारिक घटनाएँ अब तक आसपासमें प्रचलित हैं। उन्होंने स्वयं कहींसे भगवान् ऋषभदेवकी एक मनोज्ञ और सातिशय प्रतिमा लाकर मुख्य वेदीमें विराजमान करायी। उस प्रतिमाके दर्शनोंके लिए दूर-दूरसे लोग आने लगे। धीरे-धीरे उस प्रतिमाके चमत्कारों और

अतिशयोंकी चर्चा चारों ओर फैलने लगी। इस प्रकार मरसलगंज एक अतिशय क्षेत्रके रूपमें प्रसिद्ध हो गया।

वर्तमान स्थिति

कालान्तरमें यहाँ जैनोंका एक भी घर नहीं रहा। ऐसी स्थितिमें कुछ लोगोंने क्षेत्रकी भूमिपर अपना अधिकार करनेका प्रयत्न किया। किन्तु क्षेत्र कमेटीने हर प्रकारसे क्षेत्रके हितोंकी रक्षा की। अब तो लम्बी चहारदीवारी बनवा दी गयी है जिसमें विजयद्वार और अभयद्वार बने हैं। चहारदीवारीके भीतर ही मेलेके लिए अलग परिधि खींचकर उसमें ऋषभद्वार, दौलतद्वार और माणिकद्वार बनाये गये हैं तथा एक सुन्दर अहिंसा ध्वजस्तम्भ (घण्टाघर) भी बना है। इस स्तम्भपर क्षेत्रका परिचय, जैन धर्मका परिचय तथा प्रमुख दानदाताओंकी नामावली अंकित है।

क्षेत्रपर केवल एक ही मन्दिर है। मुख्य वेदीमें भगवान् ऋषभदेवकी श्वेत पाषाणकी पद्मासन प्रतिमा है, जिसकी अवगाहना पौने दो फुट है तथा जिसके आसनपर लेख है। उसके अनुसार इसकी प्रतिष्ठा वि० संवत् १५४५ में हुई थी। मूलनायक प्रतिमाके अतिरिक्त पाँच पाषाण प्रतिमाएँ और, ग्यारह धातु प्रतिमाएँ हैं। धातु प्रतिमाओंमें एक चौबीसी भी है। पाषाण प्रतिमाओंमें चार इंच अवगाहनावाली पार्श्वनाथ भगवान्की एक प्रतिमा है जो लगभग पाँच सौ वर्ष प्राचीन प्रतीत होती है।

दो वेदियाँ और हैं। बायीं वेदीमें मूलनायक शान्तिनाथ भगवान्के अतिरिक्त आठ पाषाण-प्रतिमाएँ तथा वेदीके दोनों ओर पाँच फुट अवगाहनावाली दो खड्गासन प्रतिमाएँ हैं। ये सभी प्रतिमाएँ आधुनिक हैं।

दायीं ओरकी वेदीमें भगवान् नेमिनाथकी कृष्ण वर्ण मूलनायक प्रतिमा है तथा इसके अतिरिक्त सात प्रतिमाएँ और हैं। ये प्रतिमाएँ भी आधुनिक हैं।

इन अरहन्त प्रतिमाओंके अलावा आचार्य सुधर्मसागरजी, आचार्य महावीर कीर्तिजी और आचार्य विमलसागरजीकी भी पाषाण प्रतिमाएँ ध्यान मुद्रामें विराजमान हैं।

इस मन्दिरसे सटा हुआ एक हाल बना है, जिसमें खुली वेदीमें भगवान् ऋषभदेवकी श्वेत पाषाणकी सात फुट अवगाहनावाली भव्य पद्मासन प्रतिमा विराजमान है। इसका भार ३५० मन है।

फरिहामें दो मन्दिर हैं। बड़ा मन्दिर दर्शनीय है। यहाँ चारों ओर लहलहाते हुए वृक्षों और सुन्दर जलवायुने क्षेत्रकी आध्यात्मिक शान्ति और सौन्दर्यको अत्यधिक बढ़ा दिया है।

प्राचीन मन्दिरके नीचे बाबा ऋषभदासजीकी ध्यानगुफा है।

वार्षिक मेला

यहाँ प्रति तीसरे वर्ष मेला होता है।

मार्ग

यहाँ पहुँचनेके लिए समीपका रेलवे स्टेशन फ़ीरोज़ाबाद है। यह क्षेत्रसे २२ कि. मी. दूर है। फरिहा-कोटला-फ़ीरोज़ाबाद रोड, टूण्डला-एटा रोड, फरिहा-मैनपुरी रोडसे बस द्वारा फरिहा पहुँचा जा सकता है। फरिहासे यह क्षेत्र ४ फर्लांग है। रास्ता कच्चा है जो आशा है कुछ समय बाद पक्का हो जायेगा।

उत्तराखण्ड जनपद

अष्टापद
श्रीनगर

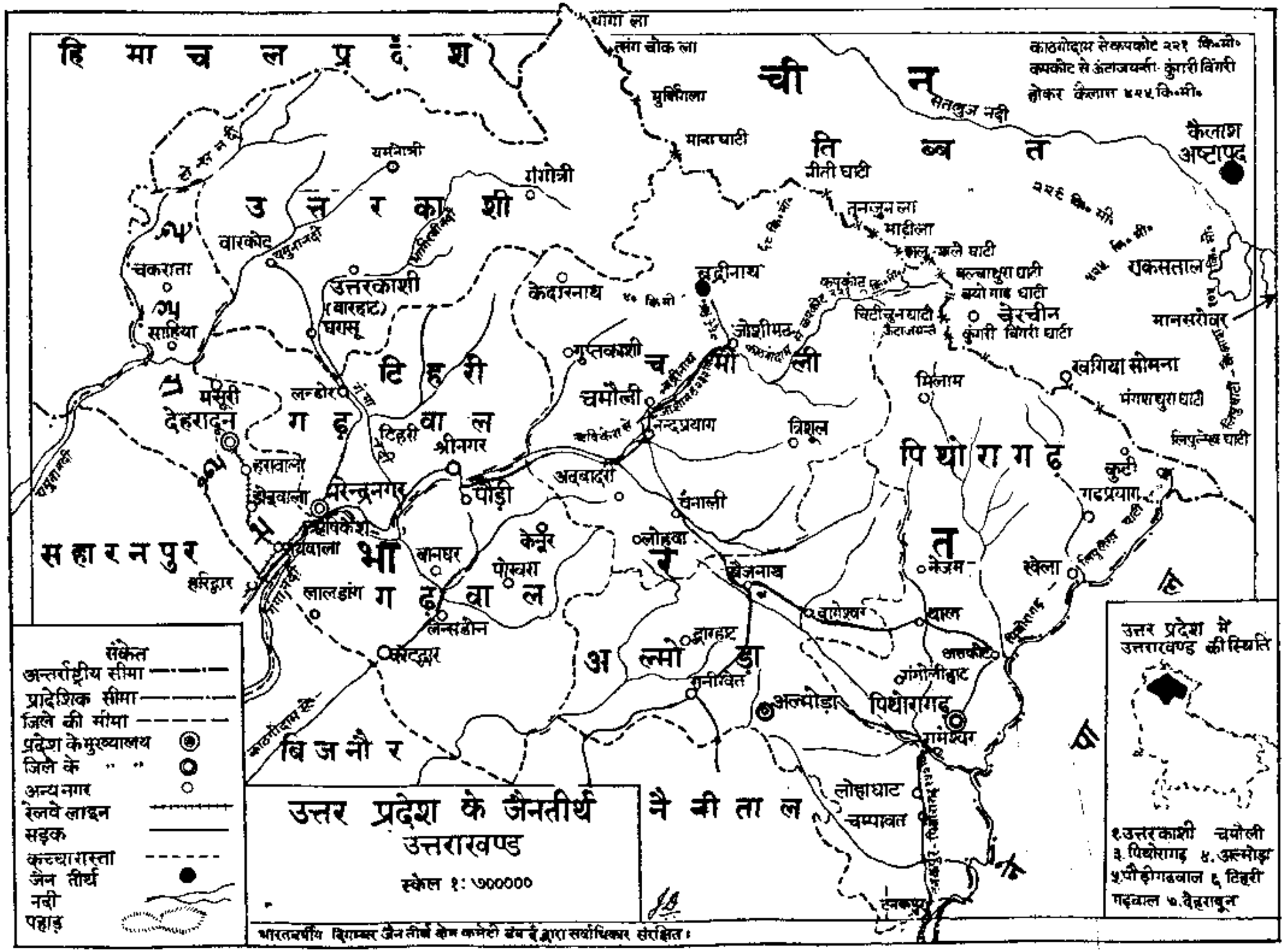

१. भारत के महासर्वेक्षक की अनुज्ञानुसार भारतीय सर्वेक्षण विभागीय मानचित्र पर आधारित। Ⓒ भारत सरकार का प्रतिलिप्यधिकार, १९७१

२. इस मानचित्र में दिये गये नामों का अक्षर विन्यास विभिन्न सूत्रों से लिया गया है।

उत्तराखण्ड जनपद

क्षेत्र—कैलाश (बद्रीनाथ, कैलाश, अष्टापद), श्रीनगर

अष्टापद

निर्वाण क्षेत्र—

अष्टापद निर्वाण क्षेत्र है।

'अट्ठावयम्मि ऋसहो' यह प्राकृत निर्वाण भक्तिकी प्रथम गाथाका प्रथम चरण है। इसका अर्थ यह है कि ऋषभदेव भगवान् अष्टापद पर्वतसे मुक्त हुए। अष्टापदका दूसरा नाम कैलाश है।

हरिवंश पुराणके कर्ता और आचार्य जिनसेनने भगवान् ऋषभदेवके मुक्ति-गमनसे पूर्व कैलाश पर्वतपर ध्यानारूढ़ होनेका बड़ा मार्मिक चित्रण किया है।

इत्थं कृत्वा समर्थं भवजलधिजलोत्तारणे भावतीर्थं
कल्पान्तस्थायि भूयस्त्रिभुवनहितकृत् क्षेत्रतीर्थं च कर्तुम्।
स्वाभाव्यादारुरोह श्रमणगणसुरव्रातसम्पूज्यपादः
कैलासाख्यं महाद्रिं निषधमिव वृषादित्य इद्ध प्रभाढ्यः॥

—हरिवंश पुराण, १२-८०

अर्थात् मुनिगण और देवोंसे पूजित चरणोंके धारक श्री वृषभ जिनेश्वर संसाररूपी सागरके जलसे पार करनेमें समर्थ रत्नत्रय रूप भावतीर्थका प्रवर्तन कर कल्पान्त काल तक स्थिर रहनेवाले एवं त्रिभुवन जन हितकारी क्षेत्रतीर्थको प्रवर्तन करनेके लिए स्वभावतः कैलाश पर्वतपर इस तरह आरूढ़ हो गये, जिस तरह देदीप्यमान प्रभाका धारक वृषका सूर्य निषधाचलपर आरूढ़ होता है।

इसके पश्चात् आचार्यने कैलाशगिरिसे भगवान्के मुक्ति-गमनका वर्णन करते हुए लिखा है—

तस्मिन्नद्रौ जिनेन्द्रः स्फटिकमणिशिला जालरम्ये निषण्णो
योगानां सन्निरोधं सह दशभिरथो योगिनां यैः सहस्रैः।
कृत्वा कृत्वान्तमन्ते चतुरपदमहाकर्मभेदस्य शर्म-
स्थानं स्थानं स सैद्धं समगमदमलस्रग्धराभ्यर्च्यमानः॥१२।८१

अर्थात् स्फटिक मणिकी शिलाओंसे रमणीय उस कैलाश पर्वतपर आरूढ़ होकर भगवान्ने एक हजार राजाओंके साथ योग निरोध किया और अन्तमें चार अघातिया कर्मोंका अन्त कर निर्मल मालाओंके धारक देवोंसे पूजित हो अनन्त सुखके स्थानभूत मोक्ष स्थानको प्राप्त किया।

भरत और वृषभसेन आदि गणधरोंने भी कैलाश पर्वतसे ही मोक्ष प्राप्त किया—

शैलं वृषभसेनाद्यैः कैलाशमधिरुह्य सः।
शेषकर्मक्षयान्मोक्षमन्ते प्राप्तः सुरैः स्तुतः॥

—हरिवंशपुराण, १३।६

मुनिराज भरत आयुके अन्तमें वृषभसेन आदि गणधरोंके साथ कैलाश पर्वतपर आरूढ़ हो गये और शेष कर्मोंका क्षय करके वहींसे मोक्ष प्राप्त किया।

श्री बाहुबली स्वामीको कैलाश पर्वतसे निर्वाण प्राप्त हुआ। इस सम्बन्धमें आचार्य जिनसेन आदिपुराणमें उल्लेख करते हैं—

इत्थं स विश्वविद्विश्वं प्रीणयन् स्ववचोऽमृतैः।
कैलासमचलं प्रापत् पूतं संनिधिना गुरोः ॥३६।२०३

अर्थात् समस्त विश्वके पदार्थोंको जाननेवाले बाहुबली अपने वचनरूपी अमृतके द्वारा समस्त संसारको सन्तुष्ट करते हुए पूज्य पिता भगवान् ऋषभदेवके सामीप्यसे पवित्र हुए कैलाश पर्वतपर जा पहुँचे।

—अयोध्या नगरीके राजा त्रिदशंजयकी रानी इन्दुरेखा थी। उनके जितशत्रु नामक पुत्र था। जितशत्रुके साथ पोदनपुर नरेश व्यानन्दकी पुत्री विजयाका विवाह हुआ था। द्वितीय तीर्थंकर अजितनाथ इन्हींके कुलदीपक पुत्र थे। भगवान्के[1] पितामह त्रिदशंजयने मुनि-दीक्षा ले ली और कैलाश पर्वतसे मुक्त हुए।

—सगर चक्रवर्तीके उत्तराधिकारी भगीरथ नरेशने कैलाशमें जाकर मुनि-दीक्षा ली और गंगा-तटपर तप करके मुक्त हुए।

—प्राकृत निर्वाण भक्तिमें अष्टापदसे निर्वाण प्राप्त करनेवाले कुछ महापुरुषोंका नाम-स्मरण करते हुए उन्हें नमस्कार किया गया है। उसमें आचार्य कहते हैं—

णायकुमार मुणिन्दो बाल महाबाल चेव अच्छेया।
अट्ठावयगिरि-सिहरे णिव्वाण गया णमो तेसिं ॥१५॥

अर्थात् अष्टापद शिखरसे व्याल, महाव्याल, अच्छेद्य, अभेद्य और नागकुमार मुनि मुक्त हुए।

—हरिषेण चक्रवर्तीका पुत्र हरिवाहन था। उसने कैलास पर्वतपर दीक्षा ली और वहींसे निर्वाण प्राप्त किया।

हरिवाहन दुद्धर बहु धरहु। मुनि हरिषेण अंगु तउ चरिउ।
घातिचउक्क कम्म खऊ कियऊ। केवल णाण उदय तब हयऊ ॥
निरु सचराचरु पेखिउ लोउ। पुणि तिणिजाय दियउ निरुजोउ ॥
अन्त यालि सन्यास करेय। अट्ठसिद्धि गुणि हियऊ धरेउ ॥
सुद्ध समाधि चयेविय पाण। निरुवम सुह पत्तइ निव्वाण ॥

—कवि शंकर कृत हरिषेण चरित, ७०७-७०९
(एक जीर्ण गुटकेपर-से—रचना काल १५२६)

विविध तीर्थंकल्पमें आचार्य जिनप्रभ सूरिने 'अष्टापद कल्प' नामक कल्पकी रचना की है। उसमें लिखा है—

—इन्द्रने अष्टापदपर रत्नत्रयके प्रतीक तीन स्तूप बनाये।

—भरत चक्रवर्तीने यहाँ चार सिंहनिषद्या बनवायीं, जिनमें सिद्ध प्रतिमाएँ विराजमान करायीं। इनके अतिरिक्त उन्होंने चौबीस तीर्थंकरों और अपने भाइयोंकी प्रतिमाएँ भी विराजमान करायीं। उन्होंने यहाँ चौबीस तीर्थंकरों और निन्यानवे भाइयोंके स्तूप भी बनवाये थे।

---

१. उत्तरपुराण, ४८।१४१

—भगवान् ऋषभदेवके मोक्ष जानेपर उनकी चिता देवोंने पूर्व दिशामें बनायी। भगवान्के साथ जो मुनि मोक्ष गये थे, उनमें जो इक्ष्वाकुवंशी थे, उनकी चिता दक्षिण दिशामें तथा शेष मुनियोंकी चिता पश्चिम दिशामें बनायी गयी। बादमें तीनों दिशाओंमें चिताओंके स्थानपर देवोंने तीन स्तूपोंकी रचना की।

अनेक जैन ग्रन्थोंमें उल्लेख मिलता है कि कैलासपर भरत चक्रवर्ती तथा अन्य अनेक राजाओंने रत्न प्रतिमाएँ स्थापित करायी थीं। यथा—

कैलास शिखरे रम्ये यथा भरतचक्रिणा।
स्थापिताः प्रतिमा वर्ण्या जिनायतनपंक्तिषु॥
तथा सूर्यप्रभेणापि·········

—हरिषेण कथाकोष, ५६।५

—जिस प्रकार मनोहर कैलाश शिखरपर भरतचक्रवर्तीने जिनालयोंकी पंक्तियोंमें नाना वर्णवाली प्रतिमाएँ स्थापित की थीं, उसी प्रकार सूर्यप्रभ नरेशने मलयगिरिपर स्थापित कीं।

भरतचक्रवर्तीने चौबीस तीर्थंकरोंकी जो रत्न-प्रतिमाएँ प्रतिष्ठित की थीं, उनका अस्तित्व कब तक रहा, यह तो असन्दिग्ध रूपसे नहीं कहा जा सकता, किन्तु इन मन्दिरों और मूर्तियोंका अस्तित्व चक्रवर्तीके पश्चात् सहस्राब्दियों तक रहा, इस प्रकारके स्फुट उल्लेख जैन वाङ्मयमें हमें यत्र-तत्र मिलते हैं। द्वितीय चक्रवर्ती सगरके साठ हजार पुत्रोंने जब अपने पितासे कुछ कार्य करनेकी आज्ञा माँगी तब विचार कर चक्रवर्ती बोले—

राज्ञाप्याज्ञापिता यूयं कैलासे भरतेशिना।
गृहाः कृता महारत्नैश्चतुर्विंशतिरर्हताम्॥
तेषां गङ्गां प्रकुर्वीध्वं परिखां परितो गिरिम्।
इति तेऽपि तथाकुर्वन् दण्डरत्नेन सत्वरम्॥

—उत्तरपुराण, ४८।१०७-१०८

अर्थात् राजा सगरने भी आज्ञा दी कि भरत चक्रवर्तीने कैलाश पर्वतपर महारत्नोंसे अरहन्तोंके चौबीस मन्दिर बनवाये थे। तुम लोग उस पर्वतके चारों ओर गंगा नदीको उन मन्दिरोंकी परिखा बना दो। उन राजपुत्रोंने भी पिताकी आज्ञानुसार दण्डरत्नसे वह काम शीघ्र ही कर दिया।

इस घटनाके पश्चात् भरत चक्रवर्ती द्वारा कैलास पर्वतपर बनाये हुए जिन मन्दिरोंका उल्लेख वाली मुनिके प्रसंगमें आता है। एक बार लंकापति दशानन नित्यालोक नगरके नरेश नित्यालोककी पुत्री रत्नावलीसे विवाह करके आकाश मार्गसे जा रहा था। किन्तु कैलाश पर्वतके ऊपरसे उड़ते समय उसका पुष्पक विमान सहसा रुक गया। दशाननने विमान रुकनेका कारण जानना चाहा तो उसके अमात्य मारीचने कहा—"देव! कैलाश पर्वतपर एक मुनिराज प्रतिमा-योगसे विराजमान हैं। वे घोर तपस्वी प्रतीत होते हैं। इसीलिए यह विमान उनको अतिक्रमण नहीं कर सका है। दशाननने उस पर्वतपर उतर मुनिराजके दर्शन किये। किन्तु वह देखते ही पहचान गया कि यह बाली है। उनके साथ अपने पूर्व संघर्षका स्मरण करके वह बड़े क्रोधमें भरकर बोला—अरे दुर्बुद्धि! तू बड़ा तप कर रहा है कि अभिमानसे मेरा विमान रोक लिया, मैं तेरे इस अहंकारको अभी नष्ट किये देता हूँ। तू जिस कैलाश पर्वतपर बैठा है, उसे उखाड़ कर तेरे ही साथ अभी समुद्रमें फेंकता हूँ।" यह कहकर दशाननने ज्योंही अपनी भुजाओंसे विद्या-बलकी सहायतासे कैलाशको उठाना प्रारम्भ किया, मुनिराज बालीने अवधिज्ञानसे दशाननके इस दुष्कृत्यको जान लिया।

तब वे विचार करने लगे—

कारितं भरतेनेदं जिनायतनमुत्तमम् ।
सर्वरत्नमयं तुङ्गं बहुरूप विराजितम् ॥
प्रत्यहं भक्तिसंयुक्तैः कृतपूजं सुरासुरैः ।
मा विनाशि चलत्यस्मिन् पर्वते भिन्न पर्वणि ॥

—पद्मपुराण ९।१४७-१४८

अर्थात् भरत चक्रवर्तीने ये नाना प्रकारके सर्व रत्नमयी ऊँचे-ऊँचे जिनमन्दिर बनवाये हैं। भक्तिसे भरे हुए सुर और असुर प्रतिदिन इनकी पूजा करते हैं। अतः इस पर्वतके विचलित हो जानेपर कहीं ये जिनमन्दिर नष्ट न हो जावें।

ऐसा विचार कर मुनिराजने पर्वतको अपने पैरके अँगूठेसे दबा दिया। दशानन दब गया और बुरी तरह रोने लगा। तभीसे ही उसका नाम रावण पड़ गया। तब दयावश उन्होंने अँगूठा ढीला कर दिया और रावण पर्वतके नीचेसे निकलकर निरभिमान हो मुनिराजकी स्तुति करने लगा। महामुनि वाली घोर तपस्या करके कैलाशसे मुक्त हुए।

इस घटनासे यह निष्कर्ष निकलता है कि उस काल तक भरत द्वारा निर्मित जिन-मन्दिर विद्यमान थे। किन्तु पंचम कालमें ये नष्ट हो गये, इस प्रकारकी निश्चित सूचना भविष्यवाणीके रूपमें प्राप्त होती है—

कैलास पर्वते सन्ति भवनानि जिनेशिनां ।
चतुर्विंशति संख्यानि कृतानि मणिकाञ्चनैः ॥
सुरासुर-नराधीशैर्वन्दितानि दिवानिशम् ।
यास्यन्ति दुःषमे काले नाशं तस्करादिभिः ॥

—हरिषेण बृहत्कथा, कोष ११९

अर्थात् कैलाश पर्वतपर मणिरत्नोंके बने हुए तीर्थंकरोंके चौबीस भवन हैं। सुर, असुर और राजा लोग उनकी दिनरात वन्दना करते रहते हैं। दुःषम (पंचम) कालमें तस्कर आदिके द्वारा वे नष्ट हो जायेंगे।

जैन पुराण-ग्रन्थोंसे ज्ञात होता है कि चतुर्थ कालमें कैलाश यात्राका बहुत रिवाज था। विद्याधर विमानों द्वारा कैलाशकी यात्राको जाते रहते थे। अंजना और पवनंजयका विवाह सम्बन्ध कैलाशकी यात्राके समय ही हुआ था। पवनंजयके पिता राजा प्रह्लाद और अंजनाके पिता राजा महेन्द्र दोनों ही फाल्गुनी अष्टाह्निकामें कैलाशकी वन्दनाके लिए गये थे। वहींपर दोनों मित्रोंने अपने पुत्र और पुत्रीका सम्बन्ध कर विवाह कर दिया।

विद्याधरोंकी कैलाश-यात्राके ऐसे अनेक प्रसंगोंका उल्लेख जैन पुराण साहित्यमें उपलब्ध होता है :

कैलाशकी स्थिति

कैलाशकी आकृति ऐसे लिंगाकारकी है जो षोडश दलवाले कमलके मध्य खड़ा हो। उन सोलह दलवाले शिखरोंमें सामनेके दो शृंग झुककर लम्बे हो गये हैं। इसी भागसे कैलाशका जल गौरी कुण्डमें गिरता है।

कैलाश इन पर्वतोंमें सबसे ऊँचा है। उसका रंग कसौटीके ठोस पत्थर जैसा है। किन्तु बर्फसे ढँके रहनेके कारण वह रजत वर्ण प्रतीत होता है। दूसरे शृंग कच्चे लाल मटमैले पत्थरके

हैं। कैलाशके शिखरकी ऊँचाई समुद्र तलसे १९००० फुट है। इसकी चढ़ाई डेढ़ मीलकी है जो कि बहुत ही कठिन है।

कैलाशकी ओर ध्यान पूर्वक देखनेसे एक आश्चर्यजनक बात दृष्टिमें आती है। वह यह है कि कैलाशके शिखरके चारों कोनोंमें ऐसी मन्दिराकृति स्वतः बनी हुई है, जैसे बहुतसे मन्दिरोंके शिखरोंपर चारों ओर बनी होती हैं।

तिब्बतकी ओरसे यह पर्वत ढलानवाला है। उधर तिब्बतियोंके बहुत मन्दिर बने हुए हैं। बहुतसे तिब्बती तो इसकी बत्तीस मीलकी परिक्रमा दण्डवत् प्रणिपात द्वारा लगाते हैं। 'लिंग-पूजा' शब्दका प्रचलन तिब्बतसे ही प्रारम्भ हुआ है। तिब्बती भाषामें लिंगका अर्थ क्षेत्र[१] या तीर्थ है। अतः लिंग-पूजाका अर्थ तीर्थ-पूजा हुआ।

कैलाश और अष्टापद

प्राकृत निर्वाण भक्तिमें 'अट्ठावयम्मि ऋसहो' अर्थात् ऋषभदेवकी निर्वाण भूमि अष्टापद बतलायी गयी है। किन्तु कहीं 'कैलासे वृषभस्य निर्वृत्तिमही' अर्थात् कैलाशको वृषभदेवकी निर्वाण भूमि माना है। संस्कृत निर्वाण भक्तिमें भी अष्टापदके स्थानपर कैलाशको ही ऋषभदेवका निर्वाण धाम माना गया है। (कैलाशशैलशिखरे परिनिर्वृतोऽसौ। शैलेशिभावमुपपद्य वृषो महात्मा॥) निर्वाण-क्षेत्रोंका नामोल्लेख करते हुए संस्कृत निर्वाण काण्डमें एक स्थानपर कहा गया है— 'सह्याचले च हिमवत्यपि सुप्रतिष्ठे।' इसमें सम्पूर्ण हिमवान् पर्वतको ही सिद्धक्षेत्र माना गया है।

यहाँ विचारणीय यह है कि क्या कैलाश और अष्टापद पर्यायवाची शब्द हैं? यह भी अवश्य विचारणीय है कि कैलाश अथवा अष्टापदको निर्वाण क्षेत्र मान लेनेके पश्चात् सम्पूर्ण हिमवान् पर्वत (हिमालय) को निर्वाणभूमि माननेका क्या रहस्य है। यदि सम्पूर्ण हिमालय पर्वतको निर्वाण भूमि माना गया तो उसमें कैलाश नामक पर्वत तो स्वयं अन्तर्भूत था, फिर कैलाशको पृथक् निर्वाण क्षेत्र क्यों माना गया? इस प्रकारके प्रश्नोंका समाधान पाये बिना उपर्युक्त आर्ष कथनोंमें सामंजस्य नहीं हो पाता।

पहले प्रश्नका समाधान हमें विविध तीर्थकल्प (अष्टापद गिरि कल्प ४९) में मिल जाता है। उसमें लिखा है—

"तीसे (अउज्झा) अ उत्तरदिसाभाए बारसाजोअणेसुं अट्ठावओ नाम कैलासापरभिहाणो रम्भो नगवरो अट्ठजोअणुच्ची सच्छफालिहसिलामओ, इत्तुच्चिअलोगे धवलगिरित्ति पसिद्धो।"

अर्थात् अयोध्याके उत्तर दिशा भागमें बारह योजन दूर अष्टापद नामक सुरम्य पर्वत है, जिसका दूसरा नाम कैलाश है। यह आठ योजन ऊँचा है और निर्मल स्फटिक शिलाओंसे युक्त है। यह लोकमें धवलगिरिके नामसे भी प्रसिद्ध है।

इस उल्लेखसे यह सिद्ध हो जाता है कि अष्टापद, कैलाश और धवलगिरि ये सब समानार्थक और पर्यायवाची हैं।

इससे पहले प्रश्नका उत्तर तो मिल जाता है कि अष्टापद और कैलाश पर्यायवाची हैं, किन्तु शेष प्रश्नोंका उत्तर खोजना शेष रह जाता है। सम्पूर्ण हिमालयको सिद्ध क्षेत्र मान लेनेपर

१. It may be mentioned here that Linga is a Tibetan word for land. The Northern most district of Bengal is called Dorji-ling, which means Thunder's land.

S. K. Roy (Pre-Historic India and Ancient Egypt p, 28).

अष्टापद और कैलाशका पृथक् सिद्धक्षेत्रके रूपमें उल्लेख करनेकी क्या संगति हो सकती है ? किन्तु गहराईसे विचार करनेपर हम इस निष्कर्षपर पहुँचते हैं कि अष्टापद और कैलाश हिमवान् या हिमालयके नामान्तर मात्र हैं। धवलागिरि शब्दसे इस बातका समर्थन हो जाता है। हिमालय हिमके कारण धवल है, इसलिये वह धवलागिरि भी कहलाता है। अतः धवलागिरिके समान हिमालयको भी अष्टापद और कैलाशका पर्यायवाची समझ लेना चाहिए।

इस मान्यताको स्वीकार कर लेनेपर यह निष्कर्ष निकलता है कि कैलाश या अष्टापद कहनेपर हिमालयमें भागीरथी, अलकनन्दा और गंगाके तटवर्ती बदरीनाथ आदिसे लेकर कैलाश नामक पर्वत तकका समस्त पर्वत प्रदेश आ जाता है। इसमें आजकलके ऋषिकेश, जोशीमठ, बदरीनाथ, केदारनाथ, गंगोत्री, जमनोत्री और मुख्य कैलाश सम्मिलित हैं। यह पर्वत प्रदेश अष्टापद भी कहलाता था क्योंकि इस प्रदेशमें पर्वतोंकी जो शृंखला फैली हुई है, उसके बड़े-बड़े और मुख्य आठ पद हैं। उनके नाम इस प्रकार हैं—कैलाश, गौरीशंकर, द्रोणगिरि, नन्दा, नर, नारायण, बदरीनाथ और त्रिशूली।

जैन पुराणोंसे ज्ञात होता है कि जब ऋषभदेव राज्य भार सँभालने योग्य हुए, तो महाराज नाभिराजने उनका राज्याभिषेक कर दिया। (आदिपुराण १६।२२४)। जब ऋषभदेव नीलांजना अप्सराकी आकस्मिक मृत्युके कारण संसार, शरीर और भोगोंसे विरक्त हो गये और दीक्षा ली, उस समय भी महाराजा नाभिराय और रानी मरुदेवी अन्य लोगोंके साथ तप कल्याणकका उत्सव देखनेके लिए पालकीके पीछे चल रहे थे। (आदिपुराण १७।१७८)। वनमें पहुँचनेपर ऋषभदेवने माता-पिता और बन्धु-जनोंसे आज्ञा लेकर श्रमण-दीक्षा ले ली (पद्मपुराण ३।२८२)। इन अवतरणोंसे यह तो स्पष्ट है कि तीर्थंकर ऋषभदेवके दीक्षा महोत्सवके समय उनके माता-पिता विद्यमान थे। किन्तु इसके बाद वे दोनों कितने दिन जीवित रहे अथवा उन्होंने अपना शेष जीवन किस प्रकार और कहाँ व्यतीत किया, इसके सम्बन्धमें जैन साहित्यमें अभी तक कोई स्पष्ट उल्लेख हमारे देखनेमें नहीं आया। किन्तु इस विषयमें हिन्दू पुराण 'श्रीमद्भागवत'में महर्षि शुकदेवने जो विवरण प्रस्तुत किया है, वह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। महर्षि लिखते हैं—

"विदितानुरागमापौर प्रकृति जनपदो राजा नाभिरात्मजं समयसेतु रक्षायामभिषिच्य सह मरुदेव्या विशालायां प्रसन्न निपुणेन तपसा समाधियोगेन.......महिमानमवाप।"

—श्रीमद्भागवत ५।४।५

इसका आशय यह है कि जनता भगवान् ऋषभदेवको अत्यन्त प्रेम करती थी और उनमें श्रद्धा रखती थी। यह देखकर राजा नाभिराय धर्ममर्यादाकी रक्षा करनेके लिए अपने पुत्र ऋषभदेवका राज्याभिषेक करके विशाला (बदरिकाश्रम) में मरुदेवी सहित प्रसन्न मनसे घोर तप करते हुए यथाकाल जीवन्मुक्तिको प्राप्त हुए।

इस उल्लेखसे स्पष्ट है कि बदरिकाश्रम (जिसे बदरी विशाल या विशाला भी कहते हैं) में नाभिराज जीवन्मुक्त हुए। इस कारणसे यह स्थान तीर्थधाम बना। जहाँ माता मरुदेवीने तपस्या की थी, वहाँ लोगोंने मन्दिर बनाकर उनके प्रति अपनी भक्ति प्रगट की। वह मन्दिर माणागाँवके निकट है। यह भारतीय सीमापर अन्तिम भारतीय गाँव है। अलकनन्दाके उस पार माणागाँव है और इस पार माताका मन्दिर है। सम्भवतः जिस स्थानपर बैठकर नाभिराजने जीवन्मुक्ति प्राप्त की थी, उस स्थानपर उनके चरण स्थापित कर दिये गये। ये चरण बदरीनाथ मन्दिरके पीछे पर्वतपर बने हुए हैं। उनके निकट ही भगवान् ऋषभदेवके एक विशाल मन्दिरका भी निर्माण किया गया। यह माननेके पर्याप्त कारण हैं कि यहाँपर प्रथम चक्रवर्ती भरतने यह मन्दिर बनवाया

था। उन्होंने कैलाश पर्वतपर जो ७२ स्वर्ण मन्दिर निर्मित कराये थे, बदरी विशालका मन्दिर उनमें-से एक था। बदरी नामक छोटी झाड़ियाँ ही यहाँ मिलती हैं। यहाँ प्राचीन कालमें मुनिजन तपस्या किया करते थे। इस कारण यहाँ मुनियोंका आश्रम भी रहा होगा। अतः इसे बदरिकाश्रम कहने लगे और यहाँके मूलनायक भगवान्‌को बदरीनाथ। आज भी यहाँ मन्दिर और ऋषभदेवकी मूर्ति विद्यमान है। इन सब कारणोंसे स्पष्टतः यह जैनतीर्थ है।

सम्राट् भरतने ये मन्दिर एक ही स्थानपर नहीं बनवाये थे, अपितु वे उस विस्तीर्ण पर्वत प्रदेशके उन स्थानोंपर बनवाये गये, जहाँ मुनियोंने तपस्या की अथवा जहाँसे उन्हें मुक्ति-लाभ हुआ।

बदरीनाथ प्रतिमाका इतिहास

भगवान् बदरीनाथ और बदरीनाथ मन्दिरका बड़ा रोचक इतिहास है। मूलतः यह जैन मन्दिर था। ऐसी किंवदन्ती[1] प्रचलित है कि भगवान् बदरीनाथकी यह प्रतिमा इस मन्दिरकी नहीं है, बल्कि कैलाशके मार्गमें पड़नेवाले शिवचुलमुके निकटस्थ आदिबदरीकी है। तिब्बती आदिबदरी-को थुलिंगमठ कहते हैं। वहाँसे यह प्रतिमा लाकर बदरीनाथमें विराजमान की गयी। इसके सम्बन्ध-में यह मान्यता[2] भी प्रचलित है कि एक बार इस प्रतिमाको नारद कुण्डमें-से निकाला गया था। जब बौद्धोंका प्राबल्य हुआ, तब इस मन्दिरपर उनका अधिकार हो गया। उन्होंने इस मूर्तिको बुद्ध-मूर्ति मानकर पूजना आरम्भ कर दिया। जब आद्य शंकराचार्य बौद्धोंको पराजित करते हुए यहाँ आये, तब इधरके बौद्ध तिब्बतकी ओर भाग गये। भागते समय वे इस मूर्तिको अलकनन्दा नदीमें फेंक गये। तब शंकराचार्यने अलकनन्दामें-से मूर्तिको निकलवाकर पुनः यहाँ प्रतिष्ठित कराया। फिर एक बार इस मन्दिरके पुजारीने ही इस मूर्तिको तप्तकुण्डमें फेंक दिया और यहाँसे चला गया क्योंकि मन्दिरमें जो चढ़ावा आता था, वह उसके जीवन-निर्वाहके लिए पर्याप्त नहीं होता था। तब रामानुज सम्प्रदायके किसी आचार्यने उस कुण्डमें-से मूर्तिको निकलवाकर पुनः प्रतिष्ठित किया। तबसे इस मन्दिर और मूर्तिपर हिन्दुओंका ही अधिकार चला आ रहा है।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि बदरीनाथकी यह मूर्ति दिगम्बर जैन तीर्थंकर ऋषभदेवकी मूर्ति है। किन्तु ऐसा लगता है कि यह मन्दिर और यह मूर्ति किन्हीं ऐतिहासिक कारणोंसे इतनी महत्त्वपूर्ण रही है, कि इसके अधिकारके लिए जैनों, हिन्दुओं और बौद्धोंमें इतना संघर्ष हुआ और भारतकी चारों दिशाओंमें अपना पीठ स्थापित करते हुए शंकराचार्यने उत्तर दिशाके लिए इस मन्दिरको चुना। इसका कारण एक ही रहा है। हिमालयका यह सम्पूर्ण प्रदेश, जिसमें उपर्युक्त आठ पर्वत हैं, मुनिजनोंकी तपोभूमि और निर्वाणभूमि रहा है। भगवान् ऋषभदेव, उनके भरत आदि पुत्र, भगीरथ, व्याली, महाव्याली, नागकुमार आदि असंख्य मुनियोंका निर्वाण महोत्सव यहीं मनाया गया। अतः यह सारा प्रदेश ही सिद्धक्षेत्र है।

गंगावतरण

इस प्रसंगमें गंगावतरणकी मान्यतापर एक दृष्टि डाल लेना भी उपयोगी रहेगा।

जिसे आजकल गंगोत्री कहा जाता है, उससे १८ मील आगे जानेपर गोमुख नामक स्थान हैं, जहाँसे गंगा निकलती है, ऐसा कहा जाता है। किन्तु वस्तुतः गंगा इससे भी ऊपरसे निकलती है। जैन शास्त्रोंके अनुसार गंगा नदी हिमवान् पर्वतके पद्म सरोवरसे निकलकर पहले पूर्वकी ओर

---

१. 'कल्याण' का तीर्थांक वर्ष ३१ अंक १ पृष्ठ ४०।

२. ,, ,, ,, पृष्ठ ५८।

और फिर दक्षिणकी ओर बहती है। यहाँ एक चबूतरेपर जो गंगाकूट कहलाता है—जटाजूट मुकुटसे सुशोभित ऋषभदेव आदिजिनकी प्रतिमा है। इसके ऊपर गंगाकी धारा पड़ती है; मानो गंगा उनका अभिषेक ही कर रही हो।

'तिलोयपण्णत्ति' ग्रन्थमें उक्त मान्यताका समर्थन करनेवाली निम्नलिखित गाथा ध्यान देने योग्य है—

> आदि जिणप्पडिमाओ ता ओ जडमउड सेहरिल्लाओ।
> पडिमोवरिम्मि गंगा अभिसित्तुमणा व सा पढदि ॥४।२३०॥

इससे मिलती-जुलती एक गाथा त्रिलोकसारमें भी उपलब्ध होती है, जो इस प्रकार है—

> सिरिगिह सीसट्ठियं बुजकाणिय सिंहासणं जडामंडलं।
> जिणमभिसित्तुमणा वा ओदिण्णा मत्थए गंगा ॥५९०॥

इन अवतरणोंमें हिमालयके इस हिमाच्छादित प्रदेशमें आदि जिनकी प्रतिमाका उल्लेख निश्चय ही इस बातको सूचित करता है कि भगवान् ऋषभदेवने इस पर्वतपर तपस्या की थी। लोकमानसमें यह धारणा व्याप्त है कि गंगा ब्रह्माके कमण्डलुसे निकलकर शिवजीकी जटाओंमें समा गयी। फिर वहाँसे निकलकर विष्णुके चरणोंमें पहुँची और वहाँसे भगीरथ तपस्या करके गंगाको धरातलपर लाया। यदि इस सारे कथन को आलंकारिक मानकर हम इसका तथ्य जाननेका प्रयत्न करें तो वास्तविकता उजागर हो सकती है। गंगा पद्म सरोवरसे निकलकर चली। उसकी धारा ऊपरसे गंगाकूटपर स्थित ऋषभदेवकी एक पाषाण प्रतिमाके सिरपर गिरी। प्रतिमाके जटाजूट है। वहाँसे आगे गंगा बर्फके नीचे बहती रही, एक प्रकारसे वह अदृश्य हो गयी। फिर वह नारायण पर्वतके चरणोंमें जा निकली। किन्तु उससे आगे पुनः बर्फके कारण अदृश्य ही रही। फिर वह गोमुखाकार शिलाखण्डसे निकलकर गंगोत्री आयी, जहाँ भगीरथ मुनिने तपस्या की थी और जहाँपर अब तक एक शिला मौजूद है जिसे भगीरथशिला कहते हैं। गंगा-तटपर बैठकर उन्होंने जो दुद्धर तप किया, उसके कारण गंगाकी एक धाराका नाम ही भागीरथी पड़ गया।

मुनिराज भगीरथकी तपस्या असाधारण, अतिशयसम्पन्न और महान् थी। उनके चरणोदकके गंगामें मिलनेपर गंगा नदी भी इस लोकमें तीर्थ बन गयी। इस रहस्यका उद्घाटन करते हुए आचार्य गुणभद्रने कहा है—

> "निर्वाणगमनं श्रुत्वा तेषां निर्विण्ण मानसः।
> वरदत्ताय दत्वात्मराज्य लक्ष्मीं भगीरथः॥
> कैलासपर्वते दीक्षां शिवगुप्त महामुनेः।
> आदाय प्रतिमायोग धार्यभूत्स्वर्धुनी तटे॥
> सुरेन्द्रेणास्य दुग्धाब्धिपयोभिरिभिषेचनात्।
> क्रमयोस्तत्प्रवाहस्य गंगायाः संगमे सति॥
> तदा प्रभृति तीर्थत्वं गंगाप्यस्मिन्नुपागता।
> कृत्वोत्कृष्टं तपो गंगातटेऽसौ निर्वृतिं गतः॥
>
> —उत्तरपुराण ४८।१३८-१४१

अर्थात् 'सगर चक्रवर्तीके पुत्र मोक्ष चले गये' यह सुनकर भगीरथका मन निर्वेदसे भर गया। अतः उसने वरदत्तको राज्यलक्ष्मी सौंपकर कैलास पर्वतपर शिवगुप्त नामक महामुनिसे दीक्षा ले ली तथा गंगा नदीके तटपर प्रतिमायोग धारण कर लिया। इन्द्रने क्षीरसागरके जलसे महामुनि भगीरथके चरणोंका अभिषेक किया जिसका प्रवाह गंगामें जाकर मिल गया। उसी समयसे गंगा

नदी भी इस लोकमें तीर्थ मानी जाने लगी। भगीरथ गंगा नदीके तटपर उत्कृष्ट तप करके वहींसे निर्वाणको प्राप्त हुआ।

जैन शास्त्रोंमें कहीं भी भगीरथके निर्वाण-स्थानका नाम नहीं मिलता, केवल गंगा-तट कह दिया गया है। दीक्षा-स्थानका नाम कैलाश अवश्य मिलता है। कारण यही है कि यह सारा हिमालय प्रदेश ही कैलाश या अष्टापद कहलाता था। अतः दुबारा नाम न देकर केवल गंगा-तट ही लिख दिया। कहीं कैलाश, कहीं अष्टापद और कहीं हिमवान् पर्वतका नाम निर्वाण-क्षेत्रोंमें देनेका रहस्य यही है कि वस्तुतः ये तीनों नाम पर्यायवाची रहे हैं। सम्पूर्ण हिमालय-प्रदेश ही मुनिजनोंकी पावन तपोभूमि रहा है, जहाँ असंख्य मुनियोंको केवलज्ञान और निर्वाणकी प्राप्ति हुई।

डिमरी जाति

उपर्युक्त परिप्रेक्ष्यमें यह धारणा निराधार नहीं प्रतीत होती कि प्राचीन कालमें उत्तराखण्डके इस विस्तृत पर्वत प्रदेशमें जैन मन्दिरोंका बाहुल्य था। नीती घाटी या अलमोड़ा मार्गसे कैलाशकी ओर जानेपर मार्गमें ध्वस्त मन्दिरोंके अवशेष और जैन मूर्तियाँ अब भी मिलती हैं। सम्भवतः कुछ शताब्दियों पूर्व तक इस प्रदेशमें जैनधर्मके अनुयायियोंकी भी संख्या विशाल रही होगी। शनैः-शनैः प्रचार और सम्पर्ककी शिथिलता अथवा अन्य ऐतिहासिक कारणोंसे ये लोग जैनधर्मको छोड़कर हिन्दूधर्म पालने लगे। ऐसी एक जाति इस प्रदेशमें अब भी मिलती है जिसे डिमरी कहा जाता है। डिमरी शब्द सम्भवतः दिगम्बरीका पहाड़ी अपभ्रंश है। इनके जीवन-मरण आदि जातीय संस्कार यहाँके लोगोंसे पृथक् हैं तथा जैनोंसे बहुत मिलते-जुलते हैं। बदरीनाथका मन्दिर प्रारम्भसे डिमरी जातिके अधिकारमें रहा है। ऐसी भी किंवदन्ती है कि प्राचीन कालमें बदरीनाथ और केदारनाथ धामोंके पुजारी डिमरी ही थे। जबसे आद्य शंकराचार्यने इस मन्दिरपर अधिकार किया, तबसे इतना ही अन्तर पड़ा है कि वहाँ दो पुजारी रहने लगे हैं—एक डिमरी और दूसरा दाक्षिणात्य। शीतकालके प्रारम्भमें बदरीनाथ मन्दिरकी उत्सव मूर्तिको डिमरी जातिका पुजारी ही जोशी मठ ले जाता है।

बदरीनाथके दर्शन

बदरीनाथकी मूर्ति वस्तुतः भगवान् ऋषभदेवकी ध्यानमुद्रावाली पद्मासन मूर्ति है। यह वास्तवमें दो भुजावाली है, बाकी दो भुजाएँ नकली लगायी हुई हैं। न्हवन करते समय मन्दिरके पट बन्द रखे जाते हैं। न्हवनके पश्चात् इसे वस्त्रालंकारसे अलंकृत कर दिया जाता है। इसके पश्चात् पट खोले जाते हैं और तब 'निर्वाण-दर्शन' कराया जाता है। बोलियाँ लेनेपर कुछ लोगोंको न्हवन-के समय दिगम्बर वीतराग रूपके दर्शन होते हैं।

मार्ग

कैलाश जानेके लिए निम्नलिखित सुविधाजनक मार्ग हैं—

१—पूर्वोत्तर रेलवेके टनकपुर स्टेशनसे मोटर बस द्वारा पिथौरागढ़ (जिला अलमोड़ा) जाकर वहाँसे पैदल यात्रा द्वारा लीपू नामक दर्रा पार करके जानेवाला मार्ग।

२—पूर्वोत्तर रेलवेके काठगोदाम स्टेशनसे मोटर बस द्वारा कपकोट (अलमोड़ा) जाकर पैदल यात्रा करते हुए ऊँटा, जयन्ती तथा कुंगरी-बिंगरी घाटियोंको पार करके जानेवाला मार्ग।

३—उत्तर रेलवेके ऋषिकेश स्टेशनसे मोटर बस द्वारा जोशीमठ जाकर वहाँसे पैदल यात्रा करते हुए नीती घाटीको पार करके जानेवाला मार्ग।

१. लीपू मार्ग

टनकपुर स्टेशनसे बस द्वारा पिथौरागढ़ ९५ मील, कनाली छीना १४ मील, आस्कोट १२ मील, बलवा कोट ११॥ मील, खेला १७ मील, पांगु ७ मील, सिरखा ५ मील, जुपती ९ मील, मालपा ८ मील, बुड्ढी ८ मील, गरब्यांग ५ मील, कालापानी १२ मील, लीपू घाटी ९ मील, तकला कोट १० मील (तिब्बतका बाजार), मांचा १२ मील, राक्षसताल १२ मील, मानसरोवर तट ६ मील मैदान, ज्युगुम्फा ८ मील, बरखा १० मील, बांगद्रू ४ मील, दरचिन ४ मील। यहाँसे कैलाशकी परिक्रमा प्रारम्भ होती है।

परिक्रमाका मार्ग यह है—दरचिनसे लंडीफू (नन्दी गुफा) ४ मील, डेरफू ८ मील, गौरीकुण्ड ३ मील, अंडलफू ११ मील और इरचित ६ मील।

डेरफूसे एक मील ऊपर सिन्धु नदीका उद्गम है। तिब्बती क्षेत्रमें कुली नहीं मिलते। सामान और सवारीके लिए याक जातिका पशु मिलता है जिसकी पूँछसे चँवर बनाये जाते हैं।

इस मार्गसे १ जून तक टनकपुर पहुँचकर यात्रा शुरू कर देनी चाहिए। बरसातमें मार्ग खराब हो जाता है और सरदियोंमें बर्फ पड़नेके कारण यात्रा असम्भव हो जाती है। अन्य मार्गों-की अपेक्षा यह मार्ग छोटा है, किन्तु इसमें चढ़ाई अधिक है।

२. जौहर (जयन्ती) मार्ग

काठगोदामसे बस द्वारा कपकोट १३८ मील, शामा १२ मील, कुइटी ११ मील, राँती १५ मील, वोगडयार १० मील, रीलकोट ७ मील, (यहाँसे यात्री नन्दादेवी चोटी देखने १० मील जाकर उसी दिन लौट सकते हैं), मिलम ९ मील (यह भारतीय सीमाका अन्तिम बाजार और पोस्ट ऑफिस है), पुंग ९ मील, छिरचुन २० मील (ऊटा, जयन्ती तथा कुंगरी-बिंगरी—ये तीन १८००० फुट ऊँची चोटियाँ पार करनी पड़ती हैं) ठाजांग १० मील, मानीथंगा ७ मील, खिंगलुंग २४ मील, गुरुच्यांग १० मील, तीर्थपुरी ६ मील, गौरीकुण्ड ३ मील, जंडलफू ११ मील, बांगद्रू ८ मील, ज्यूगुम्फा मानसरोवर तट १२ मील, बरखा १२ मील, ज्ञानिभा मण्डी या डंचू २२ मील। यहाँसे ठाजांग छिनचुन होकर पहले मार्गसे लौटना पड़ता है।

इस मार्गसे यात्रा २५ जूनसे १५ अगस्त तक कभी भी की जा सकती है। यह मार्ग सबसे लम्बा किन्तु उत्तम है।

३. नीती घाटी मार्ग

ऋषिकेशसे बस द्वारा जोशीमठ १४५ मील, तपोवन ६ मील, सुराई ठोटा ७ मील, जुम्भा ११ मील (यहाँसे द्रोणागिरि पर्वतके दर्शन होते हैं), मलौरी ६ मील, बांवा ७ मील, नीती ३ मील (यह भारतीय सीमाका अन्तिम गाँव है), होती घाटी ५ मील, होती ६ मील (यहाँ चीनी सेनाकी चौकी है)। होतीसे दो मार्ग हैं,। एक मार्ग है--शिवचुलम् खिंगलुंग होकर तीर्थपुरी १६ मील और दूसरा मार्ग है—ज्यूताल ११ मील, इयूंगु ११ मील, अलंगतारा ११ मील, गोजीमरु ९ मील, देंगी ११ मील, गुरुज्ञाम (मिशार) १० मील, तीर्थपुरी ६ मील। आगेका मार्ग पूर्ववत् है।

इस मार्गसे यात्राका समय जूनके अन्तिम सप्ताहसे १५ अगस्त तक है। इस मार्गसे पैदल कम चलना पड़ता है। इस मार्गसे बदरीनाथकी भी यात्रा हो जाती है। वापिसीमें किसी मार्गसे इच्छानुसार आ सकते[1] हैं।

---

१. इस लेखमें मार्ग आदिके सम्बन्धमें 'कल्याण' गोरखपुरके तीर्थांक (जनवरी १९५७) से विशेष सहायता ली गयी है। इसके लिए हम उसके बहुत आभारी हैं।

मानसरोवर—हिमालयको पार करनेके बाद तिब्बती पठारमें ३० मील जानेपर दो विशाल सरोवर मिलते हैं—

१. राक्षसताल, २. मानसरोवर। आकारमें राक्षसताल विशाल है और मानसरोवर गोलाकार बना हुआ है। यह लगभग २२ मीलमें फैला हुआ है। दोनों सरोवरोंके बीचमें उठी हुई पर्वत भूमि है।

मानसरोवरमें 'राजहंस' और सामान्य हंस विपुल संख्यामें मिलते हैं। मानसरोवरसे प्रत्यक्षतः कोई नदी नहीं निकली है, किन्तु अन्वेषकोंका मत है कि सरयू और ब्रह्मपुत्र नदियाँ इसमें-से निकलती हैं। सम्भवतः भूमिके भीतरी मार्गसे इसका जल मीलों दूर जाकर इन नदियोंके स्रोतके रूपमें प्रगट होता है। मानसरोवर या कैलाशपर कोई वृक्ष, पुष्प आदि नहीं हैं। उसमें मोती हैं या नहीं, यह कहना तो कठिन है, किन्तु इसके किनारेपर रंग-बिरंगे पत्थर और स्फटिकके टुकड़े अवश्य मिलते हैं।

श्रीनगर

मार्ग

उत्तर रेलवेके मुरादाबाद-सहारनपुर मुख्य लाइनके नजीबाबाद स्टेशनसे श्रीनगर बस-मार्गसे कोटद्वार होते हुए सौ मील दूर है, तथा ऋषिकेशसे बस द्वारा ६७ मील दूर है। यह नगर हिमालयमें अलकनन्दाके तटपर बसा हुआ है। यहाँ अलकनन्दा नदी धनुषाकार हो गयी है। श्री दिगम्बर जैन मन्दिर भी अलकनन्दाके तटपर अवस्थित है। यात्रियोंके ठहरनेके लिए मन्दिरके बाहर नद्यावर्त अतिथिभवन है।

इतिहास

सम्पूर्ण हिमालय पर्वत आद्य तीर्थंकर भगवान् ऋषभदेवका विहार स्थल रहा है। पुराण साहित्यसे यह ज्ञात होता है कि भगवान् ऋषभदेवने अनेक वर्षों तक हिमालय (कैलास पर्वत) में तपस्या की, केवलज्ञान प्राप्तिके पश्चात् कई बार भगवान्का समवशरण भी इस पर्वतपर आया और अन्तमें कर्म क्षय करके वे हिमालयसे ही मुक्त हुए। उनके अतिरिक्त अनेक मुनियोंने पावन-तोया गंगा नदीके एकान्त तटपर हिमालयकी शिलाओंपर बैठकर तपस्या की। भरत, बाहुबली, भगीरथ आदि अनेक मुनियोंने यहींसे निर्वाण प्राप्त किया। भगवान् पार्श्वनाथका भी एक बार समवशरण यहाँ आया था और उनके आत्मकल्याणकारी उपदेश सुनकर अनेक व्यक्तियोंने जैनधर्म अंगीकार किया था। इसी कारण अनेक शताब्दियों तक जैनधर्म और उसके अनुयायियों-की हिमालयके अंचलमें प्रभाव रहा है। श्रीनगरके निकटवर्ती नगरोंमें अब भी डिमरी, चौधरी आदि अनेक जातियोंके लोग रहते हैं, जिनमें अब तक जैन संस्कार पाये जाते हैं। इससे प्रतीत होता है कि इनके पूर्वज अवश्य जैन धर्मानुयायी रहे होंगे। किन्तु किन्हीं परिस्थितियोंके कारण वे जैनधर्म और उसके अनुयायियोंके सम्पर्कसे सर्वथा पृथक् हो गये। लेकिन इतना तो निश्चित ही है कि हिमालयके कण-कणमें लोकवंद्य तीर्थंकरों और मुनियोंकी चरण-धूलि मिली हुई है और यहाँका कण-कण पावन तीर्थ है।

श्रीनगरका जैन मन्दिर भी प्राचीन कालमें एक प्रसिद्ध तीर्थ रहा है। श्रीनगर किसी समय पौड़ी गढ़वालकी राजधानी था। अपनी भौगोलिक स्थिति और ऐतिहासिक कारणोंसे उत्तराखण्डके

प्रमुख नगरोंमें इसकी गणना रही है। यह व्यापारका बहुत बड़ा केन्द्र रहा है। अतः यह स्वाभाविक है कि यहाँपर तथा पार्श्ववर्ती नगरोंमें जैनोंकी प्रचुर संख्या रही। इस बातके प्रमाण प्राप्त हुए हैं कि यहाँके जैन मन्दिरकी मान्यता जैनतीर्थके रूपमें रही, तथा बदरीनाथ आदि जैन तीर्थोंको जानेवाले जैन यात्री इस तीर्थके दर्शनार्थ आते रहे।

उद्दाम विरहीने सन् १८९४ में श्रीनगरको ध्वस्त कर दिया और इस ध्वंस-लीलासे यह जैन-तीर्थ भी नहीं बच पाया। किन्तु प्रतिमाएँ सुरक्षित रहीं। स्व. लाला प्रतापसिंह जैन और स्व. लाला मनोहरलाल जैनके संयुक्त प्रयाससे ध्वस्त मन्दिरका पुनर्निर्माण हुआ। इस कालमें जो मन्दिर बनाया गया, वह शिल्प-चातुर्य और कलापूर्ण वास्तु-विधानकी दृष्टिसे अत्यन्त समृद्ध है। सम्भवतः उत्तराखण्डका कोई मन्दिर श्रीनगरके जैन मन्दिरके समुन्नत, सूक्ष्म शिल्प विधान और भव्य चित्रकारीसे समता नहीं कर सकता। लगता है, यहाँका प्रत्येक पाषाण सजीव है।

अतिशय

इस मन्दिरमें केवल एक वेदी है, जिसपर तीन प्रतिमाएँ विराजमान हैं—मूलनायक भगवान् ऋषभदेवकी और दो भगवान् पार्श्वनाथकी। तीनों ही पद्मासन प्रतिमाएँ हैं और प्रभावक हैं। पाषाणका सूक्ष्म निरीक्षण करनेसे ज्ञात होता है कि ये प्रतिमाएँ लगभग पन्द्रह सौ वर्ष प्राचीन होंगी। इनमें भगवान् पार्श्वनाथकी कृष्ण पाषाणकी पद्मासन प्रतिमा तो चतुर्थ कालकी बतायी जाती है जो अत्यन्त सातिशय है। भक्तोंकी मान्यता है कि इस प्रतिमाकी भक्ति करनेसे सभी मनोकामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं। इस प्रतिमाके चमत्कारों और अतिशयोंके सम्बन्धमें जनतामें नाना प्रकारकी किंवदन्तियाँ प्रचलित हैं। उनमें सर्व प्रमुख यह है कि यहाँ रात्रिमें देव-गण आते हैं और इस मूर्तिके समक्ष भावविभोर होकर नृत्य और पूजन करते हैं। लोगोंमें यह भी धारणा व्याप्त है कि इस प्रतिमाका ही यह चमत्कार है कि अलकनन्दाकी बाढ़में भी वेदी और प्रतिमाओंकी कोई क्षति नहीं हुई। वस्तुतः एक अतिशय क्षेत्रके रूपमें इस मन्दिर और मूर्तिकी मान्यता शताब्दियोंसे चली आ रही है। भगवान् पार्श्वनाथकी इस प्रतिमाका सबसे बड़ा चमत्कार तो यह है कि जो इसके दर्शनोंको जाता है, उसके मनमें शुभ भावनाएँ और भगवान्‌की भक्तिका ऐसा उद्रेक होता है कि संसारकी तमाम वासनाओंको वह भूल जाता है।

मन्दिरके प्रांगणमें क्षेत्रपाल भैरोंका भी मन्दिर है। सन् १९७० से ही मन्दिरमें जर्णोद्धारका कार्य चल रहा है।

पंचाल जनपद

अहिच्छत्र
कम्पिला

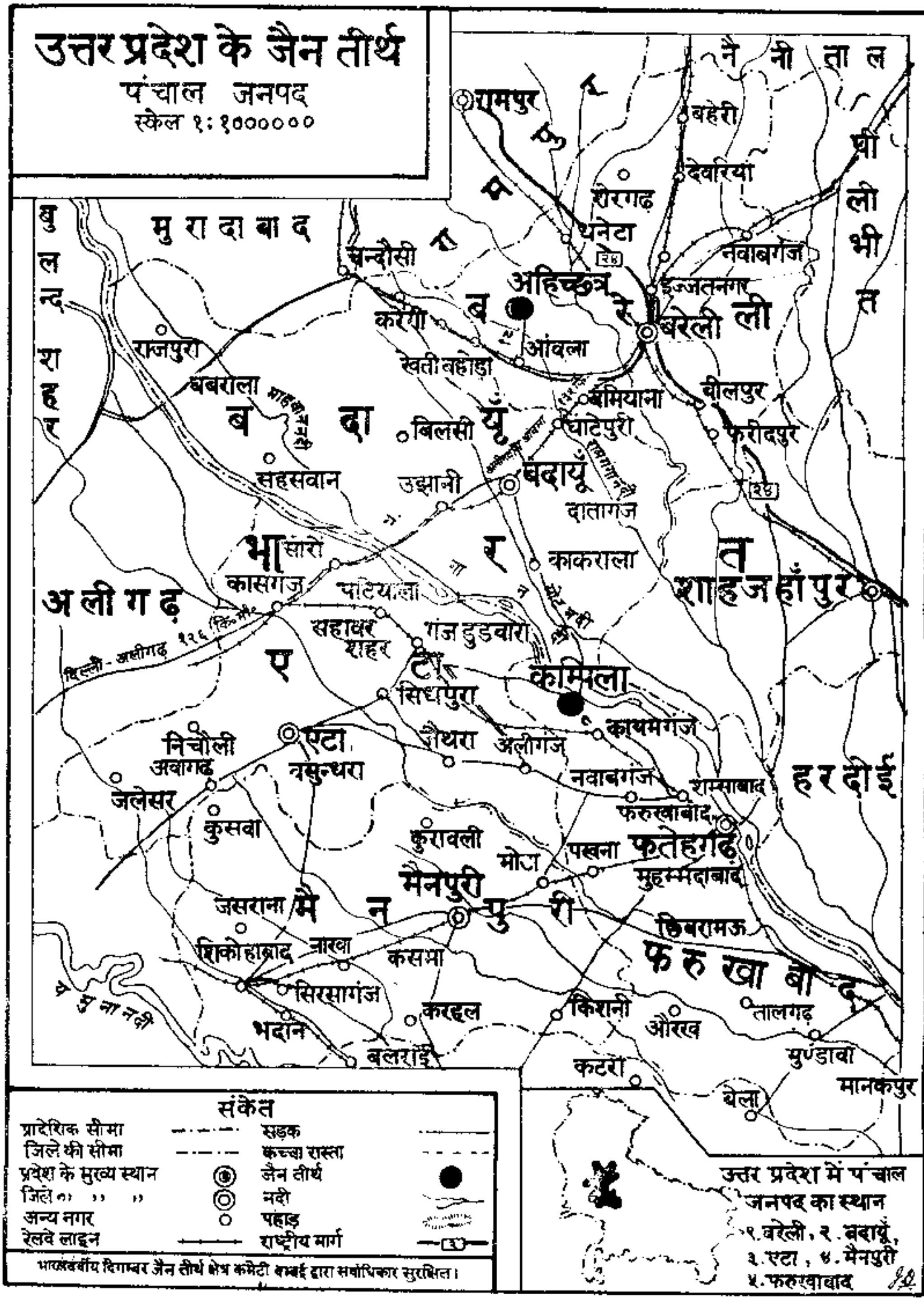

१. भारत के महासर्वेक्षक की अनुज्ञानुसार भारतीय सर्वेक्षण विभागीय मानचित्र पर आधारित।

२. इस मानचित्र में दिये गये नामों का अक्षर विन्यास विभिन्न सूत्रों से लिया गया है।

© भारत सरकार का प्रतिलिप्यधिकार, १९७१

अहिच्छत्र

स्थिति

अहिच्छत्र उत्तरप्रदेशके बरेली जिलेकी आँवला तहसीलमें स्थित है। दिल्लीसे अलीगढ़ १२६ कि. मी. तथा अलीगढ़से बरेली लाइनपर (चन्दौसीसे आगे) आँवला स्टेशन १३५ की. मी. है। आँवला स्टेशनसे अहिच्छत्र क्षेत्र सड़क द्वारा १८ कि. मी. है। आँवलासे अहिच्छत्र तक पक्की सड़क है। स्टेशनपर ताँगे मिलते हैं। इसके अतिरिक्त इसी रेलवे लाइनपर करेंगी स्टेशनसे यह ८ कि. मी. तथा रेवती बहोड़ा खेड़ा स्टेशनसे ५ कि. मी. पूर्व दिशामें पड़ता है। किन्तु आँवला स्टेशनपर उतरना अधिक सुविधाजनक है। इसका पोस्ट ऑफिस रामनगर है।

कल्याणक क्षेत्र

अहिच्छत्र आजकल रामनगर गाँवका एक भाग है। इसको प्राचीन कालमें संख्यावती नगरी कहा जाता था। एक-बार भगवान् पार्श्वनाथ मुनि-दशामें विहार करते हुए संख्यावती नगरीके बाहर उद्यानमें पधारे और वहाँ प्रतिमा योग धारण करके ध्यानलीन हो गये। संयोगवश संवर नामक एक देव विमान द्वारा आकाश-मार्गसे जा रहा था। ज्यों ही विमान पार्श्वनाथके ऊपर-से गुजरा कि वह वहीं रुक गया। उग्र तपस्वी ऋद्धिधारी मुनिको कोई सचेतन या अचेतन वस्तु लाँघकर नहीं जा सकती। संवरदेवने इसका कारण जाननेके लिए नीचेकी ओर देखा। पार्श्वनाथ-को देखते ही जन्म-जन्मान्तरोंके वैरके कारण वह क्रोधसे भर गया। विवेकशून्य हो वह अपने पिछले जीवनमें पार्श्वनाथके हाथों हुए अपमानका प्रतिशोध लेनेको आतुर हो उठा और अनेक प्रकारके भयानक उपद्रव कर उन्हें त्रास देनेका प्रयत्न करने लगा। किन्तु स्वात्मलीन पार्श्वनाथपर इन उपद्रवोंका रंचमात्र भी प्रभाव नहीं पड़ा। न वे ध्यानसे चल-विचल हुए और न उनके मनमें आततायीके प्रति दुर्भाव ही आया। तभी नागकुमार देवोंके इन्द्र धरणेन्द्र और उसकी इन्द्राणी पद्मावतीके आसन कम्पित हुए। वे पूर्व जन्ममें नाग-नागिन थे। संवर देव कमठ तपस्वी था। पार्श्वनाथ उस समय राजकुमार थे। जब पार्श्वकुमार सोलह वर्षके किशोर थे, तब गंगा-तटपर सेनाके साथ हाथीपर चढ़कर वे भ्रमणके लिए निकले। उन्होंने एक तपस्वीको देखा, जो पंचाग्नि तप कर रहा था। कुमार पार्श्वनाथ अपने अवधिज्ञानके नेत्रसे उसके इस विडम्बनापूर्ण तपको देख रहे थे। इस तपस्वीका नाम महीपाल था और यह पार्श्वकुमारका नाना था। पार्श्वकुमारने उसे नमस्कार नहीं किया। इससे तपस्वी मनमें बहुत क्षुब्ध था। उसने लकड़ी काटनेके लिए अपना फरसा उठाया ही था कि भगवान् पार्श्वनाथने मना किया 'इसे मत काटो, इसमें जीव है।' किन्तु उनके मना करनेपर भी उसने लकड़ी काट डाली। इससे लकड़ीके भीतर रहनेवाले सर्प और सर्पिणीके दो टुकड़े हो गये। परम करुणाशील पार्श्वप्रभुने असह्य वेदनामें तड़फते हुए उन सर्प-सर्पिणीको णमोकार मन्त्र सुनाया। मन्त्र सुनकर वे अत्यन्त शान्त भावसे साथ मरे और नाग-कुमार देवोंके इन्द्र और इन्द्राणीके रूपमें धरणेन्द्र और पद्मावती हुए। महीपाल अपनी सार्वजनिक अप्रतिष्ठाकी ग्लानिमें अत्यन्त कुत्सित भावोंके साथ मरा और ज्योतिष्क जातिका देव बना।

उसका नाम अब संवर था। उसी देवने अब मुनि पार्श्वनाथसे अपने पूर्व वैरका बदला लिया। धरणेन्द्र और पद्मावतीने आकर प्रभुके चरणोंमें नमस्कार किया। धरणेन्द्रने सर्पका रूप धारण करके पार्श्वनाथको ऊपर उठा लिया और सहस्र फणका मण्डप बनाकर उनके ऊपर तान दिया। देवी पद्मावती भक्तिके उल्लासमें वज्रमय छत्र तानकर खड़ी हो गयी। इससे संवरदेव पार्श्वनाथके साथ-साथ धरणेन्द्र और पद्मावतीके ऊपर भी क्षुब्ध हो उठा। उसने उनके ऊपर भी नाना प्रकार-के कर्कश वचनोंसे प्रहार किया। इतना ही नहीं, 'आँधी, जल, वर्षा, उपलवर्षा आदि द्वारा भी घोर उपद्रव करने लगा।

किन्तु पार्श्वनाथ तो इन उपद्रवों, रक्षाप्रयत्नों और क्षमा-प्रसंगोंसे निर्लिप्त रहकर आत्म-ध्यानमें लीन थे। उन्हें तभी केवलज्ञान उत्पन्न हो गया। वह चैत्र कृष्ण चतुर्थीका दिन था। इन्द्रों और देवोंने आकर भगवान्के ज्ञानकल्याणककी पूजा की।

जब इन्द्रने वहाँ अपार जल देखा तो उसने इसके कारणपर विचार किया। वह संवरदेवपर अति क्रुद्ध हुआ। संवरदेव भयके मारे काँपने लगा। इन्द्रने कहा—तेरी रक्षाका एक ही उपाय है कि तू प्रभुसे क्षमा याचना कर। संवर प्रभुके चरणोंमें जा गिरा[१]। तत्पश्चात् इन्द्रकी आज्ञासे धनपति कुबेरने वहींपर समवसरणकी रचना की और भगवान् पार्श्वनाथका वहाँपर प्रथम जगत्कल्याणकारी उपदेश हुआ।

नागेन्द्र द्वारा भगवान्के ऊपर छत्र लगाया गया था, इस कारण इस स्थानका नाम संख्यावतीके स्थानपर अहिच्छत्र हो गया। साथ ही भगवान्के केवलज्ञान कल्याणककी भूमि होनेके कारण यह पवित्र तीर्थक्षेत्र हो गया।

मुनि श्रीचन्द कृत 'कहाकोसु' नामक अपभ्रंश कथाकोष (सन्धि ३३ कडवक १ से ५ पृष्ठ ३३३ से ३३५) में यहाँके एक व्यक्तिकी कथा आती है, जो इस प्रकार है—

अहिच्छत्रपुर नगरमें शिवभूति विप्र रहता था। उसके दो पुत्र थे—सोमशर्मा और शिवशर्मा। छोटे पुत्रका मन पढ़नेमें नहीं लगता था। इससे पिता उसे कोड़ोंसे पीटा करता था और उसका नाम वारत्रक रख दिया था। शिवशर्माको इससे इतनी मानसिक ग्लानि हुई कि वह घरसे निकल गया और दमवर मुनिके पास दिगम्बर निर्ग्रन्थ मुनि बन गया। एक दिन गुरुसे उसने अपनी मृत्युके सम्बन्धमें पूछा। गुरु बोले—महिलाके निमित्तसे तुम्हारी मृत्यु होगी। यह सुनकर शिवशर्मा एकान्त वनमें जाकर तपस्या करने लगा। वनदेवियाँ उन्हें आहार देती थीं।

एक दिन गंगदेव नट अपनी पुत्री मदनवेगा और साथियोंके साथ उसी वनमें आकर ठहरा। मुनिकी दृष्टि मदनवेगापर पड़ी। वह देखते ही उसपर मोहित हो गया। मदनवेगाकी भी यही दशा हुई। नटने दोनोंका विवाह कर दिया। अब शिवशर्मा नट-मण्डलीके साथ रहने लगा।

एक बार नट-मण्डली भ्रमण करती हुई अहिच्छत्रपुर आयी। संयोगसे शिवशर्माकी भेंट अपने पूर्व गुरु मुनि दमवरसे हो गयी। उन्होंने उसे समझाया और जो अनुचित कृत्य किया है, उसके त्यागका उपदेश दिया। गुरुका उपदेश सुनकर उसे भी अपने कृत्यपर पश्चात्ताप हुआ। उसने प्रायश्चित्त लेकर पुनः मुनि दीक्षा ले ली। घोर तप किया। वराडदेशकी वेन्नातटपुरमें जाकर उसे मोक्ष हो गया।

---

१. पासनाह चरिउ।

अतिशय क्षेत्र

भगवान् पार्श्वनाथके सिरपर धरणेन्द्र द्वारा सर्प फण लगाने और भगवान्को केवलज्ञान उत्पन्न होनेके पश्चात्, लगता है, यहाँकी मिट्टीमें ही कुछ अलौकिक अतिशय आ गया। यहाँपर पश्चाद्वर्ती कालमें अनेक ऐसी चमत्कारपूर्ण घटनाएँ घटित होनेका वर्णन जैन साहित्यमें अथवा अनुश्रुतियोंमें उपलब्ध होता है। इन घटनाओंमें आचार्य पात्रकेशरीकी घटना तो सचमुच ही विस्मयकारी है। आचार्य पात्रकेशरीका समय छठी-सातवीं शताब्दी माना जाता है। (स्व. पं. जुगलकिशोर मुख्तार और स्व. प्रो. महेन्द्रकुमार न्यायाचार्यके मतानुसार आचार्य पात्रकेशरीका आनुमानिक समय छठी शताब्दीका अन्तिम अथवा सातवीं शताब्दीका प्रारम्भिक काल है।) वे इसी पावन नगरीके निवासी थे। उस समय नगरके शासक अवनिपाल थे। उनके दरबारमें पाँच सौ ब्राह्मण विद्वान् थे, जो प्रायः तात्त्विक गोष्ठी किया करते थे। पात्रकेशरी इनमें सर्वप्रमुख थे। एक दिन यहाँके पार्श्वनाथ मन्दिरमें ये विद्वान् गोष्ठीके निमित्त गये। वहाँ एक मुनि, जिनका नाम चारित्रभूषण था, आचार्य समन्तभद्र विरचित देवागम स्तोत्रका पाठ कर रहे थे। पात्रकेशरी ध्यानपूर्वक उसे सुन रहे थे। उनके मनकी अनेक शंकाओंका समाधान स्वतः होता गया। उन्होंने पाठ समाप्त होनेपर मुनिराजसे स्तोत्र दुबारा पढ़नेका अनुरोध किया। मुनिराजने दुबारा स्तोत्र पढ़ा। पात्रकेशरी उसे सुनकर अपने घर चले गये और गहराईसे तत्त्व-चिन्तन करने लगे। उन्हें अन्य दर्शनोंकी अपेक्षा जैन दर्शन सत्य लगा। किन्तु अनुमान प्रमाणके सम्बन्धमें उन्हें अपनी शंका-का समाधान नहीं मिल पा रहा था। इससे उनके चित्तमें कुछ उद्विग्नता थी।

तभी पद्मावतीदेवी प्रगट हुई और बोली—'विप्रवर्य! तुम्हें अपनी शंकाका उत्तर कल प्रातः पार्श्वनाथ प्रभुकी प्रतिमा द्वारा प्राप्त हो जायेगा।' दूसरे दिन पात्रकेशरी पार्श्वनाथ मन्दिरमें पहुँचे। जब उन्होंने प्रभुकी मूर्तिकी ओर देखा तो उनके आश्चर्यका ठिकाना नहीं रहा। पार्श्वनाथ प्रतिमाके फणपर निम्नलिखित कारिका लिखी हुई थी—

अन्यथानुपपन्नत्वं यत्र तत्र त्रयेण किम्।
नान्यथानुपपन्नत्वं यत्र तत्र त्रयेण किम्॥

कारिकाको पढ़ते ही उनकी शंकाका समाधान हो गया। उन्होंने जैनधर्मको सत्य धर्म स्वीकार कर उसे अंगीकार कर लिया। तत्पश्चात् वे जैनमुनि बन गये। अपनी प्रकाण्ड प्रतिभाके कारण जैन दार्शनिक परम्पराके प्रमुख आचार्योंमें उनकी गणना की जाती है।

—आराधना कथाकोष, कथा–१

पात्रकेशरीके पश्चाद्वर्ती सभी दार्शनिक जैन आचार्योंने अपने ग्रन्थोंमें और जैन राजाओंने शिलालेखोंमें इस घटनाका बड़े आदरपूर्वक उल्लेख किया है। वादिराज सूरिके 'न्यायविनिश्चया-लंकार' नामक भाष्यमें उल्लेख है कि यह श्लोक पद्मावती देवीने तीर्थंकर सीमन्धर स्वामीके सम-वसरणमें जाकर गणधरदेवके प्रसाद से प्राप्त किया था।

श्रवणबेलगोलके 'मल्लिषेण प्रशस्ति' नामक शिलालेख (नं. ५४।६७) में, जो शक सं. १०५० का है, लिखा है—

महिमा सपात्रकेसरिगुरोः परं भवति यस्य भक्त्यासीत्।
पद्मावतीसहाया त्रिलक्षण-कदर्थनं कर्तुम्॥

उन पात्रकेशरी गुरुका बड़ा माहात्म्य है जिनकी भक्तिके वश होकर पद्मावती देवीने 'त्रिलक्षण-कदर्थन'की रचनामें उनकी सहायता की।

यह ज्ञातव्य है कि उपर्युक्त श्लोकके आधारपर ही आचार्य पात्रकेशरीने 'त्रिलक्षणकदर्थन' नामक महत्त्वपूर्ण दार्शनिक ग्रन्थकी रचना की थी।

इसी प्रकारकी एक दूसरी चमत्कारपूर्ण घटनाका उल्लेख 'आराधनासार कथाकोष' (कथा ९०) में उपलब्ध होता है।

उस समय इस नगरका शासक वसुपाल था। उसकी रानीका नाम वसुमती था। राजाने एक बार अहिच्छत्र नगरमें बड़ा मनोज्ञ सहस्रकूट चैत्यालयका निर्माण कराया और उसमें पार्श्वनाथ भगवान् की प्रतिमा स्थापित करायी। राजाकी आज्ञासे एक लेपकार मूर्तिके ऊपर लेप लगानेको नियुक्त हुआ। लेपकार मांसभक्षी था। वह दिनमें जो लेप लगाता था रातमें गिर जाता था। इस प्रकार कई दिन बीत गये। लेपकारपर राजा बहुत क्रुद्ध हुआ और उसे दण्डित कर निकाल दिया। एक दिन एक अन्य लेपकार आया। अकस्मात् उसकी भावना हुई और उसने मुनिके निकट जाकर कुछ नियम लिये, पूजा रचायी। दूसरे दिनसे उसने जो लेप लगाया, वह फिर मानो वज्रलेप[1] बन गया।

यहाँ क्षेत्रपर एक प्राचीन शिखरबन्द मन्दिर है। उसमें एक वेदी तिखालवाले बाबाकी है। इस वेदीमें हरित पन्नाकी भगवान् पार्श्वनाथकी एक मूर्ति है तथा भगवान्के चरण विराजमान हैं। इस तिखालके सम्बन्धमें बहुत प्राचीनकालसे एक किंवदन्ती प्रचलित है। कहा जाता है कि जब इस मन्दिरका निर्माण हो रहा था, उन दिनों एक रात लोगोंको ऐसा लगा कि मन्दिरके भीतर चिनाईका कोई काम हो रहा है। ईंटोंके काटने-छाँटनेकी आवाज स्पष्ट सुनाई दे रही थी। लोगोंके मनमें दुःशंकाएँ होने लगीं और उन्होंने उसी समय मन्दिर खोलकर देखा तो वहाँ कुछ नहीं था। अलबत्ता एक आश्चर्य उनकी दृष्टिसे छिपा नहीं रह सका। वहाँ एक नयी दीवाल बन चुकी थी, जो सन्ध्या तक नहीं थी और उसमें एक तिखाल बना हुआ था। अवश्य ही किन्हीं अदृश्य हाथों द्वारा यह रचना हुई थी। तभीसे लोगोंने इस वेदीकी मूर्तिका नाम 'तिखालवाले बाबा' रख दिया। कहते हैं, जिनके अदृश्य हाथोंने कुछ क्षणोंमें एक दीवार खड़ी करके भगवान्के लिए तिखाल बना दिया, वे अपने आराध्य प्रभुके भक्तोंकी प्रभुके दरबारमें हाजिर होने पर मनोकामना भी पूरी करते हैं।

यहाँके एक कुएँके जलमें भी विशेषता है। उसके पीनेसे अनेक प्रकारके रोग शान्त हो जाते हैं। सुनते हैं कि प्राचीनकालमें आसपासके राजा और नवाब इस कुएँका जल मँगाकर काममें लाते थे।

आचार्य जिनप्रभ सूरिने 'विविध तीर्थकल्प' के अहिच्छत्र-कल्पमें लिखा है—संख्यावती नगरीमें भगवान् पार्श्वनाथ कायोत्सर्ग धारण कर खड़े हुए थे। पूर्व निबद्ध वैर के कारण असुर कमठने उनपर नाना प्रकारके उपसर्ग किये। भगवान् द्वारा विगत जन्म में किये हुए उपकारका स्मरण कर नागराज धरणेन्द्र अपनी देवी पद्मावतीके साथ वहाँ आया और भगवान्के ऊपर सहस्र फण फैलाकर उपसर्ग निवारण किया। तबसे इस नगरीका नाम 'अहिच्छत्र' पड़ गया। (तओ परं तीस' नयरीए अहिच्छत्त ति नामं संजायं।) वहाँ बने हुए प्राकारमें वह उरगरूपो धरणेन्द्र कुटिल गतिसे जहाँसे गया, वहाँ ईंटोंकी रचना करता गया। कहीं-कहीं अब भी उस प्राकारमें ईंटोंकी वह रचना दिखाई पड़ती है। संघने वहाँ पार्श्वनाथ स्वामीका एक विशाल मन्दिर बनवाया।

---

१. मुनि श्रीचन्दकृत कहाकोसु, सन्धि ६, कडवक ९, पृ. ६६।

यहाँकी उत्तराभिधाना बावड़ीके जलमें स्नान करनेसे कुष्ठ रोग दूर हो जाता है। इसी प्रकार वहाँके कुएँका जल भी बहुत आरोग्यप्रद बताया है। यहाँके उपवनमें अनेक बहुमूल्य औषधियाँ उत्पन्न होती हैं। जैसे—जयन्ती, नागदमनी, सहदेवी, अपराजिता, सकली, स्वर्णशिला, मूसली, सोमली, रविभक्ता, निर्विषी, मोरशिखा, विशल्या आदि।

पुरातत्त्व एवं इतिहास

यह नगरी भारतकी प्राचीनतम नगरियोंमें-से एक है। भगवान् ऋषभदेवने जिन ५२ जनपदों की रचना की थी, उसमें एक पंचाल भी था। परवर्तीकालमें पंचाल जनपद दो भागोंमें विभक्त हो गया—उत्तर पंचाल और दक्षिण पंचाल। पहले सम्पूर्ण पंचालकी ही राजधानी अहिच्छत्र थी, किन्तु विभाजन होने पर उत्तर पंचालकी राजधानी अहिच्छत्र रही और दक्षिण पंचालकी कम्पिला। जैन साहित्यमें पंचालके प्रायः इन दो भागोंका उल्लेख मिलता है। महाभारत कालमें अहिच्छत्रके शासक द्रोण थे और कम्पिलाके द्रुपद। कहीं-कहीं इस नगरीका नाम संख्यावती और अहिच्छत्रा भी मिलता है। कौशाम्बीके निकट पभोसा क्षेत्रकी गुफामें स्थित एक शिलालेखमें इसका नाम अधिचक्रा भी मिला है। वैदिक साहित्यमें इन नामोंके अतिरिक्त परिचक्रा, छत्रवती और अहिक्षेत्र भी मिलते हैं।

सम्भवतः विभिन्न कालोंमें ये विभिन्न नाम प्रचलित रहे हैं। किन्तु दूसरी शताब्दीसे लगभग छठी शताब्दी तक अहिच्छत्रा नाम अधिक प्रचलित रहा। यहाँकी खुदाईमें दूसरी शताब्दीकी एक यक्ष-प्रतिमा तथा मिट्टीकी गुप्तकालीन मोहर मिली थी। उन दोनोंपर अहिच्छत्रा नाम मिलता है।

नगरीका यह 'अहिच्छत्रा' नाम सर्प द्वारा छत्र लगानेके कारण पड़ा, इसमें जैन, वैदिक और बौद्ध तीनों ही धर्म सहमत हैं। किन्तु इस सम्बन्धमें जो कथानक दिये हैं, उनमें जैन कथानक अनेक कारणोंसे अधिक प्रामाणिक प्रतीत होता है। भगवान् पार्श्वनाथ ऐतिहासिक महापुरुष थे। उनका प्रभाव तत्कालीन सम्पूर्ण भारत—विशेषतः उत्तर और पूर्व भारतमें अत्यधिक था। वैदिक साहित्य भी उनके प्रभावसे अछूता नहीं रहा। उनके प्रभावके कारण वैदिक ऋषियोंकी चिन्तन-धारा बदल गयी। उनके चिन्तन की दिशा हिंसामूलक यज्ञों और क्रियाकाण्डोंसे हटकर अध्यात्म-वादी उपनिषदोंकी रचनाकी ओर मुड़ गयी।

भगवान् पार्श्वनाथ सम्बन्धी उपर्युक्त घटनाकी गूँज उस कालमें दक्षिण भारत तक पहुँची थी। इस बातका समर्थन कल्लुरगुड्डु (जिला सीमोगा, मैसूर प्रान्त—सन् ११२१) में उपलब्ध उस शिलालेखसे भी होता है जिसमें गंग वंशावली दी गयी है। उसमें उल्लेख है कि जब भगवान् पार्श्वनाथको अहिच्छत्रमें केवलज्ञानकी प्राप्ति हुई थी, उस समय यहाँ प्रियबन्धु राजा राज्य करता था। वह भगवान् पार्श्वनाथके दर्शन करने अहिच्छत्र गया।

---

१. हरिवंशकेतु नेमी- । श्वर-तीर्थं वर्तिसुत्तमिरे गंग कुळां-
वर-भानु पुट्टिदंभा- । सुर-तेजं विष्णुगुप्त नेम्बनृपाळम् ॥
आ-धराधिनाथं साम्राज्य-पदवियं कैकोण्डहिच्छत्र-पुरदोलु सुखमिद्र्दु नेमितीर्थंकर परमदेव-निर्वाणका-
ळदोल् ऐन्द्रध्वजवेम्ब पूजेयं माड़े देवेन्द्रनोसेदु ।
अनुपमदैरावतमं । मनोनुरागदोळे विष्णुगुप्तंगित्तम् ।
जिन-पूजेयिन्दे मुक्तिय- । ननर्घ्यमं पडेगुमेन्दोडुळिदुदु पिरिदे ॥........

पार्श्वनाथ सम्बन्धी इस घटनाका एक सांस्कृतिक महत्त्व भी है। इस घटनाने जैनकलाको—विशेषतः जैन मूर्तिकलाको बड़ा प्रभावित किया। पार्श्वनाथकी प्रतिमाओंका निर्माण इस घटनाके कारण ही कुछ भिन्न शैलीमें होने लगा। चौबीस तीर्थंकरोंकी प्रतिमाएँ अपने आसन, मुद्रा, ध्यान आदि दृष्टिसे सभी एक समान होती हैं। उनकी पहचान और अन्तर उनके आसनपर अंकित किये गये चिह्न द्वारा ही किया जा सकता है। केवल पार्श्वनाथकी प्रतिमाएँ अन्य-तीर्थंकर-प्रतिमाओंसे एक बातमें निराली हैं। अरहन्त दशाकी प्रतिमा होते हुए भी उनके सिरपर सर्प-फण रहता है, जो हमें सदा ही कमठ द्वारा घोर उपसर्ग करनेपर नागेन्द्र द्वारा पार्श्वनाथके ऊपर सर्प-फणके छत्र ताननेका स्मरण दिलाता रहता है। इतना ही नहीं, अनेक पार्श्वप्रतिमाएँ इस घटनाके स्मारक रूपमें धरणेन्द्र-पद्मावतीके साथ निर्मित होने लगीं और इसीलिए जैन साहित्यमें इस इन्द्रदम्पतिकी ख्याति पार्श्वनाथके भक्त यक्ष-यक्षिणीके रूपमें विशेष उल्लेख योग्य हो गयी।

यह घटना अपने रूपमें साधारण थी। अवश्य ही इस घटनाके प्रत्यक्षदर्शी व्यक्ति भी वहाँ रहे होंगे। उनके मुखसे जब सत्य घटना जन-जनके कानोंमें पहुँची होगी, तब उन सबका हृदय निष्काम वीतराग भगवान् पार्श्वनाथके चरणोंमें श्रद्धाप्लावित हो उठा होगा और उनके दर्शनोंके लिए वहाँ असंख्य जन-मेदिनी एकत्रित हुई होगी। फिर यह कैसा अलौकिक संयोग कि तभी भगवान्का केवलज्ञान महोत्सव हुआ और समवसरण लगा। वहाँ भगवान्का उपदेश हुआ। उस प्रथम उपदेशको ही सुनकर वे भगवान्के उपासक बन गये और जब भगवान्का वहाँसे विहार हो गया, तब सबने मिलकर प्रभुकी स्मृति सुरक्षित रखनेके लिए वहाँ एक विशाल मन्दिरका निर्माण कराया।

यहाँ क्षेत्रसे दो मील दूर एक प्राचीन किला है, जिसे महाभारतकालीन कहा जाता है। इस किलेके निकट ही कटारीखेड़ा नामक टीलेसे एक प्राचीन स्तम्भ मिला है। उस स्तम्भपर एक लेख है। इसमें महाचार्य इन्द्रनन्दिके शिष्य महादरिके द्वारा पार्श्वपति (पार्श्वनाथ) के मन्दिरमें दान देनेका उल्लेख है। यह लेख पार्श्वनाथ-मन्दिरके निकट ही मिला है। इस टीले और किलेसे कई जैन मूर्तियाँ मिली हैं। कई मूर्तियोंको ग्रामीण लोग ग्रामदेवता मानकर अब भी पूजते हैं।

व ॥ अन्ता—प्रियबन्धु सुख-राज्यं गेय्युत्तमिरे तत्समयदोळु पार्श्वभट्टारकर्गे केवल-ज्ञानोत्पत्ति यागे सौधर्म्मेन्द्रं बन्दु केवलिपूजेयं माडे प्रियबन्धु तानुं भक्तियिं बन्दु पूजेयं माडलातन भक्तिगिन्द्रं मेच्चि दिव्य-वप्पय्दु-तोडगेगलं कोट्टु निम्मन्वय दोळु मिथ्यादृष्टि गलागलोडं अदृश्यंगलक्कुमेन्दु पेळ्दु विजयपुर-वकहिच्छत्रमेम्ब पेसरनिट्टु दिविजेन्द्रं पोपुदुमित्तलु गंगान्वयं सम्पूर्ण-चन्द्रनन्ते पेर्च्चि वर्तिसुत्तमिरे तदन्वयदोळुकम्प-महीपतिगे पद्मनाभनेम्ब मगं पुट्टि।

—कल्लूरगुड्ड (शिमोगा परगना) में सिद्धेश्वर मंदिरकी पूर्व दिशामें पड़े हुए पाषाणपर लेख—(शक १०४३–११२१ ई०)

—जैन शिलालेख संग्रह, भाग द्वितीय, पृष्ठ ४१०–११

अर्थ—जब नेमीश्वरका तीर्थ चल रहा था, उस समय राजा विष्णुगुप्तका जन्म हुआ। वह राजा अहिच्छत्रपुरमें राज्य कर रहा था। उसी समय नेमि तीर्थंकरका निर्वाण हुआ। उसने ऐन्द्रध्वज पूजा की। देवेन्द्रने उसे ऐरावत हाथी दिया।....उनके वंशमें प्रियबन्धु हुआ। जिस समय वह शान्तिसे राज्य कर रहा था, उस समय पार्श्व भट्टारकको केवलज्ञान उत्पन्न हुआ। इसी अवसरपर स्वयं प्रियबन्धुने आकर केवलज्ञानकी पूजा की। उसकी श्रद्धासे प्रसन्न होकर इन्द्रने पाँच आभरण उसे दिये और कहा—अगर तुम्हारे वंशमें कोई मिथ्यामतका माननेवाला उत्पन्न होगा तो ये आभरण लुप्त हो जायेंगे। यों कहकर और अहिच्छत्रका विजयपुर नाम रखकर इन्द्र चला गया।

सम्भव है वर्तमानमें जो पार्श्वनाथ-मन्दिर है, वह नवीन मन्दिर हो और जिस स्थानपर किले और टीलेसे प्राचीन जैन-मूर्तियाँ निकली हैं, वहाँ प्राचीन मन्दिर रहा हो। यदि यहाँके टीलों और खण्डहरों की, जो मीलोंमें फैले हुए हैं, खुदाई की जाये, तो हो सकता है कि गहराईमें पार्श्वनाथकालीन जैन मन्दिरके चिह्न और मूर्तियाँ मिल जायें।

ऐसा कोई मन्दिर गुप्तकाल तक तो अवश्य था। शिलालेखों आदिसे इसकी पुष्टि होती है। गुप्तकालके पश्चाद्वर्ती इतिहासमें इस सम्बन्धमें कोई सूत्र उपलब्ध नहीं होता। फिर भी यह तो असन्दिग्ध है कि परवर्ती कालमें भी शताब्दियों तक यह स्थान जैनधर्मका एक विशाल केन्द्र रहा। इस कालमें यहाँ पाषाणकी अनेक जैन प्रतिमाओंका निर्माण हुआ। ऐसी अनेक प्रतिमाएँ, स्तूपोंके अवशेष, मिट्टीकी मूर्तियाँ और कलाकी अन्य वस्तुएँ प्राप्त हुई हैं। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि ये सभी प्रतिमाएँ दिगम्बर परम्परा की हैं। यहाँ श्वेताम्बर परम्पराकी एक भी प्रतिमा न मिलनेका कारण यही प्रतीत होता है कि यहाँ पार्श्वनाथ-कालमें दिगम्बर परम्पराकी ही मान्यता, प्रभाव और प्रचलन रहा है।

प्राचीन अहिच्छत्र एक विशाल नगरी थी। उसके भग्नावशेष आज रामनगरके चारों ओर फर्लांगोंमें बिखरे पड़े हैं। चीनी यात्री ह्वेन्त्सांगके अनुसार इस नगरका विस्तार उस समय तीन मीलमें था तथा यहाँ अनेक स्तूप भी बने हुए थे।

एक राज्यके रूपमें इसका अस्तित्व गुप्त-शासन कालमें समाप्त हो गया। उससे पूर्व एक राज्यकी राजधानीके रूपमें इसकी ख्याति रही। यहाँ अनेक मित्रवंशीय राजाओंके सिक्के मिले हैं। इन राजाओंमें कई जैन धर्मानुयायी थे।

किला

यहाँ मीलोंमें प्राचीन खण्डहर बिखरे पड़े हैं। यहाँ दो टीले विशेष उल्लेखनीय हैं। एक टीलेका नाम ऐंचुली—उत्तरिणी है और दूसरा टीला ऐंचुआ कहलाता है। ऐंचुआ टीलेपर एक विशाल और ऊँची कुर्सीपर भूरे बलुई पाषाणका सात फुट ऊँचा एक पाषाण स्तम्भ है। इसके नीचेका भाग पौने तीन फुट तक चौकोर है। फिर पौने तीन फुट तक छह पहलू है। इसके ऊपरका भाग गोल है। कहते हैं, इसके ऊपरके दो भाग गिर गये हैं। इसका ऊपरी भाग देखनेसे ऐसा लगता है कि वह अवश्य ही टूटकर गिरा होगा। कुछ ऐसी भी सम्भावना है कि यह तोड़ा गया हो। ऊपरका भग्न भाग नीचे पड़ा हुआ है। इसकी आकृति तथा टीलेकी स्थितिसे ऐसा प्रतीत होता है कि यह मानस्तम्भ रहा होगा। जन-साधारणमें वहाँ ऐसी भी किंवदन्ती है कि यहीं प्राचीनकालमें कोई सहस्रकूट चैत्यालय था। यहाँ खुदाईमें अनेक जैन मूर्तियाँ उपलब्ध हुई हैं। सम्भवतः यहाँ प्राचीनकालमें अनेक जिनमन्दिर और स्तूप रहे होंगे।

कुछ लोग अज्ञानतावश इस पाषाण-स्तम्भको 'भीमकी गदा' कहते हैं। इस प्रकारके अति प्राचीन पाषाण-स्तम्भोंके साथ भी भीमका सम्बन्ध जोड़नेकी एक परम्परा-सी पड़ गयी है। देवरिया जिलेके ककुभग्राम (वर्तमान कहाऊँ गाँव) में गुप्तकालका एक मानस्तम्भ पाषाण निर्मित है। उसके अधोभागमें भगवान् पार्श्वनाथकी कायोत्सर्गासन प्रतिमा है और शीर्ष भागपर चार तीर्थंकर प्रतिमाएँ हैं। मध्य भागमें 'ब्राह्मी' लिपिमें एक शिलालेख है, जिसमें इस मानस्तम्भकी प्रतिष्ठाका उल्लेख है। इतना होनेपर भी लोग इसे 'भीमकी लाट' कहते हैं।

ऐंचुआ टीलेके इस पाषाण-स्तम्भको 'भीमकी गदा' कहे जानेके सम्बन्धमें एक कहानी भी

ग्रामीण जनतामें प्रचलित है जिसके अनुसार अपने अज्ञातवासमें पाण्डवोंने इस नगरके एक ब्राह्मण के घर वास किया था। उस समय भीमने अपनी यह गदा वहाँ स्थापित कर दी थी। अस्तु।

यहाँ एक जैनमूर्तिका शीर्ष भी मिला था जो क्षेत्रके फाटकके बाहर विद्यमान है। पहले इस टीलेके नीचे शिवगंगा नदी बहती थी। अब तो उसकी रेखा मात्र अवशिष्ट है।

कहा जाता है, अपने वैभव-कालमें अहिच्छत्र नगर ४८ मीलकी परिधिमें था। आजके आँवला, वजीरगंज, रहटुइया, जहाँ अनेकों प्राचीन मूर्तियाँ और सिक्के प्राप्त हुए हैं, पहले इसी नगरमें सम्मिलित थे। इस नगरका मुख्य दरवाजा पश्चिममें वर्तमान सँपनी बताया जाता है। यहाँके भग्नावशेषोंमें १८ इंच तककी ईंटें मिलती हैं।

क्षेत्र-दर्शन

सड़कसे कुछ फुट ऊँची चौकी पर क्षेत्रका मुख्य द्वार है। फाटकके बायीं ओर बाहर उस भग्न मूर्तिके शीर्षके दर्शन होते हैं, जो किलेसे लाकर यहाँ दीवारमें एक आलेमें रख दिया गया है। भीतर एक विशाल धर्मशाला है। बीचमें एक पक्का कुआँ है।

बायीं ओर मन्दिरका द्वार है। द्वारमें प्रवेश करते ही क्षेत्रका कार्यालय मिलता है। फिर एक लम्बा-चौड़ा सहन है। सामने बायीं ओर एक छोटे गर्भ-गृहमें वेदी है, जिसमें तिखालवाले बाबा (भगवान् पार्श्वनाथकी प्रतिमा) विराजमान है। पार्श्वनाथकी यह सातिशय प्रतिमा हरितपन्ना-की पद्मासन मुद्रामें विराजमान है। इसकी अवगाहना ९॥ इंच है। प्रतिमा अत्यन्त सौम्य और प्रभावक है। इस प्रतिमाके पादपीठ पर कोई लेख नहीं है। सर्पका लांछन अवश्य अंकित है और सिरपर फण-मण्डल है। वेदीके नीचे सामनेवाले भागमें दो सिंह आमने-सामने मुख किये हुए बैठे हैं।

प्रतिमाके आगे सौम्य चरण स्थापित हैं जिनका आकार १ फुट ५॥ इंच है। उनपर निम्न-लिखित लेख उत्कीर्ण है—

> श्रीमूलसंघे नन्द्याम्नाये बलात्कारगणे कुन्दकुन्दाचार्यान्वये दिगम्बराम्नाये
> अहिच्छत्रनगरे श्री पार्श्वजिनचरणा प्रतिष्ठापिताः। श्रीरस्तु।

प्रतिमाका निर्माण-काल १०-११वीं शताब्दी अनुमान किया जाता है।

इस वेदीके ऊपर लघु शिखर है।

इस वेदीसे आगे दायीं ओर दूसरे कमरेकी वेदीमें मूलनायक पार्श्वनाथकी श्याम वर्ण १ फुट १० इंच अवगाहनाकी अत्यन्त मनोहर पद्मासन प्रतिमा है। प्रतिमाके सिरपर सप्त फणावलीका मण्डल है। भामण्डलके स्थानपर कमलकी सात लम्बायमान पत्तियों और कलीका अंकन जितना कलापूर्ण है, उतना ही अलंकरणमय है। इससे मूर्तिकी सज्जागत विशेषतामें अभिवृद्धि हुई है। अलंकरणका यह रूप अद्भुत और अदृष्टपूर्व है।

मूर्तिके नीचे सिंहासनपीठके सामनेवाले भागमें २४ तीर्थंकर प्रतिमाएँ उत्कीर्ण हैं।

इस प्रतिमाके बायीं ओर श्वेत पाषाणकी १० इंच ऊँची पद्मासन पार्श्वनाथ प्रतिमा है।

इससे आगे दायीं ओर एक गर्भगृहमें दो वेदियाँ हैं, जिनमें आधुनिक प्रतिमाएँ विराजमान हैं। उनमें विशेष उल्लेख योग्य कोई प्रतिमा नहीं है।

अन्तिम पाँचवीं वेदीमें तीन प्रतिमाएँ विशेष रूपसे उल्लेखनीय हैं। लगभग २० वर्ष पहले बूँदी (राजस्थान) में भूगर्भसे कुछ प्रतिमाएँ प्राप्त हुई थीं। उनमें-से तीन प्रतिमाएँ लाकर यहाँ

विराजमान कर दी गयी थीं। तीनोंका रंग हलका कत्थई है और शिलापट्ट पर उत्कीर्ण हैं। बायेंसे दायीं ओरकी प्रथम शिलाफलकका आकार ३॥ फुट है। बीचमें फणालंकृत पार्श्वनाथ तीर्थंकरकी खड्गासन प्रतिमा है। इसके परिकरमें नीचे एक यक्ष और दो यक्षी हैं जो चँवरवाहक हैं। उनके ऊपर कायोत्सर्ग मुद्रामें १० इंच आकारकी एक तीर्थंकर प्रतिमा है। तथा उसके ऊपर ७ इंच अवगाहनाकी एक पद्मासन प्रतिमा अंकित है। इसी प्रकार दायीं ओर भी दो प्रतिमाएँ हैं। यह शिलाफलक पंचबालयतिका कहलाता है। पाषाण बलुआई है। लेख या लांछन नहीं है।

मध्यमें हलके कत्थई रंगकी पद्मासन पार्श्वनाथ प्रतिमा है। ऊपर सर्पफण है। अवगाहना २॥ फुट है। सिंहासनमें सामने दो सिंह जिह्वा निकाले हुए बैठे हैं जो कर्मशत्रुओंके भयानक रूपके प्रतीक हैं। किन्तु चरण-तले बैठनेका अभिप्राय यह है कि तीर्थंकरने अपने भयानक कर्मशत्रुओंको चरणोंके नीचे दबाकर कुचल दिया है।

यक्षी पद्मावती एक बच्चेको गोदमें लिये है। पार्श्वनाथके भामण्डलके दोनों ओर गज उत्कीर्ण हैं, जो गजलक्ष्मीके प्रतीक हैं। उनसे कुछ ऊपर इन्द्र हाथोंमें स्वर्ण कलश लिये क्षीरसागर-के पावन जलसे भगवान्‌का अभिषेक करते प्रतीत होते हैं। फणके ऊपर त्रिछत्र हैं। उसके दोनों ओर शीर्ष कोनों पर देवकुलिकाएँ बनी हुई हैं। अलंकरण साधारण ही है किन्तु इसमें कलाकी जो अभिव्यंजना हुई है, उससे दर्शक आकृष्ट हुए बिना नहीं रहता।

अन्तिम प्रतिमा खड्गासन है। अवगाहना ३॥ फुट है। अधोभागमें दोनों ओर इन्द्र और इन्द्राणी चमर लिये हुए हैं। मध्यमें यक्ष-यक्षी विनत मुद्रामें बैठे हैं। मूर्तिके सिरके दोनों ओर विमानचारी देव हैं। एक विमानमें देव और देवी हैं। दूसरेमें एक देव है। छत्रके एक ओर सिंह और दूसरी ओर हाथीका अंकन है। भामण्डल और छत्रत्रयी हैं।

सम्भवत: इन तीनों प्रतिमाओंका निर्माण उस युगमें हुआ है, जब प्रतिमाओंमें अलंकरण और सज्जाका विकास प्रारम्भिक दशामें था। इन प्रतिमाओं पर श्रीवत्स लांछन भी लघु आकार-में है। पादपीठ पर भी लेख या लांछन नहीं है। इस प्रकारकी शैली गुप्तकालके निकट परवर्ती कालमें प्राप्त होती है। अर्थात्, चौथी-पाँचवीं शताब्दीसे आठवीं-नौवीं शताब्दी तक मूर्तिकला-विन्यास उपर्युक्त प्रकारका रहा है।

धर्मशालाके मुख्य द्वारके सामने सड़कके दूसरी ओरका मैदान भी मन्दिरका है। सड़कसे कुछ आगे चलनेपर वह विशाल पक्का कुआँ या वापिका है, जिसके जलकी ख्याति पूर्वकालमें दूर-दूर तक थी। आचार्य जिनप्रभ सूरि (चौदहवीं शताब्दी) ने भी 'विविध तीर्थ कल्प' में इस वापिकाकी प्रशंसा की है।

मन्दिरके निकट ही रामनगर गाँव है। वहाँ भी एक शिखरबन्द मन्दिर है। इस मन्दिरमें फणमण्डित भगवान् पार्श्वनाथकी श्याम वर्ण पद्मासन प्रतिमा है। इसकी अवगाहना ४ फुट है। प्रतिमा अत्यन्त मनोज्ञ है। फणावलीमें 'अन्यथानुपपन्नत्वं....' श्लोक भी लिखा हुआ है। इस मूर्तिकी प्रतिष्ठा वी. सं. २४८१ वैशाख शुक्ला ७ गुरुवारको श्री महावीरजीमें हुई थी।

मूलनायकके अतिरिक्त दो पाषाणकी और दो धातुकी प्रतिमाएँ भी हैं।

पहले इस मन्दिरके स्थानपर पद्मावती पुरवाल पंचायतकी ओरसे ला. हीरालालजी सर्राफ एटा तथा पं. चम्पालालजी पेंठत निवासीका बनवाया हुआ मन्दिर था। बादमें उसके स्थानपर समस्त दिगम्बर समाजकी ओरसे यह मन्दिर बनाया गया।

मन्दिरके बाहर उत्तरकी ओर आचार्य पात्रकेशरीके चरण बने हुए हैं। चरणोंकी लम्बाई ११ इंच है।

ऐसा विश्वास है कि आचार्य पात्रकेशरी इसी स्थानपर बने हुए मन्दिरमें देवी पद्मावती द्वारा प्रतिबोध पाकर जैनधर्ममें दीक्षित हुए थे।

वार्षिक मेला

क्षेत्रका वार्षिक मेला चैत्र कृष्णा अष्टमीसे चैत्र कृष्णा त्रयोदशी तक होता है।

कम्पिला

मार्ग

कम्पिला उत्तरप्रदेशके फर्रुखाबाद जिलेकी कायमगंज तहसीलमें एक छोटा-सा गाँव है। यह उत्तर रेलवेकी अछनेरा-कानपुर शाखाके कायमगंज स्टेशनसे ८ कि. मी. दूर है। स्टेशनसे गाँव तक पक्की सड़क है। बस और ताँगे मिलते हैं।

कल्याणक क्षेत्र

कम्पिलामें तेरहवें तीर्थंकर भगवान् विमलनाथका जन्म हुआ था। उस समय इक्ष्वाकुवंशी महाराज कृतवर्मा यहाँके शासक थे। वे भगवान् ऋषभदेवके वंशज थे। उनकी महारानीके गर्भमें ज्येष्ठ कृष्णा दशमीके दिन सहस्रार स्वर्गके इन्द्रका जीव आयु पूर्ण होनेपर आया। देवोंने आकर भगवान्का गर्भकल्याणक उत्सव मनाया।

नौ माह पूर्ण होनेपर भगवान्का जन्म हुआ। आचार्य यतिवृषभ विरचित 'तिलोयपण्णत्ति'-में इस सम्बन्धमें निम्नलिखित उल्लेख है—

'कांपिलपुरे विमलो जादो कदवम्म जयस्सामा हिं।
माघसिद चोद्दसिए णक्खत्ते पुव्वभाद्दपदे ॥४।५३८

अर्थात् कम्पिलापुरीमें विमलनाथ पिता कृतवर्मा और माता जयश्यामासे माघ शुक्ला चतुर्दशीके दिन पूर्व भाद्रपद नक्षत्रमें उत्पन्न हुए।

उस समय चारों निकायके देवों और इन्द्रोंने भगवान्को सुमेरु पर्वतपर ले जाकर उनका जन्माभिषेक किया और पुनः कम्पिला लाये जहाँ उनका जन्मकल्याणक महोत्सव मनाया। सौधर्म इन्द्रने बालकका नाम विमलनाथ रखा।

बालकके शरीरमें १००८ शुभ सामुद्रिक लक्षण थे। किन्तु इन्द्रकी दृष्टि सर्वप्रथम उनके पैरके शूकर चिह्नपर पड़ी थी। इसलिए उनका प्रतीक चिह्न शूकर स्वीकार किया गया। देवों और इन्द्रों द्वारा भगवान्का जन्म-महोत्सव कम्पिलामें बड़े समारोहके साथ मनाया गया। इस घटनासे जनता अत्यन्त प्रभावित हुई और उसने तभीसे कम्पिलाको श्रद्धावश शूकर क्षेत्र[1] मान लिया।

---

१. जत्थ य तस्सेव भगवओ सूअर लच्छणत्तणं पडुच्च देवेहिं महिमा कया तत्थ य सूअर खित्तं पसिद्धि-मुवगयं।
—विविध तीर्थकल्पमें काम्पिल्यपुर कल्प, २५

यौवन अवस्था प्राप्त होनेपर पिताने विमलनाथका विवाह कर दिया और राज्याभिषेक कर मुनिदीक्षा धारण कर ली। विमलनाथ राज्य-शासन करने लगे। एक दिन वे प्रकृतिकी शोभा देख रहे थे। शरद् ऋतुका सुहावना मौसम था। आकाशमें कहीं-कहीं बादल थे। किन्तु कुछ देर बाद उन्होंने देखा, बादल विलीन हो गये। इस साधारण-सी घटनाने विमलप्रभुको बहुत प्रभावित किया। वे सोचने लगे—संसारमें सब भौतिक पदार्थ और रूप क्षणभंगुर हैं। इससे उन्हें आत्म-कल्याणकी प्रेरणा मिली और कम्पिलाके बाह्य उद्यानमें जाकर उन्होंने मुनिदीक्षा ले ली। 'तिलोयपण्णत्ति'में इस सम्बन्धमें उल्लेख है—

माघस्स सिद चउत्थी अवरण्हे तह सहेदुगम्मि वणे।
उत्तरभद्दपदाणं विमलो णिक्कमइ तदिय उववासे ॥४।६५६

अर्थात् विमलनाथ स्वामीने माघ शुक्ला चतुर्थीको अपराह्ण कालमें उत्तर भाद्रपद-नक्षत्रके रहते सहेतुक वनमें तृतीय उपवासके साथ दीक्षा ग्रहण की।

यह सहेतुक वन कम्पिलाका बाह्य उद्यान या वन था। देवों और इन्द्रोंने यहाँ आकर भगवान् का दीक्षा-कल्याणक महोत्सव मनाया।

पश्चात् स्वामी विमलनाथ अन्य क्षेत्रोंमें विहार करते रहे। तीन वर्ष पश्चात् वे अपने दीक्षा-वनमें पधारे और दो दिनके उपवासका नियम लेकर ध्यानारूढ़ हो गये और वहीं उन्हें केवलज्ञान उत्पन्न हो गया। 'तिलोयपण्णत्ति'में इससे सम्बन्धित विवरण निम्न भाँति है—

पुस्से सिद दसमीए अवरण्हे तह य उत्तरासाढे।
विमलजिणिंदे जादं अणंतणाणं सहेदुगम्मि वणे॥ ४।६९०

अर्थात् , जिनेन्द्र विमलनाथके पौष शुक्ला दशमीको अपराह्ण कालमें उत्तराषाढ़ा नक्षत्रके रहते सहेतुक वनमें अनन्तज्ञान (केवलज्ञान) उत्पन्न हुआ।

कम्पिला में एक अघातिया टीला है। यह अनुश्रुति है कि यहींपर भगवान् विमलनाथने घातिया रहित होकर अर्थात् घातिया कर्मों का नाश कर केवलज्ञान प्राप्त किया था। यह टीला किसी प्राचीन जैनमन्दिरका ध्वंसावशेष है। खुदाई होनेपर यहाँ कभी-कभी जैन-मूर्तियाँ मिल जाती हैं।

इस प्रकार कम्पिलामें भगवान् विमलनाथके गर्भ, जन्म, दीक्षा और केवलज्ञान—ये चार कल्याणक हुए थे। अतः यह स्थान उनके समयसे ही तीर्थक्षेत्र माना जाता है।

पंचाल जनपदमें भगवान् आदिनाथ, पार्श्वनाथ और महावीरके विहारका उल्लेख मिलता है। यहाँ इन तीर्थंकरोंका समवसरण आया था।

प्राचीन मन्दिर

इस तीर्थक्षेत्रकी मान्यता अति प्राचीन कालसे है। इसलिए प्रागैतिहासिक कालमें यहाँ भगवान् विमलनाथका कोई मन्दिर अवश्य रहा होगा। चैत्य-निर्माणकी परम्परा अत्यन्त प्राचीन है, किन्तु प्रागैतिहासिक कालका कोई मन्दिर वर्तमानमें उपलब्ध नहीं है। सम्भव है, अगर यहाँ ऐसा मन्दिर कभी रहा हो तो वह नष्ट हो गया होगा। फिर भी वर्तमानमें एक बहुत प्राचीन मन्दिर बस्तीके बीच पश्चिमोत्तर भागमें विद्यमान है। इसका निर्माण-काल विक्रम सं. ५४९ (ईसवी सन् ४९२) बताया जाता है। अर्थात् यह मन्दिर लगभग डेढ़ हजार वर्ष प्राचीन है। यह मन्दिर धरातलसे लगभग १० फुट ऊँची चौकीपर बनाया गया है।

इस मन्दिरमें भगवान् विमलनाथकी मूलनायक प्रतिमा है। इसका वर्ण खाकी, अवगाहना दो फुट, पाषाणकी पद्मासन मुद्रामें है। छातीपर श्रीवत्स और हथेलीपर श्रीवृक्षका चिह्न है। पहले यह मन्दिरके गर्भ भागमें थी। वहाँसे उठाकर अब इसे ऊपर संगमरमरकी नयी वेदीमें विराजमान कर दिया है। प्रतिमापर लेख है किन्तु पढ़ा नहीं जाता है, काफी घिस गया है। भक्त जनता इसे चतुर्थ कालकी मानती है, किन्तु इसकी बनावट शैली और पाषाण आदिका सूक्ष्म निरीक्षण करनेपर तथा श्रीवत्ससे लगता है कि यह गुप्तकालीन है। प्रतिमाका भावांकन अत्यन्त सजीव है। मुद्राकी सहज मुसकान भी समूचे परिवेशमें उभरते हुए विरागको दबा नहीं पायी। हाँ, विरागमें मुसकान और भी अधिक प्रभावक हो गयी है, मानो वह कह रही है कि संसार और भोगोंका परित्याग मेरे लिए हँसी-खेल है। मैं लिप्त ही कब हुआ था इनमें ?

यह प्रतिमा गंगामें से निकाली गयी थी। पानीमें पड़े रहनेसे इसके मुख, पेट और छाती-पर दाग पड़ गये हैं।

मुख्य वेदीपर ५ पाषाणकी और १३ धातुकी प्रतिमाएँ हैं। एक पाषाण-प्रतिमा जिसका वर्ण भूरा है, अवगाहना १५ इंच है। यह पद्मासन मुद्रामें है और काफी प्राचीन प्रतीत होती है। इसपर कोई लांछन या चिह्न नहीं है। परम्परासे इसे भगवान् अनन्तनाथकी प्रतिमा कहा जाता है।

दो पाषाण-प्रतिमाएँ आठ-आठ इंचकी हैं। एक भूरे पाषाणकी है और दूसरी कृष्ण पाषाण-की। लेख और लांछन बिलकुल घिस चुके हैं। एक प्रतिमा महावीर स्वामीकी और दूसरी ऋषभ-देवकी कही जाती है। एक अन्य पाषाण-प्रतिमा सं. २००८ की है।

बायीं ओरकी वेदीमें बादामी या खाकी वर्णकी एक पद्मासन-प्रतिमा है। इसकी अवगाहना एक फुट दस इंच है। इसके ऊपर लेख या लांछन कुछ नहीं है। परम्परासे यह महावीर स्वामीकी कही जाती है। इस वेदीपर दो प्रतिमाएँ वि. संवत् १५४८ की और तीसरी कृष्ण वर्ण प्रतिमा वि. संवत् १९६० की है।

दायीं ओर बरामदेमें एक चबूतरे पर चार चरण-युगल स्थापित हैं। सहनके पास बरामदेमें भी एक वेदी है, जिसमें श्वेत पाषाणकी एक पद्मासन प्रतिमा विराजमान है। इसका प्रतिष्ठा-काल वीर संवत् २४८८ है।

बायीं ओरके बरामदेमें एक सर्वतोभद्रिका प्रतिमा रखी हुई है। बीचमें-से इसके दो भाग हो गये हैं। दोनों भागोंमें दो-दो प्रतिमाएँ हैं। सभी खण्डित अवस्थामें हैं। पाषाण खण्ड इस प्रकार हुए हैं कि एक प्रतिमाकी बाँह दूसरे भागमें रह गयी है। पाषाण भूरे वर्णका है। ये प्रतिमाएँ पद्मासन मुद्रामें हैं ? इनकी अवगाहना ढाई फुट है। लांछन और लेख नहीं हैं। छातीपर श्रीवत्स भी नहीं है। ऐसा लगता है कि यह प्रतिमा कुषाण-कालकी है। मथुरामें प्राप्त सर्वतो-भद्रिका प्रतिमाओंसे इसकी रचना-शैलीमें बहुत साम्य दिखाई पड़ता है।

उक्त प्रतिमाके बगलमें एक और खण्डित प्रतिमा रखी हुई है। यह खड्गासन मुद्रामें है। घुटनोंसे चरणों तकका भाग नहीं है। इसका वर्तमान आकार छह इंचका है। यह भी सर्वतोभद्रिका प्रतिमाकी तरह प्राचीन लगती है।

मन्दिरका शिखर विशाल है। उसमें एक लम्बा-चौड़ा सहन है, जिसके तीन ओर दालान हैं और एक ओर गर्भगृह है।

मन्दिरके सामने ही एक जैन धर्मशाला है, जिसमें छह कमरे हैं। एक दोमंजिली जैन धर्मशाला बस्तीके दूसरे सिरेपर बनी हुई है। यह बहुत विशाल है। इसमें पक्की पाण्डुक शिला बनी हुई है, जो मेलेके अवसरपर भगवान्‌के अभिषेकके लिए काममें आती है।

पौराणिक इतिहास

कम्पिला भारतकी अत्यन्त प्राचीन सांस्कृतिक नगरी है। प्राचीन भारतमें भगवान् ऋषभदेवने ५२ जनपदोंकी रचना की थी। भगवान् महावीरसे पूर्वसे १६ महाजनपदोंका भी उल्लेख जैन[1] और बौद्ध[2] साहित्यमें मिलता है। उन दोनोंमें पंचाल जनपद भी था। महाभारत युद्धसे पूर्व सम्पूर्ण पंचाल जनपदपर राजा द्रुपदका आधिपत्य था। उनकी स्त्रीका नाम भोगवती (हरिवंश पुराण ४५।१२०) अथवा दृढ़रथा (उत्तर पुराण ७२।२६२) था। द्रौपदी उनकी अनुपम सुन्दरी पुत्री थी। बादमें यह अर्जुनको विवाही गयी। उस समय अखण्ड पंचालकी राजधानी कम्पिला थी। इस कालमें राजमहलसे गंगा नदी तक एक कलापूर्ण सुरंग बनायी गयी, जिसमें ८० बड़े द्वार और ६४ छोटे द्वार थे। कहते हैं, उसमें एक ऐसी मशीन लगी हुई थी जिसमें एक कीला ठोकते ही सभी द्वार स्वतः बन्द हो जाते थे। अनन्तर उत्तर पंचालपर द्रोणाचार्यका आधिपत्य हो गया था। दक्षिण पंचाल द्रुपदके शासनमें रहा। उत्तर पंचालकी राजधानी अहिच्छत्र थी और दक्षिणकी कम्पिला। पंचालको इन दोनों भागोंमें गंगा विभाजित करती थी। उस समय कम्पिला राज्यकी सीमा गंगासे लेकर दक्षिणमें चर्मण्वती (चम्बल) तक थी। पंचालके दोनों भागोंकी राजधानियोंमें कम्पिला अधिक प्राचीन है।

साहित्यमें इस नगरीके कई नाम मिलते हैं—कम्पिला, काम्पिल्य। कहीं-कहीं इसका नाम भोगपुर और माकन्दी भी आया है।

कम्पिला प्राचीनकालमें अत्यन्त समृद्ध और विशाल नगरी थी। इसकी विशालताका अनुमान इसीसे किया जा सकता है कि 'काशिकावृत्ति'में कम्पिला और संकाश्यको एक नगरके दो भाग बताया है। इसी प्रकार 'बृहज्जातक' की महीधर-टीकामें कपित्थिकको कम्पिलाका सन्निवेश बताया है। चीनी यात्री फाह्यानने संकाश्यको और उसके पश्चात् ह्वेन्त्सांगने कपित्थिकको कम्पिलाका सन्निवेश बताया है। अर्थात् कम्पिला और संकाश्य दोनों मिलकर एक नगर बनाते थे। अथवा संकाश्य और कपित्थिक कम्पिलाके सन्निवेश थे। आज तो संकिशा (संकाश्य) और कैथिया (कपित्थिक) कम्पिलासे बीस-बाईस मील दूर हैं।

प्रसिद्ध स्थान अथवा केन्द्र होनेके कारण यहाँ अनेक महत्त्वपूर्ण धार्मिक और सांस्कृतिक घटनाएँ घटी हैं। तीर्थंकरोंके कल्याणकों और विहारके अतिरिक्त यहाँ हरिषेण चक्रवर्ती भी हुए, जिनके पिता पद्मनाभने नगरके मनोहर उद्यानमें अनन्तवीर्य जिनेन्द्रसे मुनि-दीक्षा ली और दीक्षा-वनमें ही तपस्या कर केवलज्ञान प्राप्त किया। आचार्य रविषेणने हरिषेण चक्रवर्तीके सम्बन्धमें लिखा है कि—"काम्पिल्य नगरमें इक्ष्वाकुवंशी राजा हरिकेतु और रानी वप्राके हरिषेण नामका दसवाँ प्रसिद्ध चक्रवर्ती हुआ। उसने अपने राज्यकी समस्त पृथ्वीको जिन-प्रतिमाओंसे अलंकृत किया था तथा भगवान् मुनि सुव्रतनाथके तीर्थमें सिद्धपद प्राप्त किया था[3]।

---

१. भगवती सूत्र।

२. अंगुत्तर निकाय, विनयपिटक।

३. पद्मपुराण २०।१८६–८७।

इसी प्रकार यहींपर बारहवाँ चक्रवर्ती ब्रह्मदत्त भी हुआ जिसने सम्पूर्ण भरत क्षेत्रपर विजय प्राप्त कर कम्पिलाको राजनीतिक केन्द्र बनाया। यह चक्रवर्ती भगवान् नेमिनाथ और भगवान् पार्श्वनाथके अन्तर्वर्ती कालमें हुआ था। वाल्मीकि रामायण और बौद्ध ग्रन्थ महाउम्मग्ग जातकमें भी इस राजाके सम्बन्धमें वर्णन मिलता है। विषयलम्पटी होनेके कारण इसके नरकमें जानेका उल्लेख मिलता है।

महाभारतके युद्धके बाद कम्पिला अध्यात्म विद्याका केन्द्र बन गया था।

वार्षिक मेला

क्षेत्रपर चैत्र कृष्णा अमावस्यासे चैत्र शुक्ला तृतीया तक मैनपुरीवालोंकी ओरसे मेला लगता है और रथयात्रा निकलती है। इस समय बाहरी चौकके दालानमें बनी हुई शिखरबद्ध वेदीपर मूलनायक प्रतिमा विराजमान की जाती है। पहले यह मेला चैत्र कृष्णा दशमीसे होता था। एक मेला आश्विन कृष्णा द्वितीयाको होता है। इस अवसरपर जल-विहार और मस्तकाभिषेक होता है।

यहाँ एक श्वेताम्बर मन्दिर भी है। इसका निर्माण सन् १९०४ में हुआ था।

काशी और वत्स जनपद

काशी (वाराणसी, सिंहपुरी और चन्द्रपुरी)

प्रयाग

कौशाम्बी

पभोसा

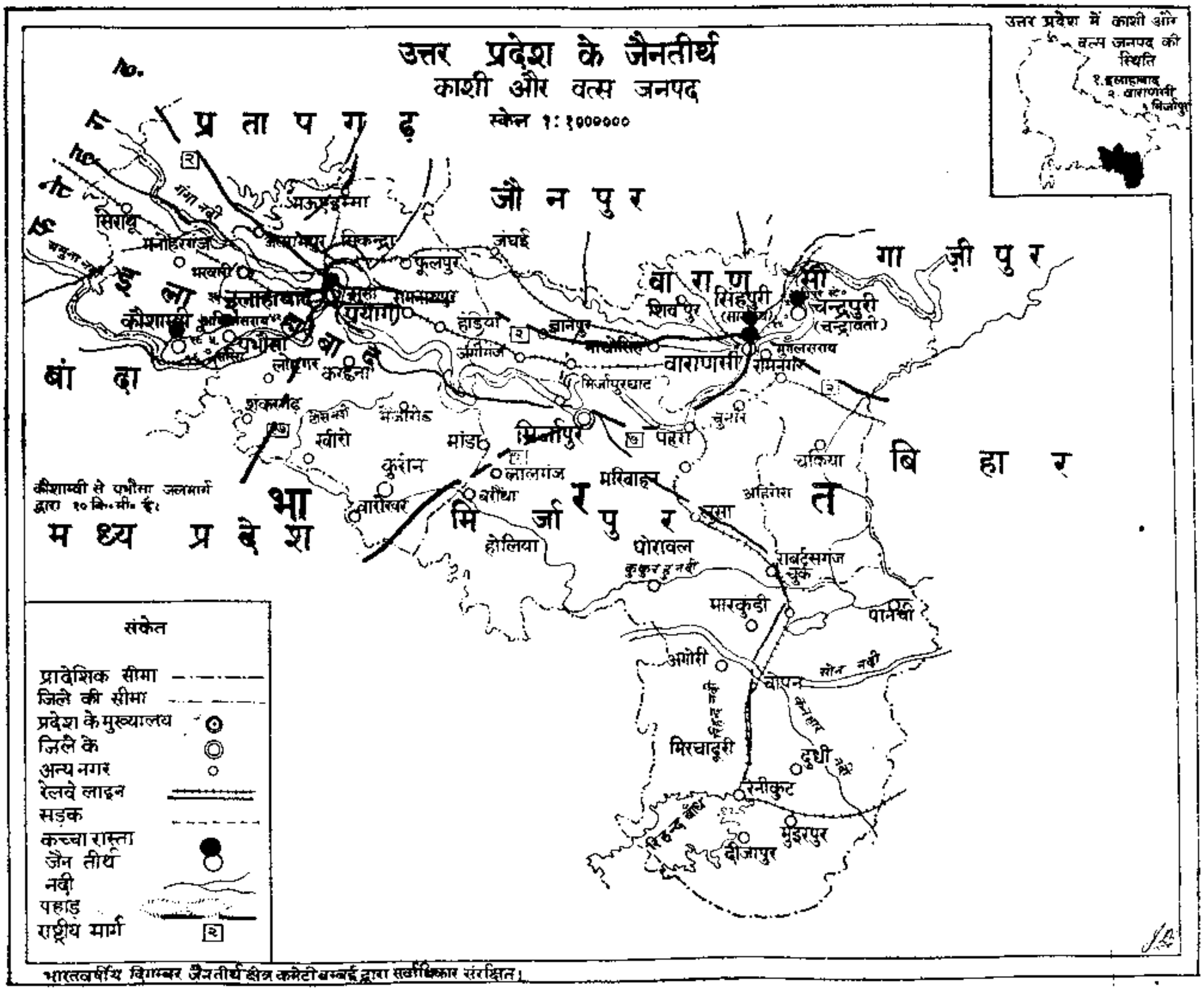

१. भारत के महासर्वेक्षण की अनुज्ञानुसार भारतीय सर्वेक्षण विभागीय मानचित्र पर आधारित।

© भारत सरकार का प्रतिलिप्यधिकार, १९७१

२. मानचित्र में दिये गये नामों का अक्षर विन्यास विभिन्न सूत्रों से लिया गया है।

काशी (वाराणसी)

जैन तीर्थ

काशी (वाराणसी) जैनोंका प्रसिद्ध तीर्थ है। तीर्थक्षेत्रके रूपमें इसकी प्रसिद्धि सातवें तीर्थंकर भगवान् सुपार्श्वनाथके कालसे ही हो गयी थी। जब यहाँ उसके गर्भ, जन्म, तप और केवल-ज्ञान कल्याणक मनाये गये उस समय काशीके नरेश महाराज सुप्रतिष्ठ थे। पृथ्वी उनकी महा-रानी थी। ज्येष्ठ शुक्ला द्वादशीके दिन सुपार्श्वकुमार उनके गर्भसे उत्पन्न हुए।

'तिलोयपण्णत्ति' ग्रन्थमें उनके जन्मके सम्बन्धमें लिखा है—

> वाराणसीए पुढवी सुपइट्ठेहिं सुपास देवो य।
> जेट्ठस्स सुक्कवार सिदिणम्मि जादो विसाहाए ॥ ४।५३२

अर्थात् सुपार्श्वदेव वाराणसी नगरीमें माता पृथ्वी और पिता सुप्रतिष्ठसे ज्येष्ठ शुक्ला १२ के दिन विशाखा नक्षत्रमें उत्पन्न हुए।

इसके पश्चात् तेईसवें तीर्थंकर भगवान् पार्श्वनाथके गर्भ, जन्म और दीक्षा कल्याणक इसी प्रकार धूमधाम और उल्लासके साथ मनाये गये।

'तिलोयपण्णत्ति' में उनके जन्मके सम्बन्धमें इस प्रकार विवरण मिलता है—

> हयसेण वम्मिलाहिं जादो हि वाणारसीए पासजिणो।
> पूसस्स बहुल एक्कारसिए रिक्खे विसाहाए ॥ ४।५४८ ॥

अर्थात्, भगवान् पार्श्वनाथ वाराणसी नगरीमें पिता अश्वसेन और माता वम्मिला (वामा) से पौष कृष्णा एकादशीके दिन विशाखा नक्षत्रमें उत्पन्न हुए।

पार्श्वनाथका जन्म

काशी देशमें वाराणसी नामक एक नगरी थी। महाराज अश्वसेन वहाँके राजा थे।[1] वामा-देवी उनकी महारानी थीं। वे काश्यपगोत्री उग्रवंशी थे। वैशाख कृष्णा द्वितीयाको शुभ नक्षत्रमें पार्श्वनाथका जीव, जो वैजयन्त नामक स्वर्गमें देव था, आयु पूर्ण होनेपर वामादेवीके गर्भमें आया। इन्द्रकी आज्ञासे यक्षपति कुबेरने गर्भावतरणके छह माह पूर्वसे रत्नवर्षा प्रारम्भ कर दी। रत्नवर्षाका यह कार्य भगवान्के जन्म होने तक चलता रहा। इन्द्र और देवोंने वाराणसी नगरीमें पहुँचकर त्रिलोकीनाथ भगवान्का गर्भ कल्याणक उत्सव बड़ी भक्तिके साथ मनाया। भगवान्के पुण्य प्रभावसे महाराज अश्वसेनके प्रासादोंमें, नगरमें और काशी राज्यमें सुख-समृद्धिमें निरन्तर वृद्धि होने लगी।

---

१. उत्तरपुराण ७३।७५ के अनुसार महारानीका नाम ब्राह्मी था। आचार्य पद्मकीर्ति कृत 'पासणाह चरिउ' में उन्हें कुशस्थल नरेश शक्रवर्माकी पुत्री बताया है।

'पासणाह चरिउ' के अनुसार उत्तरपुराणमें प्राणत। वादिराजसूरि कृत पार्श्वनाथ चरितमें आनत स्वर्ग।

पौष कृष्णा एकादशीको भगवान्का जन्म हुआ। इन्द्रों और देवोंने वाराणसीमें आकर भगवान्को अपने ऐरावत हाथीपर सुशोभित रत्नमय सिंहासनपर विराजमान किया। बालक भगवान्को लेकर वे सुमेरु पर्वतके पाण्डुक वनमें स्थित पाण्डुकशिलापर ले गये और वहाँ क्षीर-सागरके जलसे उनका अभिषेक किया। इन्द्राणीने प्रभुका शृंगार किया, वस्त्रालंकार पहनाये। तब सौधर्मेन्द्र भगवान्को लेकर अन्य इन्द्रों और देवोंके साथ वाराणसी आया और महाराज अश्वसेनके महालयमें उसने भक्ति-विह्वल होकर ताण्डव नृत्य किया। फिर सब लोग अपने-अपने स्थानों पर चले गये।

पार्श्वकुमार द्वारा युद्ध

राजा अश्वसेन एक दिन दरबार में बैठे हुए थे। उस समय राज्यसभा में भूटान नरेश, राणा, हूण, जाट, गुर्जर, खस, तोमर, भट्ट, चट्ट, हरिवंशी, दहिया, सूर्यवंशी, मुण्डिय, मौर्य, इक्ष्वाकु वंशी, सोमवंशी, बुद्धराज, कुलिकछिन्द, पमार, राठौड़, सोलंकी, चौहान, प्रतिहार डुण्डुराज, कलचुरी, शकविजेता चन्देला, भट्टिय, चावण्ड, मल्ल, टक्क, कच्छनरेश, सिन्धुपति, कुडुक्क तथा अन्य अनेक नरेश और सामन्त यथास्थान बैठे हुए थे।

तभी कुशस्थल (कन्नौज) से एक दूत आया। उसने समाचार दिया—'कुशस्थलके राजा शक्रवर्माने अपने बड़े पुत्र रविकीर्ति (रविवर्मा) का राजतिलक करके मुनि-दीक्षा ले ली है। रविवर्मा आपकी अधीनता स्वीकार करते हैं।' शक्रवर्मा महाराज अश्वसेनके श्वसुर[1] थे। उनकी दीक्षाके समाचारसे अश्वसेनको मोहवश दुःख हुआ।

महाराजके स्वस्थ होनेपर दूतने पुनः निवेदन किया—"देव! यमुनाके तटपर एक शक्ति-शाली यवन नरेशका राज्य है। उसने महाराज रविकीर्तिसे उनकी सुन्दरी कन्या माँगी थी। न देनेपर उसने आक्रमणकी धमकी दी थी। महाराज रविकीर्तिने जब अपनी कन्या देनेसे इनकार कर दिया तो यवनराजने कुशस्थलपर बड़े वेगसे आक्रमण कर दिया है। कुशस्थल नरेश आपसे सैनिक सहायताकी प्रार्थना करते हैं।"

महाराज अश्वसेन अपनी विशाल सेना लेकर कुशस्थल नगरके लिए चलनेको तैयार हुए। यह समाचार पार्श्वकुमारने भी सुना। उन्होंने अपने पितासे युद्धमें जाने की अनुमति माँगी। पिताने उन्हें सहर्ष अनुमति दे दी। पार्श्वकुमार सेना लेकर कुशस्थल पहुँचे। रविवर्माने उनका प्रेम पूर्वक स्वागत किया।

दोनों ओरकी सेनाओंमें भीषण युद्ध हुआ। पार्श्वकुमारने युद्धमें यवनराजको बन्दी बना लिया। पार्श्वकुमारकी जयध्वनिसे आकाश गूँजने लगा। कुमारके अतुल बल-विक्रमको देखकर रविकीर्ति नरेश अत्यन्त प्रसन्न हुआ। उसने अपनी सुन्दरी कन्या प्रभावतीके साथ विवाहके लिए पार्श्वकुमारसे निवेदन[2] किया। किन्तु घटनाचक्र ऐसा घूमा कि पार्श्वकुमारका विवाह नहीं हो सका।

---

१. आचार्य पद्मकीर्ति द्वारा रचित 'पासणाह चरिउ' ९।७-८।

२. पार्श्वनाथ द्वारा युद्ध करने की यह घटना आचार्य पद्मकीर्ति द्वारा रचित 'पासणाह चरिउ' (सन्धि ९ से १३ तक) के आधारपर दी गयी है। उत्तरपुराण, तिलोयपण्णत्ति आदि अन्य दिगम्बर ग्रन्थोंमें इस घटनाका कोई उल्लेख नहीं प्राप्त होता।

तापस कमठका मान-भंग

पार्श्वकुमार इस समय सोलह वर्षके किशोर थे। एक दिन क्रीड़ाके लिए वे नगरसे बाहर गये। वहाँ उन्होंने एक वृद्ध तापसको देखा जो पंचाग्नि तप कर रहा था। वह महीपाल नगरका राजा था और पार्श्वनाथका नाना[1] लगता था। अपनी रानीके वियोगसे वह तापस बन गया था। उसके सात सौ तापस शिष्य थे।

गंगाका सारा प्रदेश, जिसमें वाराणसी भी शामिल थी, वानप्रस्थ तपस्वियोंका गढ़ था। उस प्रदेशमें होत्तिय अग्निहोत्र करते थे। कोत्तिय जमीन पर सोते थे। पोत्तिय कपड़ा पहनते थे। जण्णई यज्ञ करते थे। थालई अपना सब सामान साथ लेकर चलते थे। हुंबोट्ठ कुंडिका लेकर चलते थे। दंतुक्खलिय दाँतसे पीसकर कच्चा अन्न खाते थे। मियलुद्धय जीवहत्या करते थे। अंबुवासी, बिलवासी, जलवासी, रुक्खमूला, सेवालभक्खी आदि न जाने कितने प्रकारके तापस[2] इस क्षेत्रमें रहते थे।

बौद्ध जातकोंमें घोर तपस्याके प्रचलित रूपोंका वर्णन मिलता है। कुछ लोग बराबर झूलते रहते थे। कुछ लोग कण्टकशय्यापर सोते थे। कुछ पंचाग्नि तपते थे। कुछ उकडूँ ही बैठे रहते थे। कुछ बराबर स्नान ही करते रहते थे।

पार्श्वकुमार उस महीपाल तापसको नमस्कार किये बिना उसके पास जाकर खड़े हो गये। तापसने उनके इस व्यवहारको बड़ा अपमानजनक माना। उसने बुझती हुई अग्निमें लकड़ी डालनेके लिए एक बड़ा लक्कड़ उठाया और कुल्हाड़ीसे काटनेके लिए वह ज्यों ही तैयार हुआ कि अवधिज्ञानी भगवान् पार्श्वनाथने उसे रोका—'इसे मत फाड़ो। इसमें साँप हैं।' मना करने पर भी वह तापस नहीं माना और उसने लकड़ी काट ही डाली। इससे लकड़ीमें बैठे हुए साँप-साँपिनी दोनोंके दो टुकड़े हो गये। प्रभुने दयार्द्र होकर उस सर्प-युगलको णमोकार मन्त्र सुनाया। मन्त्र सुनकर वह सर्प-युगल शान्त भावोंसे मरा और अपनी शुभ भावनाओंके कारण मरकर धरणेन्द्र और पद्मावती बने। कमठ[3]का घोर तिरस्कार और अपमान हुआ। वह वहाँसे अन्यत्र चला गया। उसका सारा क्रोध कुमार पार्श्वके ऊपर केन्द्रित हो गया। कषाय परिणामोंमें वह निर्मलता नहीं ला सका और मरकर संवर नामका ज्योतिषी देव हुआ।

भगवान्‌की दीक्षा एवं ज्ञानकल्याणक

पार्श्वकुमार जब तीस वर्षके हुए, तब एक दिन अयोध्यानरेश जयसेनने उपहार देकर दूतको भेजा। पार्श्वकुमारने दूतसे अयोध्याके समाचार पूछे। दूत अयोध्याके समाचार सुनाते-सुनाते भगवान् ऋषभदेवका भी चरित सुना गया। सुनते ही पार्श्वनाथको जातिस्मरण ज्ञान हो गया। उन्हें पूर्व जन्मोंकी घटनाओंसे तीस वर्षकी अवस्थामें संसारसे वैराग्य हो गया। तत्काल लौकान्तिक देव आये। उन्होंने भगवान्‌के वैराग्यकी अनुमोदना की। सभी जातिके देवों और इन्द्रोंने आकर दीक्षाकल्याणकका अभिषेक किया। तदनन्तर भगवान् पालकीमें बैठकर वाराणसी नगरीके बाहर

१. उत्तरपुराण ७३।९३।

२. आवश्यक सूत्र।

३. उत्तरपुराणमें तापसका नाम महीपाल दिया है। पार्श्वनाथ चरित आदिमें उसका नाम कमठ दिया है। 'कमठ' यह नाम नौ जन्म पहले था, जब पार्श्वनाथका नाम मरुभूति था। चूँकि वैरका प्रारम्भ कमठके जन्मसे हुआ, अतः इस जन्ममें भी कुछ ग्रन्थकारोंने उसका परिचय कमठके नामसे दिया है।

अश्ववन (या अश्वत्थवन) में पहुँचे और वहाँ पालकीसे उतरकर सिद्धोंको नमस्कार किया। फिर प्रभुने पद्मासन लगाकर पंचमुष्टि लोंच किया। भगवान्‌ने दीक्षा लेकर आठ उपवास किये। वे विहार करते हुए गजपुर पहुँचे और वहाँ वरदत्तके घर पारणा की।

अनन्तर विहार करते हुए वे भीमाटवीमें पहुँचे और कायोत्सर्गकी अवस्था धारण कर ली। तभी कमठका जीव संवर नामका असुर आकाशमार्गसे जा रहा था कि अकस्मात् उसका विमान रुक गया। जब उसने अवधिज्ञानसे इसका कारण जानना चाहा तो उसे अपने पूर्वभवका वैर स्पष्ट दिखने लगा। उसे बहुत क्रोध आया और अपनी सामर्थ्यके अनुसार पार्श्वनाथको घोर कष्ट देने लगा। किन्तु धीर-वीर पार्श्वकुमारका ध्यान शरीरकी ओर नहीं था, वे तो आत्मलीन थे। घोर कष्टोंका भी कोई प्रभाव उनके ऊपर नहीं हुआ। अवधिज्ञानसे यह उपसर्ग जानकर नागकुमार देवोंका इन्द्र धरणेन्द्र अपनी इन्द्राणी सहित भगवान्‌के पास आया। कुमार-अवस्थामें महीपाल तापसकी कुल्हाड़ीसे आहत हुए जिन सर्प-सर्पिणीको पार्श्वकुमारने णमोकार मन्त्र सुनाया था, वे सर्प-सर्पिणी ही मर कर धरणेन्द्र और पद्मावती बने थे। धरणेन्द्रने भगवान्‌के ऊपर फणा-मण्डप तान दिया। इस प्रकार उपसर्ग निवारण हुआ।

उक्त घटनाका चित्रण आचार्य समन्तभद्र (३-४ शताब्दी) ने अपने 'पार्श्वनाथ-स्तवन'में इस प्रकार किया है—

> तमालनीलैः सधनुस्तडिद्गुणैः प्रकीर्णभीमाशनिवायुवृष्टिभिः।
> वलाहकैर्वैरिवशैरुपद्रुतो महामना यो न चचाल योगतः ॥१॥
> बृहत्फणामण्डलमण्डपेन यं स्फुरित्तडित्पिङ्गरुचोपसर्गिणम्।
> जुगूह नागो धरणो धराधरं विरागसन्ध्यातडिदम्बुदो यथा ॥२॥

अर्थात् तमालवृक्षके समान नीले, इन्द्रधनुष तथा बिजलीसे युक्त और भयंकर वज्र, वायु और वृष्टिको सब ओर फेंकनेवाले मेघोंसे, जो कि पूर्वजन्मके वैरी देवके द्वारा लाये गये थे, पीड़ित होनेपर भी महामना पार्श्वदेव ध्यानसे विचलित नहीं हुए। उस समय धरणेन्द्र नामक नागने चमकती हुई बिजलीके समान पीत कान्तिको लिये हुए अपने विशाल फणामण्डलका मण्डप बनाकर उपसर्गसे ग्रस्त पार्श्वनाथको उसी प्रकार ढक लिया, जिस प्रकार कृष्ण सन्ध्यामें बिजलीसे मुक्त मेघ पर्वत को ढक लेते हैं।

भगवान् आत्म-ध्यानमें विचरण करते हुए निरन्तर शुक्ल-ध्यानमें आगे बढ़ रहे थे। उनके कर्म नष्ट हो रहे थे। आत्माकी विशुद्धि बढ़ती जा रही थी। तभी उन्हें लोकालोक-प्रकाशक केवलज्ञान प्राप्त हो गया। सारे उपसर्ग स्वतः ही समाप्त हो गये। देवों और इन्द्रोंके आसन कम्पित हुए। जब उन्हें ज्ञात हुआ कि भगवान् पार्श्वनाथको केवलज्ञानकी प्राप्ति हुई है, तो वे भक्तिपूर्वक उनकी वन्दना करने चले। इसी समय इन्द्रने अथाह जलके बीचमें भगवान्‌को देखा। उसने अपने ज्ञानसे जान लिया कि भगवान्‌के ऊपर उपसर्ग किया गया है। इस बातसे उसे बहुत क्रोध आया। उसने वज्रायुधको आकाशमें घुमाकर उस असुरके ऊपर छोड़ दिया। वज्रको भीषण वेगसे अपनी ओर आता हुआ देखकर असुर नभमें, समुद्रमें, पृथ्वीपर सब कहीं दसों दिशाओंमें भागता फिरा। जब कहीं त्राण न मिल सका तो वह जिनेन्द्र प्रभु की शरणमें आया। तब वह अपने जीवनके प्रति आश्वस्त हो पाया। वज्र वापस चला गया।

१. आ. पद्मकीर्ति कृत 'पासनाह चरिउ' के अनुसार। उत्तरपुराणके अनुसार गुल्मखेट नगरके नरेश धन्यके घर भगवान्‌का आहार हुआ था।

इन्द्र की आज्ञासे कुबेरने समवसरणकी रचना की। भगवान्ने वहाँ लोककल्याणकारी उपदेश दिया। उस समय गजपुर (हस्तिनापुर) का स्वामी स्वयम्भू भी भगवान्के समवसरणमें उपस्थित था। उसने वहीं भगवान्को प्रणाम करके दीक्षा ले ली। वह भगवान्का प्रथम गणधर बना। उसकी कन्या प्रभावतीने आर्यिका दीक्षा ले ली। वह मुख्य गणिनी बनी। तापस महीपालके सात सौ तापस शिष्य भी भगवान्के शिष्य बन गये।[1]

प्रभुका उपदेश सुनकर संवर असुरने जिनेन्द्रके चरणोंमें नमस्कार कर अपने अपराधोंकी क्षमा-याचना की और अनेक जन्मोंसे चले आ रहे वैर और क्रोधके संस्कारोंका परित्याग किया।

प्रभु विहार करते हुए शौरीपुर पधारे। उस समय वहाँका राजा प्रभंजन था। वह भगवान्का भक्त बन गया। वहाँसे विहार करते हुए वे वाराणसी पधारे। वहाँ महाराज अश्वसेन और महारानी वामा देवीने दीक्षा ग्रहण की। अन्तमें भगवान् सौ वर्षकी अवस्थामें सम्मेदशिखरसे निर्वाणको प्राप्त हुए।

भगवान् पार्श्वनाथका विहार अंग, बंग, कलिंग, मध्यदेश, मगध आदि प्रदेशोंमें अधिक हुआ। इन प्रदेशोंकी जनता आपके धर्मकी अनुयायी बन गयी। इन प्रदेशोंमें आपके अनुयायियोंकी संख्या लाखों-करोड़ोंमें थी। आज भी इन प्रदेशोंमें भगवान् पार्श्वनाथको अपना कुलदेवता माननेवाले सराकोंकी विपुल संख्या है। भूगर्भसे आजतक जितनी जैन मूर्तियाँ निकली हैं, उनमें पार्श्वनाथकी मूर्तियाँ सर्वाधिक मिलती हैं। सम्मेदशिखर तीर्थराज है, जहाँसे बीस तीर्थंकरों और असंख्य मुनियोंने निर्वाण प्राप्त किया है। किन्तु लोकमें उस स्थानका नाम 'पारसनाथ हिल' के रूपमें विख्यात है। इन सबसे यह ज्ञात होता है कि लोकमानसपर पार्श्वनाथका प्रभाव असाधारण रहा है।

वाराणसीसे ६ कि. मी. दूर सिंहपुरी क्षेत्र है। यह स्थान पहले वाराणसीका ही भाग रहा है। यहाँ ग्यारहवें तीर्थंकर भगवान् श्रेयान्सनाथके गर्भ, जन्म, दीक्षा और ज्ञानकल्याणक हुए थे। तिलोयपण्णत्ति ग्रन्थमें इस सम्बन्धमें निम्नलिखित उल्लेख मिलता है—

सीहपुरे सेयंसो विण्हु णरिंदेण वेणुदेवीए।
एक्कारसिए फग्गुण सिद पक्खे समणभेजादो ॥४।५३६॥

अर्थात् भगवान् श्रेयान्सनाथ सिंहपुरीमें पिता विष्णु नरेन्द्र और माता वेणुदेवीसे फाल्गुन कृष्णा एकादशीके दिन श्रवण नक्षत्रमें उत्पन्न हुए।

वाराणसीसे मोटर और रेल द्वारा प्रायः २२ कि. मी. दूर चन्द्रपुरी क्षेत्र है। सिंहपुरीसे यह स्थान लगभग दस मील है। यहाँ आठवें तीर्थंकर भगवान् चन्द्रप्रभका जन्म हुआ था। इस सम्बन्धमें तिलोयपण्णत्तिमें निम्नलिखित कथन मिलता है—

चन्दपहो चन्दपुरे जादो महसेण लाच्छेमइ आहिं।
पुस्सस्स किण्ह एयारसिए अणुराह णक्खत्ते ॥४।५३३॥

अर्थात् चन्द्रप्रभ जिनेन्द्र चन्द्रपुरीमें पिता महासेन और माता लक्ष्मणासे पौष कृष्णा एकादशीको अनुराधा नक्षत्रमें उत्पन्न हुए।

आचार्य गुणभद्रने उत्तरपुराणमें चन्द्रप्रभ भगवान्के दीक्षाकल्याणकके सम्बन्धमें लिखा है—

---

१. बृहत्स्वयम्भू स्तोत्र, पार्श्वनाथ स्तुति।

दिनद्वयोपवासित्वा वने सर्वर्तुकाह्वये ।
पौषे मास्यनुराधायामेकादश्यां महीभुजाम् ॥५४।२१६॥

—सर्वर्तुक वनमें दो दिनके उपवासका नियम लेकर पौष कृष्णा एकादशीको (एक हजार राजाओंके साथ दीक्षा धारण कर ली)।

इसी प्रकार केवलज्ञानकल्याणकके सम्बन्धमें आचार्य गुणभद्रने लिखा है—

त्रीन् मासान् जिनकल्पेन नीत्वा दीक्षावनान्तरे ।
अधस्तान्नागवृक्षस्य स्थित्वा षष्ठोपवासभृत् ॥
फाल्गुने कृष्णसप्तम्यामनुराधापराह्णके ।

—उत्तरपुराण ५४।२२३–२४

इस प्रकार जिनकल्प मुद्राके द्वारा तीन माह बिताकर ये दीक्षा वनमें नागवृक्षके नीचे वेलाका नियम लेकर स्थित हुए। वह फाल्गुन कृष्णा सप्तमीके शामका समय था और उस समय अनुराधा नक्षत्र था। (तब उन्हें केवलज्ञान प्रकट हो गया)।

इस प्रकार काशी जनपदके वाराणसी, सिंहपुरी और चन्द्रपुरी तीनों नगर चार तीर्थंकरोंके कल्याणक क्षेत्र हैं।

धार्मिक और ऐतिहासिक घटनाओं का केन्द्र :

वाराणसी नगरमें प्राचीन कालमें अनेक धार्मिक और ऐतिहासिक घटनाएँ घटित हुई हैं। जैन पुराण-साहित्यमें सर्वप्रथम इस नगरका उल्लेख राजकुमारी सुलोचनाके प्रसंगमें आया है। काशीनरेश अकंपनने अपनी पुत्री सुलोचनाका स्वयंवर किया। राजकुमारीके सौन्दर्यकी प्रशंसा सुनकर भारतके बहुत-से नरेश और राजकुमार इस अवसरपर वाराणसीमें आये। उनमें भारतके प्रथम चक्रवर्ती सम्राट् भरतके ज्येष्ठ पुत्र युवराज अर्ककीर्ति, महाराज भरतके प्रधान सेनापति और हस्तिनापुरके राजकुमार तथा बाहुबलीके पौत्र जयकुमार जैसे विख्यात पुरुष भी सम्मिलित हुए थे। सभी राजकुमार आशा लेकर आये थे, किन्तु भाग्यलक्ष्मी राजकुमार जयकुमारके ऊपर प्रसन्न हो उठी। राजकुमारीने वरमाला जयकुमारके गलेमें डाल दी। कुछ हताश और ईर्ष्यालु राजकुमारोंने कुमार अर्ककीर्ति को भड़का दिया 'आप चक्रवर्ती महाराजके उत्तराधिकारी हैं, भावी सम्राट् हैं। आपके यहाँ होते हुए आपके एक सेवकको यह कन्यारत्न मिले, यह अन्यायकी पराकाष्ठा है। साम्राज्यकी सम्पूर्ण सुन्दर वस्तुओंपर सम्राट्का अधिकार होता है।'

आद्य तीर्थंकर ऋषभदेवका धर्मशासन और आद्य चक्रवर्ती भरतका राज्यशासन सम्पूर्ण भरत क्षेत्रमें प्रवर्तमान था। किन्तु वाराणसीने सभ्यताके इस आदिम कालमें एक नये इतिहासका निर्माण किया। इस युगमें सामाजिक व्यवस्थाके नये-नये आयाम निर्धारित हो रहे थे। यह स्वयंवर भी उनमें एक था। यह प्रथम बार आयोजित किया गया था। इस प्रथा द्वारा स्त्री जातिको अपना भावी जीवन-साथी चुननेकी स्वाधीनता दी गयी थी। इसमें सभी प्रत्याशी समान थे। बातोंमें आकर राजकुमार अर्ककीर्तिने न्यायकी इस रेखाको लाँधकर स्वामी-सेवकका अनावश्यक प्रश्न खड़ा कर देना चाहा। जयकुमारने अन्यायकी इस चुनौतीको स्वीकार किया। उन्होंने काशीके विस्तृत मैदानमें युवराज अर्ककीर्ति और उनके साथी राजकुमारोंको पराजित कर न्याय और नैतिकताको धूमिल होनेसे बचा लिया।

एक अन्य पौराणिक उल्लेखके अनुसार भगवान् मल्लिनाथके तीर्थमें यहाँ नौवाँ चक्रवर्ती

पद्म हुआ। उसने सम्पूर्ण भरत क्षेत्रको जीतकर काशीको उसकी राजधानी बनाया। यह प्रतापी सम्राट् इक्ष्वाकुवंशी था।

ऐसा भी उल्लेख मिलता है कि भगवान् पार्श्वनाथ विहार करते हुए केवलज्ञान प्राप्तिके पश्चात् वाराणसी पधारे थे। उनके दर्शनार्थ काशीनरेश अश्वसेन (भगवान्के पिता) और महारानी वामा देवी दोनों आये। समवसरणमें भगवान्का उपदेश सुनकर दोनोंने ही दीक्षा ले[1] ली थी।

इसके पश्चात् यहाँ इतिहासकी जो सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण घटना घटित हुई, वह थी स्वामी समन्तभद्रकी। मुनि समन्तभद्र दक्षिण भारतके उरगपुर (अथवा उरैयूर) के रहने वाले थे। यह त्रिचनापल्ली नगरका बाहरी प्रान्त था। इसकी राजधानी कंचनपुर या कांजीवरम् अथवा कांची[2] थी। उस समय यहाँ पल्लव राजाओंका राज्य था। यह मद्रास से दक्षिण-पश्चिम की ओर ४२ मील दूर है तथा कावेरी नदीके तट पर अवस्थित है। उनके पिता फणिमण्डलान्तर्गत उरगपुरके राजा[3] थे। इनके बचपनका नाम शान्तिवर्म[4] था।

मुनि समन्तभद्र घोर तपस्वी थे और प्रकाण्ड विद्वान् भी। किन्तु अशुभोदय से इन्हें भस्मक रोग हो गया। भस्मक रोगमें कफ क्षीण हो जाता है, वायु और पित्त बढ़ जाते हैं। इससे जठराग्नि अत्यन्त प्रदीप्त, बलाढ्य और तीक्ष्ण हो जाती है। जो भी भोजन किया जाता है, क्षण मात्रमें भस्म हो जाता है। पौष्टिक भोजनसे ही यह रोग शान्त होता है। मुनि अवस्थामें यह सम्भव नहीं था। अतः वे गुरुकी आज्ञासे वहाँसे चल दिये। उस समय वे मणुवक हल्ली (मैसूरसे लगभग ४० मील दूर) में विराजमान थे।

वहाँसे चलकर वे दिगम्बर अवस्थामें कांचीमें पहुँचे। फिर भस्म रमाकर लाम्बुशमें पहुँचे। वहाँ से बौद्धभिक्षु का वेश बनाकर पुण्ड्र (बंगाल), उण्ड्र (उड़ीसा)में घूमे। तदनन्तर परिव्राजकका बाना धारण करके दशपुर (मध्यप्रदेशका मन्दसौर) जा पहुँचे। फिर श्वेतवस्त्रधारी योगी बनकर वाराणसी गये[5]। किन्तु यथेष्ट सुस्निग्ध पौष्टिक आहार की व्यवस्था नहीं बन सकी।

---

१. पासनाह चरिउ—आचार्य पद्मकीर्ति रचित।

२. इहैव दक्षिणस्थायां काञ्च्यां पुर्यां परात्मवित्।
मुनिः समन्तभद्राख्यो विख्यातो भुवनत्रये॥

—आराधना कथाकोष २१।

३. श्रवणबेलगोलके श्री दौर्बलि जिनदास शास्त्रीके शास्त्रभण्डारमें आप्तमीमांसा ग्रन्थ है। उसका पुष्पिका वाक्य इस प्रकार है—
इति श्री फणिमण्डलालंकाराख्योरगपुराधिपसूनोः
श्रीस्वामीसमन्तभद्रमुनेः कृतौ आप्तमीमांसायां....

४. 'गत्वैकस्तुतमेव' इस अन्तिम पदमें, समन्तभद्र विरचित 'स्तुति विद्या' ग्रन्थके अन्त में एक पंक्ति है–
'शान्तिवर्मकृत जिनस्तुतिशतं'

५. वाराणसीं ततः प्राप्तः कुलघोषैः समन्विताम्।
योगिलिङ्गं तथा तत्र गृहीत्वा पर्यटन् पुरे॥ १९॥
स योगी लीलया तत्र शिवकोटिमहीभुजा।
कारितं शिवदेवोरुप्रासादं संविलोक्य च॥ २०॥

आराधना कथाकोष—कथा ४

उस समय वाराणसीके नरेश शिवकोटि थे। उन्होंने शिवजीका एक विशाल मन्दिर बनवाया था। वहाँ राज्यकी ओर से अनेक प्रकारके व्यंजन शिवजीके आगे चढ़ते थे। स्वामी समन्तभद्रने देखा कि पुजारी शिवजीकी पूजा करके बाहर आये और शिवजीको चढ़ाई हुई व्यंजनोंकी भारी राशि बाहर लाकर रख दी। समन्तभद्र उसे देखकर पुजारियों से कहने लगे—'आपलोगोंमें किसीमें ऐसी शक्ति नहीं है, जो इस नैवेद्यको शिवजी को खिला सकें।' पुजारियोंको इस प्रश्नसे बड़ा आश्चर्य हुआ। उन्होंने पूछा—'क्या आपमें यह शक्ति है?' स्वामी बोले—'हाँ, मुझमें यह शक्ति है। तुम चाहो तो मैं यह सारी सामग्री शिवजीको खिला सकता हूँ।'

पुजारी तत्काल राजाके पास गये और उनसे सब समाचार कहा। राजाको भी सुनकर बड़ा आश्चर्य हुआ और उस अद्भुत योगीको देखनेके लिए वह उसी समय शिवालय में आया। उसने स्वामी समन्तभद्रको देखा। उनकी तेजमण्डित मुखमुद्रा और आकर्षक व्यक्तित्व को देखकर वह बड़ा प्रभावित हुआ। उसने बड़ी विनयके साथ निवेदन किया—'योगिराज ! सुना है, आपमें शिवालयका यह सम्पूर्ण नैवेद्य शिवजीको खिलानेकी सामर्थ्य है। यदि यह सत्य है तो लीजिए यह सामग्री, इसे महादेवजीको खिलाइए।'

स्वामीने स्वीकृति देकर सब पक्वान्नों को मन्दिर में रखवा दिया और सब लोगोंको मन्दिर से बाहर निकालकर अन्दरसे दरवाजा बन्द कर लिया। फिर आनन्दपूर्वक भोजन किया और सम्पूर्ण पक्वान्नको समाप्त करके बाहर आये। महाराज और उपस्थित जन वह अश्रुतपूर्व दृश्य देख विस्मित रह गये।

अब राजाकी ओरसे प्रतिदिन एक-से एक बढ़कर सुस्वादु पक्वान्न आने लगे और आचार्य उससे अपनी व्याधि शान्त करने लगे। इस प्रकार छह माह व्यतीत हो गये। रोग शान्त होता गया और उसी मात्रामें नैवेद्य बचने लगा। पुजारियों को सन्देह बढ़ने लगा। उन्होंने जाकर राजासे यह बात कही। राजाको भी सन्देह हुआ। राजाके कहनेपर पुजारियोंने एक चालाक लड़केको मोरीमें छिपा दिया।

यथा समय योगीराजने किवाड़ बन्द करके भोजन किया। लड़केने यह सब देखा और बाहर आकर पुजारियोंसे कह दिया। राजाको भी यह समाचार भेजा गया। राजा आया और आचार्य महाराजसे बोला—'हमें सब समाचार मिल गये हैं। तुम्हारा धर्म क्या है? तुम सबके समक्ष शिवजीको नमस्कार करो।' स्वामी समन्तभद्र बोले—'राजन् ! मेरा नमस्कार स्वीकार करनेमें शिवजी समर्थ नहीं हैं। यदि आप फिर भी आग्रह करेंगे तो निश्चित समझिए, शिवजीकी यह मूर्ति फट जायेगी।' तब भी राजा बराबर आग्रह करता रहा और निश्चय हुआ कि दूसरे दिन प्रातःकाल स्वामी समन्तभद्र शिवजीको नमस्कार करेंगे।

रात्रिमें स्वामी समन्तभद्र चौबीस तीर्थंकरोंकी स्तुति करने लगे। तभी शासन देवी प्रकट हुई और हाथ जोड़कर बोली—'प्रभो ! आप किसी प्रकारकी चिन्ता न करें। जैसा आपने कहा है, वैसा ही होगा।' यह कहकर देवी अन्तर्धान हो गयी। स्वामी शेष रात्रिमें सामायिक करते रहे। प्रातःकाल होनेपर राजा आया। शिवलिंगके समक्ष स्वामीजीको बुलाया गया। राजाने उनसे शिवजीको नमस्कार करनेके लिए कहा। स्वामीजी जिनेन्द्र प्रभुकी भक्तिमें तन्मय होकर स्वयम्भू स्तोत्र (चौबीस तीर्थकरोंकी स्तुति) का पाठ करने लगे। जिस समय वे आठवें तीर्थंकर चन्द्रप्रभुकी स्तुति करने लगे, शिवमूर्ति फट गयी और उसमेंसे भगवान् चन्द्रप्रभुकी दिव्य प्रतिमा प्रकट हुई। इस दिव्य चमत्कारको देखकर सभी बड़े प्रभावित हुए। तब राजा हाथ जोड़कर बोला—'भगवन् ! आपका प्रभाव अचिन्त्य है। किन्तु आप हैं कौन? उस समय स्वामी समन्त-

भद्रने आत्म-परिचयके लिए 'काञ्च्यां नग्नाटकोऽहं'[1] इत्यादि श्लोक बोला। राजा तथा अनेक प्रजाजन स्वामीजीके शिष्य हो गये। स्वामी समन्तभद्रने पुनः जैन मुनिकी दीक्षा ले ली। राजा शिवकोटि आदिने भी उनसे मुनि-दीक्षा ले ली।[2]

वाराणसीके बाँस फाटक मुहल्लेमें गुदौलिया चौक मार्गपर एक छोटा-सा शिवालय है, जो फटे महादेवके नामसे ख्यात है। इसकी पिण्डी ठीक बीचसे एकदम फटी है। आजसे ५० वर्ष पूर्वके वृद्ध जनोंसे यह सुना गया था कि एक समय यह विशाल मन्दिर था और इसे समन्तभद्रेश्वर कहते थे। जब यह सड़क बनी तो वह मन्दिर ध्वस्त हो गया।

कन्नड़ भाषाके एक ग्रन्थ 'राजावली कथे'में स्वामी समन्तभद्रकी जो कथा दी गयी है, उसमें और आराधना कथाकोषकी उपयुक्त कथामें कहीं-कहीं अन्तर है। उसमें यह कथा इस प्रकार दी गयी है—

जब समन्तभद्र मुनि-धर्मका पालन करते हुए मणुवकहल्ली ग्राममें विराजमान थे, तब तीव्र असातावेदनीय के उदयसे उन्हें भस्मक रोग हो गया। तब गुरुकी आज्ञासे उन्होंने भस्म लगा ली और वे मणुवकहल्लीसे कांची पहुँचे। वहाँ शिवकोटि राजाके पास, सम्भवतः उसके भीमलिंग शिवालयमें, जाकर उसे आशीर्वाद दिया। उनकी आकृति देखकर और उन्हें ही शिव समझकर राजाने उन्हें प्रणाम किया। उसने अपनी शिवभक्ति, मन्दिरका निर्माण और भीमलिंग मन्दिरमें प्रतिदिन बाहर खंडुक परिमाण तण्डुलान्न विनियोग करनेका हाल उनसे निवेदन किया। समन्तभद्र सुनकर बोले—'मैं तुम्हारे इस नैवेद्यको शिवार्पण करूँगा।' यों कहकर उन्होंने मन्दिर बन्द कर लिया और सम्पूर्ण भोजन समाप्त कर दिया। इतना विपुल भोजन समाप्त देखकर राजाको बड़ा आश्चर्य हुआ। दूसरे दिन कुछ भोजन बचनेपर राजाको सन्देह हुआ। इस प्रकार प्रतिदिन भोजन बचने लगा और राजाका सन्देह उसी मात्रामें बढ़ता गया। पाँचवें दिन मन्दिरको सैनिकोंसे घिरवाकर मन्दिरको खोलनेकी आज्ञा राजाने दी। समन्तभद्रने उपसर्ग समझकर चतुर्विध आहारका त्याग कर दिया और चतुर्विशति तीर्थंकरोंकी स्तुति करना प्रारम्भ कर दिया। इस स्तुति-पाठका नाम 'स्वयम्भू स्तोत्र' है। जब वे आठवें तीर्थंकर चन्द्रप्रभु स्वामीकी स्तुति कर रहे थे तो उन्होंने भीमलिंगकी ओर देखा तो उन्हें वहाँ किसी दिव्य शक्तिके प्रतापसे चन्द्रलांछन युक्त अर्हन्त भगवान्का एक जाज्वल्यमान स्वर्णमय विशाल विम्ब विभूति सहित प्रकट होता हुआ दिखाई दिया। उन्होंने दरवाजा खोल दिया और स्तुतिमें लीन हो गये। राजाने यह आश्चर्य देखा। वह अपने छोटे भाई शिवायन सहित उनके चरणोंमें गिर गया। स्वामीने उन्हें आशीर्वाद और उपदेश दिया। स्वामीका उपदेश सुनकर राजा संसारसे विरक्त हो गया। उसने अपने पुत्र श्रीकण्ठको राज्य देकर शिवायन सहित मुनि-दीक्षा धारण कर ली। अन्य लोगोंने भी अणुव्रतादि धारण किये।[3]

---

१. काञ्च्यां नग्नाटकोऽहं, मलमलिनतनुर्लाम्बुशे पाण्डुपिण्डः
पुण्ड्रोड्रे शाक्यभिक्षुः दशपुरनगरे मिष्टभोजी परिव्राट्।
वाराणस्यामभूवं शशधरधवलः पाण्डुरांगस्तपस्वी
राजन् यस्यास्ति शक्तिः स वदतु पुरतो जैननिर्ग्रन्थवादी ॥

२. ब्रह्मचारी नेमिदत्त कृत आराधना कथाकोष, कथा–४।

३. 'राजावली कथे' का पाठ, जिसे मि. डेविस राइसने Inscription Shravanbelgola पुस्तककी प्रस्तावनाके पृष्ठ ६२ पर उद्धृत किया है।

सेनगणकी पट्टावलीमें भीमलिंग शिवालयमें शिवकोटि राजाकी मुनि-दीक्षाका उल्लेख मिलता है। इसमें उसे नवतिलिंग देशका राजा बताया है। 'विक्रान्तकौरव' नाटक तथा नगर ताल्लुकेके ३५वें शिलालेखमें शिवकोटि को समन्तभद्रका प्रधान शिष्य बताया है।

इसी प्रकार तिरुमकूडलु नरसीपुर ताल्लुकेके शिलालेख नं० १०५ में जो शक संवत् ११०५ का लिखा हुआ है, समन्तभद्रके सम्बन्धमें लिखा है—

समन्तभद्रः संस्तुत्यः कस्य न स्यान्मुनीश्वरः।
वाराणसीश्वरस्याग्रे निर्जिता येन विद्विषः ॥

अर्थात् समन्तभद्रकी स्तुति कौन नहीं करेगा जिन्होंने वाराणसीनरेशके समक्ष अपने सब विपक्षियोंको परास्त कर दिया।

इससे यह सिद्ध होता है कि वाराणसीमें समन्तभद्रने नगरके राजाके समक्ष विपक्षियोंसे शास्त्रार्थ किया था और उन्होंने उसमें विजय प्राप्त की थी। 'राजावली कथे'के अनुसार समन्तभद्र कौशाम्बी, मणुवकहल्ली, लाम्बुश, पुण्डोड्, दशपुर और वाराणसीमें भी कुछ समय तक रहे।

श्रवणबेलगोलाके शिलालेख नं० ५४ में उन स्थानोंका वर्णन है, जहाँ स्वामी समन्तभद्र जैनधर्मकी विजय वैजयन्ती फहराते हुए पहुँचे और विपक्षियोंको ललकारा। उन स्थानोंमें पाटलिपुत्र, मालवा, सिन्ध, पंजाब, कांची, विदिशा और करहाटक (सताराके पास कराड़) हैं।

हिन्दीके प्रसिद्ध कवि बनारसीदास भी यात्राके निमित्त काशीमें आये थे। उनके लिखे हुए 'अर्धकथानक' नामक आत्मचरित ग्रन्थसे पता चलता है कि वे व्यापार आदिके सिलसिलेमें वाराणसी कई बार आये थे। इतना ही नहीं, उनका बनारसीदास यह नाम भी बनारसकी यात्राके कारण ही पड़ा। उनके इस नामकरणकी कथा बड़ी रोचक है। बनारसीदासका जन्म माघ शुक्ला ११ संवत् १६४३ को श्रीमान् खड़गसेनके घरमें जौनपुरमें हुआ। जब बालक छह सात महीनेका हुआ, तब खड़गसेन जी यात्राके निमित्त काशी गये। बालकका राशि नाम विक्रमाजीत था। खड्गसेनजी ने बालकको पार्श्वप्रभुके चरणोंमें रख दिया और उसके दीर्घायु होनेकी प्रार्थना की। उस समय मन्दिरका पुजारी भी वहाँ खड़ा था। थोड़ी देर ध्यान लगाकर बोला—भगवान् पार्श्वनाथके यक्षने मुझसे कहा है कि यदि बालकका नाम पार्श्वनाथके जन्म-नगर (बनारस) के नामपर रखा जायेगा तो बालक चिरायु होगा।

जो प्रभु पार्श्व जन्मको गाँव।
सो दीजे बालकको नांव ॥
तो बालक चिरजीवी होय।
यह कहि लोप भयो सुर सोय ॥

—अर्धकथानक, ९१-९२

तबसे बालकका नाम बनारसीदास रख दिया गया।

वि. संवत् १६६१ में, जब पिता खड्गसेनजी शिखरजीकी यात्रापर चले गये, तब बनारसीदास अपनी मातासे पार्श्वनाथ भगवान्‌के मेलेमें जानेके लिए झगड़ने लगे। यहाँ तक कि

१. पूर्वं पाटलिपुत्रमध्यनगरे भेरी मया ताडिता
पश्चान्मालव-सिन्धु-ठक्क-विषये काञ्चीपुरे वैदिशे।
प्राप्तोऽहं करहाटकं बहुभटं विद्योत्कटं संकटं
वादार्थी विचराम्यहं नरपते शार्दूलविक्रीडितम्।

इसके लिए उन्होंने दही, दूध, घृत, चावल, चने, तेल, ताम्बूल, पुष्प आदि कितनी ही वस्तुओंका हठपूर्वक त्याग कर दिया। चैतके महीनेमें यह नियम लिया था कि जब तक बनारसके पार्श्वनाथकी यात्रा नहीं कर लूँगा, तब तक इन वस्तुओंका उपयोग नहीं करूँगा। इस नियमको छह-सात महीने हो गये। कार्तिकी पूर्णमासीके गंगास्नानके लिए बहुत-से शिवभक्त और पार्श्वनाथकी पूजाके लिए जिनभक्त बनारस जा रहे थे। उन लोगोंके साथ बनारसीदास भी गये। 'अर्धकथानक'में उन्होंने इसका बड़े रोचक ढंगसे वर्णन किया है—

"कासी नगरीमें गये, प्रथम नहाये गंग।
पूजा पास सुपास की, कीनी मन धर रंग ॥२३२॥
जे जे खन की बस्त सब, ते ते मोल मंगाइ।
नेवज ज्यों आगें धरे, पूजे प्रभु के पाइ ॥२३३॥
दिन दस रहे बनारसी, नगर बनारस माहिं।
पूजा कारन द्योहरे, नित प्रभात उठि जाहिं ॥२३४॥

इस प्रकार बनारसीदासने वाराणसी नगरीकी दस दिवसीय यात्रा बड़े भक्ति-भावसे की।

यक्षों और नागोंकी पूजा

प्राचीन भारतीय साहित्यसे पता चलता है कि प्राचीन भारतमें नाग-पूजा प्रचलित थी। नाग नामक एक जाति भी थी और नागका आशय सर्पसे भी है। किन्तु नागजातिके नाग हमारे समान ही मानव थे। उनके नाम इस प्रकारके होते थे, जिससे उन्हें सर्प समझ लिया जाता है। हिन्दू पुराणोंमें नाग जातिके प्रधान पुरुषोंमें शेष, वासुकि, तक्षक, शंख, श्वेत, महापद्म, कम्बल, अश्वतर, एलापत्र, नाग, कर्कोटक, धनंजय बतलाये गये हैं। यह प्राचीन भारतकी एक सभ्य और सुन्दर जाति थी। नागजातिका एक विशिष्ट वर्ग भारतीय इतिहासमें 'भारशिवनाग'के नामसे प्रसिद्ध है। प्रसिद्ध इतिहासकार डॉ० काशीप्रसाद जायसवालने मंजुश्री मूलकल्प (श्लोक ७४।५२) नामक बौद्ध ग्रन्थके आधारपर नागोंको वैश्य बताया है।

नाग जातिका आदि उद्गम या इतिहास क्या है, यह अभी अन्धकारमें है किन्तु इस जातिका अस्तित्व रामायण और महाभारत कालमें भी मिलता है। रामके पुत्र कुशका विवाह एक नाग-कन्यासे हुआ था। शूरसेन प्रदेशके अधिपति शूरकी माता और उग्रसेनकी रानी नाग जातिकी थी। अर्जुनकी दो रानियाँ चित्रांगदा और उलूपी भी नाग कन्याएँ थीं। कुरुक्षेत्रके निकट खाण्डववनमें तक्षक नामक एक नाग सरदार रहता था। महाभारतसे पता चलता है कि जब अर्जुन और श्रीकृष्णने बस्ती बसानेके लिए उस वनको जलाया था, तब उसमें रहनेवाले बहुत-से प्राणी जल मरे थे। उस समय तक्षक कहीं बाहर था। वह बच गया। किन्तु तबसे ही पाण्डवोंका विरोधी हो गया। उसने अवसर मिलते ही अर्जुनके पौत्र परीक्षितको छद्म वेषमें मार डाला था। तब परीक्षितके पुत्र जनमेजयने नागोंका विध्वंस किया।

इतिहाससे सिद्ध होता है कि नागोंका एक प्राचीन केन्द्र विदिशा था। ईसा की द्वितीय शताब्दीमें नागोंकी एक शाखाने पद्मावती (वर्तमान पदम पवाया, मध्यप्रदेश) में अपना राज्य जमा लिया। दूसरी शाखाने कान्तिपुरी (वर्तमान कान्तित, जिला मिर्जापुर, उत्तर प्रदेश) को अपनी राजधानी बनाया। यह स्थान वाराणसीके निकट है। यह पता नहीं चलता कि नाग सरदार भवनागका शासन वाराणसीपर भी था या नहीं। नागोंकी तीसरी शाखाने मथुरापर अधिकार कर लिया।

Glimpses of political history (p. 65) में लिखा है कि 'जब नाग जाति गंगाकी घाटीमें बसती थी तो एक नाग राजाके साथ वाराणसीकी राजकुमारीका विवाह हुआ था अतः वाराणसीके साथ नाग राजाओंका घनिष्ठ सम्बन्ध था और गंगाकी घाटी (अहिच्छत्र) में ही तप करते हुए पार्श्वनाथकी रक्षा नागोंने की थी। अहिच्छत्र उसीका स्मारक हो सकता है।

नाग जाति और नागपूजाके इतिहासपर अभी तक स्पष्ट प्रकाश नहीं पड़ पाया। कुछ विद्वानोंने यह तर्क दिया है कि नाग जाति और उसके वीरोंके शौर्यकी स्मृतिको सुरक्षित रखनेके लिए नागपूजा प्रचलित हो गयी। पद्मपुराण (सृष्टि खण्ड) में नागोंकी उत्पत्ति कश्यप ऋषिकी पत्नी कद्रूसे बतायी है। किन्तु हमारी धारणा है कि सातवें तीर्थंकर सुपार्श्वनाथके साथ नाग जातिका सम्बन्ध है। सुपार्श्वनाथकी मूर्तियोंके ऊपर नागफणका प्रचलन सम्भवतः इसीलिए हुआ। नाग जातिके व्यक्तियोंकी पहचानके लिए उनकी मूर्तियोंके भी ऊपर सर्पफण लगाये जाने लगे। इस प्रकारकी मूर्तियाँ मथुरा आदिमें मिली हैं। जहाँ तक नागपूजाका सम्बन्ध है, यह तो निश्चय ही भगवान् पार्श्वनाथके ऊपर उपसर्ग होनेपर नागेन्द्र द्वारा सर्प-फणोंसे रक्षा करनेकी घटनाकी यादगार है। पार्श्वनाथका काल आजसे पौने तीन हजार वर्ष प्राचीन है। इससे प्राचीन किसी ग्रन्थमें नागपूजाका उल्लेख प्राप्त नहीं होता।

भगवान् पार्श्वनाथ वाराणसीके ही राजकुमार थे। वहाँकी जनताका उनके प्रति अपार प्रेम और भक्ति थी। वे जनताके उपास्य थे। उसके उपास्यकी रक्षा धरणेन्द्रने नागरूप धारण कर की थी, भोली जनता ऐसा ही तो समझती थी। इसलिए कृतज्ञता प्रकट करनेके लिए उस नागकी पूजा करने लगी। इस प्रकार वाराणसीमें नागपूजाका प्रचलन हुआ।

यक्षपूजाका सम्बन्ध भी धरणेन्द्र और पद्मावतीसे है, जो पार्श्वनाथके यक्ष-यक्षिणी माने जाते हैं। यक्षपूजा पार्श्वनाथके समयसे प्रचलित नहीं हुई, यह चलन उत्तरकालीन है। इस चलनके साथ यक्षोंके सम्बन्धमें बहुत कुछ कल्पनाएँ और मान्यताएँ भी बढ़ीं। वे कष्ट देते हैं, शरीरमें उनका आवेश होता है और मन्त्रों-तन्त्रोंसे वे उतरते हैं, जनताको वे बहुत परेशान करते हैं, ऐसी भी मान्यताएँ चल पड़ीं। दूसरी ओर यह भी धारणा थी कि यक्ष प्रसन्न होते हैं तो मनोकामनाएँ पूर्ण करते हैं। काशीमें दोनों ही प्रकारके यक्षोंकी मान्यताएँ प्रचलित थीं। मणिभद्र आदि यक्षोंके उल्लेख श्वेताम्बर जैन शास्त्रोंमें प्रचुरतासे मिलते हैं।

अवस्थिति और इतिहास

काशी मध्यवर्ती जनपद था। उसके पिछवाड़े कोशल, वत्स महाजनपद थे। उसके सामने विदेह और मगध थे। काशीसे चारों ओर मार्ग जाते थे। उत्तरकी ओर श्रावस्ती और दक्षिणकी ओर कोशल थे। पूर्वमें मगध और पश्चिममें वत्स थे[1]।

बौद्धयुगमें एक रास्ता काशीसे राजगृह जाता था। दूसरा रास्ता भद्दिया होता हुआ श्रावस्तीको जाता था। वाराणसीसे तक्षशिला और वेरंजाके बीच भी एक रास्ता था। एक रास्ता वैशालीको भी जाता था। वेरंजासे एक सड़क मथुरा जाती थी तथा वहाँसे तक्षशिलाको। वाराणसीसे जल-मार्ग द्वारा आवागमन बहुत प्राचीन कालसे रहा है। वहाँ से ताम्रलिप्ति होकर पूर्वी समुद्रको पार करते थे। इस प्रकार केन्द्रमें होनेके कारण वाराणसी नगरी

१. डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल।

और काशी जनपदका अन्य बड़े-बड़े नगरोंके साथ जल और स्थलके द्वारा सम्बन्ध था। व्यापारिक केन्द्र होनेके कारण इसकी गणना भारतकी समृद्ध नगरियोंमें की जाती थी।

भगवान् महावीरके कालमें नौ मल्ल और नौ लिच्छवि राजाओंका वर्णन मिलता है। ये अठारह गणतन्त्र राजा भगवान् महावीरके निर्वाणोत्सवके अवसरपर पावामें पहुँचे थे। इन मल्ल और लिच्छवि राजाओंका सम्बन्ध काशी और कोशलसे भी था। 'कल्पसूत्र' में उल्लेख आया है—'नवमल्लई, नवलेच्छई कासीकोसलगा अट्ठारसवि गणरायाणो।'

—कल्पसूत्र व्याख्यान ६, सूत्र १२८।

'कल्पसूत्र'की 'सन्देह विषौषधि' नामक टीकामें इसकी व्याख्या इस प्रकार की गयी है—'नव मल्लई इत्यादि—काशीदेशस्य राजानो मल्लकी जातीया नवकोशलदेशस्य राजानो लेच्छकी जातीया'।

अर्थात् काशी देशके राजा मल्लकी जातीय थे और कोशल देशके नौ राजा लेच्छकी जातीय थे।

आशय यह है कि मल्लको (मल्ल) जातिके राजाओंका मूल वासस्थान काशी था और लेच्छकी (लिच्छवि) जातिके राजा मूलतः कोशल देशके रहनेवाले थे। काशी और कोशलके ये लोग कब किस कारण अपनी जन्मभूमि छोड़कर चले गये और जाकर उन्होंने उस अधिनायकवादी कालमें मल्ल और लिच्छवि गणतन्त्र जैसे सुदृढ़ गणराज्योंकी कैसे स्थापना की, इन विषयों पर इतिहासकारोंको अभी विस्तृत खोज करनेकी आवश्यकता है।

वैदिक साहित्यमें कोशलके किसी नगरका नाम नहीं मिलता। शतपथ ब्राह्मणके अनुसार कोशलमें ब्राह्मण सभ्यताका प्रसार कुरु-पंचालके पश्चात् तथा विदेहसे पहले हुआ। रामायण तथा हिन्दू पुराणोंके अनुसार कोशलका राजवंश इक्ष्वाकु नामके राजासे चला। इसी वंशकी शाखाओंने विशाला या वैशाली, मिथिला और कुशीनारामें राज्य किया।

कोशलकी तरह विदेहका निर्देश भी प्राचीन वैदिक साहित्यमें नहीं है। दोनोंका प्रथम निर्देश शतपथ ब्राह्मण (२।४।१–१०) में मिलता है। इन उल्लेखोंसे प्रकट है कि कोशल और विदेह परस्पर मित्र थे।

कोशल और विदेहके साथ काशीको भी प्राधान्य उत्तर वैदिक कालमें मिला। अथर्ववेदमें प्रथम बार काशीका निर्देश मिलता है। काशीका कोशल और विदेहके साथ घनिष्ठ सम्बन्ध था। काशीके एक राजा धृतराष्ट्रको शतानीक सहस्राजितने हराया था। वह अश्वमेध यज्ञ करना चाहता था। किन्तु शतानीकने उसे हरा दिया। फलतः काशीवासियोंने यज्ञ करना ही छोड़ दिया[1]।

बौद्ध महागोविन्द सुत्तन्तमें भी काशीके राजा धत्तरट्ठका निर्देश किया है जो शतपथ ब्राह्मणका धृतराष्ट्र ही प्रतीत होता है। उसे महागोविन्दने भरतराज कहा है। डॉ. राय चौधरीने लिखा है—ऐसा प्रतीत होता है कि काशीके भरतवंशका स्थान राजाओंके एक नये वंशने ले लिया जिनका वंश नाम ब्रह्मदत्त था। ये ब्रह्मदत्त मूलतः विदेहके थे। उदाहरणके लिए मातिपोसक जातकमें काशिन देशको विदेह कहा है। यथा—

'मुत्तोम्हि कासीराजेन विदेहेन यसस्सिना।'

डॉ. राय चौधरीका विश्वास है कि विदेहके राज्यको उलटनेमें काशीके लोगोंका हाथ था क्योंकि जनकके समयमें काशीराज अजातशत्रु विदेहराज जनकसे चिढ़ता था।

---

१. Political history of Ancient India, P. 63.

पालीटीका परमत्थ जोतिका (जि० १, पृ. १५८–६५) में लिखा है कि विदेहके जनक वंशका स्थान उन लिच्छवियोंने लिया जिनका राज्य विदेहका सबसे शक्तिशाली राज्य था तथा जो वज्जिगणके प्रमुख भागीदार थे। ये लिच्छवि काशीकी एक रानीके वंशज थे। विदेहके लिच्छवियोंमें अन्तिम तीर्थंकर भगवान् महावीरका जन्म हुआ और काशीकी वाराणसी नगरीमें तीर्थंकर पार्श्वनाथका जन्म हुआ। अतः इन दोनों राज्योंमें राजनीति और धर्मका घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है।

दिगम्बर जैन साहित्यके अनुसार पार्श्वनाथ उग्गवंशी थे और सूत्रकृतांगमें उग्रों, भोगों, ऐक्ष्वाकों और कौरवोंको ज्ञातृवंशी और लिच्छवियोंसे सम्बद्ध कहा है। इससे भी काशीके उग्रवंश तथा विदेहके लिच्छवियों और ज्ञातृवंशियोंके पारस्परिक सम्बन्धका समर्थन होता है[1]।

कलकत्ता विश्वविद्यालयमें डा. दे. रा. भण्डारकरने ई. पूर्व ६५०–३२५ तकके भारतीय इतिहासपर कुछ भाषण दिये थे। उसमें उन्होंने कहा था कि बौद्ध जातकोंमें ब्रह्मदत्तके सिवाय काशीके छह राजा और बतलाये हैं। उग्रसेन, धनंजय, महासीलव, संयम, विस्ससेन और उदयभद्द। विष्णुपुराण और वायुपुराणमें ब्रह्मदत्तके उत्तराधिकारी योगसेन, विश्वक्सेन और झल्लाट बतलाये हैं। डॉ. भण्डारकरने पुराणोंके विष्वक्सेन और जातकोंके विस्ससेनको एक ठहराया है।

जैन साहित्यमें पार्श्वनाथके पिताका नाम अश्वसेन या अस्ससेण बतलाया है। किन्तु यह नाम न तो हिन्दू पुराणोंमें मिलता है और न बौद्ध जातकोंमें। गुणभद्रने अपने उत्तरपुराणमें पार्श्वनाथके पिताका नाम विश्वसेन दिया है। जातकोंके विस्ससेण और हिन्दूपुराणोंके विश्वक्सेनसे इसकी एकरूपता सम्भव है।

यहाँ अनेक राजवंश आये और गये। फिर १०३३ ई. में इस सांस्कृतिक नगरीके दुर्दिन आये, जबकि नियाल्तगीन नामक मुसलमान सरदारने इसको कई दिन तक लूटा। बादकी शताब्दियोंमें ऐसे अवसर कई बार आये। फिर १६५९ ई०में मुगलसम्राट् औरंगजेबने काशीके अनेक मन्दिरोंको तुड़वा दिया और उनके स्थानपर मसजिदें बनवा दीं। ज्ञानवापीकी मसजिद विश्वनाथ मन्दिरको तुड़वाकर उसकी सामग्रीसे बनवायी गयी थी। यहाँ राजघाट मुहल्लेमें सरकारकी ओरसे खुदाई हुई थी, उसमें शुंगकाल (ई० पू० १८५ से १००)से लेकर मध्यकाल तकके अवशेष विपुल मात्रामें मिले हैं।

पुरातत्त्व

स्थानीय भारत-कलाभवनमें पुरातत्त्व सम्बन्धी बहुमूल्य सामग्री संग्रहीत है। यहाँ राजघाट तथा अन्य स्थानोंपर खुदाईमें जो पुरातत्त्व सामग्री उपलब्ध हुई थी, वह इस कला-भवनमें सुरक्षित है। यह सामग्री विभिन्न युगोंसे सम्बन्धित है। इसमें पाषाण और धातुकी अनेक जैन प्रतिमाएँ भी हैं। ये कुषाणकालसे लेकर मध्यकाल तककी हैं।

यहाँ कुषाण युगकी भगवान् पार्श्वनाथकी प्रतिमाका एक शीर्षभाग है जो मथुरासे उत्खननमें प्राप्त हुआ था। इस शिरोभागके ऊपर सप्त फणावली है। घुँघराले केश—कुन्तलोंका विन्यास अत्यन्त कलापूर्ण है।

१. Political history of Ancient India, P. 99.

गुप्तयुगमें प्रतिमाओंमें अलंकरण और सुरुचिसम्पन्नतामें जो वृद्धि हुई, वह यहाँ प्राप्त इस युगकी प्रतिमाओंमें देखनेको मिलती है। राजघाटसे प्राप्त एक जैन तीर्थंकर प्रतिमाका शिरोभाग यहाँ रखा हुआ है। यह एक शिलाफलकमें उत्कीर्ण है। सिरके ऊपर आकाशचारी देव हाथोंमें पारिजात पुष्पोंकी मालाएँ लिये प्रदर्शित हैं। शिरके पृष्ठभागमें अशोक वृक्षका भव्य अंकन है। भव्य केश गुच्छक, अर्धोन्मीलित दृष्टि, वीतराग छवि, मन्दस्मित आदि सारा वैशिष्ट्य इस शिरोभागमें परिलक्षित है, जो इस युगकी अन्य तीर्थंकर प्रतिमाओंमें मिलता है। रचना-शैलीसे इसका काल छठी शताब्दी निश्चित किया गया है। संग्रहालयमें इस शीर्षका उल्लेख 'महावीर-प्रतिमाका शिरोभाग' इस रूपमें किया गया है, किन्तु किस लांछन या चिह्नके आधारपर यह निर्णय किया गया, कह सकना कठिन है। साधारणतः पार्श्वनाथ और कभी-कभी आदिनाथ तथा सुपार्श्वनाथकी प्रतिमाओंके शिरोभागको देखकर प्रतिमाका परिचय मिल जाता है, किन्तु शेष तीर्थंकर-प्रतिमाओंके शिरोभाग तो प्रायः समान होते हैं। इसलिए केवल शिरोभागसे उस तीर्थंकर-प्रतिमाका सम्बन्ध किस तीर्थंकरके साथ है, यह स्पष्ट ज्ञात नहीं हो पाता। अतः यह शीर्षभाग महावीर प्रतिमाका है, यह नहीं कहा जा सकता।

एक शिलाफलकपर, जो ४ फुट ५$\frac{3}{4}$ इंच ऊँचा और ३$\frac{1}{2}$ फुट चौड़ा है, कमलासनपर तीर्थंकर प्रतिमा है। पादपीठके मध्यमें धर्मचक्र तथा उसके दोनों ओर सिंह अंकित हैं। इसके कुछ ऊपर यक्ष-यक्षी हैं तथा उनके ऊपरी भागमें दो तीर्थंकर प्रतिमाएँ अंकित हैं। शिरके पीछे भामण्डल और ऊपर छत्रत्रय सुशोभित हैं। उसके दोनों ओर आकाशचारी देव पुष्पमाल लिये हुए दिखाई पड़ते हैं। भगवान्‌की छातीपर श्रीवत्स चिह्न अंकित है। दो सिंहोंसे इस प्रतिमाकी पहचान महावीर प्रतिमाके रूपमें की जाती है।

एक पद्मासन तीर्थंकर प्रतिमा बलुए पाषाण खण्डपर उत्कीर्ण है। यह पाषाण लगभग डेढ़ फुट ऊँचा और एक फुट चौड़ा है। सिंहासनके स्थानपर कमलासन है। नीचे दोनों ओर भगवान्‌के यक्ष-यक्षी विनीत मुद्रामें खड़े हुए हैं। पीठिकाके मध्यमें धर्मचक्र है, जिसके दोनों ओर सिंहाकृतियाँ बनी हुई हैं। दोनों ओर चमरवाहक खड़े हैं। वक्षके मध्यमें श्रीवत्स चिह्न है। सिरके पीछे भामण्डल तथा ऊपर त्रिछत्र हैं। दोनों ओर नभचारी देव हाथोंमें पुष्पमाल लिये हैं।

सिंहासन पीठके निचले भागमें एक चैत्यवृक्ष के ऊपर तीर्थंकर प्रतिमा अंकित है। जिसके दोनों ओर यक्ष-यक्षी प्रदर्शित हैं। यक्षी द्विभुजी है। एक भुजासे एक बालकको गोदमें लिये हुए है तथा दूसरे हाथमें आम्रफल है। एक बालक नीचे खड़ा हुआ है। इससे ज्ञात होता है कि यह अम्बिका मूर्ति है। दक्षिण-पार्श्वमें एक लम्बोदर यक्ष-मूर्ति है जो हाथोंमें धनकी थैली लिये हुए है। यह गोमेदयक्षकी मूर्ति प्रतीत होती है। अम्बिका और गोमेद बाईसवें तीर्थंकर नेमिनाथके शासन देवता हैं। अतः इसे भगवान् नेमिनाथकी मूर्ति माना जाता है। इसके अतिरिक्त मूर्तिकी पहचानके लिए कोई लांछन या लेख नहीं है।

उपर्युक्त दोनों ही शिलाफलकोंकी मूर्तियाँ छठी शताब्दी की मानी जाती हैं।

राजघाटके उत्खननसे प्राप्त सप्तफणावलियुक्त एक तीर्थंकर प्रतिमा यहाँ स्थित है। यह कृष्ण शिलापट्टपर उत्कीर्ण है। इस फणावलीके दो फण खण्डित हो गये हैं। सिरके इधर-उधर दो गज बने हुए हैं। उनके ऊपर बैठे हुए देवेन्द्र हाथोंमें कलश लिये हुए हैं। फणावलीके ऊपर भेरी ताड़न करता हुआ एक व्यक्ति अंकित है। यह मूर्ति ११वीं शताब्दीकी अनुमानित की गयी है। पंच फणावलीसे यह सुपार्श्वनाथकी मूर्ति प्रतीत होती है।

कलाभवनके संग्रहालयमें भी कुछ जैन प्रतिमाएँ उपलब्ध हैं। उनमें से एक खड्गासन

प्रतिमा है। दोनों ओर यक्ष-यक्षी खड़े हैं। वक्ष पर श्रीवत्स अंकित है। इस प्रतिमा पर कोई लांछन या लेख नहीं है। अलंकरण भी प्रायः नहीं है। इन कारणोंसे इसे प्रथम शतीमें निर्मित माना जाता है।

एक शिलाफलकपर चौबीसी अंकित है। मध्यमें पद्मासन ऋषभदेव विराजमान हैं। केशों-की लटें कन्धोंपर लहरा रही हैं। पादपीठपर वृषभका लांछन है। भगवान्‌के दोनों पार्श्वोंमें शासन देवता चक्रेश्वरी और गोमुखका अंकन किया गया है। दोनों ही द्विभुजी हैं और अलंकरण धारण किये हुए हैं। चक्रेश्वरीके एक हाथमें चक्र तथा दूसरेमें सम्भवतः बिजौरा है। भगवान्‌के मस्तकके ऊपर त्रिछत्र और दोनों ओर सवाहन गज हैं। त्रिछत्रके ऊपर दो पंक्तियोंमें पद्मासन और कायोत्सर्गासनमें तेईस तीर्थंकरोंकी मूर्तियाँ हैं। पीठिकाके नीचेकी ओर उपासकोंका अंकन किया गया है।

इस मूर्तिका कलाईसे नीचेका भाग और बाँया पैर खण्डित है। यह फलक खजुराहोसे प्राप्त हुआ था। इसका आनुमानिक काल ११वीं शताब्दी बताया जाता है।

यहाँपर एक सर्वतोभद्रिका प्रतिमा भी है। चारों दिशाओंमें चार खड्गासन तीर्थंकर प्रतिमाएँ हैं। इनके अतिरिक्त प्रत्येक दिशामें प्रत्येक कोनेपर दो पद्मासन प्रतिमाएँ अंकित हैं। इस प्रकार कुल १२ प्रतिमाएँ अंकित हैं। इन प्रतिमाओंमें न लांछन अंकित है, न श्रीवत्स ही अंकित है। खड़ी प्रतिमाओंकी भुजाओंका भाग खण्डित है। यह मूर्ति कहाँसे प्राप्त हुई थी, ज्ञात नहीं हुआ।

तीर्थक्षेत्रकी वर्तमान स्थिति

भदैनीघाट—भगवान् सुपार्श्वनाथका जन्मस्थान वर्तमान भदैनी घाट माना जाता है। यहाँ आजकल स्याद्वाद महाविद्यालय नामक प्रसिद्ध शिक्षा संस्था है। इसके भवनके ऊपर भगवान् सुपार्श्वनाथका मन्दिर है। यह गंगा तटपर अवस्थित है। दृश्य अत्यन्त सुन्दर है। मन्दिर छोटा ही है। किन्तु शिखरबद्ध है। इसका निर्माण लाला प्रभुदासजी आरावालोंने कराया था।

वेदीमें भगवान् सुपार्श्वनाथकी श्वेतपाषाणकी संवत् १९१३ में प्रतिष्ठित पद्मासन प्रतिमा विराजमान है। इसकी अवगाहना १५ इंच है। इस मूलनायक प्रतिमाके अतिरिक्त पाँच श्वेत पाषाणकी और एक कृष्ण पाषाणकी तथा एक सर्वतोभद्रिका प्रतिमा विराजमान हैं।

गर्भगृहके द्वारपर दायें-बायें पार्श्वमें मातंग यक्ष और काली (मानवी) यक्षी बनी हुई हैं। यक्षका वाहन सिंह है और यक्षी वृषभारूढा है।

गर्भगृहके बाहरके कमरेमें एक खाली वेदी है। एक आलेमें चरण बने हैं। मन्दिरके दोनों ओर खुली छत है। मन्दिरका शिखर बहुत सुन्दर बना हुआ है।

भदैनी घाटसे दक्षिणकी ओर दो घाट छोड़कर बाबा छेदीलालजी का घाट है। पूर्वजों-का कहना है कि इस घाटके निर्माणसे पहले यहाँ भगवान् सुपार्श्वनाथके चरण-चिह्न स्थापित थे। भगवान्‌के गर्भकल्याणककी तिथि भाद्रपद शुक्ला ६ है। उस समय गंगामें बाढ़ आयी होती है। अतः बड़ी उम्रके व्यक्ति पानीमें जाकर चरण-चिह्नकी पूजा किया करते थे। काशीके रईस बाबा छेदीलालजीने इस जगह घाट बनवाकर मन्दिरका निर्माण कराया और वि० सं० १९५२ में उसकी प्रतिष्ठा करायी। धार्मिक द्वेषके कारण बगलमें ही स्थित मन्दिरके अधिकारियोंने मुकद्दमे-बाजी चालू कर दी। जरासे कोनेके लिए वर्षों तक मुकद्दमा चला और छेदीलालजीकी जीत हुई।

इसी मन्दिरमें वे पुराने चरण या उनकी प्रतिकृति प्रतिष्ठित है उसका लेख इस प्रकार है—'वेरवे-भद्रेन्दुसित मार्गशिषे भराख्ये २०८० काश्यां वराणसि सुपार्श्व सुजन्मे तीर्थे एषः क्रमाब्जयुगलं त्रिजगद्धिताम् । संस्थापितः सकलसंघदिगम्बरेण' है। मन्दिर शिखरबद्ध और विशाल है। इसकी प्रतिष्ठा संवत् १९५२ में मिती माघ शुक्ला ५ चन्द्रवारको बाबा रायदासजीके पुत्र बा. छेदीलालजीने करायी थी।

गर्भगृहमें दो वेदियाँ तीन दर वाली हैं। मुख्य वेदीमें मूलनायक भगवान् सुपार्श्वनाथकी कृष्णवर्ण, पद्मासनस्थ डेढ़ फुट अवगाहनावाली भव्य प्रतिमा है। पीठिकापर स्वस्तिक चिह्न तथा लेख है। वक्षपर श्रीवत्स अंकित है। इसके अतिरिक्त ८ पाषाणकी तथा ५ धातुकी प्रतिमाएँ इस वेदीमें विराजमान हैं।

दायीं ओर दूसरी वेदी है। इसकी प्रतिष्ठा भी संवत् १९५२ में हुई थी। इसमें मुख्य प्रतिमा भगवान् सुपार्श्वनाथकी है जो २० इंच अवगाहना की है और कृष्णवर्ण कायोत्सर्गासनमें स्थित है। इनके अलावा ८ पाषाण प्रतिमाएँ और हैं।

इस मन्दिरको भी सुपार्श्वनाथकी जन्मभूमि माना जाता है।

भेलूपुर—भगवान् पार्श्वनाथका जन्म वर्तमान भेलूपुरा मुहल्लामें हुआ। उनके जन्म स्थान-पर आजकल दो मन्दिर बने हुए हैं। एक कम्पाउण्ड के भीतर जैन धर्मशाला बनी हुई है। यह दिगम्बर-श्वेताम्बर समाजकी संयुक्त धर्मशाला है। इसमें सभी जैन बन्धु बिना किसी भेदभावके ठहर सकते हैं।

धर्मशालाके बाद एक दूसरा अहाता आता है। इस अहातेके द्वारके बायीं ओर श्वेताम्बर समाजका तथा दायीं ओर दिगम्बर समाजका कार्यालय है। इस अहातेके द्वारमें प्रवेश करते ही सामने जो मन्दिर आता है, वह दिगम्बर और श्वेताम्बर समाजका सम्मिलित मन्दिर है। तथा इसकी वेदियों पर दोनों सम्प्रदायोंकी प्रतिमाएँ विराजमान हैं, दोनों ही सम्प्रदायवाले अपनी-अपनी मान्यतानुसार पूजा-प्रक्षाल करते हैं।

मुख्य वेदीमें दोनों सम्प्रदायोंकी प्रतिमाएँ विराजमान हैं। दिगम्बर समाजकी ४ प्रतिमाएँ हैं। एक प्रतिमा कृष्ण वर्ण, पद्मासन १५ इंच अवगाहनावाली है। इसपर न तो कोई चिह्न है और न लेख ही है। प्रतिमा गुप्तकालकी प्रतीत होती है।

दूसरी प्रतिमा श्वेत पाषाण की, पद्मासन तथा ११ इंच अवगाहनाकी है। इसके ऊपर भी लांछन या लेख नहीं है। यह भी पूर्व प्रतिमाके समान प्राचीन है।

तीसरी प्रतिमा भगवान् पार्श्वनाथकी है। यह पद्मासन मुद्रामें १९ इंच ऊँची श्वेत पाषाणकी है। सिरपर सर्प-फण है। पीठिकापर सर्पका लांछन तथा लेख अंकित है। लेखके अनुसार इसकी प्रतिष्ठा संवत् १५६८ में हुई थी।

एक प्रतिमा पद्मावती देवीकी है। शीर्षपर पार्श्वनाथ विराजमान हैं।

इस वेदीमें श्वेताम्बर सम्प्रदायकी ९ पाषाणकी और २ धातुकी प्रतिमाएँ हैं।

वेदीके पीछे बाँयें आलेमें दो दिगम्बर प्रतिमाएँ हैं। एक शिलाफलकमें २४ प्रतिमाएँ हैं। यह चौबीसी बिलकुल वैसी ही है, जैसी इस मन्दिरके पासवाले दिगम्बर जैन मन्दिरमें है। यह अभिलिखित है। मूर्ति-लेखके अनुसार इसका प्रतिष्ठाकाल वि. संवत् ११५३ है। दूसरी मूर्ति कृष्ण पाषाणकी पद्मासनमें भगवान् पार्श्वनाथकी है। इस मूर्तिपर कोई लेख नहीं है। किन्तु यह प्रतिमा पूर्वोक्त चौबीसीके ही समकालीन प्रतीत होती है।

एक दूसरे आलेमें श्वेताम्ब्रर सम्प्रदायकी दो धातु और एक पाषाण-प्रतिमा है तथा एक चरण-युगल विराजमान है। एक मेजपर श्वेताम्बर सम्प्रदायकी श्वेत मूर्ति रखी है।

दिगम्बर जैन मन्दिर

उक्त मन्दिरके बगलमें दायीं ओर दिगम्बर जैन मन्दिर है। इसके लिए इस संयुक्त मन्दिर-में-से भी रास्ता है और उसका पृथक् द्वार भी है। इस मन्दिरमें तीन वेदियाँ है। मुख्य वेदीमें मूलनायक प्रतिमा भगवान् पार्श्वनाथकी है। यह श्वेतपाषाणकी पद्मासनमें है। अवगाहना १५ इंच है। मूर्ति-लेखके अनुसार यह वि. सं. १६६४ की है।

इस वेदीमें कुल २६ प्रतिमाएँ विराजमान हैं, जिनमें २२ पाषाणकी और ४ धातुकी हैं। इनमें वि. संवत् १०२८ और १२२८ से लेकर संवत् १५४८,१६६४ और १९५२ तककी प्रतिष्ठित प्रतिमाएँ हैं। वि. संवत् १०२८वाली प्रतिमा भगवान् चन्द्रप्रभुकी श्वेत पाषाणकी पद्मासन ११ इंच की है।

दायीं ओरकी वेदीमें बायीं ओरसे—कृष्ण पाषाणके फलकपर भगवान् शान्तिनाथकी कायोत्सर्ग मुद्रामें ३। फुट ऊँची प्रतिमा है। इसके परिकरमें नीचे ९ भक्तजन बैठे हुए हैं। दायीं ओर भगवान्-का गरुड़ यक्ष और महामानसी (कन्दर्पा) यक्षिणी है। दोनों ही द्विभुजी हैं। यक्षके एक हाथमें फल और दूसरे हाथमें वज्र है। यक्षके ऊपरकी ओर गोदमें एक बालकको लिये हुए यक्षी खड़ी है। इसके ऊपरकी ओर इन्द्र पारिजात पुष्प लिये हुए खड़ा है। उसके बगलमें खड्गासन अर्हन्त प्रतिमा है। उसके ऊपर भी एक और खड्गासन अर्हन्त प्रतिमा है। उनके ऊपरकी ओर गज है, जिसके ऊपर कलश लिये हुए इन्द्र बैठा हुआ है। फिर आकाशचारी देव-देवियाँ कमल-पुष्प लिये दीख पड़ती हैं। छत्रत्रयीके ऊपर वाद्ययन्त्र बजाता हुआ एक पुरुष दिखाई देता है। बायीं ओरकी रचना भी इसी प्रकारकी है। अन्तर इतना है कि इस ओर एक मनुष्यके कन्धेपर एक स्त्री बैठी हुई है।

इस वेदीमें मुख्य प्रतिमा भगवान् पार्श्वनाथकी है। यह कृष्ण वर्ण, पद्मासन और २ फुट १० इंच अवगाहनाकी है।

एक मूर्ति कृष्ण पाषाणकी पद्मासनमें १८ इंच ऊँची है। इस मूर्तिके ऊपर कोई लांछन और लेख नहीं है। यह उत्तर मध्यकालकी प्रतीत होती है। इस वेदीमें कुल १७ प्रतिमाएँ हैं जिनमें ९ पाषाणकी और ८ धातुकी हैं। इनमें वि. संवत् १५५५ की कई प्रतिमाएँ हैं।

बायीं वेदीमें मूलनायक चन्द्रप्रभ भगवान्‌की श्वेत पाषाणकी पद्मासन प्रतिमा है। यह १५ इंच ऊँची है। यह वि. संवत् १९९० की प्रतिष्ठित है। इस वेदीमें चार चौबीसी मूर्तियाँ हैं। प्रत्येक एक शिलाफलकमें उकेरी हुई हैं। वर्ण साधारण हरित है। लगता है, पाषाण बहुमूल्य है। श्वेत पाषाणकी एक खड्गासन मूर्ति भी है। उसमें लेख और लांछन नहीं है।

इस वेदीमें पद्मावती देवीकी श्वेत पाषाणको सवा फुट ऊँची प्रतिमा विराजमान है।

यहाँ ३-४ वर्ष पूर्व एक रोचक घटना घटित हुई थी। प्रातः जब पुजारी अभिषेकके लिए आया तो उसने देखा कि चन्द्रप्रभ भगवान्‌के ऊपर एक विशालकाय चितकबरा सर्प फण फैलाये हुए बैठा है। पुजारी जब अभिषेकके लिए आगे बढ़ा तो सर्प हट गया। अभिषेकके पश्चात् वह पुनः आकर बैठ गया। उसे देखने हजारों व्यक्ति आये। उसके चित्र भी लिये गये। फिर वह देखते-देखते ही पता नहीं कहाँ चला गया।

इन मन्दिरोंके बगलमें एक समाधिस्थल बना हुआ है, जिसपर दिगम्बर-श्वेताम्बर दोनों सम्प्रदायोंका समान अधिकार है।

सेठ खड्गसेन उदयराजका मन्दिर—उक्त मन्दिरोंके कम्पाउण्डके बाहर नवीन दिगम्बर जैन मन्दिर है, जो सेठ खड्गसेन उदयराजका बनवाया हुआ है। यह मन्दिर शिखरबद्ध और बड़ा भव्य है। मन्दिरके बाहर उद्यान है। इस मन्दिर और यहाँकी मूर्तियोंकी प्रतिष्ठा संवत् १९२५ में हुई थी। यहाँकी तीन वेदियोंपर तीर्थंकर प्रतिमाएँ विराजमान हैं। इनके अतिरिक्त तीन वेदियोंमें पद्मावती देवी विराजमान हैं। बायीं ओरके कक्षमें पद्मावती देवीकी श्वेत पाषाणकी ३ फुट ऊँची मूर्ति है। नीचे सीमेण्टकी अजगरकी कुण्डली बनी हुई है। इस पर पॉलिश इतनी कलात्मक ढंगसे की गयी है कि वह सजीव प्रतीत होता है। कुण्डलीके ऊपर कमलासन है, जिसपर देवी बैठी है। उसके सिरके ऊपर सीमेण्टका बना हुआ फण-मण्डप है। पद्मावतीकी इतनी सुन्दर मूर्ति अन्यत्र मिलना कठिन है।

मन्दिरकी वेदीपर स्वर्णका काम बहुत सुन्दर किया गया है। दीवालोंपर भित्तिचित्र बने हुए हैं, जिनमें पौराणिक आख्यान चित्रित किये गये हैं। सचित्र भक्तामर स्तोत्र भी चित्रित किया गया है।

इस मन्दिरकी बगलमें महाराज विजयानगरम्का महल है। सेठ खड्गसेन उदयराजने महाराजसे मुकद्मा जीतकर यह स्थान प्राप्त किया था।

एक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ-प्रशस्ति

स्याद्वाद महाविद्यालयके अकलंक पुस्तकालयमें एक हस्तलिखित ग्रन्थ है, जिसका नाम 'सामायिक नित्य प्रतिक्रमण पाठ' है। इसका लेखन-काल संवत् १६१९ है। इस प्रतिमें कुल १६ पत्र हैं। उसमें जो प्रशस्ति दी गयी है वह उपयोगी होनेके कारण यहाँ दी जा रही है—

लिषतं (लिखितं) पंडित सेवाराम त्रिपाठी कोशल देशे त्रिलोकपुर मध्ये पार्श्वनाथ चैत्यालये पठनार्थं ये उता (त्त) रा काशी षंड (खण्ड) वाराणसी नगरी भेलीपुर श्री पार्श्वनाथ चैत्यालयात् पठनार्थं श्री गुणकीर्ति आचार श्री दिघवर (दिगम्बर) गच्छ सरोसति (सरस्वती) मूल संघ आमनाये (आम्नाये) उगाम (?) तसे सीसे ब्रह्म पद्मसागर सके सोवासे १६१९ मिति चइत्र (चैत्र) वद १० तें दिवसी सामाइक पाठ सम्पूर्ण समाप्तः ॥६॥

इस प्रशस्तिसे दो बातोंपर प्रकाश पड़ता है कि संवत् १६१९ (सन् १५६२) में त्रिलोकपुरमें पार्श्वनाथ दिगम्बर चैत्यालय था तथा भेलूपुरमें पार्श्वनाथ मन्दिर विद्यमान था। यह काल मुगल सम्राट् अकबरका था।

हिन्दू-तीर्थ

हिन्दुओंकी मान्यतानुसार अयोध्या, मथुरा, माया (कनखल हरिद्वार), काशी, कांची, अवन्ति (उज्जैन) और द्वारका ये सात महापुरियाँ हैं। इनमें काशी मुख्य मानी गयी है। यह पुरी शंकरजीके त्रिशूलपर बसी है। 'काश्यां हि मरणान्मुक्तिः' यह हिन्दू-शास्त्रोंका वाक्य है। काशीमें मरनेसे मुक्ति प्राप्त होती है, इस विश्वासके कारण ही प्राचीन कालमें यहाँ देहोत्सर्ग करनेके लिए हिन्दू लोग आया करते थे। यह नगर शिवजीका नगर कहलाता है, अतः यहाँ शिव और उनके गणोंके अनेक मन्दिर हैं। यहाँ उनके कुल ५९ मुख्य शिवलिंग, १२ आदित्य, ५६ विनायक, ८ भैरव, ९ दुर्गा, १३ नृसिंह और १६ केशव हैं।

काशीका सम्बन्ध महाराज हरिश्चन्द्र, कबीर और तुलसीसे भी रहा है।

काशी सहस्रों वर्षोंसे विद्याका केन्द्र रही है। यहाँ भारतीय वाङ्मय-दर्शन और साहित्यके अध्ययन-अध्यापनकी प्राचीन परम्परा अब तक सुरक्षित है। जरी और रेशमकी साड़ियोंके लिए तो बनारस सदासे प्रसिद्ध रहा है। और अपनी उस ख्यातिको वह आज भी सुरक्षित रखे हुए है।

सिंहपुरी

मार्ग

सिंहपुरी वाराणसी जिलेमें वाराणसीसे सड़क मार्ग द्वारा ६ कि. मी. दूर उत्तरमें अवस्थित है। बनारस छावनी स्टेशनसे यह ८ कि. मी. और बनारस सिटीसे ५ कि. मी. है। वहाँ जानेके लिए वाराणसीसे मोटर और टैक्सी हर समय मिलती हैं। ट्रेनसे जाना हो तो सारनाथ स्टेशन उतरना चाहिए। स्टेशनसे लगभग तीन फर्लांग दूर दिगम्बर जैन मन्दिर और धर्मशाला है। यहाँका पोस्ट आफिस सारनाथ है।

जैनतीर्थ

भगवान् श्रेयान्सनाथके चार कल्याणकोंके कारण यह अत्यन्त प्रागैतिहासिक कालसे जैन-तीर्थ रहा है। यहाँ उनके गर्भ, जन्म, दीक्षा और केवलज्ञान ये चार कल्याणक हुए थे।

जैन मन्दिर

क्षेत्र पर एक दिगम्बर जैन मन्दिर है। एक वेदीमें २ फुट ५ इंच अवगाहनावाली श्रेयान्स-नाथ भगवान्‌की श्यामवर्ण पद्मासन मूलनायक प्रतिमा है। यह प्रतिमा अत्यन्त मनोज्ञ है। प्रतिमा लेखसे ज्ञात होता है कि इसकी प्रतिष्ठा वि. संवत् १८८१ में मार्गशीर्ष शुक्ला षष्ठी शुक्रवारको पभौसापर्वतपर हुई थी।

इस प्रतिमाके नीचे गेंडेका लांछन है जो भगवान् श्रेयान्सनाथका है। यह भेलूपुरके दिगम्बर जैन मन्दिरसे लाकर यहाँ विराजमान की गई थी। इस प्रतिमाके साथकी दो श्यामवर्ण प्रतिमाएँ अभी तक भेलूपुरके जैन मन्दिरमें विराजमान हैं।

मूलनायक प्रतिमाके आगे भगवान् श्रेयान्सनाथकी श्वेतवर्ण प्रतिमा है। एक सिंहासनमें भगवान् पार्श्वनाथकी श्यामवर्ण प्रतिमा विराजमान है। यह प्रतिमा भी भेलूपुरके मन्दिरसे लायी गयी थी।

वेदीके पीछे दायीं ओर दीवालमें बनी हुई एक आलमारीमें एक शिलापटमें नन्दीश्वर चैत्यालय है जिसमें ६० प्रतिमाएँ बनी हुई हैं। इसमें ऊपरकी प्रतिमाओंकी पंक्ति खण्डित है। यह शिलापट भूगर्भसे उपलब्ध हुआ था। बायीं ओरके दालानमें एक तहखाना बना हुआ है। गर्भगृहके आगे विशाल सभामण्डप है। मन्दिरके बाहर विशाल चबूतरा और उद्यान है।

मन्दिरके कम्पाउण्डके बाहर भारत सरकारकी ओरसे घासका लान और पुष्पोद्यान बना दिया गया है। यह सारी भूमि पहले मन्दिरकी थी किन्तु दिगम्बर जैन समाजकी असावधानीके कारण इस विशाल भूमिखण्डपर अब सरकारी अधिकार हो गया है। यहाँ कोई श्वेताम्बर मन्दिर नहीं है।

पुरातत्त्व

जैन मन्दिरके निकट ही एक स्तूप है। इसकी ऊँचाई १०३ फुट है। मध्यमें इसका व्यास

९३ फुट है। इसका वेदीबन्ध अठकोण है। इसके पार्श्वमें एक महराव है। महरावके पादपीठपर प्रारम्भमें मूर्तियाँ रखी हुई थीं। दक्षिण भाग बेलबूटोंसे अलंकृत है, जिनके कुछ भाग अब तक अवशिष्ट हैं। यह स्तूप २२०० वर्षके लगभग प्राचीन है। इस स्तम्भकी ओपदार पालिश तथा अश्वादि जानवरोंका चित्रण कलाके उत्कृष्टतम उदाहरणोंमें-से है। इसका निर्माण सम्राट् प्रियदर्शीने कराया था। भगवान् श्रेयान्सनाथकी जन्म नगरी होनेके कारण सम्प्रतिने भगवान्की स्मृतिमें इसे निर्मित कराया होगा, यह मान्यता भी प्रचलित है। स्तूपके ठीक सामने सिंहद्वार बना हुआ है, जिसके दोनों स्तम्भों पर सिंहचतुष्क बना हुआ है। सिंहोंके नीचे धर्मचक्र है जिसके दायीं ओर बैल और घोड़ेकी मूर्तियाँ अंकित हैं। द्वारका आकार भी बड़ा कलापूर्ण है।

भारत सरकारने इस स्तम्भकी सिंहत्रयीको राजचिह्नके रूपमें मान्य किया है और धर्मचक्रको राष्ट्रध्वजपर अंकित किया है। जबसे इन धर्मचिह्नोंको शासनसे मान्यता प्राप्त हुई है, तबसे जनसाधारणका ध्यान इस ओर विशेष रूपसे आकृष्ट हुआ है।

जैन मान्यतानुसार प्रत्येक तीर्थंकरका एक विशेष चिह्न होता है और प्रत्येक तीर्थंकर-प्रतिमापर उसका चिह्न अंकित रहता है। उन चिह्नोंसे ही यह ज्ञात हो जाता है कि यह प्रतिमा अमुक तीर्थंकरकी है। वे चिह्न मांगलिक कार्यों और मांगलिक वास्तुविधानोंमें भी मंगल चिह्नोंके रूपमें प्रयुक्त किये जाते हैं। सिंह भगवान् महावीरका चिह्न है। बैल प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेवका और घोड़ा तृतीय तीर्थंकर सम्भवनाथका चिह्न है।

इसी प्रकार धर्मचक्र तीर्थंकरों और उनके समवसरणका एक आवश्यक अंग है। समवसरणकी देवनिर्मित रचनामें सिद्धार्थवृक्ष, चैत्यवृक्ष, कोट, वनवेदिका, स्तूप, तोरणयुक्त मानस्तम्भ, ध्वजस्तम्भ, श्रीमण्डप आदि होते हैं। श्रीमण्डपमें तीन पीठिका होती है। प्रत्येक पीठिकापर अष्ट-मंगल-द्रव्य होते हैं तथा यक्ष अपने मस्तकपर धर्मचक्र लिये खड़े रहते हैं। इनमें हजार-हजार आरे होते हैं।

इसी प्रकार जब तीर्थंकर बिहार करते हैं, तब उनके आगे-आगे हजार आरोंवाला धर्मचक्र चलता है। भगवज्जिनसेनने बताया है—

सहस्रार-स्फुरद्धर्म-चक्ररत्नपुरःसरः ॥ आदिपुराण २५।२५६

इस धर्मचक्रके कारण ही तीर्थंकरको धर्मचक्री कहा जाता है।

आचार्य जिनसेन कहते हैं—

महाप्रभावसम्पन्नास्तत्र शासनदेवताः।
नेमुश्चाप्रतिचक्राद्या वृषभं धर्मचक्रिणम् ॥ हरिवंशपुराण ९।२२२

अर्थात् बड़े-बड़े प्रभावशाली अप्रतिचक्र आदि शासन देवता धर्मचक्री भगवान्को निरन्तर नमस्कार करते हैं।

तीर्थंकर केवलज्ञान प्राप्त करनेके पश्चात् जो प्रथम धर्मोपदेश करते हैं, उसे धर्मचक्र-प्रवर्तन कहा जाता है।

धर्मचक्रका इतना महत्त्व होनेके कारण ही प्रायः सभी प्रतिमाओंके सिंहासनों और वेदियोंमें धर्मचक्र बना रहता है। शिलापट्टपर जो प्रतिमाएँ बनायी जाती हैं उनमें भी प्रायः धर्मचक्र मिलता है।

पौराणिक मान्यताके अनुसार इस स्थानपर ग्यारहवें तीर्थंकर श्रेयान्सनाथने धर्मचक्र-प्रवर्तन किया था। यहाँपर देवोंने उनके समवसरणकी रचना की थी।

समवसरण-रचनाका अध्ययन करनेपर एक निष्कर्ष निकलता है कि समवसरण तीर्थंकर भगवान्‌के पुण्यवैभवका परिणाम है। जैन मन्दिर समवसरणके प्रतीक होते हैं। किन्तु जैन मन्दिरमें समवसरणकी सम्पूर्ण रचना नहीं की जा सकती। अतः समवसरणकी अनेक मांगलिक वस्तुओंकी स्वतन्त्र रचना भी होती रही है। ऐसी रचनाओंमें स्तूपोंका अपना अलग महत्त्व रहा है। इसी लिए देशके विभिन्न स्थानोंसे उत्खननमें भी स्तूपोंकी उपलब्धि हुई और कई स्थानोंपर अबतक ये जीर्ण-शीर्ण दशामें खड़े भी हुए हैं। ऐसा लगता है, प्राचीनकालमें, विशेषतः ईसा पूर्व तीसरी शताब्दीसे गुप्तकाल तक जैन स्थापत्य कलामें स्तूपोंका विशेष प्रचलन रहा।

जैन शास्त्रोंमें स्तूपोंके सम्बन्धमें विस्तारपूर्वक विवरण उपलब्ध होते हैं। जैन वाङ्मयमें स्तूप दस प्रकारके बताये गये हैं—लोक स्तूप, मध्यलोक स्तूप, मन्दर स्तूप, कल्पवास स्तूप, ग्रैवेयक स्तूप, अनुदिश स्तूप, सर्वार्थसिद्धि स्तूप, सिद्धस्तूप, भव्यकूट स्तूप, प्रमोद स्तूप। ये स्तूप तत्त्वबोध प्राप्त करनेके साधनोंके रूपमें माने जाते थे। इसी उद्देश्यसे उनका निर्माण भी होता था। पश्चाद्वर्ती कालमें प्रबोध स्तूप निर्मित होने लगे, जो तीर्थंकरों और मुनियोंके स्मारक थे। इन स्तूपोंकी पूजाका प्रचलन प्रारम्भसे ही रहा है। ऐसे स्तूप मथुरा, देवगढ़ आदि स्थानों में मिले हैं।

यहाँ जो स्तूप खड़ा है, वह देवानां प्रिय, प्रियदर्शी सम्राट् सम्प्रतिका हो सकता है। इस मान्यताके समर्थनमें कई तर्क उपस्थित किये जा सकते हैं। प्रथम तो यह कि यह स्थान तीर्थंकर श्रेयान्सनाथकी कल्याणक भूमि है। दूसरे, 'देवानां प्रिय' यह जैन परम्पराका शब्द है। जैन सूत्र साहित्यमें इस शब्दका प्रयोग स्थान-स्थान पर मिलता है। इसका प्रयोग भव्य, श्रावक आदिके अर्थमें आता है। सम्प्रतिने अपने लिये प्रियदर्शी शब्दका ही सर्वत्र प्रयोग किया है, लेकिन कहीं-कहींपर देवानांप्रिय प्रियदर्शी शब्द भी प्रयुक्त हुआ है।

सम्भवतः इन्हीं कारणोंसे पुरातत्त्वविशारदोंको भी सम्राट् अशोक द्वारा इसके निर्मित होनेका सन्देह है। इसीलिए इस स्तूपके सम्बन्धमें पुरातत्त्व विभागकी ओरसे जो सूचना-पट्ट लगाया गया है, उसमें अपने इस सन्देहको "सम्भवतः यह स्तूप सम्राट् अशोक द्वारा निर्मित हुआ" यह लिखकर प्रकट किया गया है। श्रेयान्सनाथके नामपर ही इस स्थानका नाम सारनाथ पड़ा।

व्यवस्था

यहाँके जैन मन्दिरकी व्यवस्था दिगम्बर जैन पंचायत बनारसके अधीन है। यहाँ वर्षमें फाल्गुन कृष्ण एकादशीको, जिस दिन श्रेयान्सनाथ भगवान्‌ने दीक्षा ली थी, मेला होता है और श्रावण शुक्ला १५ को, जिस दिन भगवान्‌का निर्वाण हुआ था, दूसरा मेला भरता है।

यहाँ ठहरनेके लिए जैन धर्मशाला बनी हुई है। इसमें चारों ओर कमरे और दालान हैं तथा बीचमें उद्यान है। धर्मशालाके पीछे चार बीघेमें उद्यान बना हुआ है, जो धर्मशालाकी ही सम्पत्ति है।

बौद्धतीर्थ

बौद्ध मान्यतानुसार महात्मा बुद्धने सर्वप्रथम अपने पंचवर्गीय शिष्योंको यहींपर उपदेश देकर अपना धर्म-चक्र प्रवर्तन किया। बौद्ध ग्रन्थोंमें इस स्थानका नाम ऋषिपत्तन और मृगदाव आता है। यहाँ सारे विश्वसे बौद्ध यात्री दर्शनार्थ आते हैं।

चन्द्रपुरी

मार्ग

चन्द्रपुरी क्षेत्र बनारससे आगे मेन लाइनपर कादीपुर स्टेशनसे ५ कि. मी. दूर गंगाके किनारे अवस्थित है। टैक्सी और मोटर द्वारा वाराणसी-गोरखपुर रोडपर २० कि. मी. है। रेल द्वारा २४ कि. मी. पड़ता है। मुख्य सड़कसे २ कि. मी. कच्चा रास्ता जाता है। यह सिंहपुरीसे १७ कि. मी. है। यह एक छोटा-सा गाँव है जो चन्द्रौटी कहलाता है। यह वाराणसी जिलेमें है और इसका पोस्ट आफिस कैथी है। यात्रियोंके लिए सुविधा-जनक यह है, कि वाराणसीमें मैदागिनकी जैन धर्मशालामें ठहरें। वहाँसे टैक्सी या बससे जायें। टैक्सी मन्दिर तक पहुँच जाती है। बससे सड़कपर उतरकर दो कि. मी. पैदल चलना पड़ता है। पुजारी गाँवमें रहता है। जमादार दरवाजेपर ही रहता है।

जैनतीर्थ

यह आठवें तीर्थंकर चन्द्रप्रभु भगवान्का जन्म-स्थान है। इस स्थानपर भगवान् चन्द्रप्रभके गर्भ, जन्म, तप और केवलज्ञान ये चार कल्याणक हुए थे। इसलिए यह एक अत्यन्त प्राचीन तीर्थ स्थान है।

वर्तमान स्थिति

यहाँ दिगम्बर जैनोंका एक प्राचीन मन्दिर था, जिसपर श्वेताम्बरोंने अधिकार कर लिया। तब आरा निवासी लाला प्रभुदासने यहाँ गंगाके तटपर सन् १९१३में नवीन दिगम्बर जैन मन्दिरका निर्माण कराया। मन्दिरके लिए भगवान् चन्द्रप्रभकी दो मूर्तियोंका निर्माण भी इन्होंने कराया और उनकी पंचकल्याणक प्रतिष्ठा बा० देवकुमार आरा वालोंने करायी।

मन्दिर साधारण है तथा दूसरी मंजिल पर है। गर्भगृह एक साधारण-सा कमरा है, जो लगभग ८ × ८ फुट है। दीवालमें आलमारीनुमा वेदीमें एक साधारण पाषाणके सिंहासनपर मूलनायक भगवान् चन्द्रप्रभकी श्वेत पाषाणकी पौने दो फुट ऊँची प्रतिमा विराजमान है। इसके आगे पीतलके सिंहासनपर भगवान् पार्श्वनाथकी ८ इंच ऊँची कृष्णवर्ण प्रतिमा है।

गर्भगृहके आगे सभामण्डप है, जो गर्भगृहसे कुछ बड़ा है। गर्भगृहके द्वारपर इधर-उधर दोनों आलोंमें यक्ष विजय और अष्टभुजी यक्षिणी ज्वालामालिनीकी मूर्तियाँ रखी हुई हैं। इसी प्रकार सामग्री वाली वेदीके इधर-उधर आलेमें एकमें क्षेत्रपाल तथा दूसरेमें चरण विराजमान हैं।

मन्दिरके चारों ओर धर्मशाला है। श्वेताम्बरोंके अधिकारमें जो मन्दिर है, वह दिगम्बर मन्दिरसे थोड़ी दूरपर बना हुआ है। इसका निर्माण संवत् १८६० में हुआ था।

किंवदन्ती

इस मन्दिरके निर्माता लाला प्रभुदासकी आर्थिक स्थिति साधारण थी, ऐसा कहा जाता है। एक बार भट्टारक जिनेन्द्रभूषणने उनसे कहा—तुम छह जैन मन्दिरोंका निर्माण कराओ। लाला प्रभुदासने इसपर दुखी होकर अपनी आर्थिक विवशता प्रकट की तो भट्टारकजी बोले—तुम इसकी चिन्ता मत करो, केवल स्वीकृति भर दे दो। लालाजीने अपनी स्वीकृति दे दी। देखते-देखते कुछ दिनोंमें ही लालाजीकी आर्थिक स्थिति सुधर गयी। तब उन्होंने चन्द्रपुरी, भदैनी,

और कौशाम्बी दिगम्बर जैन मन्दिर बनवाये। वे अपने जीवनमें पूरे छह मन्दिर बनवा पानेसे पहले ही स्वर्गवासी हो गये। अतः शेष तीन मन्दिरोंका निर्माण उनके वंशजोंने कराया। इसके अतिरिक्त उनके वंशजोंने 'प्रभुदास जैन (तीर्थक्षेत्र) निधि' नामसे एक ट्रस्टकी स्थापना की, जिसकी ओरसे इन मन्दिरोंकी देखभाल और व्यवस्था होती है।

वार्षिक मेला

यहाँ चैत्र कृष्ण पंचमीको वार्षिक मेला भरता है।

प्रयाग

मार्ग

दिल्लीसे कलकत्ता जानेवाली उत्तर रेलवे लाइनपर इलाहाबाद जंक्शन है। यह सभी ओरसे केन्द्रमें है। इलाहाबाद जंक्शनपर उत्तर रेलवे और मध्य रेलवेकी लाइनें मिलती हैं। सड़कके मार्ग द्वारा भी इसका सम्बन्ध सभी बड़े शहरोंसे है। नैनीमें हवाई अड्डा भी है। मुहल्ला चाहचन्दमें जैन धर्मशाला है।

तीर्थक्षेत्र

आद्य तीर्थंकर भगवान् ऋषभदेवने जिन ५२ देशोंकी रचना की थी, उनमें कोशल देश भी था। उसके अन्तर्गत ही पुरिमताल नामक एक नगर था। भगवान्ने दीक्षा लेनेसे पूर्व अपने सौ पुत्रोंको विभिन्न नगरोंके राज्य दिये थे। उनमें वृषभसेन नामक पुत्रको पुरिमतालनगरका राज्य दिया। जब भगवान्ने नीलांजना अप्सराकी नृत्य करते हुए मृत्यु देखी तो उनके मनमें संसार, शरीर और भोगोंके प्रति निर्वेद हो गया। लौकान्तिक देवोंने इस पुण्य अवसरपर आकर भगवान्के वैराग्यकी सराहना की, अनुमोदन किया और प्रेरणाप्रद निवेदन किया। भगवान् राजपाट त्यागकर दीक्षा लेने अयोध्यासे देवनिर्मित पालकी 'सुदर्शन'में चल दिये। पालकीको सर्वप्रथम भूमि गोचरियोंने उठाया और सात कदम चले। पश्चात् विद्याधरोंने पालकीको उठाया। तदनन्तर देवोंने पालकीको उठा लिया और आकाश मार्गसे चले।

आकाशमें देव और इन्द्र हर्ष-विभोर चल रहे थे और भूमिपर भगवान्की स्त्रियाँ—नन्दा और सुनन्दा, अन्य परिवारी जन और जनता शोकाकुल चल रही थी। साथमें भगवान्के माता-पिता मरुदेवी और नाभिराय भगवान्का दीक्षाकल्याणक देखने चल रहे थे।

भगवान् सिद्धार्थ वनमें पहुँचकर पालकीसे उतर पड़े और फिर उन्होंने सभी प्रकारके परिग्रहका त्याग करके एक वटवृक्षके नीचे पूर्वाभिमुख होकर अपने हाथों द्वारा केश लुंचन किया। इस प्रकार भगवान्ने चैत्र कृष्णा नवमीके दिन सायंकालको उत्तराषाढ़ नक्षत्रमें दीक्षा ले ली और छह माहका योग लेकर उस वटवृक्षके नीचे एक शिला-पट्टपर आसीन हो गये। दीक्षा लेते ही भगवान्को मनःपर्ययज्ञान उत्पन्न हो गया। चार हजार राजा भगवान्के साथ दीक्षित हो गये। उनमें सम्राट् भरतका पुत्र मरीचि भी था। देवों और इन्द्रोंने भगवान्का दीक्षाकल्याणक मनाया।

इसी समयसे उस स्थानका नाम प्रयाग पड़ गया। आचार्य जिनसेनने इस सम्बन्धमें हरिवंश-पुराणमें बड़े स्पष्ट शब्दोंमें उल्लेख किया है। वे लिखते हैं :

एवमुक्त्वा प्रजा यत्र प्रजापतिमपूजयत् ।
प्रदेशः स प्रजागाख्यो यतः पूजार्थयोगतः ।।९।९६।।

अर्थात् 'तुम लोगोंकी रक्षाके लिए मैंने चतुर भरतको नियुक्त किया है। तुम उसकी सेवा करो' भगवान्‌के ऐसा कहने पर प्रजाने उनकी पूजा की। प्रजाने जिस स्थानपर भगवान्‌की पूजा की, वह स्थान पूजाके कारण 'प्रयाग' इस नामको प्राप्त हुआ।

इसी प्रकार आचार्य रविषेणने 'पद्मपुराण' में कहा है—

प्रजाग इति देशोऽसौ प्रजाभ्योऽस्मिन् गतो यतः ।
प्रकृष्टो वा कृतस्त्यागः प्रयागस्तेन कीर्तितः ।।१३।२८।।

अर्थात् भगवान् वृषभदेव प्रजासे दूर हो उस स्थानपर पहुँचे थे, इसलिए उस स्थानका नाम 'प्रजाग' प्रसिद्ध हो गया। अथवा भगवान्‌ने उस स्थानपर बहुत भारी त्याग किया था। इसलिए उसका नाम 'प्रयाग' भी प्रसिद्ध हुआ।

इन उल्लेखोंसे स्पष्ट है कि भगवान् ऋषभदेवके कारण ही इस स्थानका नाम 'प्रयाग' पड़ा और फिर पुरिमताल नगर भी प्रयाग कहलाने लगा। क्योंकि साहित्यमें ऋषभदेवके पश्चात् पुरिमताल नामक किसी नगरका नाम देखनेमें नहीं आया। भगवान् प्रजापति कहलाते थे, प्रजा उन्हें हृदयसे प्रेम करती थी, उनपर श्रद्धा रखती थी। इसलिए भगवान्‌के सर्वस्व त्याग जैसी अपूर्व घटनाके कारण 'प्रयाग' नाम पड़ा, जो आगे चलकर स्थायी हो गया।

दीक्षा लेनेके पश्चात् भगवान् यहाँपर केवल छह माह तक ही रहे। इसके पश्चात् वे विभिन्न देशोंमें विहार करते रहे। ठीक एक हजार वर्ष पश्चात् वे पुरिमताल नगर पधारे। भगवज्जिनसेनाचार्यके शब्दोंमें मौनी, ध्यानी और मानसे रहित वे अतिशय बुद्धिमान् भगवान् धीरे-धीरे अनेक देशोंमें विहार करते हुए किसी दिन पुरिमताल नामक नगरके समीप जा पहुँचे। वहाँ शकट नामक वनमें वटवृक्षके नीचे एक शिलापर पर्यंकासनसे विराजमान हो गये। उन्होंने ध्यानाग्नि द्वारा घातिया कर्मोंका नाश कर दिया और फाल्गुन कृष्णा एकादशीको उत्तराषाढ़ नक्षत्र में भगवान्‌को निर्मल केवलज्ञान उत्पन्न हो गया। सम्पूर्ण देवों और इन्द्रोंने वहाँ आकर केवलज्ञानकी पूजा की और केवलज्ञान कल्याणकका महोत्सव बनाया। इन्द्रकी आज्ञासे देवोंने उसी स्थानपर समवसरणकी रचना की। उस समय उस नगरका नरेश, ऋषभदेवका तृतीय पुत्र वृषभसेन अनेक राजाओंके साथ भगवान्‌के पास पहुँचा और दीक्षा लेकर भगवान्‌का प्रथम गणधर बना। तब इस युगमें प्रथम तीर्थंकरका प्रथम उपदेश यहींपर हुआ। भगवान् ऋषभदेवने धर्मचक्र प्रवर्तन प्रयागमें ही किया।

भगवान्‌की दीक्षाके कारण इस नगरका नाम बदलकर प्रयाग हो गया और जिस वटवृक्षके नीचे उन्हें अक्षय ज्ञान-लक्ष्मी प्राप्त हुई, वह वटवृक्ष 'अक्षयवट' कहलाने लगा। नन्दिसंघकी गुर्वावलीमें अक्षयवटका उल्लेख इस प्रकार मिलता है—'श्री सम्मेदगिरि-चम्पापुरी-ऊर्जयन्तगिरि-अक्षयवट-आदीश्वर दीक्षा सर्व सिद्धक्षेत्र कृत यात्राणां।' इसमें अक्षयवटको तीर्थ स्थान माना है।

काष्ठा संघ नन्दीतट गच्छके भट्टारक श्रीभूषणके शिष्य नयनसागरने, जो १६वीं, १७वीं शताब्दीके विद्वान् हैं, अपनी 'सर्वतीर्थवन्दना' नामक रचनामें प्रयागके सम्बन्धमें भी लिखा है, जो इस प्रकार है—

'गंगा-यमुना मध्य नयर प्रयाग प्रसिद्धह ।
जिनवर वृषभ दयाल धृत संयम मन सुद्धह ।

बट प्रयाग तल जैन योग धर्मो सद्भासह।
प्रगट्यौ तीर्थ प्रसिद्ध पूरत भविमण आसह।
प्रयागबट दीठें थके पाप सकल जन परिहरे।
बृहत् ज्ञानसागर वदति प्रयाग तीर्थ बहु सुख करे

इसमें कविने बताया है कि ऋषभदेव भगवान्‌ने प्रयाग वटवृक्षके नीचे ध्यान लगाया था। इससे वह तीर्थके रूपमें प्रसिद्ध हो गया। वहाँ जानेपर लोगोंकी मनोकामनाएँ पूरी होती थीं; ऐसा उस स्थानका अतिशय था।

'प्राचीन तीर्थमाला संग्रह' भाग १, पृ० १०-११ के अनुसार प्राचीन समयमें यहाँ ऋषभदेवके चरण विराजमान थे किन्तु सोलहवीं सदीमें राय कल्याण नामक सूबेदारने चरण हटाकर शिवलिंग स्थापित करा दिया।

'विविध तीर्थ कल्प' में लिखा है कि आचार्य अन्निकापुत्रको लोगोंने नावसे उठाकर गंगामें फेंक दिया। आचार्यको इसका कोई खेद नहीं था। किन्तु जल कायके जीवोंकी जो विराधना हो रही थी, इससे वे आत्मालोचनमें लगे। तभी श्रेणी-आरोहण करके उन्हें केवलज्ञान हो गया और अन्तकृत्केवली होकर मुक्ति-लाभ किया। देवताओंने निर्वाण महिमा (पूजा) की। आगे लिखा है—

'अतएव तीर्थं प्रयाग इति जगति पप्रथे। प्रकृष्टो यागः पूजा अत्रेति प्रयाग इत्यन्वर्थः। शूलाप्रोतत्वगतानुगतिकतया चाद्यापि परसमयिनः क्रकचं स्वांगे दापयन्ति तत्र। वटश्च तत्र गणशस्तुरुष्कैश्छिन्नोऽपि मुहुर्मुहुः प्ररोहति।

—विविध तीर्थकल्प पृ० ६८

इसके अनुसार मुसलमान बादशाहोंने यह वटवृक्ष काट दिया था किन्तु वह बार बार उग आता है।

यह स्थान प्राकृतिक सुषमासे समृद्ध है। गंगा-यमुना और सरस्वतीका यह संगम स्थल है। इन तीन नदियोंकी श्वेत, नील और रक्त धाराएँ मिलकर एक दूसरेमें समाहित हो गयी हैं। यह अक्षय वट इस त्रिवेणी संगमके तटपर खड़े हुए किलेके भीतर है। इसमें तो सन्देह नहीं है कि वह मूल अक्षयवट समाप्त हो गया, किन्तु उसकी वंश-परम्पराके द्वारा अब तक एक अक्षयवट विद्यमान है। पहले पातालपुरी गुफामें कुछ पण्डे लोग एक सूखी लकड़ीको कपड़ेमें लपेटकर और उसे अक्षय वट कहकर भक्त जनताको उसका दर्शन कराते थे, अब भी कराते है। किन्तु अब, कहते हैं, अक्षय वटका पता चल गया है और अब सप्ताहमें दो दिन उसके दर्शन कराये जाते हैं। यमुना किनारेके फाटकसे यहाँ आ सकते हैं। आजकल यह उस क्षेत्रमें है जो सेनाके अधिकारमें है। अतः इसके दर्शनके लिए क्षेत्रीय सैनिक अधिकारीसे आज्ञा लेनी पड़ती है।

इस स्थानकी यात्रा करनेसे भगवान् ऋषभदेवकी स्मृति मनमें जाग उठती है और मन अनिर्वचनीय भक्ति-भावसे प्लावित हो उठता है।

पुरातत्त्व

यहाँ किलेमें एक प्राचीन स्तम्भ है। भगवान् ऋषभदेवकी कल्याणक भूमि होनेके कारण मौर्य सम्राट् सम्प्रतिने इसका निर्माण कराया था। उस स्तम्भको भूलसे अशोक स्तम्भ कहने लगे हैं। इसके ऊपर प्रियदर्शी (सम्प्रतिकी उपाधि), उसकी रानी, सम्राट् समुद्रगुप्त, बीरबल और जहाँगीरके लेख भी खुदे हुए हैं।

पार्श्वनाथ मन्दिर

यहाँ चाहचन्द मुहल्ला सरावगियानमें एक उन्नत शिखरसे सुशोभित पार्श्वनाथ पंचायती मन्दिर है। ऐसा कहा जाता है कि इस मन्दिरका निर्माण नौवीं शताब्दीमें हुआ था। इस प्रकार यह मन्दिर ११०० वर्ष प्राचीन है। यद्यपि समय-समयपर मन्दिरका जीर्णोद्धार होता रहा है, अतः प्राचीनताके चिह्न पाना कठिन है। फिर भी परम्परागत अनुश्रुति इसी प्रकार की है।

लगभग १५०-२०० वर्ष पूर्व किलेकी खुदाईमें कुछ जैन तीर्थंकरों और यक्ष-यक्षिणियोंकी मूर्तियाँ निकली थीं। जैन समाजने सरकारसे ये मूर्तियाँ लेकर उस मन्दिर तथा पंचायती दिगम्बर जैन मन्दिरमें विराजमान कर दी हैं। ये मूर्तियाँ न केवल पुरातत्त्वकी दृष्टिसे ही, अपितु कलाकी दृष्टिसे भी बड़ी मूल्यवान् हैं।

तीर्थंकर प्रतिमाएँ चतुर्थ कालकी कही जाती हैं। इनमें मध्यमें विराजमान मूलनायक प्रतिमा भगवान् पार्श्वनाथकी है। इसकी अवगाहना साढ़े चार फुटकी है। वर्ण सिलेटी है। इसका पाषाण रवादार है। दोनों ओर यक्ष-यक्षिणी हैं। ऊपर फण है। फणके अगल-बगलमें पुष्पमाल-धारिणी विद्याधरियाँ तथा ऊपर दो ऐरावत हाथी हैं। हाथियों पर दो-दो देव हाथ जोड़े हुए बैठे हैं। किंवदन्ती है कि यह प्रतिमा किलेमें खुदाई करते समय निकली थी। हिन्दुओंने इसे अपने भगवान्की मूर्ति कहकर ले जाना चाहा। किन्तु जब जैनोंको इसका पता चला तो हिन्दू लोग इसे लेने नहीं आये। अधिकारीने भी यह शर्त लगा दी कि यदि यह जैनोंकी प्रतिमा है तो इसे एक ही व्यक्ति उठाकर ले जाये। तब एक धार्मिक सज्जन रात भर सामायिक करते रहे और सुबह भगवान्की पूजा करनेके बाद मूर्ति लेने पहुँचे। शुद्ध भावसे भगवान्का स्मरण करके जब उन्होंने इसे उठाया तो यह आसानीसे उठ गयी। किलेके बाहरसे वे उसे गाड़ीमें रखकर ले आये और इस मन्दिरमें लाकर विराजमान कर दिया। प्रतिमा काफी विशाल और वजनदार है और साधारणतः एक आदमी इसे किसी प्रकार उठा नहीं सकता।

बायीं ओरसे एक शिलाफलकपर भगवान् आदिनाथकी खड्गासन प्रतिमा है जिसकी अवगाहना १ फुट ९ इंच है। यक्ष-यक्षिणी अंजलिबद्ध मुद्रामें स्थित हैं। मूर्तिके दोनों ओर चमरवाहक हैं। कन्धेपर जटाएँ लहरा रही हैं। दोनों ओर दो-दो तीर्थंकर मूर्तियाँ पद्मासनमें विराजमान हैं। छत्रके दोनों ओर पुष्पमालाधारिणी दो देवियाँ हैं।

दूसरी प्रतिमा—एक शिलापट्टपर पंचबालयतिकी खड्गासन प्रतिमा अंकित है। यक्ष-यक्षिणी, चमरवाहक और भक्तजन खड़े हैं। ऊपरकी ओर मालाधारिणी दो देवियोंका अंकन है।

भगवान् पार्श्वनाथकी एक फणावलिमण्डित प्रतिमा है। परिकरमें यक्ष-यक्षिणी दोनों ओर विनयमुद्रामें खड़े हैं। चमरवाहक हाथोंमें चमर लिये हुए हैं। ऊपर दो देव और दो देवियाँ पुष्पमाल लिये हैं। इनसे ऊपर दोनों ओर गजराज हैं; जिनपर सौधर्म और ऐशान इन्द्र करबद्ध मुद्रामें आसीन हैं। छत्रसे ऊपरकी ओर एक देव दुन्दुभि बजाते हुए दिखाई पड़ता है।

इससे आगे भगवान् आदिनाथकी खड्गासन प्रतिमा है। चमरवाहक हाथोंमें चमर लिये खड़े हैं। यक्ष-यक्षिणी हैं जो खण्डित हैं। ऊपरकी ओर दो देवियाँ पुष्पमालाएँ लिये हैं।

बायीं ओरकी वेदीमें श्वेत पाषाणकी अम्बिकादेवीकी मूर्ति है। अवगाहना १ फुट ३ इंच है। दो बालक अंकित हैं। एक गोदमें है, दूसरा बगलमें खड़ा है। देवीके शीर्षपर भगवान् नेमिनाथ विराजमान हैं। भगवान्के चारों ओर भव्य अलंकरण है। इस प्रतिमाके पीठासन पर

वि. संवत् १४३३ भाद्रपद सुदी १० का लेख है।

धातुकी एक चतुर्भुजी पद्मावतीकी मूर्ति है। अवगाहना ६ इंच है। सिर पर सर्पफण है। वि. संवत् १९०२का मूर्ति-लेख अंकित है।

सिंहासनपर ललितासनमें बैठी हुई द्विभुजी पद्मावतीकी एक धातु-प्रतिमा है। एक हाथमें अंकुश और दूसरे हाथमें कमल-पुष्प धारण किये हुए है। पादपीठपर संवत् १८०९ का एक अभिलेख है।

इसके आगे हंसवाहिनी देवीकी धातु-मूर्ति है। चार भुजाएँ हैं जो क्रमशः सर्प, कमल, अंकुश और धनुष धारण किये हुए हैं। सिरपर सर्प फण है। मूर्ति-लेख है किन्तु पढ़ा नहीं जा सका। सम्भवतः यह पद्मावतीकी मूर्ति है।

एक चतुर्भुजी देवीकी धातु-मूर्ति संवत् १५३७ की है। यह ललितासनमें है। सिरपर तीर्थंकर-मूर्ति है। एक हाथ खण्डित है।

इसी वेदीपर वि. संवत् १५४१ की एक धातु-मूर्ति है। मूर्तिके चार भुजाएँ हैं। आकार ५ इंच है। बगलमें हंस है।

पंचायती मन्दिर

मुहल्ला चाहचन्दमें पार्श्वनाथ मन्दिरसे लगा हुआ और जैनधर्मशालाके फाटकके अन्दर शिखरबद्ध पंचायती दिगम्बर जैन बड़ा मन्दिर है। यहाँ दायीं ओरकी वेदीमें प्राचीन प्रतिमाएँ विराजमान हैं जो पुरातत्त्व और कलाकी दृष्टिसे महत्त्वपूर्ण हैं।

बायीं ओरसे एक शिलाफलकमें भगवान् आदिनाथकी खड्गासन प्रतिमा है। सिरपर जटाएँ हैं जो पीठकी ओर गयी हैं। नीचे दायें-बायें यक्ष-यक्षिणी हैं। दोनों ओर बीचमें चमरवाहक खड़े हैं। सिरपर त्रिभंग छत्र है। इसके परिकरमें चौबीस तीर्थंकर-प्रतिमाएँ दोनों ओर और ऊपर बनी हुई हैं जिसमें २० पद्मासन हैं और ४ खड्गासन हैं। छत्रके दोनों ओर गज बने हुए हैं। दो आकाशचारी देव हाथोंमें पुष्पमाल लिये हैं। छत्रके ऊपर एक देव दुन्दुभि बजा रहा है।

कृष्ण पाषाणकी भगवान् पद्मप्रभुकी एक खड्गासन-प्रतिमा है। अवगाहना २ फुट ६ इंच है। सिंहासन-पीठपर मध्यमें पुष्पका चिह्न अंकित है। चरणोंके दोनों ओर यक्ष-यक्षिणी हैं। मध्यमें एक ओर दो चमरवाहक तथा दायीं ओर एक चमरवाहिनी देवी है। उसके ऊपर एक देव बना हुआ है। एक हस्ती सूंड उठाये हुए है। सिरके ऊपर इधर-उधर दो देवियाँ हाथमें पुष्पमालाएँ लिये अंकित हैं। दो गज शुण्डोंमें कलश लिये भगवान्‌का अभिषेक कर रहे हैं।

जटाधारी भगवान् आदिनाथकी प्रतिमा है। जटाएँ पीठकी ओर हैं। सिरपर छत्र है। चरणोंके दायें-बायें दो चमरवाहक हैं। दो गज बने हुए हैं, जिनपर एक-एक देव बैठा है। आकाशचारिणी देवियाँ हाथोंमें पारिजातकी पुष्पमालाएँ लिये हुए हैं।

नम्बर ४वाली मूर्ति नम्बर १ जैसी है। नम्बर १ की मूर्तिमें बैलका मुख दायीं ओर है, जबकि नम्बर ४वाली मूर्तिमें बैलका मुख बायीं ओर है।

आगेकी पंक्तिमें भगवान् पार्श्वनाथकी कृष्ण वर्ण प्रतिमा है। अवगाहना १३ इंच है।

कृष्ण पाषाणकी ११ इंच अवगाहना की एक अन्य मूर्ति है जिसमें लांछन नहीं है। दायीं ओर पार्श्वनाथकी दो प्रतिमाएँ हैं। कृष्णवर्ण हैं। अवगाहना १३ इंच है।

ये सभी मूर्तियाँ, लगता है, छठीसे दसवीं शताब्दी तक की हैं। इलाहाबादमें चाहचन्द मुहल्लेमें ३ मन्दिर और २ चैत्यालय हैं। इनके अतिरिक्त ५ मन्दिर और चैत्यालय अन्य मुहल्लों-

में हैं। चाहचन्द मुहल्लेमें जैन धर्मशाला है। धर्मशालाके पीछे जैन विद्यालय है। इसमें छोटे बच्चे पढ़ते हैं।

प्रयाग म्युजियममें जैन पुरातत्त्व

यह म्युजियम इलाहाबाद म्युनिस्पल कार्पोरेशनके अन्तर्गत चल रहा है। इसमें जैन पुरातन कलाकृतियोंका सुन्दर संग्रह है। ये कलाकृतियाँ कौशाम्बी, पभौसा, गया, जसो आदि विभिन्न स्थानोंसे प्राप्त हुई हैं। प्राचीनता और कला दोनों ही दृष्टियोंसे इनका विशेष महत्त्व है। म्युजियमके कम्पाउण्डमें बहुत सी मूर्तियाँ खण्डित और अखण्डित दोनों प्रकारकी रखी हुई हैं। उनपर प्राप्ति-स्थान, काल आदि कुछ भी नहीं लिखा है। लांछन भी नहीं हैं और न मूर्ति-लेख ही हैं। इसलिए यहाँ उन्हीं जैन कलाकृतियोंका संक्षिप्त परिचय दिया जा रहा है जो म्युजियमके कक्षमें विद्यमान हैं।

चन्द्रप्रभु—दो सिंहोंके ऊपर बने हुए आसनपर पद्मासनमें विराजमान हैं। वर्ण भूरा बलुआ पाषाण, अवगाहना ३ फुट ९ इंच है। दोनों ओर चमरवाहक हैं। सिरके ऊपर पाषाण छत्र है। ऊपरकी ओर पुष्पवर्षा करते हुए दो आकाशचारी देव अंकित हैं। यह प्रतिमा कौशाम्बीसे प्राप्त हुई है। पुरातत्त्ववेत्ताओंने इसका निर्माणकाल ईसाकी छठवीं शताब्दी निश्चित किया है।

सर्वतोभद्रिका–एक सर्वतोभद्रिका प्रतिमा, जिसमें चारों दिशाओंमें चार खड्गासन तीर्थंकर प्रतिमाएँ हैं, कौशाम्बीसे प्राप्त हुई थी। यह घुटनोंसे खण्डित है। इसका निर्माण काल १०वीं शताब्दी है।

आदिनाथ–एक शिलाफलकपर कृष्ण पाषाणकी भगवान् आदिनाथकी एक खड्गासन प्रतिमा गयासे प्राप्त हुई थी। सिरपर बालोंका जटाजूट है। चरणोंके दोनों ओर चमरवाहक हैं। इस प्रतिमाके दोनों ओर चौबीस तीर्थंकरोंकी खड्गासन मूर्तियाँ बनी हैं। इसका भी अनुमानित काल १०वीं शताब्दी बताया है।

आदिनाथ–हलके लालवर्णकी पाषाण शिला पर अंकित भगवान् आदिनाथकी एक अन्य खड्गासन प्रतिमा है। इसके हाथ और पाँव खण्डित हैं। कन्धे और पीठपर जटाएँ हैं। नीचेके भागमें यक्ष-यक्षिणी हैं। इधर-उधर दो चँवरवाहक खड़े हैं तथा दोनों ओर दो-दो पद्मासन तीर्थंकर प्रतिमाएँ उत्कीर्ण हैं। छत्रके ऊपर दोनों ओर २ देवियाँ और २ देवता पुष्प लिये दिखाई देते हैं। यह प्रतिमा जसोसे प्राप्त हुई थी। इसका काल १२वीं शताब्दी अनुमानित है।

जसोसे प्राप्त आदिनाथकी एक और प्रतिमा है। इसका पाषाण लाल है। पद्मासन है। इसके भी हाथ और पैर खण्डित हैं। बायीं ओर यक्ष-यक्षिणी बैठे हैं। उनके ऊपर तीन पंक्तियोंमें दो खड्गासन, दो पद्मासन और तीन खड्गासन प्रतिमाएँ है। किन्तु सभीके सिर खण्डित हैं। इसी प्रकार दायीं ओर नीचे एक पद्मासन और दो खड्गासन प्रतिमाएँ हैं। तीनों ही खण्डित हैं। ऊपर भी प्रतिमाएँ बनी हुई थीं, किन्तु वे तो बिलकुल मिट चुकी हैं। सम्भवतः इस फलकपर चौबीसी बनी हुई थी। इसका अनुमानित काल १२वीं शताब्दी है।

यक्ष-दम्पति, यक्ष गोमेद और यक्षी अम्बिका सिंहासनपर ललितासनमें आसीन हैं। दोनोंकी गोदमें एक-एक बालक है। अम्बिकाके हाथमें आम्र-फल है। बालकोंके सिर खण्डित हैं। आसनके अधोभागमें सात भक्त श्रावक बैठे हुए हैं। ऊपर भगवान् नेमिनाथकी लघु प्रतिमा है। यह मूर्ति जसोसे प्राप्त हुई थी। यह १२वीं शताब्दीकी है।

शान्तिनाथ–यह पभोसासे प्राप्त हुई थी और १२वीं शताब्दीकी है। यह भूरे बलुए पाषाण-की है। पद्मासनमें स्थित है और अवगाहना दो फुट तीन इंच है। इसके दोनों ओर एक-एक

खड्गासन प्रतिमा है। उनके ऊपर भी कोष्ठकमें पद्मासन प्रतिमाएँ उत्कीर्ण हैं। भामण्डलका अंकन अत्यन्त कलापूर्ण है। अधोभागमें दोनों ओर दो-दो यक्ष-यक्षिणी हैं। शीर्ष भागमें दोनों ओर पुष्पमाल लिये आकाशचारी देव हैं। छत्रके ऊपर कई मूर्तियाँ हैं जो खण्डित हैं।

अम्बिका–६ फुट ऊँचे और ३ फुट चौड़े एक शिलाफलकपर अम्बिकाकी चतुर्भुजी मूर्ति है। किन्तु इसकी चारों भुजाएँ खण्डित हैं। देवी रत्नाभरणोंसे अलंकृत है। सिरपर स्वर्ण किरीट, गलेमें अक्षमाला, रत्नहार, कटिपर मेखला है। कानोंमें कुण्डल और भुजाओंमें केयूर हैं। सिरके पीछे अलंकृत प्रभामण्डल है। इस मूर्तिका अलंकरण कलापूर्ण है। इसकी एक विशेषता और है। इस फलकमें चौबीस यक्ष-यक्षणियाँ बनी हुई हैं और उनके नाम भी दिये हैं। इसके अतिरिक्त इधर-उधर ८ खड्गासन प्रतिमाएँ बनी हुई हैं। ५ प्रतिमाएँ उपरिभागमें भी अंकित हैं, जिनमें २ खड्गासन और ३ पद्मासन हैं।

सामान्यत: तीर्थंकर प्रतिमाओंके केश कुन्तल घुँघराले और छोटे होते हैं। उनके जटा एवं जटाजूट नहीं होते। किन्तु भगवान् ऋषभदेवकी कुछ प्रतिमाओंमें इस प्रकारके जटाजूट अथवा जटा देखनेमें आती है। यद्यपि तीर्थंकरोंके बाल नहीं बढ़ते, किन्तु ऋषभदेवके तपस्यारत रूपका वर्णन करते हुए कुछ आचार्योंने उन्हें जटायुक्त बताया है। आचार्य जिनसेन कृत हरिवंश पुराणमें इस प्रकार उल्लेख है—

सप्रलम्बजटाभारभ्राजिष्णुर्जिष्णुराबभौ।
रूढप्रारोहशाखाग्रो यथा न्यग्रोधपादप: ॥९।२०४॥

अर्थात् लम्बी-लम्बी जटाओंके भारसे सुशोभित आदि जिनेन्द्र उस समय ऐसे वट-वृक्षके समान सुशोभित हो रहे थे, जिसकी शाखाओंसे पाये लटक रहे हों।

इसी प्रकार आचार्य रविषेण पद्मपुराणमें वर्णन करते हैं—

वातोद्धृता जटास्तस्य रेजुराकुलमूर्तय:।
धूमाल्य इव सद्ध्यान-वह्निसक्तस्य कर्मण: ॥ ३।२८८॥

अर्थात् हवासे उड़ती हुई उनकी जटाएँ ऐसी जान पड़ती थीं, मानो समीचीन ध्यानरूपी अग्निसे जलते हुए कर्मके धूमकी पंक्ति हो।

इस प्रकार हम देखते हैं कि ऋषभदेवकी प्रतिमाओंका जटाजूट संयुक्त रूप परम्परानुकूल रहा है। इन प्रतिमाओंकी रचना-शैली, तक्षण कौशल, भावाभिव्यक्ति और अलंकरणादिका सूक्ष्म अध्ययन करने पर लगता है कि ये सभी प्रतिमाएँ एक ही कालकी हैं और उस कालकी हैं, जब मूर्तिकलाका पर्याप्त विकास हो चुका था।

किलेमें भूगर्भसे इतनी प्राचीन प्रतिमाओंके मिलनेसे अवश्य ही निम्नलिखित निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं।

१—अत्यन्त प्राचीनकालमें इस स्थानपर जैन मन्दिर था। यह मन्दिर भगवान्के दीक्षा और केवलज्ञान कल्याणकोंके स्थानपर उनकी स्मृतिमें बना था। जैन जनतामें 'तीर्थक्षेत्रके रूपमें' यह मान्य रहा और जैन लोग तीर्थयात्राके लिए यहाँ आते रहे। किन्तु बादमें किस कालमें इस मन्दिरका विनाश हो गया या किया गया, यह कहना कठिन है।

२—प्राचीनकालमें शासन देवताओंकी मूर्ति बनानेका भी रिवाज था।

३—मूर्तियोंके पीठ-मूलमें लेख अंकित करनेकी प्रथा गुप्तकालमें निश्चित रूपसे प्रचलित हो गयी थी। साधारण अपवादोंको छोड़कर मूर्तियोंपर लेख अंकित किये जाने लगे थे। गुप्तकाल

मूर्ति-कलाके विकासकी दृष्टिसे स्वर्णयुग कहा जाता है। इस कालकी मूर्तियाँ पर्याप्त विकसित अवस्थामें पायी जाती हैं। अंग-सौष्ठव, केश-विन्यास और शरीरके उभारोंमें रेखाओंका सूक्ष्म अंकन कुषाण कालीन प्रतिमाओंमें मिलता है।

उपर्युक्त विवरणसे हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि जहाँ जैनोंने स्तम्भ निर्मित कराया और जहाँ प्राचीन जैन मन्दिर था, वहीं प्राचीन वट-वृक्ष था, वहीं भगवान्‌के दोनों कल्याणक मनाये गये और त्रिवेणी संगमका निकटवर्ती प्रदेश, जहाँ किला पड़ा हुआ है, जैन तीर्थ था।

राजनीतिक इतिवृत्त

प्रयाग प्राचीन कालमें काफी समय तक कोशल राज्यके अन्तर्गत रहा। पश्चात् यह पाटलि-पुत्र साम्राज्यका एक अंग बन गया। सम्भवतः राजनीतिक इकाईके रूपमें प्रयागका स्वतन्त्र अस्तित्व कभी नहीं रहा, किन्तु शासनकी सुविधाके दृष्टिकोणसे इसका महत्त्व अवश्य रहा है। शाहंशाह अकबरने अपने राज्यको बारह सूबोंमें विभाजित किया था, जिनमें प्रयाग भी एक सूबा था। शासनकी दृष्टिसे उसने संगमपर एक मजबूत किला भी बनवाया। वह यहाँ बहुत समय तक रहा भी और उसीने प्रयागका नाम बदलकर इलाहाबाद कर दिया।

हिन्दू तीर्थ

हिन्दू भी प्रयागको अपना तीर्थ मानते हैं। त्रिवेणी संगममें स्नान करनेको वे बड़ा पुण्यप्रद मानते हैं। हर छह वर्ष पीछे अर्ध कुम्भ और बारह वर्ष पीछे कुम्भ होता है। उस समय लाखों यात्री यहाँ स्नान करने आते हैं।

कौशाम्बी

स्थिति

इलाहाबादसे दक्षिण-पश्चिममें यमुनाके उत्तरी तटपर ६० कि.मी. दूर कौसम नामक एक छोटा-सा ग्राम है। वहाँ जानेके लिए इलाहाबादसे मोटर मिलती है। इलाहाबादसे सराय अकिल तक ४२ कि.मी. तक पक्की सड़क है। वहाँसे कौशाम्बीका रेस्ट हाउस कच्चे मार्गसे १८ कि. मी. है। यहाँ तक बस जाती है। रेस्ट हाउससे ४ कि. मी. कच्चा मार्ग है। इलाहाबादसे ३७ कि. मी. दूर मेन लाइनपर भरवारी स्टेशन है। यहाँसे यह क्षेत्र दक्षिणकी ओर ३२ कि.मी. है। यहाँसे मोटर, इक्का द्वारा जा सकते हैं। आजकल प्राचीन वैभवशाली कौशाम्बीके स्थान पर गढ़वा कोशल इनाम और कोसम खिराज नामक छोटे-छोटे गाँव हैं। जो जमुनाके तट पर अवस्थित हैं। क्षेत्रसे गढ़वा इनाम गाँव १ कि. मी. है। वहाँसे १० कि. मी. जलमार्ग द्वारा पभोसा गिरि है, जहाँपर भगवान् पद्मप्रभुकी भव्य मूर्ति है। कौशाम्बीकी स्थापना चन्द्रवंशी राजा कुशाम्बुने की थी। इसका पोस्ट ऑफ़िस कौशाम्बी है। यहाँ एक प्राचीन किला भी था। कहते हैं, इसे पाण्डवोंने बनवाया था। यह आजकल खण्डहर पड़ा हुआ है। इस किलेके कारण इस स्थानका नाम भी कौशाम्बी गढ़ हो गया है।

तीर्थक्षेत्र

इस नगरीकी प्रसिद्धि छठवें तीर्थंकर भगवान् पद्मप्रभु के कारण हुई है। भगवान् पद्मप्रभुके गर्भ, जन्म, तप और ज्ञानकल्याणक यहीं पर हुए थे। इन कल्याणकोंको मनानेके लिए इन्द्र और

देव, राजा और प्रजा सबका यहाँ आगमन हुआ था और यह नगरी तब विश्वके आकर्षणका केन्द्र बन गयी थी। तबसे यह नगरी लोकविश्रुत तीर्थके रूपमें प्रसिद्ध हो गयी। प्रसिद्ध जैन शास्त्र 'तिलोयपण्णत्ति' में भगवान् पद्मप्रभुकी कल्याणक भूमिके रूपमें कौशाम्बीका उल्लेख इस प्रकार आया है—

अस्सजुद किण्ह तेरसिदिणम्मि पउमप्पहो अचित्तासु।
धरणेण सुसीमाए कोसंबिपुरवरे जादो ॥ ४।५३१॥

अर्थात् तीर्थंकर पद्मप्रभु ने कोशाम्बी पुरीमें पिता धरण और माता सुसीमासे आसौज कृष्णा त्रयोदशीके दिन चित्रा नक्षत्रमें जन्म लिया।

इसका समर्थन आ. रविषेणकृत 'पद्मपुराण' ९८।१४५, आ. जटासिंहनन्दीकृत 'वराङ्ग-चरित' २७।८२, तथा आ. गुणभद्रकृत 'उत्तर पुराण' ५२।१८ में भी किया गया है।

उस समय कौशाम्बी अत्यन्त समृद्ध महानगरी थी। आज तो वह खण्डहरोंके रूपमें पड़ी हुई है। कहते हैं, वर्तमान पाली, सिंहबल, कोसम, पभोसा ये सब गाँव पहले कौशाम्बीके अन्तर्गत थे। वास्तवमें कौशाम्बीमें भगवान्के गर्भ और जन्म कल्याणक हुए थे और पभोसामें जो कौशाम्बी का उद्यान था, दीक्षा और केवलज्ञान कल्याणक हुए थे। अतः ये दोनों ही स्थान तीर्थक्षेत्र हैं। आजकल इस वनका नाम अरथवन है।

भगवान्के दीक्षा-कल्याणकका विवरण 'तिलोयपण्णत्ति' में इस प्रकार मिलता है—

चैत्तासु किण्ह तेरसि अवरण्हे कत्तियस्स णिक्कंतो।
पउमप्पहो जिणिंदो तदिए खवणो मणोहरुज्जाणे ॥४।६४९॥

अर्थात् पद्मप्रभु जिनेन्द्र कार्तिक कृष्णा त्रयोदशीके अपराह्ण समयमें चित्रा नक्षत्रमें मनोहर उद्यानमें तृतीय भक्तके साथ दीक्षित हुए।

आपने दीक्षा लेकर दो दिनका उपवास किया। दो दिनके पश्चात् आप वर्धमान नगरमें पारणाके निमित्त पधारे। राजा सोमदत्तने भगवान्को आहार-दान देकर असीम पुण्यका बन्ध किया। देवताओंने पंचाश्चर्य किये। भगवान् घोर तप करने लगे। दीक्षाके छह माह पश्चात् भगवान् विहार करते हुए पुनः दीक्षा वनमें पधारे। वहाँ आप ध्यान लगाकर बैठ गये और उसी मनोहर उद्यानमें उन्हें केवलज्ञान प्रकट हो गया। आचार्य यतिवृषभ 'तिलोयपण्णत्ति' ग्रन्थमें भगवान्के ज्ञानकल्याणकका विवरण प्रस्तुत करते हुए कहते हैं—

वइसाह सुक्कदसमी, चेत्तारिक्खे मणोहरुज्जाणे।
अवरण्हे उप्पण्णं पउमप्पह जिणवरिंदस्स ॥४।६८३।

अर्थात् पद्मप्रभ जिनेश्वरको वैशाख शुक्ला दशमीके अपराह्ण कालमें चित्रा नक्षत्रके रहते मनोहर उद्यानमें केवलज्ञान उत्पन्न हुआ।

उसी समय इन्द्रों और देवोंने आकर उनकी पूजा की। कुबेरने समवसरणकी रचना की और भगवान्ने इसी वनमें—पभोसागिरिमें धर्मचक्र प्रवर्तन किया।

इसके बाद यहाँ सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण घटना उस समय घटित हुई, जब भगवान् महावीर केवलज्ञान-प्राप्तिसे पूर्व यहाँ पधारे। वे पारणाके लिए नगरमें पधारे। संयोगवश उस समय भारतके सर्वाधिक शक्तिशाली गणराज्य वैशालीके अधिपति चेटककी पुत्री कुमारी चन्दना (चन्दन-बाला) दुर्भाग्यके चक्रमें पड़कर सेठ वृषभसेनकी सेठानी द्वारा बन्धनमें पड़ी हुई थी। झूठे सापत्न्य द्वेषसे सेठानीने उसे जंजीरोंमें बाँध रखा था। चन्दनाने ज्यों ही प्रभु महावीरको देखा त्यों ही उसके

सारे बन्धन खुल गये। सेठानीने उसे निराभरण कर रखा था, उसे खानेके लिए कांजी मिश्रित कोदोंका भात मिट्टीके सकोरेमें दे रखा था। भगवान्के दर्शन करते ही उसका कोमल शरीर बहुमूल्य वस्त्राभरणोंसे सुशोभित होने लगा। उसके शीलके माहात्म्यसे उसका मिट्टीका सकोरा सोनेका हो गया और कोदोका भात शाली चावलोंका भात बन गया। किन्तु चन्दनाको तो इस सबकी ओर ध्यान देनेका अवकाश ही कहाँ था। वह तो प्रभुकी भक्तिमें लीन थी। जगद्गुरु त्रिलोकीनाथ प्रभु उसके द्वारपर आहारके लिए आये थे। उसके हृदयका सम्पूर्ण रस ही भक्ति बन गया था। वह भगवान्के चरणोंमें झुकी और नवधा भक्तिपूर्वक उसने भगवान्को पड़गाहा। आज उसके हृदयमें कितना हर्ष था! वह अपने सारे शोक-सन्तापोंको भूल गयी। आज उसके हाथोंसे तीर्थंकर भगवान्ने आहार लिया था। इससे बड़ा पुण्य संसारमें क्या कोई दूसरा हो सकता है?

भगवान्का आहार समाप्त हुआ। देवोंने आकर उसका सम्मान किया। उन्होंने पंचाश्चर्य किये। आकाशसे रत्नवर्षा हुई, पुष्पवृष्टि हुई, देवोंने दुन्दुभि घोष किये, शीतल सुरभित पवन बहने लगा और आकाशमें खड़े हुए देव जयजयकार कर रहे थे। 'धन्य यह दान, धन्य यह पात्र और धन्य यह दाता।'

प्रभु आहारके पश्चात् वनकी ओर चले गये, भक्त चन्दना जाते हुए प्रभुको निर्निमेष दृष्टिसे देखती रही। कौशाम्बीके नागरिक आकर चन्दनाके पुण्यकी सराहना कर रहे थे। यह पुण्य-चर्चा राजमहलोंमें भी पहुँची। कौशाम्बी-नरेश शतानीककी पटरानी मृगावतीने सुना तो वह उस महिमामयी भाग्यवती नारीके दर्शन करनेके लिए राजकुमार उदयनके साथ स्वयं आयी। किन्तु उसे यह देखकर अत्यन्त आश्चर्य-मिश्रित हर्ष हुआ कि वह नारी और कोई नहीं, उसकी छोटी बहन है। वह अपनी प्रिय बहनको बड़े आदरपूर्वक महलोंमें लिवा ले गयी। किन्तु चन्दना अपनी इस अल्पवयमें ही कर्मके जिन क्रूर हाथोंमें पड़कर नाना प्रकारकी लांछनाओं और व्यथाओं का अनुभव कर चुकी थी, उससे उसके मनमें संसारके प्रति प्रबल निर्वेद पनप रहा था। उसके बन्धुजन आकर उसे लिवा ले गये। लेकिन उसका वैराग्य पकता ही गया और एक दिन चन्दना घर-बार और राजसुखोंका परित्याग करके भगवान् महावीरकी शरणमें जा पहुँची और आर्यिका दीक्षा ले ली। अपने तप और कठोर साधनाके बलपर वह भगवान् महावीरकी ३६००० आर्यिकाओं-के संघकी सर्वप्रमुख गणिनीके पदपर प्रतिष्ठित हुई।

भगवान् महावीर अपने जीवन कालमें कई बार कौशाम्बी पधारे और वहाँ उनका समवसरण लगा।

तत्कालीन इतिहास

जैन ग्रन्थोंसे ज्ञात होता है कि ईसा पूर्व ७वीं शताब्दीमें जो सोलह बड़े जनपद थे, उनमें एक वत्सदेश भी था, जिसकी राजधानी कौशाम्बी थी। गंगाकी बाढ़के कारण जब हस्तिनापुरका विनाश हो गया, उसके बाद चन्द्रवंशी नरेश नेमिचक्रने कौशाम्बीको अपनी राजधानी बनाया था। उनके वंशने यहाँ बाईस पीढ़ी तक राज्य किया।

भगवान् महावीरके समयमें शतानीक वत्स देशका राजा था। वैशाली गणतन्त्रके अधिपति चेटककी सात पुत्रियाँ थीं जिनमेंसे ज्येष्ठा और चन्दना तो प्रव्रजित हो गयीं। शेष पाँच पुत्रियोंमें बड़ी पुत्री प्रियकारिणी, जिन्हें त्रिशला भी कहा जाता है, कुण्डलपुर नरेश महाराज सिद्धार्थके साथ ब्याही गयीं। मृगावती वत्सनरेश चन्द्रवंशी सहस्रानीकके पुत्र शतानीकके साथ, सुप्रभा दशार्ण देश-

के हेमकच्छ नरेश सूर्यवंशी दशरथके साथ, पाँचवीं पुत्री चेलिनी मगधनरेश शिशुनागवंशी बिंबसार श्रेणिकके साथ विवाही गयी।

इस प्रकार वत्सराज शतानीक सांसारिक सम्बन्धके कारण महावीर भगवान्‌के मौसा थे और मृगावती उनकी मौसी थी। अतः उनका इस राजवंशसे रक्त सम्बन्ध था। किन्तु इससे अधिक उनके पतितपावन व्यक्तित्वके कारण यह राजवंश उनका अनन्य भक्त था।

वत्स देशके राजाओंके सम्बन्धमें कहा जाता है कि वे शिक्षित और सुसंस्कृत थे। इनकी राजवंशावली इस प्रकार बतायी जाती है।

१. सुतीर्थ
२. रुच
३. चित्राक्ष
४. सुखीलाल-सहस्रानीक
५. परन्तप शतानीक और जयन्ती पुत्री
६. उदयन और एक पुत्री
७. मेधावित् अथवा मणिप्रभ
८. दण्डपाणि
९. क्षेमक

शतानीककी बहन जयन्ती कट्टर जैन धर्मानुयायी थी और महावीर[२] की भक्त थी।

शतानीक बड़ा वीर था। उसने एक बार चम्पानगरीपर आक्रमण करके उसे जीत लिया और उसे अपने राज्यमें मिला लिया। ललित कलाओंमें उसकी बड़ी रुचि थी। उसके यहाँ एक कुशल चित्रकार था। किसी कारणवश राजाने उसे निकाल दिया। इससे चित्रकारके मनमें प्रतिशोधकी भावना जागृत हुई। वह सीधा अवन्तीनरेश चण्डप्रद्योतके राजदरबारमें पहुँचा और उसे मृगावती रानीका चित्र दिखाया। प्रद्योत चित्र देखते ही मृगावतीके ऊपर मोहित हो गया। उसने शतानीकके पास सन्देश भेजा कि या तो महारानी मृगावतीको मुझे दे दो या फिर युद्धके लिये तैयार हो जाओ। वीर शतानीकने युद्ध पसन्द किया। अवन्तीनरेशने प्रबल वेगसे कौशाम्बीपर आक्रमण कर दिया। किन्तु शतानीककी इस युद्धके दौरान सम्भवतः विसूचिका रोगसे मृत्यु हो गयी। प्रद्योत उस समय वापिस लौट गया।

मृगावतीने राज्यका शासन-सूत्र सम्भाल लिया। उदयनकी अवस्था उस समय ६-७ वर्षकी थी। रानी जानती थी कि प्रद्योतसे युद्ध अवश्यम्भावी है। अतः वह युद्धकी तैयारी करती रही। उसने एक मजबूत किला बनवाया। तभी प्रद्योतने मृगावतीके पास पुनः विवाहका प्रस्ताव भेजा। मृगावतीने चतुराईसे उदयनके राज्यारोहण तकका समय माँग लिया और वह किले, खाइयों और युद्धकी अन्य तैयारियोंमें डटी रही। १३-१४ वर्षकी अवस्थामें उदयनका राज्याभिषेक हुआ। प्रद्योतने पुनः कौशाम्बीपर आक्रमण कर दिया। भयानक युद्ध हुआ। अन्तमें समझौता हुआ। प्रद्योतके हाथोंसे उदयनका राज्याभिषेक हुआ। मृगावती भगवान् महावीरके पास दीक्षित हो गयी[3]।

---

१. The Journal of the Orissa Bihar Research Society, Vol. I, pp. 114.

२. भरतेश्वर-बाहुबली वृत्ति, (तृतीय संस्करण) पृष्ठ ३४१-३४३।

३. भरतेश्वर बाहुबली वृत्ति, पृ. ३२३-५।

उदयन भी भगवान् महावीरका समकालीन था। वह अपने समयमें सारे देशमें रूप और गुणोंमें सारे राजकुमारोंकी ईर्ष्या और कुमारियोंकी कामनाका एक मात्र आधार बन गया था। यह कहा जाता है कि उस समय की प्रमुख पाँच महानगरियोंमें उदयनके चित्र राजप्रासादोंसे लेकर नागरिकों और वारांगनाओंके सायं कक्षमें सब कहीं सम्मोहनके साधन बने हुए थे। वह वीणावादन में अत्यन्त निपुण था। जब वह अपनी प्रसिद्ध घोषवती वीणाके तारोंपर उंगलियाँ चलाता था तो सुनने वाले अपना होश गँवा बैठते थे। अपनी इसी वीणाकी बदौलत वह अवन्तिनरेश चण्ड-प्रद्योतकी पुत्री वासवदत्तासे प्रणय विवाह करनेमें सफल हुआ था। बादमें राजनीतिक कारणोंसे मगधकी राजकुमारी पद्मावती तथा अन्य दो राजकुमारियोंका भी विवाह उसके साथ हुआ था। किन्तु वासवदत्ताके प्रति उसका जो अनुराग था, उसको लेकर अनंग, हर्ष, कात्यायन, वररुचि, गुणाढ्य, श्री हर्षदेव, क्षेमेन्द्रदेव आदि अनेक कवियोंने काव्य रचना की है। महाकवि भासने उदयन-वासवदत्ताके कथानकको लेकर तीन नाटकोंकी रचना की है।

उदयनने कौशाम्बीको कलाका केन्द्र बना दिया था। उस समयके जन-जीवनमें सौन्दर्य और सुरुचिकी भावनाका परिष्कार हुआ था। उसके समकालीन नरेशोंमें इतिहास प्रसिद्ध प्रसेनजित, चण्डप्रद्योत, श्रेणिक बिम्बिसार, अजातशत्रु, हस्तिपाल, जितशत्रु, दधिवाहन आदि मुख्य थे जिन्होंने तत्कालीन भारतके इतिहासका निर्माण किया।

इस नगरीमें कई बार महात्मा बुद्ध भी पधारे थे किन्तु जैनधर्मकी अपेक्षा बौद्ध धर्मका प्रचार उस समय यहाँ कम ही हुआ था। भगवान् महावीरके प्रभावक व्यक्तित्वकी ओर ही यहाँ की जनता अधिक आकृष्ट हुई। उदयन भी महावीरका भक्त था। महात्मा बुद्ध उदयनके समय जब कौशाम्बी पधारे, तब उदयन उनके पास एक बार भी दर्शनार्थ नहीं आया। सम्भवतः इससे क्षुब्ध होकर बौद्ध ग्रन्थकारोंने उदयनके चरित्रको कुछ निम्न ढंगका चित्रित करनेका प्रयत्न किया है किन्तु जैन कथासाहित्यमें उदयनका चरित्र-चित्रण भद्र शब्दोंमें किया गया है।

उदयनकी मृत्यु स्वाभाविक ढंगसे नहीं हुई। वह अपना अधिकांश समय जैनधर्मकी क्रियाओं में धर्माराधनमें व्यतीत किया करता था। एक बार उसने एक कर्मचारीको किसी अपराधपर पृथक् कर दिया। उस कर्मचारीने उदयनसे इसका बदला लेनेकी प्रतिज्ञा की। वह अवन्ति पहुँचा। वहाँ केवल प्रतिशोधके लिए ही वह जैन मुनि बन गया। कुछ समय बाद वह अपने गुरु के साथ कौशाम्बी आया। पर्यूषण पर्वके दिनोंमें एक दिन उदयनने उपवास किया और वह रातमें धर्मागारमें ही सोया। वहींपर वह वंचक साधु और गुरु भी ठहरे हुए थे। रात्रिमें जब राजा गहरी नींदमें सो रहा था, उस समय वह धूर्त चुपचाप उठकर राजाके पास पहुँचा और एक चाकू (अथवा कटार) से राजाकी हत्या करके कटार वहीं फेक कर भाग गया। गुरु की नींद खुली। उन्होंने देखा – राजा निर्जीव पड़ा है, चारों ओर रक्त बह रहा है और शिष्य लापता है। वे सारी स्थिति समझ गये। उन्होंने सोचा कि एक जैन साधु राजाका हत्यारा है, इस अपवादको सुनने देखनेके लिए मैं जीवित नहीं रहना चाहता। उन्होंने उसी कटारसे आत्मघात कर लिया[1]।

उदयनको कोई सन्तान नहीं थी। तब वासवदत्ताने अपना भतीजा गोद ले लिया। उसका राज्याभिषेक किया गया। कुछ वर्ष बाद उसने अवन्ती पर भी अधिकार कर लिया। इसके कुछ वर्षों बाद मगधसम्राट् नन्दिवर्धनने उससे वत्स राज्य छीन लिया।

---

१. भरतेश्वर बाहुबली वृत्ति, पृ० ३२५।

प्राचीन साहित्यसे यह पता चलता है कि धवल सेठ यहींका रहने वाला था, वस्तुतः यह नगरी उस समय अत्यन्त समृद्ध थी। यातायातकी यहाँ सुविधाएँ थीं। फलतः देश-देशान्तरोंके साथ उसका व्यापारिक सम्बन्ध था। यह श्रावस्तीसे प्रतिष्ठान जाने वाले मार्ग पर एक प्रसिद्ध व्यापारिक केद्र था। मौर्य, शुंग, कुशाण और गुप्त कालमें भी यह नगरी कला और वाणिज्यका केन्द्र रही। बरसातके दिनोंमें अब भी कभी कभी मूल्यवान् पाषाण-रत्न आदि खेतोंमें मिल जाते हैं।

यह नगरी शताब्दियों तक मृण्मूर्तियों तथा मनकोंके निर्माण का प्रसिद्ध केन्द्र रही। किन्तु मुस्लिम कालमें इसकी समृद्धि समाप्त हो गयी। कला का विनाश कर दिया गया; मूर्तियाँ, मन्दिर, स्तूप, शिलालेख तोड़ दिये गये। उससे कौशाम्बीका स्वर्णिम अतीत खण्डहरोंके रूपमें बिखर गया।

पुरातत्त्व

कौशाम्बीमें प्रयाग विश्वविद्यालयकी ओरसे खुदाई हुई थी। फलतः यहाँसे हजारों कलापूर्ण मृण्मूर्तियाँ और मनके प्राप्त हुए थे, जो प्रयाग संग्रहालयमें सुरक्षित हैं।

कहा जाता है, ढाई हजार वर्ष पहले राजा शतानीकका किला चार मील के घेरेमें था। उसमें बत्तीस दरवाजे थे। उसीके अन्दर कौशाम्बी नगरी बसी हुई थी। कई स्थानों पर तो अब भी किलेकी ध्वस्त दीवालें ३० से ३५ फुट ऊँची स्पष्ट दिखाई देती हैं। यहाँ प्राचीन नगरके भग्नावशेष मीलोंमें बिखरे पड़े हैं। इनके मध्य सम्राट् सम्प्रति का बनवाया हुआ एक स्तम्भ भी खड़ा हुआ है। भगवान् पद्मप्रभुका जन्म स्थान होने के कारण सम्राट् सम्प्रतिने यहाँ स्तम्भ निर्मित कराया था और उसके ऊपर जैन धर्मकी उदार शिक्षाएँ अंकित करायी थीं।

यहाँ के खण्डहरोंमें मैंने सन् १९५८ की शोध-यात्रामें अनेक जैन मूर्तियोंके खण्डित भाग पड़े हुए देखे थे। मुझे अखण्डित जैन प्रतिमा तो नहीं मिल पायी थी किन्तु जो खण्डित प्रतिमाएँ मिलीं, उनमें किसी प्रतिमाका शिरोभाग था तो किसीका अधोभाग। मुझे जो शिरोभाग मिले, वे भावाभिव्यंजना और कला की दृष्टि से अत्यन्त समुन्नत थे। मुझे सिंहासन पीठ और आयागपट्ट के भी कुछ भाग उपलब्ध हुए थे। सिंहासन पीठ पर धर्मचक्र और पुष्प उत्कीर्ण थे। वे तथा आयागपट्ट के अलंकरण भी अनिन्द्य कला के उत्कृष्ट उदाहरण थे।

खुदाईमें एक बिहार निकला है, जो मंखलीपुत्र गोशालकका कहलाता है। कहा जाता है, इस बिहार में गोशालकके सम्प्रदायके पाँच हजार साधु रहते थे। प्रारम्भमें गोशालक भगवान् महावीरका शिष्य था। किन्तु बादमें वह भगवान्से द्वेष और स्पर्द्धा करने लगा। उसने एक नया सम्प्रदाय भी चलाया, जिसका नाम आजीवक सम्प्रदाय था। किन्तु अब तो वह केवल ग्रन्थोंमें हो रह गया है।

जैन मन्दिर

विधिकी यह कैसी विडम्बना है कि जो नगरी कभी जैनधर्मका प्रमुख केन्द्र रही, आज वहाँ एक भी जैनका घर नहीं है। केवल लाला प्रभुदासजी आरावालोंका बनवाया हुआ एक दिगम्बर जैन मन्दिर और एक जैन धर्मशाला है। मन्दिरमें दो वेदियाँ हैं। एकमें भगवान् पद्मप्रभुकी प्रतिमा और चरण हैं। एक शिलाफलकमें खड्गासन प्रतिमा अंकित है। बायीं ओर देवी एक बालक को गोद में लिये हुए आसीन है। मूर्तिके सिरके दोनों ओर यक्ष-यक्षिणी

बने हुए हैं। यक्ष हाथ जोड़े हुए है तथा यक्षिणी हाथ में माला लिये दिखलाई पड़ती है। मूर्ति के पादपीठ पर कमल लांछन बना हुआ है।

यह मूर्ति भूगर्भ से निकली थी।

इस मूर्ति के आगे चरण विराजमान है। चरणोंकी लम्बाई ८ इंच है। दोनों चरणों के बीच में कमल बना हुआ है। इससे ये पद्मप्रभु भगवान्‌के चरण-चिह्न माने जाते हैं। चरणों पर लेख उत्कीर्ण है। किन्तु वह धुँधला पड़ गया है। संवत् ५६७ अवश्य पढ़ने में आता है।

बायीं ओर कमरेमें सर्वतोभद्रिका प्रतिमा विराजमान है। श्वेत पाषाणकी खड्गासन प्रतिमाकी अवगाहना २ फुट ८ इंच है। चारों ओर हाथीका चिह्न बना हुआ है। मूर्तियोंके ऊपर 'श्री अजितनाथाय नमः' लिखा हुआ है। मूर्तियोंके आसन फलक पर लेख भी उत्कीर्ण है। यह मूर्ति आधुनिक है।

गर्भगृहके बाहर एक आलेमें क्षेत्रपालकी स्थापना की गयी है। मन्दिरका प्रबन्ध बा. सुबोध कुमारजी सुपुत्र बाबू निर्मलकुमार जी आराके परिवारकी ओरसे होता है।

धर्मशालाके बरामदेमें बच्चोंकी पाठशाला लगती है।

वार्षिक मेला

यहाँ पर प्रतिवर्ष मिति फागुन कृष्णा ४ को भगवान् पद्मप्रभुका निर्वाणोत्सव बड़े समारोह-के साथ मनाया जाता है। इस अवसरपर निर्वाण लाडू चढ़ाया जाता है। काफी भीड़ हो जाती है।

पभोसा

स्थिति

पभोसा क्षेत्र के लिए कौशाम्बी से मार्ग कच्चा है। इक्के जा सकते हैं। कौशाम्बी से यमुना नदी में नावों में जाने से केवल १० कि. मी. पड़ता है और यह सुविधाजनक भी है। कौशाम्बी से पाली होते हुए पैदल मार्ग से यह स्थान ८ कि. मी. है। पभोसा यमुना तट पर अवस्थित है। यह इलाहाबाद जिले के अन्तर्गत मंझनपुर तहसील में है। इसका पोस्ट-आफिस पश्चिम सरीरा और सब-पोस्ट-आफिस गुराजू है।

तीर्थक्षेत्र

छठे तीर्थंकर भगवान् पद्मप्रभु अपने राजमहलों के द्वार पर बँधे हुए हाथी को देखकर विचारमग्न हो गये। उन्हें अपने पूर्व भवों का स्मरण हो आया। उन्हें संसार की दशा को देखकर वैराग्य हो गया और कौशाम्बीके मनोहर उद्यान (पभोसा) में जाकर कार्तिक कृष्णा त्रयोदशी के दिन दीक्षा ले ली। देवों और इन्द्रों ने भगवान् का दीक्षाकल्याणक महोत्सव मनाया।

भगवान् दीक्षा लेकर तपस्या में लीन हो गये। लगभग छह माह के घोर तप के बाद उन्हें चैत्र शुक्ला पूर्णमासी को उसी मनोहर उद्यान में केवलज्ञान प्राप्त हुआ। देवों और इन्द्रों ने आकर ज्ञानकल्याणक का महोत्सव मनाया। यहीं पर भगवान् का प्रथम समवसरण लगा और भगवान् के चरणों में बैठकर और उनका उपदेश सुनकर असंख्य प्राणियोंको आत्म-कल्याण की प्रेरणा मिली।

जिस स्थान पर भगवान् पद्मप्रभु के दीक्षा और ज्ञानकल्याणक मनाये गये, वह स्थान पभोसा है। इसीलिए यह कल्याणक तीर्थ माना जाता है।

यह स्थान प्राचीन काल में मुनियों की तपोभूमि रहा है। कालिन्दी का प्रशान्त कूल, सुरम्य पर्वत की हरीतिमा और गुहा की एकान्त शान्ति यह सारा वातावरण मुनियों के ध्यान-अध्ययन के उपयुक्त है। प्राचीन साहित्य में ऐसे उल्लेख मिलते हैं, जिनसे पता चलता है कि यहाँ पर मुनिजन तपस्या किया करते थे। ललितघट आदि बत्तीस राजकुमार मुनि बन कर यहाँ आये और यमुना तट पर खड़े होकर विविध प्रकार के तप करने लगे।

एक दिन यमुना में भयंकर बाढ़ आ गयी और वे सभी मुनि बाढ़ में बह गये। उनकी स्मृति में यहाँ बत्तीस समाधियाँ बनी हुई थीं जिन पर हिन्दुओं का अधिकार है।

इतिहास

पभोसा कौशाम्बी का ही एक भाग था। यहाँ उस समय वन था। इसलिए कौशाम्बी से भिन्न पभोसा का अपना कोई स्वतन्त्र इतिहास नहीं है। यहाँ तीर्थंकर पद्मप्रभु के दो कल्याणकों की पूजा और उत्सव हुए। यहाँ बाईसवें तीर्थंकर नेमिनाथ के काल में एक महत्त्वपूर्ण घटना घटी। भगवान् नेमिनाथ ने बलराम के पूछने पर द्वारका और नारायण श्रीकृष्ण के भविष्य का वर्णन करते हुए कहा—आज से बारह वर्ष पीछे मद्यपी यादवों द्वारा उत्तेजित किये गये द्वैपायन मुनि के शाप से द्वारका भस्म होगी। अन्तिम समय में श्रीकृष्ण कौशाम्बी के वन में शयन करेंगे और जरत्कुमार उनकी मृत्यु के कारण बनेंगे।

भगवान् की इस भविष्यवाणी को सुनकर बलराम के मामा (रोहिणी के भाई) द्वैपायन विरक्त होकर मुनि बन गये और कहीं दूर वनों में जाकर तप करने लगे। इसी प्रकार श्रीकृष्ण के बड़े भ्राता जरत्कुमार भी वहाँ से चले गये और वनों में रहने लगे। तीर्थंकर अन्यथावादी नहीं होते। दोनों ने ही, लगता था, भवितव्य और तीर्थंकर-वाणी को झुठलाना चाहा। किन्तु भवितव्य होकर ही रही। द्वैपायन के क्रोध से द्वारका भस्म हो गयी। बलराम और श्रीकृष्ण वहाँ से चल दिये और कौशाम्बी के इस वन में पहुँचे। श्रीकृष्ण प्यास से व्याकुल हो गये। वे एक पेड़ की छाँह में लेट गये। बलराम जल लाने गये। जरत्कुमार उसी वन में घूम रहा था। उसने दूर से कृष्ण के वस्त्र को हिलता हुआ देखकर उसे हिरण समझा। उसे बाण सन्धान करते देर न लगी। बाण जाकर श्रीकृष्ण के पैर में लगा। जब जरत्कुमार को तथ्य का पता लगा तो वह आकर पैरों में पड़ गया। श्रीकृष्ण सम्यग्दृष्टि थे, भावी तीर्थंकर थे। उन्होंने बड़े शान्त और समता भाव से प्राण विसर्जन किये। बलदेव जब लौट कर आये तो अपने प्राणोपम अनुज को मृत देखकर वे ऐसे मोहाविष्ट हुए कि वे छह माह तक मृत देह को लिये फिरते रहे। अन्त में एक देव द्वारा समझाने पर तुंगीगिरि पर जाकर उन्होंने दाह-संस्कार किया।

इस प्रकार इस कल्पकाल के अन्तिम नारायण श्रीकृष्ण के अन्तिम काल का इतिहास पभोसा की मिट्टी में ही लिखा गया।

स्थानीय मन्दिर

यहाँ दिगम्बर जैन धर्मशाला बनी हुई है। धर्मशाला में ही एक कमरे में मन्दिर है। इस मन्दिर में भूगर्भ से निकली हुई कुछ प्राचीन जैन मूर्तियाँ भी विराजमान हैं। ये मूर्तियाँ प्रायः हल जोतते हुए किसानों को मिली हैं। एक शिला-फलक में भगवान् ऋषभदेव की प्रतिमा है। फलक की ऊँचाई चार फुट है। प्रतिमा पद्मासन है। इसके दोनों ओर दो-दो खड्गासन अरिहंत प्रतिमा हैं। सिंहासन के आधार रूप में दो सिंह बने हुए हैं। बीच में कमल अंकित है। शिरोभाग के ऊपर

दो गन्धर्व पुष्पमाला लिये हुए हैं। भगवान् की जटाएँ कन्धे तक पड़ी हुई हैं। मूर्ति खण्डित है। किन्तु गुप्त काल की प्रतीत होती है। एक सर्वतोभद्रिका प्रतिमा है, वह भी खण्डित है।

धर्मशाला के निकट पहाड़ी है। पहाड़ी छोटी-सी है। पहाड़ी पर जाने के लिए सीढ़ियों की कुल संख्या १६८ है। ऊपर जाकर समतल चबूतरा मिलता है। वहाँ एक कमरा है जो मन्दिर का काम देता है। पहले यहाँ मन्दिर था। किन्तु भाद्रपद बदी ९ वीर सं. २४५७ को यकायक पर्वत टूट कर मन्दिर के ऊपर गिर पड़ा, जिससे मन्दिर तो समाप्त हो गया। किन्तु प्रतिमाएँ बाल-बाल बच गयीं। प्रतिमाएँ निकालकर वर्तमान कमरे में विराजमान कर दी गयीं। कहते हैं पहले पहाड़ पर तीन मन्दिर, मानस्तम्भ और भट्टारक ललितकीर्ति की गद्दी थी। उल्कापात होने से ये सब नष्ट हो गये। प्रतिमाएँ भी नष्ट हो गयीं। उनके नष्ट होने पर इलाहाबाद के लाला छज्जूमल ने संवत् १८८१ में यह मन्दिर बनवाया था। इस प्रकार का शिलालेख यहाँ मिलता है।

इस कमरे में एक गज ऊँचे चबूतरे पर सब प्रतिमाएँ विराजमान हैं। इनमें मूलनायक भगवान् पद्मप्रभु की प्रतिमा हलके बादामी वर्ण की पद्मासन मुद्रा में है। अवगाहना ढाई फुट है। प्रतिमा चतुर्थकाल की है, ऐसी मान्यता है। प्रतिमा पर गूढ़ लास्य और वीतराग शान्ति का सामंजस्य अत्यन्त प्रभावक है। किन्तु पाषाण और कलाका परीक्षण करने पर यह ईसा पूर्व प्रथम द्वितीय शताब्दी की प्रतीत होती है।

इसके बायीं ओर भगवान् नेमिनाथ की भूरे वर्ण की पद्मासन २ फुट ७ इंच अवगाहना वाली प्रतिमा है। पादपीठ पर शंख का चिह्न अंकित है। नीचे बायीं ओर गोमेद यक्ष और दायीं ओर अम्बिका देवी यक्षी है। यक्ष सुखासन में आसीन है। उसके तीन मुख और चार भुजाएँ हैं जिनमें मुद्गर, दण्ड, फल और वज्र हैं। यक्षी की गोद में प्रियंकर पुत्र है। इनसे ऊपर दोनों ओर चमरधारी हैं। उनसे ऊपर दो पद्मासन अरहन्त प्रतिमाएँ बनी हुई हैं। शिरोभाग में दो गज दिखाई पड़ते हैं। ऊपर दो खड्गासन अरहन्त प्रतिमाएँ बनी हुई हैं। एक देवी पुष्पमाल लिये और एक देव तीन छत्र लिये हुए है। दूसरी ओर भी ऐसी ही रचना है। यह मूर्ति संवत् १५०८ की है। जैसा कि इसके लेख से प्रकट है।

इससे आगे बायीं ओर वि. संवत् १९५२ की कृष्ण वर्ण की एक मूर्ति स्थित है।

एक पद्मासन मूर्ति है जो १५ इंच की है। नीचे के भाग में चमरवाहक हैं और ऊपरी भाग में पुष्पमाल लिये हुए देवियाँ हैं। सिर पर त्रिछत्र बने हैं।

एक भूरे वर्ण की पद्मासन प्रतिमा है। शिरोभाग में बायीं ओर हाथ में पुष्पमाल लिये हुए देव दिखाई पड़ता है। दूसरी ओर का भाग खण्डित है।

सबसे अन्त में मूर्तियों के चार भग्न खण्ड रखे हुए हैं। दायीं ओर एक शिलाफलक पर पंचबालयति की प्रतिमा वि. संवत् १४०८ की है। इसकी अवगाहना २ फुट ५ इंच है। बीच में मूलनायक और उसके दोनों ओर दो तीर्थंकर प्रतिमाएँ हैं। सिर के पीछे भामण्डल और ऊपर त्रिछत्र हैं। उससे ऊपर पुष्पमाल लिये दो गगनचारिणी देवियाँ दीख पड़ती हैं।

श्वेत पाषाण की वि. संवत् १८८१ की एक प्रतिमा और एक चरण-युगल विराजमान हैं।

एक पद्मासन प्रतिमा ११ इंच अवगाहना की है। दोनों ओर चमरवाहक खड़े हैं। ऊपर गगनचारिणी देवियाँ पुष्पवर्षा करती हुई दिखाई पड़ती हैं।

मन्दिर के ऊपर पहाड़ की एक विशाल शिला में उकेरी हुई चार प्रतिमाएँ दिखाई पड़ती हैं जो ध्यानमग्न मुनियों की हैं। ऊपर दो गुफाएँ भी है, जिनमें निम्नलिखित शिलालेख हैं—

'अधियछात्रा राज्ञो शौनकायन पुत्रस्य बंगपालस्य पुत्रस्य राज्ञो तेषणीपुत्रस्य भागवतस्य पुत्रेण वैहिदरी पुत्रेण आषाढ़ सेनेन कारितं।'

अर्थात् अधिछत्र के राजा शौनकायन के पुत्र राजा बंगपाल के पुत्र और त्रैवर्ण राजकन्या के पुत्र राजा आषाढ़सेन ने यह गुफा बनवायी।

—जैन शिलालेख संग्रह, भाग २, पृ. १३-१४

डॉ. फ्यूरर ने शुंगकाल के अक्षरों से मिलते-जुलते अक्षरों के कारण इस शिलालेख का काल द्वितीय या प्रथम ईसवी पूर्व निश्चित किया है। इस शिलालेख के तथ्य ऐतिहासिक दृष्टि से बहुत महत्त्वपूर्ण हैं। एक तो इस शिलालेख से यह तथ्य प्रकट होता है कि राजा आषाढ़सेन ने इस गुफा का निर्माण कराया। दूसरा इसमें अहिच्छत्र, जो उत्तर पांचाल के प्रतापी राजाओं की राजधानी थी, की राजवंशावली दी गयी है।

एक दूसरा शिलालेख इस प्रकार है—

२—राज्ञो गोपालीपुत्रस वहसतिमित्रस मातुलेन गोपालिया

वैहिदरी पुत्रेन आसाढ़सेनेन लेनं कारितं उवाकस (?) दसमें सवछरे कश्शपीनां अरहं (ता) न...........

अर्थात् गोपाली के पुत्र राजा वहसतिमित्र (बृहस्पतिमित्र) के मामा तथा गोपाली वैहिदरी अर्थात् वैहिदर राजकन्या के पुत्र आषाढ़सेन ने कश्यपगोत्रीय अरिहन्तों....दसवें वर्ष में एक गुफा का निर्माण कराया।

—जैन शिलालेख संग्रह, भाग २

यह शिलालेख भी द्वितीय या प्रथम ईसवी पूर्व का माना गया है। बृहस्पतिमित्र नामक एक नरेश के कुछ सिक्के कौशाम्बी, अहिच्छत्र, मथुरा आदि स्थानों पर मिले हैं।

इस पहाड़ी के नीचे ही यमुना नदी बहती है। यहाँ का प्राकृतिक दृश्य अत्यन्त आकर्षक है। ध्यान-सामायिक के लिए उपयुक्त स्थान है।

किंवदन्ती

मूलनायक प्रतिमाके सम्बन्धमें एक किंवदन्ती प्रचलित है कि लगभग डेढ़-पौने दो सौ वर्ष पहले कौशाम्बीके पुजारीको स्वप्न हुआ कि मन्दिरके द्वार पर जो कुँआ है, उसमें भगवान् पद्मप्रभु की प्रतिमा है। उसे निकालकर मन्दिरमें विराजमान करो। प्रातः होते ही पुजारीने स्वप्नकी चर्चा की। चर्चा प्रयाग तक पहुँची। बहुत-से लोग एकत्रित हुए। कुँएसे प्रतिमा निकाली गयी। कहा जाता है कि खोदते समय भामण्डलमें फावड़ा लग गया, जिससे दूधकी धार बह निकली। लोगों ने जब बहुत विनम्र स्तुति की, तब वह शान्त हुई। वही प्रतिमा पभोसाके मन्दिरमें लाकर विराजमान कर दी गयी।

दैवी अतिशय

मूलनायक प्रतिमा अत्यन्त मनोज्ञ और अतिशय सम्पन्न है। जैसा अद्भुत आश्चर्य इस प्रतिमामें है, वैसा सम्भवतः अन्यत्र कहीं देखने में नहीं आया। प्रतिमा यद्यपि बादामी पाषाण की है, किन्तु सूर्योदयके पश्चात् इसका रंग बदलने लगता है। ज्यों-ज्यों सूर्य आगे बढ़ता जाता है, त्यों-त्यों प्रतिमाका रंग लाल होता जाता है। लगभग बारह बजे प्रतिमा लोहित वर्णकी हो जाती

है। इसके पश्चात् यह वर्ण हलका पड़ने लगता है और लगभग ३ बजे कत्थई रंगकी हो जाती है। रंग का यह परिवर्तन किस कारणसे है, यह विश्वास पूर्वक नहीं कहा जा सकता। सम्भव है, पाषाणकी ही ये विशेषताएँ हों। किन्तु सूर्यकी किरणें मन्दिरके अन्दर प्रतिमा तक पहुँच नहीं पातीं। ऐसी दशामें प्रतिमाका यह रंग-परिवर्तन एक दैवी चमत्कार माना जाने लगा है।

इस प्रकारका एक और भी दैवी चमत्कार यहाँ देखनेको मिलता है। यहाँ हर रातको पर्वतके ऊपर केशरकी वर्षा होती है। प्रातःकाल पहाड़ीके ऊपर जानेपर छोटी-छोटी पीली बूँदें पड़ी हुई रहती हैं। यहाँ कार्तिक सुदी १३, चैत सुदी १५ को खूब केसर-वर्षा होती है।

पुरातत्त्व

पभोसामें शुंगकाल (ई. पू. १८५ से १००) के समयके कई शिलालेख प्राप्त हुए हैं। शुंग-वंशके अन्तके बाद शुंगवंशकी ही एक शाखा मित्रवंशी नरेशोंका आधिपत्य यहाँ रहा। इन मित्रवंशी कई राजाओंके सिक्के और मूर्तियाँ कौशाम्बी, मथुरा आदि कई स्थानोंपर बहुसंख्यामें मिले हैं। उत्तर पंचाल नरेश आषाढ़सेनके समयके दो लेख पभोसामें पाये गये हैं। एक लेखमें राजा आषाढ़-सेनको बृहस्पतिमित्रका मामा बताया है। बृहस्पतिमित्र मथुराका मित्रवंशीय नरेश था।

पभोसामें जो प्राचीन मन्दिर और मूर्तियाँ हैं, वे सभी प्रायः शुंग और मित्रवंशी राजाओंके कालकी मालूम पड़ती हैं। यहाँ पर एक आयागपट्ट भी उपलब्ध हुआ था, जो इस प्रकार पढ़ा गया है—

'सिद्धं राज्ञो शिवमित्रस्य संवघटे........रवमाहकिय........
स्थविरस लदासस निवर्तन श........शिवनंदिस अन्ते—
वासिस शिवपालित आयागपट्टे थापयति अरहतो पूजायै।'

अर्थात् सिद्ध राजा शिवमित्रके राज्यके बारहवें वर्षमें स्थविर बलदासके उपदेशसे शिवनन्दीके शिष्य शिवपालितने अरहन्त पूजाके लिए आयागपट्ट स्थापित किया।

आस-पासके जैन मन्दिर

यह क्षेत्र शताब्दियों तक जैनधर्मका प्रमुख केन्द्र रहा है। अतः यहाँ आसपासमें जैन पुरा-तत्त्व सम्बन्धी सामग्री और मूर्तियाँ बहुतायतसे मिलती हैं। इसी प्रकारकी एक मूर्ति चम्पहा बाजारमें देखी जो एक खेतमें-से निकली थी। यह मूर्ति खण्डित है। घुटनोंके नीचेका भाग टूट गया है। यह सर्वतोभद्रिका है। अब यहाँ जैन मन्दिर भी बन गया है। और वह मूर्ति मन्दिरमें रख दी गयी है। यह मूर्ति ई. सन्से पूर्वकी प्रतीत होती है।

इसी प्रकार शहजादपुरमें एक जैन मन्दिर है। एक अनुश्रुतिके अनुसार प्राचीन कालमें यहाँ दो सौ जैन मन्दिर थे। किन्तु अब वहाँ जैनका एक भी घर नहीं रहा। यह स्थान भरवारीसे २७ कि. मी. दूर है। कविवर विनोदीलाल इसी स्थानके निवासी थे। बनारसी विलासमें भी इन कविवरकी चर्चा है। इनकी कई रचनाएँ अब तक मिलती हैं, जैसे तीन लोकका पाठ, नेमिनाथका विवाह आदि।

दारानगरमें भी एक प्राचीन मन्दिर है।

पालीमें एक प्राचीन मन्दिर था। किन्तु यमुनाकी बाढ़में वह बह गया। उसके भग्नावशेष बचे हैं। नया मन्दिर बन गया है। प्रतिमाएँ अत्यन्त प्राचीन हैं।

व्यवस्था

पभोसा क्षेत्रकी व्यवस्था इलाहाबाद जैन पंचायतके आधीन है। धर्मशालाके पास गाँव है। उसमें २०-२५ घर किसानोंके हैं। वे यहाँ खेती द्वारा अपना निर्वाह करते हैं। पहले यह सारी भूमि मन्दिरकी थी, किन्तु व्यवस्था सम्बन्धी शिथिलताके कारण इस भूमिपर किसानोंने अपना अधिकार कर लिया है।

वार्षिक मेला

क्षेत्रपर वार्षिक उत्सव चैत सुदी पूर्णमासीको होता है।

कोशल जनपद

अयोध्या
रतनपुरी
त्रिलोकपुर
श्रावस्ती
काकन्दी
ककुभग्राम
पावा (नवीन)

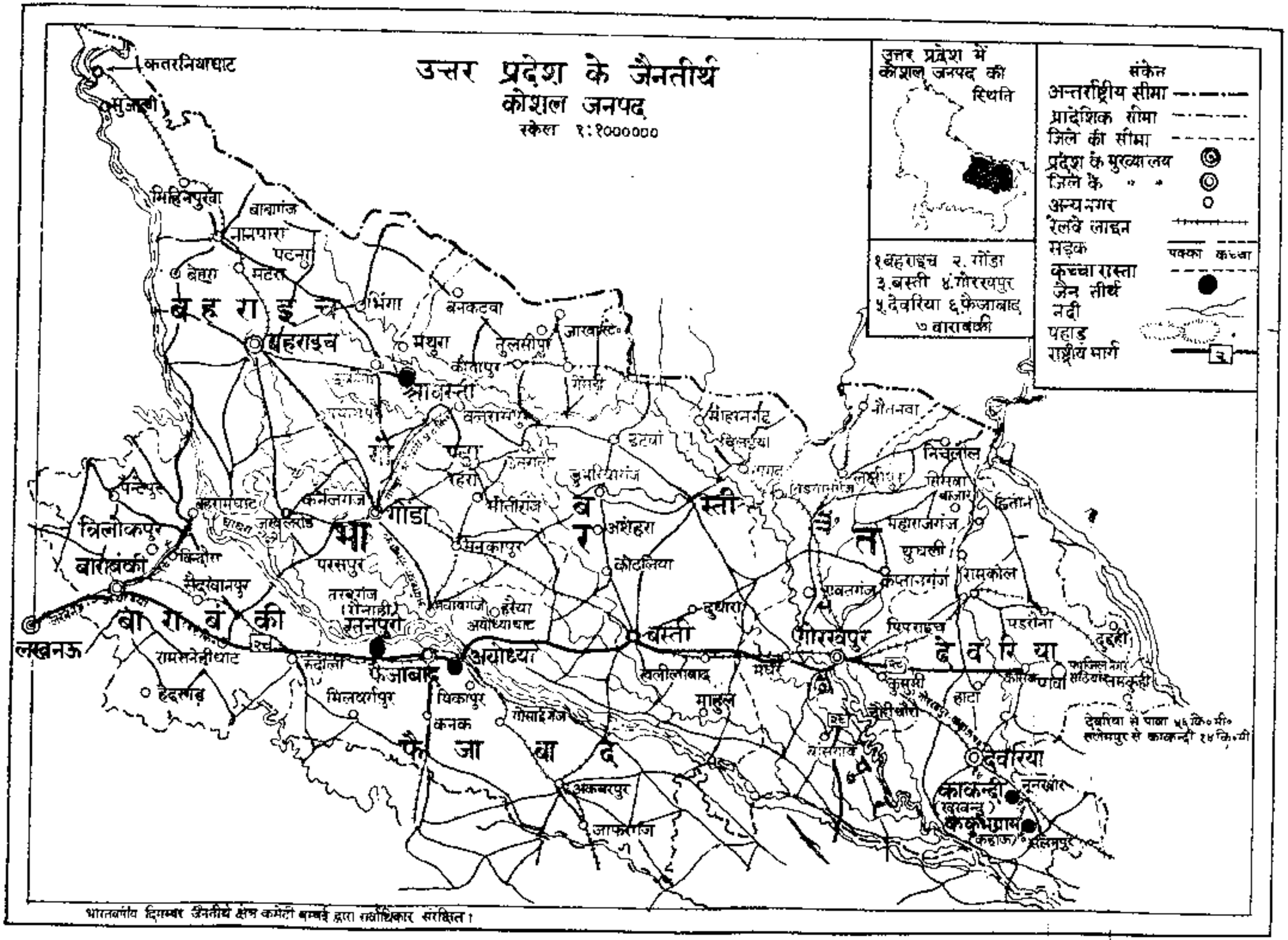

१. भारत के महासर्वेक्षक की अनुज्ञानुसार भारतीय सर्वेक्षण विभागीय मानचित्र पर आधारित। © भारत सरकार का प्रतिलिप्यधिकार, १९७१

२. मानचित्र में दिये गये नामों का अक्षर विन्यास विभिन्न सूत्रों से लिया गया है।

अयोध्या

मार्ग

अयोध्या पूर्वी उत्तरप्रदेशमें फैजाबाद जिलेमें एक प्राचीन नगरी है। यह सड़क मार्गसे लखनऊसे १३९ कि. मी., वाराणसीसे १९२ कि. मी., इलाहाबादसे १६० कि. मी. और फैजाबादसे ५ कि. मी., है। दिल्ली-स्यालदा मेन लाइनपर अयोध्या उत्तर रेलवेका स्टेशन है। मुगलसराय, वाराणसी और लखनऊसे यहाँ सीधी गाड़ियाँ आती हैं। गोरखपुरकी ओरसे आनेवाले यात्रियोंको मनकापुर स्टेशनपर गाड़ी बदलनी पड़ती है। फिर वहाँसे कटरा स्टेशन आना पड़ता है। यह सरयू नदीके दूसरे तट पर है। सरयूपर पक्का पुल है। अयोध्या स्टेशनसे राटागंज मुहल्ला १॥ कि. मी. और कटरा मुहल्ला ३ कि. मी. है। दोनों स्थानोंपर जैन धर्मशाला हैं। रिक्शे मिलते हैं।

शाश्वत तीर्थ

जैन मान्यताके अनुसार यह शाश्वत नगरी है। प्रथम तीर्थंकर भगवान् ऋषभदेवके गर्भ और जन्म कल्याणक तथा दूसरे तीर्थंकर भगवान् अजितनाथ, चौथे तीर्थंकर भगवान् अभिनन्दन-नाथ, पाँचवें तीर्थंकर भगवान् सुमतिनाथ और चौदहवें तीर्थंकर भगवान् अनन्तनाथ इन चारों तीर्थंकरोंके गर्भ, जन्म, दीक्षा और केवलज्ञान कल्याणक इस प्रकार पाँच तीर्थंकरोंके १८ कल्याणक मनानेका सौभाग्य इस पुण्य नगरीको प्राप्त हुआ है। इस दृष्टिसे इसे तीर्थराज कहा जा सकता है।

जैन वाङ्मयके प्रसिद्ध ग्रन्थ 'तिलोयपण्णत्ति' में इस प्रसंगमें निम्नलिखित उल्लेख हैं—

> जादो हु अवज्झाए उसहो, मरुदेवि णाभिराएहिं।
> चेत्तासिय णवमीए णक्खत्ते उत्तरासाढ़े ॥ तिलोय० ४।५२६।

अर्थात् अयोध्या नगरीमें ऋषभदेवका जन्म, माता मरुदेवी और पिता नाभिरायसे चैत्र कृष्णा ९ को उत्तराषाढ़ नक्षत्रमें हुआ।

> माघस्स सुक्क पक्खे रोहिणि रिक्खम्मि दसमिदि वसम्मि।
> साकेदे अजियजिणो जादो जियसत्तु विजयाहिं ॥ तिलोय० ४।५२७

—साकेतमें अजितनाथ जिनेन्द्रका जन्म माता विजया और पिता जितशत्रुसे माघ शुक्ला १० को रोहिणी नक्षत्रमें हुआ।

> माघस्स वारसीए सिदम्मि, पक्खे पुणव्वसूरिक्खे।
> संवर सिद्धत्थाहिं साकेदे णंदणो जादो ॥ तिलोय पण्णत्ति ॥४।५२९

—अभिनन्दननाथ माता सिद्धार्था और पिता संवरके घरमें साकेतमें माघ शुक्ला १२ को पुनर्वसु नक्षत्रमें उत्पन्न हुए।

> मेघप्पहेण सुमई साकेदपुरम्मि मंगलाए य।
> सावण सुक्के यारसि दिवसम्मि मघासु संजणिदो ॥
> —तिलोयपण्णत्ति ४।५३०

—साकेतपुरीमें माता मंगला और पिता मेघप्रभसे श्रावण शुक्ला ११ को मघा नक्षत्रमें सुमतिनाथ तीर्थंकरका जन्म हुआ।

जेठस्स बारसीए किण्हाए रेवदीसु य अणंतो।
साकेदपुरे जादो सव्वजसासोहसेणेहिं ॥
—तिलोय० ४।५३९

—अनन्तनाथ जिनेश्वरका जन्म साकेतपुरमें सर्वयशा माता और सिंहसेन पितासे ज्येष्ठ कृष्णा १२ को रेवती नक्षत्रमें हुआ।

इसी प्रकारके उल्लेख उत्तर पुराण सर्ग ४८, पद्मपुराण सर्ग २०, हरिवंश पुराण सर्ग ६० में मिलते हैं, जिनसे सिद्ध होता है कि पाँच तीर्थंकरोंका जन्म अयोध्यामें हुआ।

जैन साहित्यमें अयोध्याके अनेकों नाम मिलते हैं, जैसे अयुध्या, अयोध्या, साकेत, कोसला, रामपुरी, विनीता, विशाखा। जैन पुराणोंमें इन नामोंके कारण भी दिये हैं। वह अयोध्या[1] कहलाती थी, क्योंकि कोई शत्रु उससे युद्ध नहीं कर सकता था।

उसको साकेत इसलिए कहते थे, क्योंकि उसमें सुन्दर-सुन्दर मकान थे[2]। अथवा सुर-असुर आदि तीनों जगत्‌के जीव वहाँ सबसे पहले एक साथ पहुँचे थे[3]।

वह सुकोशल देशमें थी, अतः वह सुकोशला[4] कहलाने लगी।

उसका नाम विनीता[5] भी था, क्योंकि उसमें शिक्षित विनयी पुरुष बहुत थे।

यह नगरी प्रारम्भ से ही जैनधर्मकी केन्द्र रही है। यहाँ अनेक बार भगवान् ऋषभदेवका समवसरण आया था। अन्य तीर्थंकर भी यहाँ अनेक बार पधारे और उनकी लोक-कल्याणकारी दिव्य ध्वनि सुनकर अयोध्यावासियोंने आत्म-कल्याण किया।

यहाँ श्री रामचन्द्रजीके कालमें देशभूषण कुलभूषण केवली भगवान् पधारे थे और वे महेन्द्रोद्यान वनमें ठहरे थे[6]।

मन्वादि चारणऋद्धिधारी सप्तर्षि मथुरामें चातुर्मास करते समय यहाँ कई बार पधारे थे और सती सीताके घर आहार लिया था[7]। कोटिवर्ष नरेश चिलातने यहाँके सुभूमिभाग उद्यानमें भगवान् महावीरके निकट मुनि-दीक्षा ली थी।

भट्टारक ज्ञानसागरजी (१६वीं शताब्दीका अन्तिम चरण और १७वीं शताब्दीका प्रथम चरण) ने अयोध्याका उल्लेख 'तीर्थ वन्दन संग्रह'में इस प्रकार किया है—

कोशल देश कृपाल नयर अयोध्या नामह।
नाभिराय वृषभेश भरत राय अधिकारह।

१. आदिपुराण पर्व १२, श्लोक ७६।
२. आदिपुराण पर्व १२, श्लोक ७७।
३. हरिवंश पुराण पर्व ८, श्लोक १५०।
४. आदिपुराण पर्व १२, श्लोक ७७।
५. आदिपुराण पर्व १२, श्लोक ७८।
६. पद्मपुराण ८५।१३६।
७. पद्मपुराण ९२।७८।

अन्य जिनेश अनेक सगर चक्राधिप मंडित ।
दशरथ सुत रघुवीर लक्ष्मण रिपुकुल खंडित ॥
जिनवर भवन प्रचंड तिहां पुण्यक्षेत्र जगि जाणिये ।
ब्रह्म ज्ञानसागर वदति श्री जिन वृषभ बखाणिये ॥८१॥

ज्ञानसागरजीके कथनानुसार यहाँ विशाल जिन मंदिर थे ।

अयोध्याकी रचना और महत्त्व

आचार्य जिनसेन कृत हरिवंश पुराणके अनुसार जब भोगभूमिका अन्त हुआ, उस समय कल्पवृक्ष नष्ट हो गये । केवल एक कल्पवृक्ष अवशिष्ट रह गया, जिसमें चौदहवें कुलकर अथवा मनु नाभिराय रहते थे । यही नाभिरायका भवन था । इसका नाम सर्वतोभद्र प्रासाद था । यह ८१ खण्ड का था । इसके चारों ओर कोट, वापिका और उद्यान थे[1] ।

जब प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव गर्भमें आनेवाले थे, तब इन्द्रने कुवेरको त्रिलोकीनाथ भगवान्‌के उपयुक्त नगरीकी रचनाका आदेश दिया । फलत: दोनोंने अयोध्याकी रचना की । उस समय लोग जहाँ तहाँ बिखरे हुए थे । देवोंने उन सबको लाकर उस नगरीमें बसाया और सबकी सुविधाके लिए उपयोगी स्थानोंकी रचना की । इन्द्रने शुभ मुहूर्त-नक्षत्रमें प्रथम ही मांगलिक कार्य किया । उन्होंने अयोध्यापुरीके बीचमें जिनमन्दिरकी रचना की । फिर चारों दिशाओंमें भी जिन-मन्दिरोंका निर्माण किया । देवोंने उस नगरीको वप्र, प्राकार और परिखासे सुशोभित किया था । कोटके चारों ओर चार गोपुर बने हुए थे । यह बारह योजन लम्बी और नौ योजन चौड़ी थी । यह संसारकी आद्य नगरी[2] थी । वह अत्यन्त सुन्दर थी । जिस नगरीकी रचना करनेवाले कारीगर स्वर्गके देव हों, अधिकारी सूत्रधार इन्द्र हों और भवन बनानेके लिए सम्पूर्ण पृथ्वी पड़ी हो, उस नगरीकी सुन्दरताका क्या वर्णन हो सकता है[3] ।

इसी नगरीमें भगवान् ऋषभदेवने आषाढ़ कृष्ण प्रतिपदाको कृतयुग अथवा कर्मयुगका प्रारम्भ किया । उन्होंने यहींपर सबसे पहले असि, मसि, कृषि, विद्या, शिल्प और वाणिज्य इन छह कर्मोंका ज्ञान समाजको दिया था । यहींपर उन्होंने अपनी ब्राह्मी और सुन्दरी पुत्रियोंके माध्यमसे लिपि और अंक विद्याका आविष्कार किया था । अपने भरत आदि सौ पुत्रोंको बहत्तर कलाओंका शिक्षण भी इन्होंने यहीं दिया था । सामाजिक व्यवस्थाके लिए क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र वर्णकी स्थापना उन्होंने यहीं की । राजनैतिक व्यवस्थाके लिए पुर, ग्राम, खेट, नगर, आदिकी सारी व्यवस्थाएँ यहीं कीं । उन्होंने सारे राष्ट्रको ५२ जनपदों या देशोंमें विभाजित किया । राजपाट त्याग कर और निर्ग्रन्थ दिगम्बर मुनि-दीक्षा लेकर उन्होंने धर्म-मार्गको प्रशस्त करनेका सौभाग्य भी इसी महान् नगरीको प्रदान किया ।

उनके ज्येष्ठ पुत्र भरतने यहीं रहकर सम्पूर्ण भरतखण्ड पर विजय प्राप्त कर सार्वभौम साम्राज्यकी स्थापना की और सम्पूर्ण साम्राज्यका केन्द्र अयोध्याको ही बनाया । वे भरत क्षेत्रके

---

१. हरिवंश पुराण ८-४

२. विविधतीर्थकल्प (अउज्झा कल्प)

३. आदि पुराण १२-७६ ।

प्रथम चक्रवर्ती सम्राट् हुए। उनके नामपर ही हमारे देशका नाम [1]भारतवर्ष पड़ा। उन्होंने भोग-की सम्पूर्ण सामग्री की उपस्थितिमें भी अपनी निष्काम प्रवृत्ति द्वारा एक आदर्श स्थापित किया।

अयोध्या अनेक धार्मिक परम्पराओंकी उद्गम स्रोत रही है। चक्रवर्ती भरतने अयोध्याके बाहर चारों दिशाओंमें चौबीस तीर्थंकरोंकी प्रतिमाएँ और स्तूप निर्मित कराये। नगरके पूर्वद्वार पर ऋषभ और अजित की, दक्षिण द्वारपर सम्भवनाथ आदि चार तीर्थंकरों की, पश्चिम द्वारपर सुपार्श्वनाथ आदि आठ तीर्थंकरोंकी और उत्तर द्वारपर धर्मनाथ आदि दस तीर्थंकरोंकी प्रतिमाएँ और स्तूप बनवाये[2]। इस प्रकार संसारमें सर्वप्रथम मूर्तिकलाका उदय और स्तूपोंका प्रचलन भी यहींसे प्रारम्भ हुआ।

इनके अतिरिक्त सम्राट् भरतने चौबीस तीर्थंकरोंकी वन्दनाके लिए बहुमूल्य रत्नोंसे बने हुए, सुवर्णकी रस्सियोंसे बँधे हुए और जिनेन्द्रदेवकी प्रतिमाओंसे सजे हुए बहुतसे घण्टे बनवाये और ऐसे चौबीस घण्टे बाहरके दरवाजेपर, राजभवनके महाद्वार पर और गोपुर द्वारोंपर अनुक्रम-से टँगवा दिये। जब चक्रवर्ती उन द्वारोंसे आते या जाते, तब मुकुटके अग्रभागके टकरानेसे उन घण्टोंसे शब्द निकलता था और उन्हें तीर्थंकरोंका स्मरण हो आता था। भरत द्वारा लगाये हुए घण्टोंको देखकर नगरवासियोंने अपने घरोंके तोरणोंमें जिन-प्रतिमासे युक्त घण्टे बाँधने प्रारम्भ कर दिये। चूँकि भरतने बड़े घण्टों और छोटी घण्टियोंकी ये मालाएँ अरहन्त भगवान्की वन्दनाके लिए बनवायी थीं, इसलिए उनका नाम वन्दनमाला[3] पड़ गया और आजतक मांगलिक चिह्नके रूपमें वन्दनमाला या बन्दनवार बाँधी जाती है।

इसके पश्चात् मर्यादा पुरुषोत्तम रामचन्द्रके कारण अयोध्याको विशेष ख्याति प्राप्त हुई। संसारमें लोकमान्य मर्यादाओंकी रक्षा, पितृ-भक्ति, बन्धु-प्रेम, सतीत्व आदि अनेकविध आदर्शोंके निर्झर राम-चरित्रके उत्तुंग शिखरसे प्रवाहित हुए। जिन्होंने भारतीय संस्कृति और गरिमाको चारों ओरसे आप्लावित कर लिया। संसारके राज्य शासनके लिए तो राम-राज्य एक स्पृहणीय आदर्शके रूपमें आजतक स्मरण किया जाता है। धधकती हुई अग्नि-ज्वालाओंमें कूदकर भगवती सीताने अपने सतीत्वकी सार्वजनिक परीक्षा जिस आत्मविश्वास और साहसके साथ दी थी, उसने महासती सीताके निष्कलंक चरित्रकी गरिमाको लोक-लोकान्तरोंमें व्याप्त कर दिया।

इसके अतिरिक्त अन्य भी अनेकों महत्त्वपूर्ण घटनाएँ यहाँ घटित हुई, जिन्होंने लोकमानस पर अपनी गहरी छाप अंकित की। राजा वसुके राजदरबारमें नारद और पर्वतका लोकविख्यात संवाद भी यहीं हुआ था, जिसने यज्ञोंमें हिंसाका सूत्रपात किया। सगर चक्रवर्तीने भी इसीको अपनी राजधानी बनाया।

यहाँ धर्मोदय राजाके राज्यमें वसुमित्र नामक एक नगरसेठ था। वह जिनशासनमें अत्यन्त

---

१. हिमाह्वं दक्षिणं वर्षं भरताय पिता ददौ।
तस्मात्तु भारतं वर्षं तस्य नाम्ना महात्मनः॥
—मार्कण्डेय पुराण ५०-४१,
अग्नि पुराण १०-१२। वायुपुराण ३३-५२। लिंगपुराण ४२-२३। स्कन्धपुराण कौमारखण्ड ३७-५७। हरिवंशपुराण (जैन) ८-५५, १०४ व ९-२१।

२. विविध तीर्थकल्प (अउज्झाकल्प)।

३. आदिपुराण ४१।८७ से ९६। हरिवंश पुराण १२-२।

अनुरक्त था। एक रातको वह अपने निवासमें प्रतिमा योगमें ध्यानारूढ़ था। एक देव द्वेषवश उपसर्ग करके उसकी परीक्षा करने लगा। देव उसके स्त्री, पुत्र, धन-धान्य आदिको लेकर चल दिया, किन्तु श्रेष्ठी तनिक भी विचलित नहीं हुआ और अपने ध्यानमें मग्न रहा। अन्तमें देवको उसके समक्ष झुकना पड़ा। उसने क्षमा माँगी और उसे आकाशगामिनी विद्या देकर चला गया।

एक अन्य कथानक इस प्रकार है—अयोध्याके राजा सुरतकी पटरानी महादेवी थी। एक दिन राजा महारानीके मुखमण्डल पर तिलक-विन्यास कर रहा था। इतनेमें दो परम तपस्वी मासोपवासी मुनि आहारके लिए राजभवनमें पधारे। सेवकने महाराजको मुनियोंके आगमनकी सूचना दी। राजा महारानीको कहकर प्रसन्न मनसे आहार-दानके लिए गया। रानी विषय सुखमें अन्तराय समझकर जलभुन उठी। वह मुनियोंकी निन्दा करने लगी। पापके उदयसे उसके शरीरमें तत्काल कोढ़ निकल आया। राजा आहार दान देकर जब लौटा तो रानीके रूपकी यह दुर्दशा देख भोगोंसे ही विरक्त हो गया। उसने उसी समय मुनि-दीक्षा ले ली।

अयोध्या नगरीसे सम्बन्धित एक अन्य घटना इस प्रकार है—अयोध्यानरेश सीमंधरके पुत्रका नाम मृगध्वज था। वह बड़ा मांसलोलुपी था। नगरमें एक भैंसा फिरा करता था। वह बुलानेपर आ जाता और पैरोंमें लोटने लगता था। एक दिन मृगध्वजके कहनेसे मन्त्रीपुत्र और श्रेष्ठीपुत्रने उसकी टाँग काट ली और मांस खाया। राजाको जब भैंसेकी टाँग काटनेवालोंका पता लगा तो उन्होंने उन तीनोंको शूलीका दण्ड दिया। उन तीनों मित्रोंको ज्ञात हो गया। वे भयभीत होकर जंगलमें भाग गये और वहाँ मुनि-दीक्षा ले ली। मुनि बननेके बाद मृगध्वजकी भावना एकदम बदल गयी। उन्होंने घोर तपस्या की और घातिया कर्मोंका नाश कर वे अर्हन्त परमात्मा बन गये, और अन्तमें वे मुक्त हुए।

पुराण प्रसिद्ध परशुराम और कार्तवीर्यकी घटना भी यहींपर घटित हुई थी। कार्तवीर्य अयोध्याका राजा था। अयोध्याके पास जंगलमें जमदग्नि मुनिका आश्रम था। जमदग्निकी स्त्रीका नाम रेणुका था। एक दिन रेणुकाके भाई वरदत्त मुनि आये। उनका उपदेश सुनकर रेणुकाने सम्यग्दर्शन ग्रहण कर लिया। चलते समय वरदत्त मुनि अपनी बहनको कामधेनु और परशु नामक दो विद्याएँ दे गये। एक दिन कार्तवीर्य हाथी पकड़नेके लिए आया। वह आश्रममें भी आया। रेणुकाने कामधेनुकी सहायतासे राजा और उसकी सेनाको स्वादिष्ट भोजन कराया। राजा जाते समय जबर्दस्ती कामधेनुको छीन ले गया। इससे रेणुका बहुत दुखी हुई। जब उसके दोनों पुत्र श्वेतराम और महेन्द्रराम समिधा लेकर जंगलसे आये और माताको दुखी देखा तो उसने दुःखका कारण पूछा और कारण जानकर दोनों भाई परशु लेकर अयोध्या पहुँचे। कार्तवीर्यसे उनका युद्ध हुआ। श्वेतरामने परशुकी सहायतासे कार्तवीर्य और उसकी सेनाको नष्ट कर दिया और अयोध्याके राज्यपर अधिकार कर लिया। तबसे श्वेतरामका नाम परशुराम हो गया। उसने सात बार पृथ्वीको क्षत्रिय रहित किया। पश्चात् सुभूमने उसका संहार कर अयोध्या पर अधिकार कर लिया और भरतक्षेत्रके छहों खण्डोंको जीतकर चक्रवर्ती बना।

वर्तमान जैन मन्दिर

यह तीर्थराज है। यहाँ दो मन्दिर और पाँच टोंकें हैं। कटरा मुहल्लेमें प्राचीन दिगम्बर जैन मन्दिर है। मन्दिरके निकट एक जैनधर्मशाला है।

इस मन्दिरकी मुख्य वेदीमें भगवान् आदिनाथकी श्वेत पाषाणकी पद्मासन प्रतिमा विराज-

मान है। अवगाहना २ फुट ९ इंच है। यह प्रतिमा वि० संवत् २००९ में प्रतिष्ठित हुई थी। इसके बायीं ओर भगवान् अजितनाथ और दायीं ओर भगवान् सुमतिनाथकी प्रतिमाएँ विराजमान हैं। इनके अतिरिक्त इस वेदीमें १८ धातु प्रतिमाएँ और १ पाषाण प्रतिमा है।

इन मूर्तियोंमें सबसे प्राचीन मूर्ति भगवान् अजितनाथकी है। इसके पादपीठपर वि० सं० १५४८ का अभिलेख है। इसकी अवगाहना १८ इंच है।

इस वेदीके निकटस्थ दूसरी वेदीमें तीन प्रतिमाएँ हैं। तीनोंपर कोई लांछन नहीं है। परम्परागत अनुश्रुतिके अनुसार मुख्य प्रतिमा भगवान् अभिनन्दन नाथकी कही जाती है। इसके मूर्तिलेखके अनुसार इसकी प्रतिष्ठा संवत् १२२४ आषाढ़ सुदी ८ को हुई थी। एक कृष्ण वर्णकी वि० सं० १६२६ की साढ़े नौ इंच ऊँची प्रतिमा है।

इस वेदीसे आगे सहनमें एक टोंक बनी हुई है। इसमें भगवान् सुमतिनाथके चरण बने हुए हैं। चरणोंका वर्ण सिलेटी है। इन चरणोंपर लेख अभिलिखित है, जिसके अनुसार इन चरणोंका जीर्णोद्धार वि० संवत् १७८१ कार्तिक सुदी १३ को ला० केशरीमल अग्रवाल दिल्ली निवासीने कराया जो नवाब आसफुद्दौलाके खजांची थे। वि० संवत् १९५६ में दिगम्बर जैन पंचायत, लखनऊकी सम्मतिसे पुनः इसका जीर्णोद्धार किया गया।

तीसरी वेदी भगवान् आदिनाथकी है। श्वेत संगमरमरकी ९ फुट उत्तुंग भगवान् आदिनाथकी मनोज्ञ खड्गासन प्रतिमा विराजमान है। इसके दोनों ओर मुनि भरत और मुनि बाहुबलीकी ५ फुट ६ इंच अवगाहनावाली कायोत्सर्ग मुद्रावाली प्रतिमाएँ आसीन हैं। इन तीनों प्रतिमाओंकी प्रतिष्ठा वि० सं० २००९ में हुई है।

अन्तिम वेदीमें मुख्य प्रतिमा भगवान् पार्श्वनाथ की है। यह १५ इंच अवगाहनावाली है। दूसरी प्रतिमा ९ इंच ऊँची भगवान् चन्द्रप्रभकी है। चरण चौकीपर लांछन लेख है। दोनों ही वि० संवत् १५४८ की हैं।

इस मन्दिरके ऊपर विशाल शिखर है।

अनन्तनाथकी टोंक—कटरा मुहल्लासे इस टोंकके लिए पक्का मार्ग है। कुछ दूर तक कच्चा मार्ग है। यह सरयूनदीके तटपर अवस्थित है। एक कमरेमें चबूतरेपर भगवान् अनन्तनाथके चरण बने हुए हैं। चरणोंका माप साढ़े सात इंच है। कमरेके ऊपर शिखर है। इस कमरेके तीन ओर बरामदे बने हुए हैं। एक कमरेमें पक्का कुँआ है। चारों ओर कम्पाउण्ड है।

चरणोंका जीर्णोद्धार लाला केशरीमलजी अग्रवाल दिल्लीने कराया था।

इस टोंकके बाहर टीले हैं और एक नाला है। पुरातत्त्व विभागकी ओरसे यहाँ खुदाई हुई थी। कनिंघमने उपलब्ध प्रमाणोंके आधार पर इसे जैन टीला कहा है।

अभिनन्दननाथकी टोंक—यह टोंक कटरा स्कूलके पास है। चरण मार्बलके हैं। टोंकके ऊपर शिखर है। चारों ओर कम्पाउण्ड है। चरणोंपर वि. सं. १७८१ में लाला केशरीमलजी द्वारा और १९५६ में दिगम्बर जैन पंचायत लखनऊकी सम्मतिसे जीर्णोद्धार होनेकी बात उत्कीर्ण है। ऐसा ही लेख सभी टोंकों के चरणोंपर लिखा हुआ है।

शीतलनाथकी टोंक—पूर्वोक्त टोंकके पास ही यह टोंक बनी हुई है। इसमें साढ़े चार इंच लम्बे चरण विराजमान हैं, जो किन्हीं शीतलनाथ नामक मुनिके हैं। इनकी स्थापना वि. संवत् १७०४ में हुई थी। टोंकके चारों ओर चहारदीवारी है और ऊपर शिखर बना हुआ है।

अजितनाथकी टोंक—यह टोंक बेगमपुरा मुहल्लेमें है। चरण मार्बलके हैं। इस गुमटीमें काफी खुली जगह है। ऊपर शिखर है। जीर्णोद्धार सम्बन्धी लेख लिखा हुआ है।

आदिनाथकी टोंक—बक्सरिया टोला, पुराना थाना मुहल्लामें स्थित यह टोंक १६ सीढ़ियाँ चढ़कर ऊपरकी मंजिलपर बनी हुई है। कहा जाता है कि भगवान् आदिनाथकी पवित्र जन्मभूमि यहीं थी। इस टोंकका भी बड़ा अद्भुत इतिहास बताया जाता है। कहते हैं, भगवान् आदिनाथके जन्मस्थानपर बने हुए जैन मन्दिरको तुड़वाकर नवाबी शासनमें मसजिद बनवायी जा रही थी। शाही खजांची लाला केशरीमलजी अग्रवाल दिल्लीवालोंने यहाँके नवाब फैजउद्दीनसे फरियाद की—'हुजूर ! यह स्थान तो भगवान् आदिनाथका जन्मस्थान है। अतः यहाँ तो उनका मन्दिर होना चाहिए।' इसपर नवाबने उनसे प्रमाण माँगा। तब उन्होंने जवाब दिया—'अमुक स्थानपर खुदवाकर देख लिया जाये। वहाँ घीका एक चौमुखा दीपक, स्वस्तिक और नारियल मिलेंगे।' नवाबके हुक्मसे वह स्थान खोदा गया तो ये चीजें उसी प्रकार मिलीं। नवाबने प्रभावित होकर मसजिदका काम रुकवा दिया और जैनोंको अपना मन्दिर पुनः बनानेकी आज्ञा दे दी। जैनोंको इससे बड़ा हर्ष हुआ। उन्होंने वहाँ मूर्तिके स्थानपर केवल चरण ही विराजमान किये। सम्भव है, उन्होंने सुरक्षाकी दृष्टिसे ही ऐसा किया था।

इस टोंक और उससे सटे हुए भग्नावशेषोंके देखनेसे ऐसा प्रतीत होता है कि उस कालमें यह प्राचीन जैन मन्दिर बहुत विशाल था। जितने क्षेत्रमें मसजिदके खण्डहर बिखरे पड़े हैं, वह समस्त क्षेत्र जैन मन्दिरका था। किन्तु नवाबने मसजिदका कार्य रोककर जैनोंको अपना मन्दिर पुनः निर्माण करनेकी आज्ञा दे दी तो जैनोंने मसजिदके निर्मित भागको छोड़कर मन्दिरके थोड़े-से स्थानपर टोंक बना ली और उसमें प्रतिमाकी बजाय भगवान्के चरण विराजमान कर लिये। यह टोंक लाला केशरीमलजी ने बनवायी थी।

हनुमानगढ़ी—अयोध्याका एक प्रसिद्ध हिन्दू मन्दिर है। इसके सम्बन्धमें यह किंवदन्ती प्रचलित है कि पहले यह एक विशाल जैन मन्दिर था। इसमें एक बहुत बड़ा घण्टा लगा हुआ था। कहा जाता है, उसकी आवाज गोंडा तक सुनाई पड़ती थी। अब तो इस मन्दिरमें हनुमान्की माता अंजनीकी मूर्ति बनी हुई है।

रायगंज मुहल्लामें भी एक विशाल मन्दिर कुछ वर्ष पहले निर्मित हुआ है। बीचमें मन्दिर बना हुआ है। उसके सामने काफी बड़े भू-भागमें पुष्प-वाटिका बनी हुई है। बाहर बहुत ऊँचा फाटक है। उसके दोनों ओर धर्मशाला है। मन्दिर और उद्यानको घेरे हुए ऊँचा प्राकार है। प्राकारके भीतर एक पक्का कुआँ बना है। फाटकके बाहर भी एक पक्का कुआँ है। फाटकके आगे एक कम्पाउण्ड है।

मन्दिरमें २८ फुट अवगाहनावाली भगवान् ऋषभदेवकी कायोत्सर्गासन प्रतिमा विराजमान है। प्रतिमा श्वेत पाषाणकी है किन्तु तीन स्थानोंपर काली धारी पड़ी हुई है। प्रतिमा एक चौकीपर विराजमान है। इस प्रतिमाके दायें-बायें दो-दो ऊँची वेदियाँ हैं, जिनमें एक वेदीपर भगवान् अजितनाथ और अभिनन्दननाथ तथा दूसरी वेदीपर सुमतिनाथ और अनन्तनाथकी पाँच-पाँच फुट ऊँची मूर्तियाँ खड्गासन मुद्रामें विराजमान हैं। एक वेदीपर भगवान् चन्द्रप्रभकी प्रतिमा विराजमान है।

इन मूर्तियोंकी प्रतिष्ठा आचार्यरत्न श्री देशभूषणजी महाराजकी प्रेरणासे सन् १९६५ में भव्य समारोहके साथ हुई थी।

ये सभी मन्दिर दिगम्बर सम्प्रदाय के हैं। मुहल्ला कटरामें एक श्वेताम्बर मन्दिर है जो आधुनिक है।

इतिहास

प्राचीन कालमें अयोध्या सांस्कृतिक चेतनाका केन्द्र रही है। साथ ही यह राजनीतिक केन्द्र भी थी। सर्वप्रथम यह इक्ष्वाकुवंशी नरेशोंकी राजधानी रही। अन्तिम मनुसे लेकर इक्ष्वाकुवंशी ११२ पीढ़ियोंने इस नगरपर शासन किया। इक्ष्वाकुवंशी पश्चाद्वर्ती कालमें सूर्यवंशी और पुरुवंशी कहलाने लगे। अयोध्याका राज्य कौशल कहलाता था। भगवान् महावीरसे पहले जिन सोलह जनपदोंकी चर्चा आती है, उनमें कोशल भी एक प्रसिद्ध जनपद था। भगवान् महावीरके कालमें कोशल राज्य दो भागोंमें बँट गया—उत्तर कोशल और दक्षिण कोशल। सरयू नदी इन दोनोंकी सीमा बनाती थी। दक्षिण कोशलकी राजधानी अयोध्या रही और उत्तर कोशलकी श्रावस्ती। आगे चलकर गुप्त सम्राट् चन्द्रगुप्त विक्रमादित्यके कालमें अयोध्या साहित्य और कलाकी केन्द्र बन गयी। चीनी यात्री ह्वेन्त्सांगके समयमें इस नगरका विस्तार १० ली (४ मील) था। बारहवीं शताब्दीके बाद भार जातिके राजाओंका इसपर अधिकार हो गया। ये राजा जैनधर्मावलम्बी थे। इनके कारण सारे अवधमें जैनधर्मका खूब प्रचार रहा। इन राजाओंको मुसलमानों ने परास्त किया।

सर्वमान्य तीर्थ

जैनोंकी तरह हिन्दू और बौद्ध लोग भी अयोध्याको शाश्वत नगरी मानते हैं। हिन्दुओंकी मान्यता है कि अयोध्या सप्त महापुरियोंमें प्रथम पुरी है। किन्तु हिन्दुओं में इस तीर्थकी मान्यता मुख्यतः भगवान् रामके कारण है। इसलिए यहाँके अधिकांश हिन्दू मन्दिर राम और उनके परिकरसे सम्बन्धित हैं। हिन्दुओंके मुख्य मन्दिरोंमें कनक भवन, जिसे सीताजीका महल कहते हैं और राम-मन्दिर, जो रामकी जन्मभूमि कहलाता है, हैं।

यहाँ एक दन्तून कुण्ड है। हिन्दू मानते हैं कि रामचन्द्र यहीं दाँतुन करते थे। बौद्धोंकी मान्यता है कि बुद्धने यहीं अपनी दाँतुन गाड़ दी थी, वह बादमें उग आयी। चीनी यात्री फाह्यानने भी उसे देखा था। सिख लोग मानते हैं कि गुरु गोविन्दसिंहने अयोध्याकी तीर्थयात्रा की थी। इस यात्राकी स्मृतिमें एक बड़ा गुरुद्वारा बना हुआ है। मुसलमान अयोध्याको 'खुर्दमक्का' और 'सिद्धोंकी सराय' मानते हैं। फकीर अब्बास और मुसाआशिकान नामक दो मुसलमान सन्तोंकी कब्रें यहाँपर हैं, जहाँ अनेक मुसलमान जियारत करने आते हैं।

इस प्रकार अयोध्या सर्वधर्ममान्य तीर्थस्थान है।

वार्षिक मेला—

क्षेत्रका वार्षिक मेला भगवान् ऋषभदेवकी जन्मतिथि चैत्र कृष्णा ९ को भरता है। भगवान्‌की सवारी कटरा मुहल्लेके जैनमन्दिरसे रायगंजके जैनमन्दिरमें आती है।

रतनपुरी

मार्ग

श्री दिगम्बर जैन क्षेत्र रतनपुरी जिला फैजाबाद में अयोध्या से बाराबंकीवाली सड़कपर २४ कि. मी. दूर है। सड़क से लगभग २ कि. मी. कच्चा मार्ग है। सोहावल स्टेशनसे

यह २ कि. मी. है। स्टेशन से लगभग डेढ़ कि. मी. तक सड़क पक्की है, शेष कच्चा रास्ता है। रौनाही छोटा-सा गाँव है। गाँव के बीच में सरयू के निकट दो मन्दिर दिगम्बर समाज के हैं। जैन धर्मशाला भी है। एक श्वेताम्बर मन्दिर गाँव के बाहर बना हुआ है। फैजाबाद से सिटी बस तथा अन्य बसें रौनाही तक बराबर मिलती हैं। रौनाही के चौराहे पर उतरकर पैदल या रिक्शे द्वारा मन्दिर तक जा सकते हैं।

तीर्थक्षेत्र

यह स्थान पन्द्रहवें तीर्थंकर भगवान् धर्मनाथकी जन्मभूमि है। 'तिलोयपण्णत्ति' में आचार्य यतिवृषभ इस सम्बन्धमें इस प्रकार उल्लेख करते हैं—

रयणपुरे धम्मजिणो भाणु णरिंदेण सुव्वदाए य।
माघसिद तेरसीए जादो पुस्सम्मि णक्खत्ते ।।४५४०।।

अर्थात् रतनपुरमें धर्मनाथ जिनेश्वर महाराज भानु और महारानी सुव्रतासे माघ शुक्ला १३ को पुष्य नक्षत्रमें उत्पन्न हुए।

इसी प्रकार रविषेण कृत पद्मपुराण ९८।१४४, जयसिंहनन्दी कृत वरांगचरित २७।८४, गुणभद्र कृत उत्तरपुराण ६१।१३ में भी भगवान् धर्मनाथ का जन्म रतनपुर में बताया है।

इस नगरमें भगवान्के चार कल्याणक हुए थे—गर्भ, जन्म, दीक्षा, केवलज्ञान। केवलज्ञान होनेके पश्चात् भगवान्का प्रथम समवसरण यहीं लगा था और प्रथम दिव्यध्वनि यहीं खिरी थी। उन्होंने यहींपर धर्म-चक्र प्रवर्तन किया था।

अनुश्रुति

आचार्य जिनप्रभ सूरिने 'विविधतीर्थकल्प' नामक ग्रन्थमें रत्नपुरको रत्नवाहपुर कहा है और इसी नामका कल्प भी दिया है। इसमें उन्होंने एक रोचक अनुश्रुतिका विवरण दिया है जो इस नगरसे सम्बन्धित है। वह अनुश्रुति इस प्रकार है—

इस नगरमें एक कुम्भकार रहता था। उसका एक पुत्र था, जिसे क्रीड़ाका शौक था। वह कुछ काम नहीं करता था, केवल जुआ आदि खेलोंमें लगा रहता था। वहाँ एक नागकुमार देव खेलका शौकीन होनेके कारण मनुष्यका रूप धारण करके आ जाता और कुम्हारके पुत्र-के साथ खेला करता। कुम्भकार अपने पुत्रसे मिट्टी खोदने तथा अन्य कामोंको करनेके लिए उसपर अधिक सख्ती करने लगता तो उसे बाध्य होकर काम करना पड़ता था। इसलिए खेलमें नागा पड़ने लगा। एक दिन नागकुमारने उससे पूछा—तुम पहले तो नियमित रूपसे खेलने आते थे, अब नागा क्यों होता है? कुम्हार-पुत्र बोला—'क्या बताऊँ, पेटके लिए काम करना पड़ता है। न करूँ तो पिता डाँटते हैं।' नागकुमारने सोचकर उत्तर दिया, "तुम चिन्ता न करो। मैं साँपका रूप बनाकर लेट जाया करूँगा। तुम फावड़े से मेरी पूँछ काट दिया करना। वह सोने की हो जायेगी।'

कुम्हार-पुत्र प्रतिदिन ऐसा ही करने लगा। उसे हर रोज सोना प्राप्त होने लगा। सोनेको लाकर वह अपने पिताको दे देता था। पिता उससे पूछता—'तुम रोज-रोज सोना कहाँसे लाया करते हो।' किन्तु वह उत्तर न देकर टाल जाता था। एक दिन उसके पिताने उसे उत्तर देनेके लिए बाध्य किया तो उसने सत्य बात बता दी। कुम्हारके मनमें लोभ पैदा हो गया। वह बोला—'आज अपने साथ मुझे ले चलना। तू तो मूर्ख है जो थोड़ी-सी पूँछ काटता है। जितना

ज्यादा काटेगा, उतना ज्यादा सोना मिलेगा।'

उस दिन कुम्हार अपने लड़केके साथ गया। जब नागकुमार साँप बन गया तो कुम्हार-ने फावड़ेसे उसके दो टुकड़े कर दिये। नागकुमारको बड़ा क्रोध आया। उसने कुम्हार-पुत्रको डाँटते हुए कहा—'तुमने रहस्य खोलकर मेरे साथ विश्वासघात किया है। अब उसका परिणाम भी भोगो।' यों कहकर उसने पुत्र और पिता दोनोंको काट लिया। वे दोनों तत्काल मर गये।

तबसे लेकर चाक द्वारा आजीविका करनेवाला कोई कुम्हार इस गाँवमें नहीं रहता। इस गाँवके लोग बरतन-भाण्ड दूसरे गाँवसे लाते हैं। अब भी वहाँ नागमूर्ति से वेष्टित भगवान् धर्मनाथकी पूजा की जाती है। और जब वर्षा नहीं होती, तब अजैन ग्रामीण लोग धर्मनाथको धर्मराज मानकर दूधसे उनका अभिषेक करते हैं। उनकी मान्यता है कि ऐसा करनेसे तत्काल वर्षा होने लगती है।

वर्तमान मन्दिर

यहाँ बस्तीमें दो दिगम्बर जैनमन्दिर हैं। एक मन्दिरमें मूर्तियाँ हैं। कहा जाता है कि यहाँ भगवान् धर्मनाथका जन्मकल्याणक हुआ था। मूलनायक भगवान् धर्मनाथ की श्वेत पाषाण-की ३ फुट उत्तुंग पद्मासन प्रतिमा है। नीचे आसनपर वज्रका लांछन अंकित है। मूर्ति-लेख भी है, जिसके अनुसार इसकी प्रतिष्ठा वि. संवत् २००७ में हुई थी।

बादामी वर्णकी १ फुट अवगाहनावाली भगवान् महावीरकी पद्मासन प्रतिमा वी. नि. संवत् २४६३ की है। एक धातु प्रतिमा धर्मनाथ स्वामीकी है। अवगाहना १ फुट है। एक धातु प्रतिमा भगवान् पार्श्वनाथकी है। अवगाहना लगभग ८ इंच है। यह अभिलिखित है। अभिलेख-के अनुसार इसकी प्रतिष्ठा वि. संवत् ११९० में की गयी थी। इस प्रकार यह प्रतिमा लगभग साढ़े आठ सौ वर्ष प्राचीन है।

एक अठपहलू पीतलकी प्लेटमें भगवान्‌के चरण अंकित हैं।

मन्दिरके सामने धर्मशाला है, जिसमें ५ कमरे बने हुए हैं। मन्दिरका एक मकान है, जिसमें मन्दिरका माली रहता है। धर्मशालाके पीछे लगभग १००० वर्गगज जमीन भी मन्दिर-की है।

इस मन्दिरसे कुछ चलकर दूसरा मन्दिर है। यहाँ भगवान् धर्मनाथका गर्भकल्याणक होना बताया जाता है। इसमें मन्दिरकी छतपर शिखर बना हुआ है, जिसमें एक ओर शिखरकी दीवालमें आला-सा बना हुआ है। उसमें संगमरमर निर्मित भगवान्‌के चरण विराजमान हैं। इन्हें वि. सं. २००९ में विराजमान किया गया था।

चरणोंके ऊपर दीवालमें एक शिलालेख लगा हुआ है, जिसमें एक पंक्तिका यह लेख है—'श्री धर्मतीर्थके कर्त्ता श्री धर्मनाथ स्वामीका गर्भकल्याणक है रत्नपुर नगरी श्री।'

इस मन्दिरकी रचना-शैलीसे, वर्तमानमें इसे टोंक कहनेके बावजूद, ऐसा लगता है कि यह पहले मन्दिर रहा होगा। मन्दिरके गर्भगृहका द्वार चिन दिया गया है और ऊपर शिखरमें ही स्थान निकालकर चरण विराजमान कर दिये गये हैं।

नगरके बाहर एक ही कम्पाउण्डमें श्वेताम्बर समाजके दो मन्दिर तथा चारों कोनों-पर चार टोंकें हैं।

त्रिलोकपुर

मार्ग

श्री नेमिनाथ दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र त्रिलोकपुर तहसील फतहपुर जिला बाराबंकीमें स्थित है। अयोध्यासे बाराबंकी सड़क मार्ग द्वारा १६७ कि. मी. है। बाराबंकीसे बिन्दौरा नहर १९ कि.. मी. पक्का मार्ग है। सड़कसे बायीं ओरको कच्चे रास्तेमें उतरकर लगभग ६ कि. मी. पैदल है। उत्तरपूर्व रेलवेकी छोटी लाइनके बिन्दौरा स्टेशनसे ५ कि. मी. पड़ता है। मार्ग कच्चा है। यहाँ जैनोंके लगभग २० घर हैं।

जैन मन्दिर

यहाँ दो दिगम्बर जैनमन्दिर हैं। एक भगवान् नेमिनाथका मन्दिर जो अतिशय क्षेत्र कहलाता है तथा दूसरा पार्श्वनाथ मन्दिर।

नेमिनाथ मन्दिर में 'मूलनायक भगवान् नेमिनाथकी श्यामवर्ण पद्मासन प्रतिमा है। इसकी अवगाहना २२ इंच है और यह कसौटीके पाषाणकी है। पादपीठपर अभिलेख है। अभिलेखके बीचमें शंख चिह्न अंकित है। अभिलेखके अनुसार इस मूर्तिका प्रतिष्ठा-काल वि. संवत् ११९७ फाल्गुन वदी ६ है।

मूर्तिमें अद्भुत आकर्षण है। इसके अतिशयों और चमत्कारोंको लेकर जनतामें नाना किंवदन्तियाँ प्रचलित हैं। कहते हैं, कभी-कभी रातमें झांझ और खड़तालकी सम्मिलित ध्वनि होती है। बाजोंके इस प्रकारके शब्द अनेक लोगोंने सुने हैं। इसी प्रकार अनन्त चतुर्दशी, दीपावली और कार्तिक शु. ६ को, जिस दिन रथयात्रा होती है, मन्दिरमें चारों ओर सुगन्ध मिलती है। कभी-कभी वेदीपर हरी लोंग और रुपये मिलते थे। वे रुपये अबतक स्थानीय एक जैन बन्धुके पास सुरक्षित हैं।

पहले यह मन्दिर कच्चा था। जब इसका जीर्णोद्धार करके पक्का बनाया जा रहा था, उस समय यहाँ बहुत चमत्कार हुए।

अनेक लोग यहाँ मनौती मनाने आते हैं।

इस प्रतिमाकी प्राप्तिका भी एक इतिहास है। यह स्थानीय तालाबमें पड़ी हुई थी। एक अजैन बन्धुको यह मिल गयी। वह बड़ा प्रसन्न हुआ। जब उसे यह ज्ञात हुआ कि यह जैन प्रतिमा है, तब उसने उसे जैनोंको दे दी और मन्दिर बनानेका आग्रह किया। जैन बन्धुओंने मिलकर यह मन्दिर बनवाया और वह मूर्ति वेदीमें विराजमान कर दी। तभीसे वह इसी मन्दिरमें विराजमान है। इस प्रतिमाकी कुछ अपनी विशेषताएँ हैं, जिनमें एक है प्रतिमाका भाव परिवर्तन। प्रातः भगवान्के मुखपर बालकके समान भोलापन टपकता है। मध्याह्नमें यौवनके अनुरूप तेज झरता है। सन्ध्याके बाद मुखपर प्रौढ़ और बुजुर्गकी तरह गम्भीरता प्रतीत होती है।

मन्दिरके ऊपर विशाल शिखर है। गर्भगृहके अतिरिक्त एक सभामण्डप बना हुआ है। मन्दिरसे बाहर एक ओर एक दालान बना है। एक पक्का कुआँ है। मुख्य द्वारकी दीवाल कच्ची बनी हुई है।

पार्श्वनाथ मन्दिर गाँवके एक कोनेपर बना हुआ है। इस मन्दिरमें भी केवल १ वेदी है। मूलनायक पार्श्वनाथकी प्रतिमा श्वेत वर्ण, पद्मासन २० इंच ऊँची है। यह वि. संवत् १५४८ में प्रतिष्ठित हुई थी।

एक पाषाण-फलकमें चन्द्रप्रभ पद्मासनमें विराजमान हैं। वर्ण हलका बादामी है। इसपर कोई अभिलेख नहीं है। अनुमानतः यह प्रतिमा १२वीं शताब्दीकी लगती है।

इस वेदीमें कुल १०६ प्रतिमाएँ हैं, जिनमें १५ पाषाणकी तथा ९२ धातुकी प्रतिमाएँ हैं। धातु-प्रतिमाओंमें १० चौबीसी हैं। इन प्रतिमाओंमें कुछ वि. सं. १५०१ और १५४८ की हैं।

मन्दिरमें गर्भगृह और सभामण्डप है। मन्दिरके बाहर जैन धर्मशाला है।

वार्षिक मेला

यहाँ सन् १९५६ से प्रतिवर्ष कार्तिक सुदी ६ को मेला लगता है।

श्रावस्ती

मार्ग

श्रावस्ती उत्तर प्रदेशके बलरामपुर-बहराइच रोडपर अवस्थित है। यह सड़क मार्गसे अयोध्यासे १०९ कि. मी. है जो इस प्रकार है—अयोध्यासे गोंडा ५० कि. मी.। गोंडासे बलरामपुर ४२ कि. मी., बलरामपुरसे श्रावस्ती १७ कि. मी.। यह प्राचीन नगर है। किन्तु अब तो यह खण्डहरोंके रूपमें बिखरा पड़ा है। इस नगरीके खण्डहर गोंडा और बहराइच जिलोंकी सीमापर 'सहेट-महेट' नामसे बिखरे पड़े हैं। ये अर्धचन्द्राकार स्थितिमें एक मील चौड़े और सवा तीन मील लम्बे क्षेत्रमें बिखरे हुए हैं। रेलमार्गसे यहाँ पहुँचनेके लिए उत्तर-पूर्वी रेलवेके गोंडा-गोरखपुर लाइनके बलरामपुर स्टेशनपर उतरना चाहिए। यहाँसे क्षेत्र पश्चिममें है। यह बलरामपुरसे बहराइच जानेवाली सड़कके किनारेपर है। एक छोटी सड़क खण्डहरों तक जाती है। सहेट-महेट पहुँचनेका सुगम साधन बलरामपुर-बहराइचके बीच चलनेवाली सरकारी बस है। इसके अलावा बलरामपुरसे टैक्सी, जीप आदि भी मिलती हैं। यहाँ ठहरनेके लिए जैनधर्मशाला बनी हुई है।

जैनतीर्थ

श्रावस्ती प्रसिद्ध कल्याणक तीर्थ है। तीसरे तीर्थंकर भगवान् सम्भवनाथके गर्भ, जन्म, तप और केवलज्ञान कल्याणक यहीं हुए थे। चारों प्रकारके देवों और मनुष्योंने इन कल्याणकोंकी पूजा और उत्सव किया था। भगवान् सम्भवनाथका प्रथम समवसरण यहीं लगा था और उन्होंने यहींपर धर्मचक्र प्रवर्तन किया था।

आर्ष ग्रन्थ तिलोयपण्णत्तिमें निम्न प्रकार उल्लेख मिलता है—

> सावित्थीए संभवदेवो य जिदारिणा सुसेणाए।
> मग्गसिर पुण्णिमाए जेट्ठारिक्खम्मि संजादो ॥५२८॥

अर्थात् श्रावस्ती नगरीमें सम्भवनाथ मगसिर शुक्ला पूर्णिमाको ज्येष्ठा नक्षत्रमें उत्पन्न हुए। उनके पिताका नाम जितारि और माताका नाम सुषेणा था।

इसी प्रकार पद्मपुराण, वरांगचरित, हरिवंशपुराण, उत्तरपुराण आदिमें भी उल्लेख मिलते हैं।

सम्भवकुमारने अपना बाल्यकाल और युवावस्था यहीं बितायी। उन्होंने राज्यशासन और सांसारिक भोगोंका भी स्वाद लिया। लेकिन एक दिन जब उन्होंने हवाके द्वारा मेघोंको गगनमें विलीन होते देखा तो उन्हें जीवनके समस्त भोगोंकी क्षणभंगुरताका एकाएक अनुभव हुआ और उन्हें संसारसे वैराग्य हो गया। फलतः मगसिर शुक्ला पूर्णमासीको श्रावस्तीके सहेतुक वनमें दीक्षा ले

ली। तब इन्द्रों, देवों और मनुष्योंने भगवान्‌का तप कल्याणक मनाया[1], चौदह वर्ष तक भगवान्‌ने घोर तप किया और जब घातियाकर्म नष्ट करके कार्तिक कृष्णा ४ को केवलज्ञान हो गया, तब भी देवों और मनुष्योंने श्रावस्ती[2] के सहेतुक वनमें बड़े उल्लासके साथ ज्ञानकल्याणकका पूजन किया। इस प्रकार इस नगरीको भगवान् सम्भवनाथके चार कल्याणक मनानेका सौभाग्य प्राप्त हुआ है। इससे यह पवित्र नगरी एक महान् तीर्थके रूपमें मान्य हो गयी।

हरिवंशपुराण (सर्ग २८ श्लोक २९) के अनुसार जितशत्रु नरेशके पुत्र मृगध्वजने श्रावस्तीके उद्यानमें मुनिदीक्षा धारण कर सिद्ध पद पाया।

करकण्डु चरिउ (पृ. १८१) में वर्णन आया है कि श्रावस्तीके प्रसिद्ध सेठ नागदत्तने स्त्री-चरित्रसे खिन्न होकर मुनि-दीक्षा ले ली और अन्तमें यहींसे मुक्ति-पद प्राप्त किया। इस प्रकार श्रावस्ती सिद्धक्षेत्र भी है।

यहाँपर भगवान् महावीरका समवसरण कई बार आया था। उनकी अमृतवाणी सुनकर श्रावस्तीके अनेक नागरिक महावीरके भक्त बन गये थे।

श्रावस्तीके सम्बन्धमें एक घटना इस प्रकार भी मिलती है—यहाँका नरेश जयसेन बौद्ध धर्मका उपासक था। शिवगुप्त उसका गुरु था। एक बार आचार्य यतिवृषभ वहाँ पधारे। राजा-प्रजा सभी उनके दर्शनार्थ गये। उनका उपदेश सुनकर राजाने जैनधर्म धारण कर लिया। शिवगुप्तको इससे बड़ा क्षोभ हुआ। वह पृथ्वीनरेश सुमतिके पास गया जो उसका शिष्य था। उसने राजासे शिकायत की। राजाने एक धूर्तको जयसेनकी हत्या करनेका कार्य सौंपा। वह धूर्त श्रावस्ती पहुँचा। उसने आचार्य यतिवृषभसे मुनि-दीक्षा ले ली। एक दिन राजा जयसेन मन्दिरमें मुनि-वन्दनाके लिए गया। जब वह नवदीक्षित मुनिके चरणोंमें झुका तो उस धूर्तने राजाकी हत्या कर दी और भाग गया। आचार्यने यह देखकर विचार किया कि लोग मेरे ऊपर हत्याका सन्देह करेंगे। अतः उन्होंने दीवालपर घटना लिखकर आत्महत्या कर ली।

—हरिषेण कथाकोष, कथा १५६।

पार्श्व परम्पराके मुनि केशीसे भगवान् महावीरके पट्ट गणधर गौतम स्वामीकी जिस भेंटका उल्लेख मिलता है, वह श्रावस्तीमें ही हुई थी। श्वेताम्बर आगमोंके अनुसार भगवान् महावीरके कई चातुर्मास भी यहाँ हुए थे। इस प्रकारके स्पष्ट उल्लेख श्वेताम्बर आगमोंमें मिलते हैं।

प्राचीन कालमें यहाँपर जैनोंके अनेक मन्दिर और स्तूप बने हुए थे। भगवान् सम्भवनाथ-का एक विशाल मन्दिर भी यहाँ निर्मित हुआ था। इस मन्दिरके सम्बन्धमें श्री जिनप्रभ सूरिने 'विविध-तीर्थ-कल्प[3]' में लिखा है—'यहाँका भगवान् सम्भवनाथका विशाल जिनभवन रत्न-निर्मित था। जिसकी रक्षा मणिभद्र यक्ष किया करता था। इस यक्षके प्रभावसे मन्दिरके किवाड़ प्रातः होते ही स्वयं खुल जाते थे और सूर्यास्त होते ही बन्द हो जाया करते थे।

इस सुन्दर जिनभवनको सुल्तान अलाउद्दीनने बहराइचकी विजयके समय तोड़ दिया[4]।

---

१. तिलोयपण्णत्ति—४।६४३, ६४६।

२. तिलोयपण्णत्ति—४।६८१।

३. श्रावस्ती नगरी कल्प।

४. भूगोल-संयुक्त प्रान्तांक, पृ. २८६।

इतिहास

आद्य तीर्थंकर ऋषभदेवने ५२ जनपदोंकी रचना की थी। उनमें एक कोशल देश भी था। कोशलके दक्षिण भागकी राजधानी साकेत या अयोध्या थी जो सरयूके दक्षिण तटपर अवस्थित थी। उत्तरी कोशलकी राजधानी श्रावस्ती थी जो अचिरावती (राप्ती) के दक्षिण तटपर स्थित थी। लगता है, कोशल देशका यह विभाजन बहुत पश्चाद्वर्ती काल में हुआ। क्योंकि भगवान् ऋषभदेवने दीक्षा लेते समय अपने सौ पुत्रोंको जिन देशोंका राज्य दिया था, उन देशोंमें कोशल देशका ही नाम आया है,। चक्रवर्ती भरतकी दिग्विजयके प्रसंगमें भी मध्यदेशमें कोशलका नाम मिलता है। परवर्ती कालमें कोशल जनपदका नाम कुलाल या कुर्णाल भी प्रसिद्ध हो गया।

महावीरसे पहले जिन सोलह महाजनपदोंकी और छह महानगरियोंकी चर्चा प्राचीन साहित्यमें मिलती है, उनमें श्रावस्तीका भी नाम है। उस समय कोशल राज्य बड़ा शक्तिशाली था। काशी और साकेतपर भी कोशलोंका अधिकार था। शाक्य संघ इन्हें अपना अधीश्वर मानता था। यह महाराज्य दक्षिणमें गंगा और पूर्व में गण्डक नदीको स्पर्श करता[2] था। इस कालमें श्रावस्तीमें एक विश्वविद्यालय भी था।

महावीरके समयमें श्रावस्तीका राजा प्रसेनजित था। वह बड़ा प्रतापी नरेश था। उसने अपनी बहनका विवाह मगध सम्राट् श्रेणिक बिम्बसारके साथ कर दिया था तथा काशी-की आय दहेजमें दे दी थी। प्रसेनजितके पुत्र विदूडभ अथवा विदूरथने राजगृहसे अपने राजनीतिक सम्बन्ध सुदृढ़ करनेके लिए अपनी पुत्री प्रभावतीका विवाह श्रेणिकके पुत्र कुणिक अथवा अजातशत्रुके साथ कर दिया। किन्तु काशीके ऊपर दोनों राज्योंका झगड़ा बराबर होता रहा। कोशलनरेशने एक बार काशीको राजगृहके प्रभाव से मुक्त कर लिया। किन्तु अजातशत्रु-ने काशीको जीतकर अपने राज्यमें मिला लिया।

प्रसेनजितके सम्बन्धमें श्वेताम्बर आगमोंमें कुछ भिन्न उल्लेख मिलता है। वहाँ प्रसेनजित-के स्थानपर प्रदेशी नाम दिया गया है। उसे पार्श्वापत्य सम्प्रदायके केशीका अनुयायी बताया गया है। बादमें वह भगवान् महावीरका अनुयायी बन गया।

बौद्धग्रन्थोंमें भी प्रसेनजितके स्थानपर पसदि नाम आया है। बौद्धग्रन्थ 'अशोकावदान'[3]में प्रसेनजितके पूर्ववर्ती और पश्चाद्वर्ती वंशधरोंके नाम मिलते हैं। उसके अनुसार व्रत (वंक) रत्नंजय, संजय, प्रसेनजित, विदूरथ, कुसलिक, सुरथ और सुमित्र इस वंशके राजा हुए। सुमित्र-को महापद्मनन्दने पराजित करके कोशलको पाटलिपुत्र साम्राज्यमें आत्मसात् कर लिया। अशोकावदान की इस वंशावलीका समर्थन अन्य सूत्रोंसे[4] भी होता है।

भरहुत में जो प्रसेनजित स्तम्भ है, वह इसी प्रसेनजितका बताया जाता है।

प्रसेनजितके साथ शाक्यवंशी क्षत्रियोंने किस प्रकार मायाचार किया, उसकी कथा अत्यन्त रोचक है। प्रसेनजितने शाक्यवंशसे एक सुन्दर कन्याकी याचना की। शाक्यलोग उसे

---

१. हरिषेण कथाकोष, कथा ८१।

२. आचार्य चतुरसेन शास्त्री—वैशाली की नगरवधू (भूमि.), पृ. ७९२।

३. Records of the Western World, Part I & II, by Rev. Beal.

४. Chronology of India, by Mrs. M. Duff.

अपनी कन्या नहीं देना चाहते थे, किन्तु उस प्रबल प्रतापी नरेशको असन्तुष्ट भी नहीं कर सकते थे। अतः उन्होंने एक दासी-पुत्रीके साथ उसका विवाह कर दिया। इसी दासी-पुत्रीसे विदूरथ का जन्म हुआ था।

एक बार विदूरथ युवराज अवस्थामें अपनी ननसाल कपिलवस्तु गया। वहाँ उसे शाक्योंके मायाचारका पता चल गया। उसने शाक्यसंघको नष्ट करनेकी प्रतिज्ञा की। घरपर आकर उसने अपने पितासे यह बात कही। इस प्रसंगपर दोनोंमें मतभेद हो गया। नौबत यहाँ तक आ पहुँची कि विदूरथने पिताको राज्यच्युत कर दिया। प्रसेनजित महारानी मल्लिकाको लेकर राजनीतिक शरण लेने राजगृह पहुँचे। किन्तु नगरके बाहर ही दोनों की मृत्यु हो गयी।

विदूरथ अपनी प्रतिज्ञाके अनुसार शाक्यसंघपर आक्रमण करने तीन बार गया। किन्तु बुद्धने तीनों बार उसे रोक दिया। चौथी बार बुद्धका विहार अन्यत्र हो गया था, उस समय विदूरथ ने शाक्यसंघ का विनाश कर दिया। जब उसकी सेना लौटकर एक नदीके किनारे पड़ाव डाले हुए थी, तभी जोरों की ओलावृष्टि हुई, नदीमें बाढ़ आ गयी और सब बह गये।[1]

भगवान् महावीरने जब दीक्षा ली, उससे प्रायः आठ माह पहले कुणाला (कोशल) देशमें भयंकर बाढ़ आयी। उसमें श्रावस्तीको बहुत क्षति पहुँची। बौद्ध अनुश्रुति है कि अनाथ पिण्डद सेठ सुदत्त की अठारह करोड़ मुद्रा अचिरावतीके किनारे गड़ी हुई थी। वे भी इस बाढ़में बह गयीं। श्वेताम्बर आगमोंके अनुसार यह बाढ़ कुरुण और उत्कुरुण नामक दो मुनियोंके शापका परिणाम थी। किन्तु कुछ समय बाद यह नगरी पुनः धनधान्यसे परिपूर्ण हो गयी। जैन-शास्त्रोंके अनुसार इस नगरमें ऐसे सेठ भी थे, जिनके भवनोंपर स्वर्णमण्डित शिखर थे और उनपर छप्पन ध्वजाएँ फहराती थीं। जो इस बातकी प्रतीक थीं कि उस सेठके पास इतने करोड़ स्वर्णमुद्राएँ हैं।

वास्तवमें अपनी भौगोलिक स्थितिके कारण श्रावस्ती अत्यन्त समृद्ध नगरी थी। इसका व्यापारिक सम्बन्ध सुदूर देशोंसे था। यहाँसे एक बड़ी सड़क दक्षिणके प्रसिद्ध नगर प्रतिष्ठान (पैठण, जि. औरंगाबाद) तक जाती थी। इसपर साकेत, कोशाम्बी, विदिशा, गोनर्द, उज्जयिनी, माहिष्मती आदि नगर थे। एक दूसरी सड़क यहाँसे राजगृही तक जाती थी। इस मार्गपर सेतव्य, कपिलवस्तु, कुशीनारा, पावा, हस्तिग्राम, मण्डग्राम, वैशाली, पाटलिपुत्र और नालन्दा पड़ते थे। तीसरा मार्ग गंगाके किनारे-किनारे जाता था। अचिरावती नदीसे गंगा और यमुनामें नौकाओं द्वारा माल एक स्थानसे दूसरे स्थान तक पहुँचाया जाता था। ऐसे उल्लेख भी मिलते हैं कि विदेह-से गान्धार, मगधसे सौवीर, मरुकच्छसे समुद्रके रास्ते दक्षिण-पूर्वके देशोंसे व्यापार होता था।[2]

स्वातन्त्र्य सेनानी सुहृद्ध्वज

श्रावस्तीकी यह समृद्धि और स्वतन्त्रता १२-१३वीं शताब्दी तक ही सुरक्षित रह सकी और उसकी सुरक्षाका अन्तिम सफल प्रयत्न श्रावस्ती-नरेश सुहृद्ध्वज या सुहलदेवने किया।

---

१. Early history of India, by Verient Smith—The Hindu History of India, by A. K. Mazumdar.

२. Life in Ancient India, p. 256.

[1]कनिंघम तथा [2]स्मिथने भी इसका समर्थन किया है। यह राजा जैन था। उस समय महमूद गजनवी भारतके अनेक प्रान्तोंको रौंदता हुआ गजनी लौट गया। उसने अपने भानजे सैयद सालार मसऊद गाजीको अवध-विजयके लिए मुसलमानोंकी विशाल सेनाके साथ भेजा। सालार जितना बहादुर सिपहसालार था, उतना ही कूटनीतिज्ञ भी था। उसने अनेक हिन्दू राजाओंको फूट डाल-कर अथवा युद्धमें गायोंको आगे करके पराजित कर दिया। किन्तु जब वह बहराइचके समीप कौडियालाके मैदानमें पहुँचा तो उसे दृढ़ संकल्पी जैन नरेश सुहलदेवसे मोर्चा लेना पड़ा। इस युद्ध-में सन् १०३४ में सैयद सालार और उसके सैनिक राजा सुहलदेवके हाथों मारे[3] गये। इससे श्रावस्ती भी सुरक्षित रही और लगभग दो सौ वर्ष तक अवध भी मुसलमानोंके आतंकसे मुक्त रहा।

किन्तु इस घटनाके कुछ समय पश्चात् किसी दैवी विपत्तिके कारण श्रावस्तीका पतन हो गया। उसके बाद अलाउद्दीन खिलजीने आकर यहाँके मन्दिरों, विहारों, स्तूपों और मूर्तियोंका बुरी तरह विनाश किया। उसके कारण श्रावस्ती खण्डहरोंके रूप में परिवर्तित हो गयी और फिर कभी अपने पूर्व गौरवको प्राप्त न कर सकी।

पुरातत्त्व

यह नगरी प्रारम्भसे तीर्थ-क्षेत्रके रूपमें मान्य रही है तथा खूब समृद्ध रही है। अतः यहाँ विपुल संख्यामें मन्दिरों, स्तूपों और विहारोंका निर्माण हुआ। मौर्ययुगमें सम्राट् अशोकने कई स्तम्भ और समाधि स्तूप बनवाये थे। उसके पौत्र सम्राट् सम्प्रतिने भगवान् सम्भवनाथकी जन्म-भूमिपर स्तूप और मन्दिरोंका निर्माण कराया था। इसी प्रकार वहाँके श्रेष्ठियोंने भी मन्दिरों आदिका निर्माण कराया था। किन्तु अलाउद्दीन खिलजी (१२९६-१३१६) ने इन कलाकृतियों और धर्मायतनोंका विनाश कर दिया। उसके खण्डहर सहेट-महेट ग्राममें मीलों तक बिखरे पड़े हैं। भारत सरकारकी ओरसे यहाँ सन् १८६३से पुरातत्त्ववेत्ता जनरल कनिंघम, वेनेट, होय, फागल, दयाराम साहनी, मार्शल आदिकी देखरेखमें कई बार खुदाई करायी गयी। इस खुदाईके फलस्वरूप जो महत्त्वपूर्ण सामग्री उपलब्ध हुई है, वह लखनऊ और कलकत्ताके म्युजियमोंमें सुरक्षित है। इस सामग्रीमें स्तूपों, मन्दिरों और विहारोंके अवशेष, मूर्तियाँ, ताम्रपत्र, अभिलिखित मुहरें आदि हैं। यह सामग्री ई. पूर्व चौथी शताब्दीसे लेकर बारहवीं शताब्दीके अन्त तककी है। एक ताम्रपत्रके अनुसार, जो कन्नोजके राजा गोविन्दचन्द्रका है, ज्ञात होता है कि सहेट प्राचीन जेतवन (बौद्ध विहार) का स्थान है और महेट प्राचीन श्रावस्ती है। महेटके पश्चिमी भागमें जैन अवशेष प्रचुर मात्रामें मिले हैं। यह भाग इमलिया दरवाजेके निकट है। यहींपर भगवान् सम्भव-नाथका जीर्ण-शीर्ण मन्दिर है जो अब सोभनाथ मन्दिर कहलाता है। सोभनाथ सम्भवनाथका ही विकृत रूप है। इस मन्दिरकी रचना-शैली इरानी छाप है। इसके नीचे प्राचीन जैनमन्दिरके अवशेष हैं। मन्दिरके ऊपर गुम्बद साबुत है। किन्तु दो तरफकी दीवारें गिर चुकी हैं। वेदीके स्थानपर एक पाँचफुटी महराबदार आलमारी बनी हुई है। गर्भगृह १०×१० फुट है। उत्तर, पूर्व

१. आर्क. सर्वे रिपोर्ट ऑफ इण्डिया, भाग २, पृ० ३१६-३२३।

२. जर्नल रायल एशियाटिक सोसाइटी, सन् १९००, पृ० १।

३. अब्दुर्रहमान चिश्तीकृत 'मिरातेमसऊदी'—सुहलदेवने उन्हें उनके पड़ाव बहराइचमें आ घेरा। यहीं मसऊद रज्जबुल मुरज्जक २८वीं तारीख को ४२४ हिजरी में (सन् १०३४ ई.) अपनी सारी सेना सहित मारा गया।

और दक्षिण की ओर द्वार हैं। दीवार का आसार साढ़े तीन फुट है। गर्भगृह के बाहर चबूतरा है। उसके आगे नीचाई में दो आँगन हैं। ऐसा लगता है कि यह मन्दिर तीन कटनियोंपर बना था। इसका पूर्वी भाग कंकरीले फर्शवाला समचतुर्भुज आँगन है जो पूर्वसे पश्चिम ५९ फुट और उत्तरसे दक्षिण ४९ फुट चौड़ा है। इसके चारों ओर ईंटोंकी दीवार है। इसमें मध्यकालीन मन्दिरोंकी शैलीको गढ़ी हुई छोटी ईंटें लगी हैं। दीवारके अन्दरूनी भागमें वेदियाँ बनी हुई हैं। खुदाईके समय यहाँ बहुत-सी जैनमूर्तियाँ मिली थीं। कहा जाता है, यहाँ चौबीस तीर्थंकरोंकी मूर्तियाँ थीं। इस मन्दिरके उत्तर-पश्चिमी कमरेमें प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेवकी एक मूर्ति मिली थी। एक शिलापट्टपर पद्मासन मुद्रामें भगवान् विराजमान हैं। पीठासनके दोनों ओर सामने दो सिंह बैठे हुए हैं। मध्यमें ऋषभदेवका लांछन वृषभ है। प्रतिमाके दोनों ओर दो यक्ष खड़े हैं। उनके ऊपर तीन छत्र सुशोभित हैं। यह मूर्ति बड़ी भव्य है और लगभग एक हजार वर्ष प्राचीन है। शिलापट्टपर तेईस तीर्थंकरोंकी भी मूर्तियाँ उकेरी हुई हैं।

कई मूर्तियोंके आसनपर शिलालेख उत्कीर्ण हैं। इन लेखों के अनुसार प्रतिमाओंका प्रतिष्ठा काल वि. संवत् ११३३, १२३४ है। इनके अलावा यहाँ चैत्यवृक्ष, शासन देवियोंकी मूर्तियाँ आदि पुरातत्त्व अवशेष भी प्राप्त हुए हैं। ये सब प्रायः मध्यकालीन कलाके उत्कृष्ट नमूने हैं।

सोभनाथ मन्दिरके बाहर पुरातत्त्व विभागकी ओरसे जो परिचय पट्ट लगा हुआ है, उस-पर इसका परिचय इस प्रकार लिखा है—

"यह एक जैनमन्दिर है। सोभनाथ भगवान् सम्भवनाथका अपभ्रंश ज्ञात होता है। सम्भवनाथ तीसरे जैन तीर्थंकर थे और उनकी जन्मभूमि श्रावस्ती थी। यहाँसे कितने ही जैन आचार्यों (तीर्थंकरों)की प्रतिमाएँ प्राप्त हुई हैं। इस मन्दिरके किसी विशेष भागकी कोई निश्चित तिथि तय नहीं की जा सकती है। इसके ऊपरका गुम्बद, जो उत्तरकालीन भारतीय अफगान शैलीका है, प्राचीन जैनमन्दिरके शिखरके स्थानपर बनाया गया है।"

कनिंघम आदि पुरातत्त्ववेत्ताओं की मान्यता है कि इस मन्दिरके आसपास १८ जैनमन्दिर थे। इन अवशेषोंपर पेड़ और झाड़ियाँ उग आयी हैं। चारों ओरका जंगल अवशेषोंपर ही है। कुछ लोगोंका विश्वास है कि भगवान् चन्द्रप्रभुका जन्मस्थान यहीं था और वह इन ध्वस्त मन्दिरोंमें से कोई एक था।

सोभनाथ मन्दिरके निकट ही दो टीले हैं, एकका नाम है पक्की कुटी और दूसरेका नाम है कच्ची कुटी। दोनों टीलोंपर धनुषाकार दीवार बनी हुई है। दोनों ही टीलेका सूक्ष्म अवलोकन करनेपर प्रतीत होता है कि यहाँपर अवश्य ही स्तूप रहे होंगे।

बौद्धतीर्थ

सहेट भाग बौद्धतीर्थ रहा है। महात्मा बुद्धके निवासके लिए सेठ सुदत्तने राजा प्रसेनजितके पुत्र राजकुमार जेतसे उसका उद्यान 'जेतवन' अठारह करोड़ मुद्रामें खरीदकर एक विहारका निर्माण कराया था। सेठानी विशाखाने भी 'पूर्वाराम' नामका एक संघाराम बनवाया था। सम्राट् अशोकने एक स्तूपका निर्माण कराया था। महात्मा बुद्धने यहाँ कई चातुर्मास किये थे। इन सब कारणोंसे बौद्ध लोग भी इसे अपना तीर्थ मानते हैं। देश-विदेशके बौद्ध यहाँ यात्रा करने आते हैं। यहाँ बौद्धोंके तीन नवीन मन्दिर भी बन चुके हैं। वैशाखी पूर्णिमाको उनका मेला भी भरता है।

वर्तमान जैनमन्दिर

बलरामपुरसे बहराइच जानेवाली सड़कके किनारे नवीन दिगम्बर जैनमन्दिर बना हुआ है। मन्दिर शिखरबद्ध है। मन्दिरके बाहर तीन ओर बरामदे हैं। एक हालमें एक वेदी बनी हुई है। भगवान् सम्भवनाथकी श्वेत वर्ण पद्मासन पौने चार फुट अवगाहनावाली भव्य-प्रतिमा विराजमान है। इसकी प्रतिष्ठा सन् १९६६में की गयी थी। मूलनायकके अतिरिक्त २ सम्भवनाथ-की, १ महावीर स्वामीकी तथा १ सिद्ध भगवान्की धातु प्रतिमाएँ भी विराजमान हैं। भगवान्के चरण युगल भी अंकित हैं।

मन्दिर उद्यानके दायें बाजूमें है। सामने यहीं जैन-धर्मशाला भी है।

काकन्दी

मार्ग—पूर्वी उत्तर प्रदेशके देवरिया जिलेमें 'खुखुन्दू' नामका एक क़स्बा है। यह नूनखार रेलवे स्टेशनसे दक्षिण-पश्चिमकी ओर ३ कि. मी. दूर है। सड़क मार्गसे देवरिया-सलेमपुर सड़कसे १ मील कच्चे मार्गसे जाना पड़ता है। मेन रोड लखनऊ-आसाम टाइवे हैं। पश्चिमसे आनेवालों-को देवरिया और पूर्वसे आनेवाले यात्रियोंको सलेमपुर उतरना चाहिए। दोनों ही स्थानोंसे यह १४-१४ कि. मी. है। इस कस्बेके पास ही कई प्राचीन तालाब और तीस टीले हैं। जहाँ प्राचीन मन्दिरों और भवनोंके भग्नावशेष लगभग एक मीलमें बिखरे पड़े हैं। ये ही टीले प्राचीन कालीन काकन्दी कहलाते हैं। काकन्दीका ही नाम पश्चाद्वर्ती कालमें किष्किन्धापुर हो गया था। और फिर वह भी बदलते-बदलते खुखुन्दू हो गया है। इस गाँवमें थाना, पोस्ट आफिस, स्कूल, कालेज हैं।

जैन तीर्थ—जैन परम्परामें अत्यन्त प्राचीन कालसे काकन्दीका नाम बड़ी श्रद्धासे लिया जाता है। यहाँ नौवें तीर्थंकर भगवान् पुष्पदन्तके गर्भ और जन्म कल्याणक हुए थे। इसी नगरके पुष्पक वनमें उनका दीक्षाकल्याणक हुआ था। यह पुष्पक वन ही कभी किसी कालमें ककुभ-ग्राम कहलाने लगा और एक अलग तीर्थधाम बन गया। पश्चात् दुर्धर्ष कालप्रवाहमें पड़कर न काकन्दी बची और न ककुभग्राम। दोनों ही नगर खण्डहर बन गये। मीलोंमें फैले हुए इन खण्ड-हरोंकी छातीमें इन प्राचीन तीर्थोंकी कला, उनकी संस्कृति और इतिहास छिपा पड़ा है।

जैनसाहित्यमें काकन्दीका भगवान् पुष्पदन्तके साथ सम्बन्ध बतानेवाले अनेक उल्लेख मिलते हैं। तिलोयपण्णत्तिमें इस सम्बन्धमें निम्नलिखित उल्लेख आया है—

रामा सुग्गीवेहिं काकंदीए य पुप्फयंत जिणो।
मग्गसिर पाडिवाए सिदाए मूलम्मि संजणिददे ॥४।५३४॥

अर्थात् रामा माता और सुग्रीव पिताके यहाँ काकन्दी नगरीमें मंगसिर शुक्लाको मूल नक्षत्रमें भगवान् पुष्पदन्तका जन्म हुआ।

भगवान्के जन्मके कारण इन्द्रों और देवोंने महाराज सुग्रीवके राजभवनोंमें और नगरमें पन्द्रह माह तक रत्नवृष्टि की। भगवान्के गर्भ और जन्मकल्याणकका महोत्सव किया। एक दिन उल्कापात देखकर भगवान्को एकाएक सांसारिक असारताका बोध हुआ। उन्होंने जीवनको क्षणभंगुर जानकर इस मनुष्य देहके द्वारा आत्मकल्याण करनेकी भावनासे मुनि-दीक्षा ले ली। उस समय भी इन्द्र और देव भगवान्का दीक्षाकल्याणक मनानेके लिए यहाँ भक्तिभावनासे आये। 'तिलोयपण्णत्ति' में इस सम्बन्धमें निम्नलिखित विवरण उपलब्ध होता है—

अणुराहाए पुरुसे सिदपक्खे कारसीए अवरण्हे ।
पव्वज्जिओ पुप्फवणे तदिए खवणम्मि पुप्फयन्तजिणो ४।६५२ ॥

अर्थात् पुष्पदन्त भगवान् पौष शुक्ला एकादशीको अपराह्ण समयमें अनुराधा नक्षत्रके रहते पुष्पकवनमें तृतीय भक्तके साथ दीक्षित हुए।

उन्होंने दो दिनके उपवासके पश्चात् शैलपुर नगरके अधिपति राजा पुष्पमित्रके घर जाकर पारणा की।

भगवान् चार वर्ष तक विविध क्षेत्रों, वनों और पर्वतोंपर कठोर आत्म-साधन और तप करते रहे। चार वर्ष बाद विहार करते हुए वे काकन्दी नगरीके पुष्पकवन (दीक्षावन) में पधारे। उस वनमें दो दिनके उपवासका नियम लेकर वे एक नागवृक्षके नीचे ध्यान लगाकर बैठ गये। उन्हें आत्माकी निरन्तर विकासमान शुद्ध परिणतिके द्वारा कार्तिक शुक्ला तृतीयाको केवलज्ञानकी प्राप्ति हो गयी। इस प्रसंगमें 'तिलोयपण्णत्ति' ग्रन्थ की निम्नलिखित गाथा उल्लेखनीय है—

कत्तिय सुक्के लइये अवरण्हे मूलभे य पुप्फवणे ।
सुविहिजिणे उप्पण्णं तिहुवण संखोभयं णाणं ॥४।६८६॥

अर्थात् पुष्पदन्त (सुविधिनाथ) तीर्थंकरको कार्तिक शुक्ला तृतीयाके दिन अपराह्ण कालमें मूल नक्षत्रके रहते पुष्पवनमें तीनों लोकोंको क्षोभित करनेवाला केवलज्ञान उत्पन्न हुआ।

केवलज्ञान उत्पन्न होनेपर इन्द्रकी आज्ञासे कुबेरने समवसरणकी रचना की और भगवान्‌का लोककल्याणकारी प्रथम उपदेश यहीं हुआ।

इन कल्याणकोंके कारण यह स्थान तीर्थक्षेत्र माना जाने लगा। प्राचीन कालमें अनेक जैन-मुनियोंने यहाँसे तपस्या कर मुक्ति प्राप्त की। भगवती आराधना (गाथा १५५०) और 'आराधना-कथाकोष' (कथा ६७) में अभयघोष नामक एक मुनिकी कथा आती है। अभयघोष काकन्दीके राजा थे। उन्होंने एक बार एक कछुएकी चारों टाँगें तलवारसे काट दीं, जिससे वह मर गया और मरकर उनके घरमें ही उनका पुत्र बना। चन्द्रग्रहण देखकर अभयघोषने मुनि-दीक्षा ले ली। एक बार वे काकन्दीके बाहर उद्यानमें तपस्यामें लीन थे। उनका पुत्र चण्डवेग भ्रमण करते हुए वहाँसे निकला। जैसे ही उसने मुनि अभयघोषको देखा, उसके मनमें पूर्वजन्म सम्बन्धी संस्कारोंके कारण क्रोधकी प्रबल अग्नि प्रज्वलित हो उठी। उसने अपने द्वेषके प्रतिकारके लिए इस अवसरको उपयुक्त समझा क्योंकि वह जानता था क्षमामूर्ति मुनिराज उसके किसी अत्याचारका प्रतिकार नहीं करेंगे। उसने तीक्ष्ण धारवाले किसी शस्त्रसे निर्दयतापूर्वक उनके अंगोंको काटना प्रारम्भ किया। ध्यानलीन मुनिराज आत्मनिष्ठ थे। तिल-तिल करके उनका शरीर कट रहा था, किन्तु उनका हर क्षण आत्मसान्निध्यमें व्यतीत हो रहा था। उनका ध्यान एक पलके लिए भी देहकी ओर नहीं गया। ज्यों ही उनके अंगका अन्तिम भाग कटा, उनके आत्मामें असंख्य सूर्योंका-सा प्रकाश फैल गया, उन्हें केवलज्ञान हो गया; वे सर्वज्ञ-सर्वदर्शी बन गये और वहींसे उन्होंने निर्वाणकी प्राप्ति की। देवोंने भक्तिभावपूर्वक उनकी पूजा की।

यहाँ भगवान् महावीरका समवसरण कई बार आया था। यह नगर साकेत-श्रावस्ती-वैशाली-नालन्दा राजमार्गपर अवस्थित था। अतः प्राचीन कालमें यहाँ तीर्थयात्री भी तीर्थ-यात्राके लिए निरन्तर आते रहते थे।

यहाँ भक्त राजपुरुषों और श्रेष्ठियोंने अनेक देवालयों, देवमूर्तियों, शासन देवताओंकी प्रतिमाओं, चैत्यवृक्षों और स्तूपोंका निर्माण कराया था। किन्तु धर्मद्वेष और धर्मोन्मादने इन

कलागारोंको खण्डहर बना दिया। अब वे केवल पुरातत्त्वान्वेषकोंके अन्वेषणके लिए मिट्टीमें दबे पड़े हैं।

पुरातत्त्व—यहाँ भग्नावशेषोंके तीस टीलें हैं, जो मीलोंमें बिखरे हुए हैं। स्थानीय लोग इन्हें 'देउरा' कहते हैं। 'देउरा' शब्द जैनदेवालयोंके लिए ही प्रायः प्रयुक्त होता है। यहाँ उत्खननके फलस्वरूप जो पुरातत्त्व सामग्री उपलब्ध हुई है, उसमें तीन टीलोंपर कुछ हिन्दू मूर्तियाँ भी मिली हैं जो बहुत आधुनिक हैं। शेष जितनी भी सामग्रियाँ उपलब्ध हुई हैं, सभी जैन हैं। और वह भी गुप्तकालकी या उसके पूर्वकी हैं। बौद्धधर्म से सम्बन्धित कोई सामग्री यहाँ नहीं प्राप्त हुई।

खुदाईके फलस्वरूप श्री आदिनाथ, शान्तिनाथ, पार्श्वनाथ और भगवान् महावीरकी मूर्तियों, तीर्थंकरोंके सेवक यक्ष, सिद्धार्थ यक्ष, चैत्यवृक्ष और स्तूपोंके भग्न भाग मिले हैं। चैत्यवृक्षोंका सम्बन्ध केवल जैनधर्मसे ही है। दम्पति कभी-कभी जिनके साथ दो बालक होते हैं, एक वृक्षके नीचे बैठे हुए होते हैं। उनके ऊपर जैन-प्रतिमा रहती है। यह दम्पति प्रायः गोमेद यक्ष और अम्बिका यक्षिणी होते हैं, जो सुखासनसे बैठे होते हैं। प्रत्येक तीर्थंकरके सेवक एक यक्ष और एक यक्षिणी होते हैं। जिन्हें शासन देवता कहते हैं। उनके रूप, वाहन, मुद्रा आदिके सम्बन्धमें जैन-शास्त्रोंमें विस्तृत विवरण मिलता है। यहाँपर भी कई चैत्यवृक्ष मण्डित शिलापट, गोमुख आदि यक्षों और यक्षियोंकी मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं। टीला नं. ११ की खुदाई करनेपर ८९ फीट चौकोर फर्श मिला, जिसमें फूलदार ईंटें लगी हुई हैं। कनिंघमने इसे जैनमन्दिर बताया है।

निश्चय ही यह स्थान अनेक शताब्दियों तक जैन संस्कृतिका केन्द्र रहा है। अतः यहाँ विपुल परिमाणमें जैन पुरातत्त्व मिलता है। ऐतिहासिक दृष्टिसे यह सामग्री ईसा पूर्वसे लेकर गुप्तकाल तककी है। अभी तक सब टीलोंकी खुदाई नहीं हो पायी और जिन टीलोंकी खुदाई हुई है, वह भी अधिक गहराई तक नहीं हुई। यदि सब टीलोंकी गहराई तक खुदाई की जाये तो कला, संस्कृति और इतिहासके अनेक रहस्योंपर प्रकाश पड़ सकेगा।

जैन मन्दिर—खुखुन्दू कस्बेके एक छोरपर खेतोंके बीचमें दिगम्बर जैन मन्दिर बना हुआ है। भगवान् पुष्पदन्तका जन्म यहीं हुआ था, ऐसा विश्वास किया जाता है। वर्तमानमें यद्यपि मन्दिर बहुत बड़ा नहीं है किन्तु उसकी स्थिति अच्छी है। मन्दिरमें केवल एक ही वेदी है। यह चार स्तम्भोंपर मण्डपनुमा बनी हुई है। एक शिलाफलकमें भगवान् नेमिनाथकी कृष्ण पाषाणकी पद्मासन प्रतिमा विराजमान है। अवगाहना २ फुट ३ इंच है। पादपीठके मध्यमें शंखका लांछन अंकित है। इधर-उधर शासन देवता खड़े हैं। दोनों ओर इन्द्र बने हुए हैं, जिनके हाथमें वज्र है। उनके ऊपर दो-दो देव-देवियाँ हैं। ऊपर गजारूढ़ देव पुष्पवर्षा कर रहे हैं। सिरके ऊपर त्रिछत्र और अलंकरण हैं। यही मूलनायक प्रतिमा है।

इसके अतिरिक्त एक श्वेत पाषाणकी पद्मासन पुष्पदन्त भगवान्की ११ इंच ऊँची प्रतिमा विराजमान है। यह वि. संवत् १५४८ की है। धातुकी एक चौबीसी है जो वि. संवत् १५५६ की है। धातुकी एक अन्य प्रतिमा भगवान् पार्श्वनाथकी ९ इंच अवगाहनावाली है। भूगर्भसे ८ इंचकी भूरे पाषाणकी एक देवीमूर्ति प्राप्त हुई थी जो यहाँ रखी हुई है। देवीके बगलमें बच्चा है। इससे लगता है कि यह अम्बिका देवीकी मूर्ति है। इसके दायीं ओर यक्ष-मूर्तिका अंकन है जो सम्भवतः सर्वाह्ण (गोमेद) यक्षकी है।

भगवान् नेमिनाथ ओर अम्बिकाकी उपरोक्त मूर्तियाँ गुप्तकाल या उससे भी पूर्वकी प्रतीत होती हैं।

गर्भगृहके बाहर सभामण्डप, इधर-उधर कमरे और आगे सहन है। मन्दिरके चारों ओर कम्पाउण्ड है। कम्पाउण्डके बाहर दूसरा कम्पाउण्ड है, जिसमें पक्का कुआँ, स्नानघर, एक कमरा बना हुआ है। मन्दिरसे दूसरे कम्पाउण्डमें आनेपर बायीं ओर कम्पाउण्डके बाहर एक टीला है, जिसके ऊपर एक छतरी बनी हुई है। उसमें पाषाण-चरण विराजमान हैं। चरणोंका माप ७ इंच है। इनको सन् १९५१ में विराजमान किया गया है।

इसी समय इस टीलेकी खुदाई करायी गयी थी। खुदाईके फलस्वरूप इसमें एक वेदी निकली थी, किन्तु फिर वह बन्द कर दी गयी। यह टीला पुरातत्त्व विभागके संरक्षणमें है। यह टीला २००×१५० फुट है।

काकन्दीके पुजारी तथा कई अन्य प्रत्यक्षदर्शियोंसे ज्ञात हुआ कि पहले यहाँ भूगर्भसे भगवान् नेमिनाथकी एक खड्गासन प्रतिमा निकली थी, जिसका आकार लगभग सवा तीन फुट था। वह वेदीपर मूलनायकके रूपमें विराजमान थी। प्रतिमा बड़ी कलापूर्ण और सुन्दर थी। उस प्रतिमाका कान कुछ खण्डित था। कुछ वर्ष पहले खण्डित मानकर उस प्रतिमाको घाघरा नदीमें प्रवाहित कर दिया गया। इस प्रकार गुप्तकाल अथवा उससे भी प्राचीन कालकी एक कलापूर्ण प्रतिमासे समाज वंचित हो गया। सम्भवतः कनिंघमने इसी मूर्तिको आदि बुद्धकी मूर्ति लिखा था।

ककुभग्राम

मार्ग

ककुभ ग्राम वर्तमानमें 'कहाऊँ' गाँवके नामसे प्रसिद्ध है। यह देवरिया जिलेमें परगना सलेमपुरसे ५ कि. मी., काकन्दीसे १६ कि. मी. और गोरखपुरसे ७३ कि. मी. की दूरीपर है। काकन्दीसे यहाँ तकका मार्ग कच्चा है। बस और जीप जा सकती है। यह एक छोटा सा गाँव है, जो ईंटोंके खण्डहरोंपर बसा हुआ है। जिस टीलेपर यह गाँव आबाद है, वह लगभग आठ सौ वर्ग गज है।

तीर्थक्षेत्र

भगवान् पुष्पदन्तकी जन्मभूमि काकन्दी यहाँसे केवल १६ कि. मी. दूर है। पहले यहाँ ग्राम नहीं था, वन था, जो काकन्दी नगरीके बाहर था। भगवान् पुष्पदन्तने काकन्दीके इसी वनमें दीक्षा ली थी। उस वनमें कुटज जातिके वृक्ष अधिक थे। सारा वन उनके पुष्पोंसे मुखरित और सुरभित रहता था। उन्होंने पौष शुक्ला ११को इस वनमें दीक्षा ली थी। इस ऋतुमें वन चारों ओर पुष्पित था। कुटज जातिके वृक्षोंके अतिरिक्त इस वनमें अर्जुनके वृक्ष अधिक संख्यामें थे। इसलिए इस वनको 'कुकुभ[1] वन' कहा जाता था। देवों, इन्द्रों और मनुष्योंने यहींपर भगवान्का दीक्षाकल्याणक मनाया था। इसके चार वर्ष पश्चात् इसी वनमें कार्तिक शुक्ला तृतीयाको केवलज्ञान हुआ। यहीं प्रथम समवसरण लगा और यहीं धर्मचक्र प्रवर्तन हुआ। अतः भक्त जनतामें यह तीर्थक्षेत्रके रूपमें प्रख्यात हो गया। पश्चात् इस वनके स्थानमें ग्राम बस गया और वह कुकुभ वनके नामपर ककुभग्राम कहलाने लगा।

---

१. ककुभका अर्थ है, कुटज जातिके पुष्प, अर्जुन वृक्ष (हिन्दी विश्वकोष)।

यहाँ भगवान् महावीरका भी समवसरण आया था। जब भी भगवान्‌का विहार वैशालीसे श्रावस्तीकी ओर होता था तो मार्गमें इस स्थानपर भी पधारते थे। इसी प्रकार वैशालीसे विहार करते हुए भगवान् काकन्दी, ककुभग्राम होते हुए श्रावस्ती जाते थे। यह नगर श्रावस्तीसे सेतव्य, कपिलवस्तु, कुशीनारा, हस्तिग्राम, मण्डग्राम, वैशाली, पाटलिपुत्र, नालन्दा राजमार्गपर था।

पूर्वी भारतके इस महत्त्वपूर्ण राजमार्गपर अवस्थित होनेके कारण नगरकी समृद्धि भी निरन्तर बढ़ रही थी। देश-विदेशके सार्थवाह बराबर आते-जाते रहते थे। भगवान् पुष्पदन्तका दीक्षा और केवलज्ञान कल्याणकका स्थान होनेके कारण सुदूर देशोंके भी यात्री यहाँ तीर्थ वन्दनाको आते रहते थे। इसलिए अति प्राचीन कालसे ही यहाँ जैनमन्दिर, मानस्तम्भ और स्तूपोंका निर्माण होने लगा था। मौर्य और गुप्तकालमें इस प्रकारके निर्माण विपुल परिमाणमें यहाँ हुए। फिर पता नहीं किस कालमें किस कारणसे इन प्राचीन धर्मायतनों और कलाकृतियोंका आकस्मिक विनाश हो गया। सम्भवतः श्रावस्ती आदि निकटवर्ती तीर्थोंकी तरह सुल्तान अलाउद्दीनके सिपहसालार मलिक हब्वसने इसका भी विनाश कर दिया और इसे खण्डहर बना दिया। इसके बाद इसका फिर पुनरुद्धार नहीं हो पाया। इन धर्मायतनोंके भग्नावशेषोंपर एक छोटे-से गाँवका निर्माण अवश्य हो गया। गाँवके पुनर्निर्माणके समान इसके नामका भी पुनर्निर्माण हो गया और ककुभग्राम ही बदलते-बदलते कहाऊँ बन गया।

ये अवशेष काफी बड़े क्षेत्रमें बिखरे पड़े हैं। एक टूटे-फूटे कमरेमें, जिसके ऊपर छत नहीं है, एक दीवालमें आलमारी बनी हुई है। उसमें ५ फुट ऊँची सिलेटी वर्णकी तीर्थंकर प्रतिमा कायोत्सर्गासनमें अवस्थित है। प्रतिमाका एक हाथ कुहनीसे खण्डित है। दोनों पैर खण्डित हैं। बाँह और पेट क्रेक हैं। छातीसे नीचे पेटका भाग काफी घिस गया है। मुख ठीक है।

ग्रामीण लोग तेल-पानीसे इसका अभिषेक करते हैं।

इस कमरेके बाहर एक भग्न चबूतरेपर एक मूर्ति पड़ी हुई है। यह तीर्थंकर मूर्ति है। रंग सिलेटी है तथा अवगाहना ४ फुटके लगभग है। यह खड्गासन है। यह इतनी घिस चुकी है कि इसका मुख तक पता नहीं चलता। मूर्ति-पाषाणमें परतें निकलने लगी हैं।

इन मूर्तियोंसे उत्तर दिशामें गाँवकी ओर बढ़नेपर प्राचीन मानस्तम्भ मिलता है। यह एक खुले मैदानमें अवस्थित है। इसके चारों ओर प्राचीन भग्नावशेष बिखरे पड़े हैं। यदि यहाँ खुदाई करायी जाये तो भगवान् पुष्पदन्तका प्राचीन जैनमन्दिर निकलनेकी सम्भावना है क्योंकि मानस्तम्भ सदा मन्दिरके सामने रहता है। यदि यहाँ जैनमन्दिर निकल सका तो उससे गुप्त-कालकी कला और इतिहासपर नया प्रकाश पड़ सकता है।

मानस्तम्भ भूरे पाषाणका है और २४ फुट ऊँचा है। स्तम्भ नीचे चौपहलू, बीचमें अठ-पहलू और ऊपर सोलह पहलू है। जमीनसे सवा दो फुट ऊपर भगवान् पार्श्वनाथकी सवा दो फुट अवगाहनावाली प्रतिमा उसी पाषाणस्तम्भमें उकेरी हुई है। यह पश्चिम दिशामें है। चरणोंके दोनों ओर भक्त स्त्री-पुरुष हाथोंमें कलश लिये चरणोंका प्रक्षालन कर रहे हैं। मूर्तिके पीठके पीछे सर्प-कुण्डली बनी हुई है और सिरके ऊपर फणमण्डप है।

स्तम्भके मध्यमें, बारह पंक्तियोंमें, उत्तर दिशाकी ओर ब्राह्मी लिपिमें लेख अंकित है, जो इस प्रकार है—

१. यस्योपस्थानभूमिर्नृपतिशतशिरःपातवातावधूता
२. गुप्तानां वंशजस्य प्रविसृतयशसस्तस्य सर्वोत्तमर्द्धेः।

३. राज्ये शक्रोपमस्य क्षितिपशतपतेः स्कन्दगुप्तस्य शान्ते
४. वर्षे त्रिंशद्दशकोत्तरकशततमें ज्येष्ठमासि प्रपन्ने ॥१॥
५. ख्यातेऽस्मिन् ग्रामरत्ने ककुभ इति जनैस्साधुसंसर्गपूते
६. पुत्रो यस्सोमिलस्य प्रचुरगुणनिधेर्भट्टिसोमो महात्मा
७. तत्सूनू रुद्रसोम (:) प्रथुलमतियशा व्याघ्र इत्यन्यसंज्ञो
८. मद्रस्तस्यात्मजोऽभूद् द्विजगुरुयतिषु प्रायशः प्रीतिमान् यः ॥२॥
९. पुण्यस्कन्धं स चक्रे जगदिदमखिलं संसरद्वीक्ष्य भीतो
१०. श्रेयोऽर्थं भूतभूत्यै पथि नियमवतामर्हतामादिकर्तॄन्
११. पञ्चेन्द्रान्स्थापयित्वा धरणिधरमयान् सन्निखातस्ततोऽयम्
१२. शैलस्तम्भः सुचारुर्गिरिवरशिखराग्रोपमः कीर्त्तिकर्ता ॥३॥

(इस शिलालेखमें, जो कि गुप्तकालके १४१वें वर्षका है, बताया गया है कि किसी मद्र नामके व्यक्तिने, जिसकी वंशावलि यहाँ उसके प्रपितामह सोमिल तक गिनायी है, अर्हन्तों (तीर्थंकरों)में मुख्य समझे जानेवाले, अर्थात् आदिनाथ, शान्तिनाथ, नेमिनाथ, पार्श्व और महावीर, इन पाँचोंकी प्रतिमाओंकी स्थापना करके इस स्तम्भको खड़ा किया। लेखकी ११वीं पंक्तिके 'पंचेन्द्रान्' शब्दका इन्हीं पाँच तीर्थंकरोंसे मतलब है।)

—इण्डियन एण्टिक्वेरी, जिल्द १०, पृष्ठ १२५-१२६।

—जैन-शिलालेख संग्रह, भाग २, पृष्ठ ५९।

स्तम्भके ऊपर चौकी बनी हुई है। उसके ऊपर पाँच तीर्थंकरों—आदिनाथ, शान्तिनाथ, नेमिनाथ, पार्श्वनाथ और महावीरकी प्रतिमाएँ विराजमान हैं।

ब्राह्मी लेखके अनुसार इस मानस्तम्भका निर्माण एवं प्रतिष्ठा जैन धर्मानुयायी मद्र नामक एक ब्राह्मणने गुप्त संवत् १४१ (ई. सन् ४६०)में सम्राट् स्कन्दगुप्तके कालमें करायी थी।

ग्रामीण लोग अज्ञानतावश उस मानस्तम्भको 'भीमकी छड़ी' या 'भीमसेनकी लाट' कहते है और दही-सिन्दूरसे इसकी पूजा करते हैं। इसके कारण नीचेके भी भागमें बनी हुई पार्श्वनाथ-प्रतिमा काफी विरूप हो गयी है।

पावा (नवीन)

भगवान् महावीरकी निर्वाण भूमि पावा या पावापुरी बिहार शरीफसे सात मील दक्षिण-पूर्वमें और गिरियकसे दो मील उत्तरमें अवस्थित है। दिगम्बर शास्त्र तिलोयपण्णत्ति, निर्वाण-काण्ड, निर्वाण-भक्ति, हरिवंशपुराण, जयधवला, उत्तर-पुराण आदिमें महावीरका निर्वाण पावामें माना है। इन शास्त्रोंमें पावाके लिए पावा, पावानगर, पावापुर, पावानगरी, मध्यम-पावा आदि शब्दोंका प्रयोग मिलता है। श्वेताम्बर शास्त्र—कल्पसूत्र, आवश्यक-निर्युक्ति, परिशिष्ट-पर्व, विविध-तीर्थ-कल्प आदिमें इस नगरका नाम मज्झिमा (मध्यम) पावा, मध्यमा, अपापा, अपापापुरी, पावापुरी आदि दिया है। निर्वाण-भक्ति (संस्कृत), उत्तरपुराणमें कमलोंसे सुशोभित तालाबके बीच भगवान्के निर्वाणका उल्लेख मिलता है। विविध तीर्थकल्पमें ऐसा उल्लेख है कि उस तालाबमें अब भी सर्प किलोल करते रहते हैं।

जिस स्थानपर भगवान्का निर्वाण हुआ था, वहाँ अब भी एक विशाल सरोवर है। इस तालाबके सम्बन्धमें जनतामें एक विचित्र किंवदन्ती प्रचलित है। कहा जाता है कि भगवान्के

निर्वाणके समय यहाँ भारी जन-समूह एकत्रित हुआ था। प्रत्येक व्यक्तिने इस पवित्र भूमिकी एक-एक चुटकी मिट्टी उठाकर अपने भालमें श्रद्धापूर्वक लगायी थी। तभीसे यह तालाब बन गया है।

यह भी कहा जाता है कि यह सरोवर पहले चौरासी बीघेमें फैला हुआ था। आजकल यह चौथाई मील लम्बा और इतना ही चौड़ा है। सरोवर अत्यन्त प्राचीन प्रतीत होता है। इसके मध्यमें श्वेत संगमरमरका जैनमन्दिर है जिसे जल-मन्दिर कहते हैं। इसमें भगवान्‌के पावन चरण विराजमान हैं। मन्दिर तक जानेके लिए तालाबमें उत्तरकी ओर एक पुल बना हुआ है। जिस टापूपर यह मन्दिर बना हुआ है, वह १०४ वर्ग गज है।

किन्तु कुछ लोगोंका विश्वास है कि भगवान् महावीरका निर्वाण जिस पावामें हुआ था, वह पावा यह नहीं है जो वर्तमानमें मानी जा रही है। ऐसे लोगोंमें कुछ इतिहासकार और विद्वान् भी हैं। उनके मुख्य तर्क ये हैं—

१—भगवान् महावीरका निर्वाण मल्लोंकी पावामें हुआ था। वर्तमान पावापुरी मल्लोंकी पावा नहीं थी।

२—महात्मा बुद्धने अपना अन्तिम भोजन पावाके कर्मारपुत्र चुन्दके घर किया था। उन्होंने सूकर मद्दव खाया। खाकर वे अस्वस्थ हो गये और वहाँसे वह कुशीनारा पहुँचे। पावा और कुशीनारा दोनों ही मल्लोंके प्रदेश थे।

३—मल्लोंकी यह पावा कहाँ थी, इसके सम्बन्धमें विद्वानोंमें मतभेद है। कुछ लोग पडरौनाको प्राचीन पावा मानते हैं। पडरौना कुशीनारासे उत्तर-पूर्वकी ओर १९ कि. मी. है। कुछ विद्वान् पपउरको पावा मानते हैं। पपउर छपरा जिलेमें सिवानसे पूर्वकी ओर ५ कि. मी. है। तीसरे वे विद्वान् हैं जो फाजिलनगर-सठियाँवको पावा मानते हैं। यह देवरियासे कुशीनारा होते हुए, लगभग ५६ कि. मी. है। इसके चारों ओर कपिलवस्तुसे लेकर कुशीनारा, पडरौना, फाजिलनगर, सठियाँव, सरेया, कुक्कुरपाटी, नन्दवा, दनाहा, आसमानपुर डीह, मीरबिहार, फरमटिया और गांगी टिकार तक प्राचीन भवनों, मन्दिरों और स्तूपोंके ध्वंसावशेष बिखरे पड़े हैं।

इन अवशेषोंकी यात्रा भारत सरकारकी ओरसे मि. कनिंघम, वैगलर, कार्लाइल आदिने सन् १८७५ या उसके आसपास की थी। इन विद्वानोंके यात्रा-विवरण सरकारकी ओरसे प्रकाशित हो चुके हैं[१]।

एक अन्य रिपोर्ट (Archeological Survey Report, 1905) में डॉ. वोगेलने बताया है कि कुशीनगर और सठियाँव आदिमें कोई इमारत मौर्यकालके बादकी नहीं है, सब इसके पहले की हैं।

कनिंघमने अपनी १८६१-६२ की रिपोर्टमें और बादमें 'Ancient Geography of India' में पडरौनाको पावा माना है।

कार्लाइलका मत है कि पावा वैशाली-कुशीनारा मार्गपर अवस्थित थी। अतः वह कुशीनारासे दक्षिण-पूर्वमें होनी चाहिए, जबकि पडरौना उत्तर और उत्तर-पूर्वमें १२ मील दूर है। वह

---

१. (a) Report of tours in the Gangetic Provinces from Badaon to Bihar in 1875-76 and 1877-78 by Alexander Cunningham, Vol. XI.

(b) Report of a tour in the Gorakhpur District in 1875-76 and 1876-77 by A. C. L. Carlleyle, Vol. XVIII.

तो प्राचीन वैशाली-कुशीनारा मार्गपर भी नहीं है। उनके मतसे फाजिलनगर-सठियाँव पुरानी पावा होनी चाहिए। अब इसी मतको अधिकांश विद्वानोंका समर्थन प्राप्त हो चुका है और फाजिलनगर-सठियाँवको ही प्राचीन पावा मान लिया गया है।

"लंकाकी बौद्ध अनुश्रुतियोंके अनुसार पावा कुशीनारासे १२ मील दूर गण्डक नदीकी ओर होनी चाहिए। अर्थात् कुशीनारासे पूर्व या दक्षिण-पूर्वमें। सिंहली अनुश्रुति पावा और कुशीनाराके बीचमें एक नदी भी बताती है, जो ककुत्था कहलाती थी। यहीं बुद्धने स्नान और जल-पान किया था। सम्भवतः इसी नदीका नाम वर्तमानमें घागी है। यह कसियासे पूर्व, दक्षिणपूर्वकी ओर ६ मील दूर है।"

'बुद्ध और महाकाश्यप क्रमशः मगध और वैशालीसे कुशीनारा जाते हुए पावामें ठहरे थे।'

फाजिलनगरमें एक भग्न स्तूप है। फाजिलनगर और सठियाँव पावाके अवशेषोंपर बने हैं, ऐसा लगता है। भग्न स्तूपसे लगभग डेढ़ फर्लांग उत्तर-पूर्वमें नदी है जो सोनुआ, सोनावा या सोनारा कहलाती है। कुछ दक्षिणकी ओर बढ़नेपर इसीका नाम कुकू पड़ गया है। सठियाँवके दक्षिणमें १० मील परे एक घाट अथवा कुकू घाटी है। इस नदीके किनारे इससे मिलते-जुलते नाम पाये जाते हैं, जैसे ककुंटा, खुरहुरिया, कुटेया। लंका और बर्माकी अनुश्रुतियोंमें इस नदीका नाम ककुत्था या ककुरवा बताया है। यह पावा और कुशीनाराके बीच बहती थी। वर्तमानमें सठियाँवसे डेढ़ मील पश्चिमकी ओर प्राचीन नदीके चिह्न मिलते हैं जो अन्हेया, सोनिया और सोनाका कही जाती है। सम्भवतः इसी नदीमें बुद्धने स्नान और जल-पान किया था। अन्हेयाके दो मील पश्चिममें एक बड़ी नदी बहती है जो घागी कहलाती है।

पडरौनासे १० मील दूर उत्तर-पश्चिममें सिंघा गाँवके पास एक झील है। उसीमें-से घागी, अन्हेया और सोनाका नदी निकली हैं। वस्तुतः घागी बड़ी नदी है। इसकी पश्चिमकी शाखा अन्हेया है और पूर्वकी शाखा सोनावा है। घागीका अर्थ है कुक्कुट। कुक्कुट और ककुत्था पर्यायवाची शब्द हैं।

पावाके खण्डहर ही अब सठियाँव डीह कहलाते हैं। इन्हीं टीलोंपर सठियाँव गाँव बसा है। फाजिलनगर और सठियाँव दोनों एक प्राचीन गाँवके दो भाग हैं। सठियाँव डीहके पश्चिममें एक बड़ा तालाब है जो ११०० फुट लम्बा और ५५० फुट चौड़ा है। इसके आसपास छोटे-बड़े कई तालाब हैं। सठियाँव का बड़ा डीह उत्तरमें है जो १७०० फुट लम्बी एक सड़कसे जुड़ता है, जो कसिया-फाजिलनगर सड़क से मिलती है। इसके पासमें ही फाजिलनगर-पटकावली सड़क जाती है।

सारा सठियाँव डीह प्राचीन नगरके ही अवशेष हैं। डीहपर सघन वृक्ष खड़े हुए हैं। इसके दक्षिणी भागमें लगभग तीन चौथाई भागमें ईंटें बिखरी पड़ी हैं। ईंटोंके ऊँचे-ऊँचे ढेर भी जहाँ-तहाँ मिलते हैं। सम्भवतः ये स्तूपोंके अवशेष हैं। एक टीलेपर लोगोंने देवीका थान बना लिया है। एक पेड़के सहारे देवीकी मूर्ति खड़ी है। यहाँ जो ईंटें मिलती हैं, उनमें कुछ ११ इंच लम्बी, कुछ १३ और १४ इंच लम्बी हैं। खुदाईमें १५ इंचकी भी ईंटें मिली हैं।

फाजिलनगरमें थाना और पोस्ट-आफ़िस है। ये भी ईंटोंके टीलेपर बने हैं। इसके आसपास भी बहुत-से टीले हैं। मुख्य सड़कसे उत्तरकी ओर ३५० फुटकी दूरीपर एक बड़ा टीला है। विश्वास किया जाता है, यह टीला किसी स्तूपका अवशेष है। टीलेके ऊपर स्तूपकी ऊँचाई ३५ फुट है। स्तूपका ऊपरी भाग ४० से ४४ फुटके घेरेमें है। सम्भव है, बुद्धकी अस्थिभस्मके ऊपर बना हुआ स्तूप यही हो। यहाँ मन्दिर या विहारके भी कुछ चिह्न मिले हैं। एक ध्वस्त भवन भी है। इन दोनों-

के बीचमें मुसलमानोंने करबला बना लिया है। यह स्तूप सठियाँव डीहके पूर्व, उत्तरपूर्वमें ३३०० फुट दूर है। स्तूपके उत्तरमें ३०० फुट दूरसे फाजिलनगर गाँव शुरू होता है।[१]

फाजिलनगर-सठियाँव डीहमें बाबा राघवदासके प्रयत्नसे 'पावानगर महावीर इण्टर कालेज' की स्थापना हो चुकी है। कुछ लोगोंका विश्वास है कि महावीरकी निर्वाणभूमि पावा यही है। यहाँ एक प्राचीन कुआँ मिला है। इसकी चौड़ाई तीन फुट है। इसमें गोलाई लिये हुए एक घेरेमें तीन ईंटें लगी हैं। विश्वास किया जाता है कि यह कुआँ गुप्त-काल या उससे भी प्राचीन होगा।

एक पेड़के नीचे एक देवी-मूर्ति मिली है। मूर्ति खण्डित है। एक दूसरे पेड़के नीचे एक मूर्ति रखी है, जिसके हाथ खण्डित हैं। यह मूर्ति धन-देवता 'कुबेर' की है। एक टीलेपर कुछ ईंटें व पत्थर रखे हुए हैं जिन्हें हिन्दू पूजते हैं। यह मुख्य टीला कहा जाता है। टीलेपर ऊँची घास उगी हुई है। हिन्दू लोग इस टीलेको पवित्र मानते हैं।

कालेजमें भूगर्भसे प्राप्त कुछ सामग्री रखी हुई है। इस सामग्रीमें कई पाषाण और मिट्टीकी मूर्तियाँ, सिक्के, मुहरें, मिट्टीके टूटे बरतन आदि हैं। एक देवीकी मूर्ति है जो खण्डित है। एक शिला-फलकमें एक देवी है। नीचे दोनों ओर सेविकाएँ हैं। ऊपरकी ओर दो देवियाँ हैं।

---

१. Report of a tour in the Gorakhpur District in 1875-76 and 1876-77, by A.C. L. Carlleyle, Vol. XVIII.

चेदि (बुन्देलखण्ड) जनपद

देवगढ़

सीरौन

गिरार

सैरोनजी

पवाजी

ललितपुर क्षेत्रपाल

बालाबेहट

चाँदपुर-जहाजपुर

दुधई

बानपुर

मदनपुर

करगुवाँ

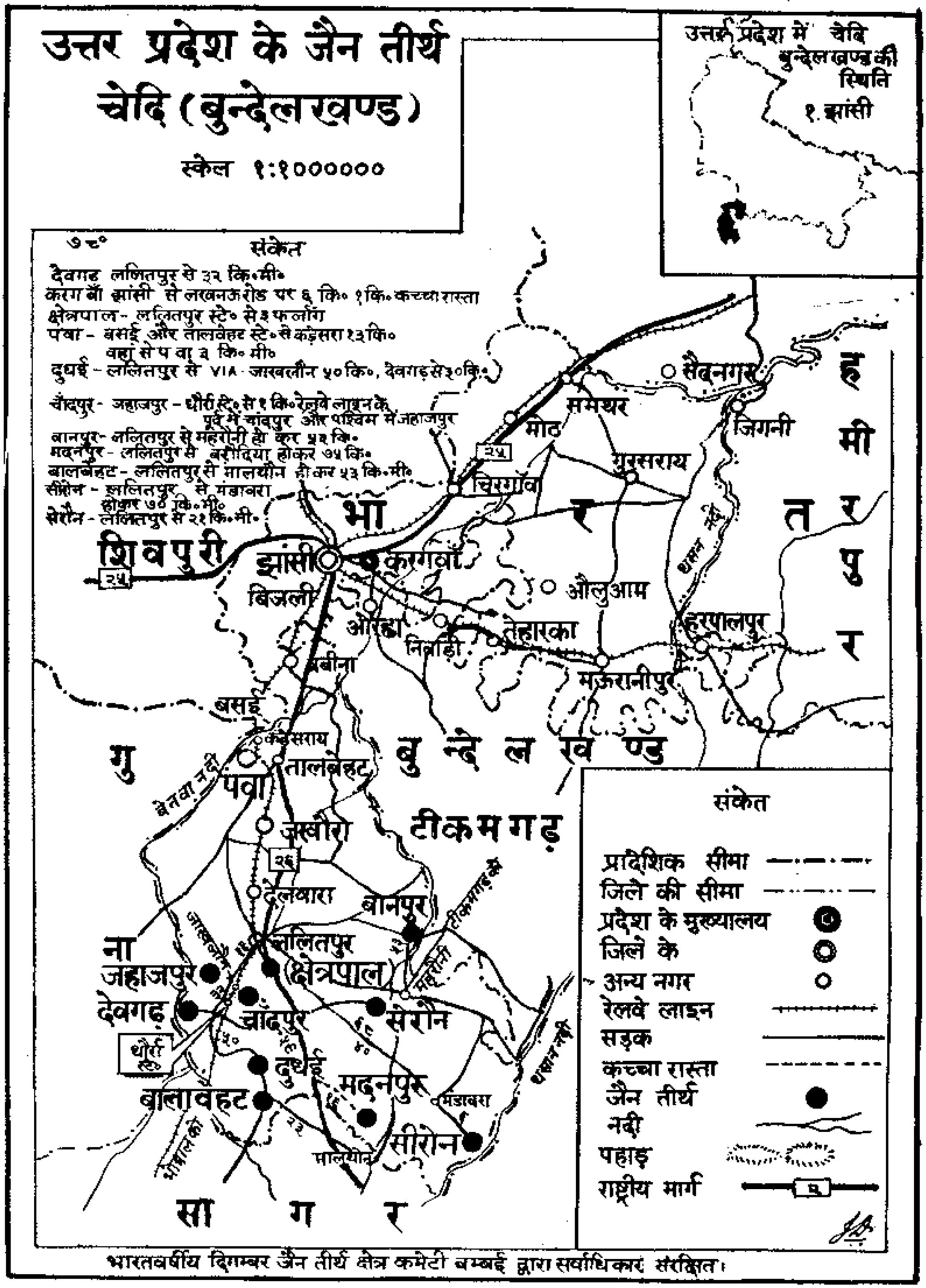

१. भारत के महासर्वेक्षक की अनुज्ञानुसार भारतीय सर्वेक्षण विभागीय मानचित्र पर आधारित।

© भारत सरकार का प्रतिलिप्यधिकार, १९७१

२. मानचित्र में दिये गये नामों का अक्षर विन्यास विभिन्न सूत्रों से लिया गया है।

देवगढ़

अवस्थिति

देवगढ़ क्षेत्र उत्तर प्रदेशमें झाँसी जिलेमें ललितपुर तहसीलमें बेतवा नदीके किनारे अवस्थित है। यह ललितपुरसे दक्षिण-पश्चिममें ३१ कि. मी. की पक्की सड़कसे दूरीपर है। प्रतिदिन बस जाती है। ललितपुरसे इसका मार्ग इस प्रकार है—ललितपुरसे जीरोन १६ कि. मी.। वहाँसे जाखलौन ६ कि. मी.। वहाँसे सेपुरा ३ कि. मी.। सेपुरासे देवगढ़ ६ कि. मी.। जाखलौन स्टेशनसे १३ कि. मी. दूर है। पक्का डामर रोड है।

मार्ग पहाड़ी घाटियोंमें से होकर जाता है। देवगढ़ एक छोटा-सा गाँव है। जिसमें लगभग ३०० की आबादी है। यह बेतवाके मुहानेपर निचाईपर बसा हुआ है। विन्ध्यपर्वतकी श्रेणियों-को काटकर बेतवा नदीने यहाँ बड़े ही सुन्दर दृश्य उपस्थित किये हैं। देवगढ़का प्राचीन दुर्ग जिस पर्वतपर है, बेतवा नदी ठीक उसके ४०० फुट नीचेसे बहती है। यह पहाड़ उत्तर-दक्षिणमें लगभग एक मील लम्बा और पूर्व-पश्चिम में लगभग छह फर्लांग चौड़ा है। इस पहाड़ी के नीचे एक दि. जैनधर्मशाला, दिगम्बर जैनमन्दिर, और साहू जैन संग्रहालय है। संग्रहालयकी स्थापना साहू जैन ट्रस्टकी ओरसे सन् ६८ में हुई थी। धर्मशालाके बराबरमें ही वन-विभागका विश्राम-गृह है। ग्रामके उत्तरमें प्रसिद्ध दशावतार मन्दिर और शासकीय संग्रहालय है। पूर्वमें पहाड़ी-पर उसके दक्षिण-पश्चिमी कोनेमें जैनमन्दिर और अन्य जैनस्मारक हैं।

पहाड़ीपर चढ़नेके लिए पूर्वकी ओर रास्ता बना हुआ है। रास्तेमें एक तालाब भी है। पहाड़पर जानेके लिए पक्का डामर रोड है। बस और कार ठीक मन्दिरके द्वार तक पहुँच जाती है। धर्मशालासे क्षेत्र ३९७१ फुटकी दूरीपर है। इसमें धर्मशालासे पहाड़ी तक १५५० फुट और उसके बाद चढ़ाई प्रारम्भ होनेसे पुरानी दीवारोंमें जो दरवाजा है वह ७२१ फुट और इस दरवाजेसे क्षेत्र १७०० फुट की दूरीपर है।

दिग्दर्शन

पहाड़ीके नीचे जो धर्मशाला है, उसके पास ही एक पुराना मन्दिर दिखाई देता है जिसे गुप्त-मन्दिर कहते हैं। यह गुप्तकालीन स्थापत्य कलाके सुन्दरतम नमूनोंमें से एक है। मन्दिरकी चहारदीवारी और उसके चारों ओरके अवशेषोंको देखनेसे प्रतीत होता है कि इसके चारों ओर और भी कई मन्दिर रहे हैं। पहाड़ीकी तलहटीमें स्थित ये सब भवन, मन्दिर, धर्मशाला, विश्रामगृह आदि अत्यन्त मनोरम स्थानपर अवस्थित हैं। पीछेकी ओर बेतवा नदी न केवल बहती हुई दिखाई देती है अपितु उसकी कलकल ध्वनि भी कानों में पड़ती है। क्षेत्रपर पहाड़ी-की चढ़ाई समाप्त होते ही पहाड़ीकी अधित्यकाको घेरे हुए एक विशाल प्राचीर मिलती है, जिसके पश्चिममें कुंज द्वार तथा पूर्वमें हाथी दरवाजा है। दुर्गकी दीवार स्थान-स्थानपर टूटी हुई है। इस प्राचीरके मध्यमें एक प्राचीर और है जिसे दूसरा गेट कहते हैं। इसीके मध्य जैन-स्मारक हैं। दूसरे कोटके मध्यमें भी एक छोटा प्राचीर है जिसके अवशेष अब भी मिलते हैं।

इस प्राचीरके मध्यमें भी एक दीवार बनायी गयी है जिसके दोनों ओर खण्डित-अखण्डित मूर्तियाँ पड़ी हैं। सभी मन्दिर पत्थरके हैं। विशाल प्राचीरके दक्षिण-पश्चिममें बराह-मन्दिर और दक्षिणमें बेतवाके किनारे नाहर घाटी और राजघाटी है।

यद्यपि यहाँ छोटे-बड़े ४० जैनमन्दिर हैं, किन्तु इनमें ३१ मन्दिरोंका कला-सौष्ठव उल्लेखनीय है। मन्दिरोंकी अपेक्षा यहाँकी मूर्तियाँ शिल्पचातुर्यके उत्तम नमूने हैं। इन मन्दिरोंके अतिरिक्त यहाँ १९ पाषाण-स्तम्भ हैं और लगभग ५०० अभिलेख हैं।

इतिहास

गुर्जर प्रतिहार नरेश भोजदेवके शासनकालीन वि. सं. ९१९ के शिलालेखसे[1] पता चलता है कि पहले इस स्थानका नाम लुअच्छगिरि था। १२वीं शताब्दीमें चन्देलवंशी राजा कीर्तिवर्माके मन्त्री वत्सराजने इस स्थानपर एक नवीन दुर्गका निर्माण कराया और अपने स्वामीके नामपर इसका नाम कीर्तिगिरि[2] रखा। सम्भवतः १२-१३वीं शताब्दीमें इस स्थानका नाम देवगढ़ पड़ गया। देवगढ़के इस नामकरणका कारण क्या है, इस सम्बन्धमें विद्वानोंमें ऐकमत्य नहीं है। श्री पूर्णचन्द्र मुखर्जीका अभिमत है कि इस स्थानपर सन् ८५० से ९६९ तक देववंश का शासन रहा। इसलिए इस गढ़को देवगढ़ कहा जाने लगा। किन्तु यह मान्यता निर्दोष नहीं है क्योंकि इस कालमें यहाँ गुर्जर प्रतिहारवंशी राजाओं का राज्य था।

एक स्तम्भपर वि. संवत् ९१९ का एक अभिलेख है। उसके अनुसार उस स्तम्भके प्रतिष्ठापक आचार्य कमलदेवके शिष्य श्रीदेव बड़े प्रभावशाली थे। उन्होंने यहाँपर भट्टारक गद्दीकी स्थापना की थी। अतः यह स्थान भट्टारकोंका गढ़ रहा है और उनके नामके अन्तमें देव शब्द रहता था। इस कारण इस स्थानका नाम देवगढ़ प्रसिद्ध हो गया।

तीसरी मान्यता, जो अधिक बुद्धिगम्य प्रतीत होती है, यह कि यहाँ असंख्य देव-मूर्तियाँ हैं। इसीसे इसका नाम देवगढ़ पड़ गया।

देवगढ़ नामके सम्बन्धमें एक किंवदन्ती बहुप्रचलित है। देवपत और खेमपत नामक दो भाई थे। उनके पास एक पारसमणि थी, जिसके प्रभावसे वे असंख्य धनके स्वामी बन गये थे। उस धनसे उन्होंने देवगढ़का किला और मन्दिर बनवाये। तत्कालीन राजाको जब इस पारसमणिका पता चला तो उसने देवगढ़पर चढ़ाई करके उसपर अपना अधिकार कर लिया। किन्तु उसे पारसमणि नहीं प्राप्त हो सकी क्योंकि उसे तो उन धर्मात्मा भाइयोंने बेतवा के गहरे जलमें फेंक दिया था।

सम्भवतः उसी देवपतके नामपर इसका नाम देवगढ़ पड़ गया।

ऐसी भी मान्यता है कि इस स्थानकी रचना देवोंने की थी। इसलिए इसे देवगढ़ कहा जाने लगा।

ऐतिहासिक दृष्टिसे देवपत और खेमपत कब हुए अथवा उपर्युक्त किंवदन्ती में कितना तथ्य है, यह तो विश्वासपूर्वक नहीं कहा जा सकता। किन्तु यह निश्चित है कि बुन्देलखण्ड में ऐसा भी एक समय आया था, जब यहाँ जैनोंका पर्याप्त प्रभाव और वर्चस्व था। इसे हम इस प्रदेशका स्वर्ण-काल कह सकते हैं क्योंकि इस समय कलाकी सभी दिशाओंमें खुलकर विकास

---

१. मन्दिर नं. १२ के अर्धमण्डप के दक्षिण-पूर्वी स्तम्भपर उत्कीर्ण अभिलेख।

२. राजघाटीमें वि. सं. ११५४ का अभिलेख।

करनेका पर्याप्त अवसर प्राप्त हुआ और कलाविदोंने कठिन पाषाणोंमें सूक्ष्म ललित कलाका अंकन करनेका सफल प्रयत्न किया।

जैन देवालय

यहाँपर स्थित मन्दिरोंका संक्षिप्त विवरण निम्न प्रकार है—

मन्दिर नम्बर १—ऊपर जाते समय सीधे हाथकी ओर हमें पहला मन्दिर मिलता है। यह मन्दिर पूर्वाभिमुख है। यह चार-चार स्तम्भोंकी दो पंक्तियोंपर आधारित एक मण्डप के समान है। पुरातत्त्व विभागने स्तम्भोंकी प्रथम पंक्तिमें यहाँ मूर्तियाँ जड़ दी हैं। इनमें खड्गासन और पद्मासन दोनों ही अवस्थाओंकी मूर्तियाँ हैं। पश्चिमकी दीवारपर पंच परमेष्ठियोंकी मूर्तियाँ भिन्न-भिन्न अवस्थामें उकेरी हुई हैं।

मन्दिर नम्बर २—मन्दिरके मध्यमें केवल दो स्तम्भ खड़े हुए हैं। ये स्तम्भ दीवारके अंग बन गये हैं। इस मन्दिरके पश्चिममें एक द्वार है जो पत्थरकी जालीसे बन्द है। इसके भीतर पद्मासन और खड्गासन १० मूर्तियाँ विराजमान हैं।

मन्दिर नम्बर ३—यह उत्तराभिमुख है। यह पूर्व-पश्चिमकी तीन और सात स्तम्भोंकी चार पंक्तियोंपर आधारित है। इसमें खुला मण्डप और मन्दिर है। आगेके भागमें दालान है। पहले यह मन्दिर दो मंजिलका था किन्तु ऊपरकी मंजिल गिर जानेसे अब यह एक मंजिलका रह गया है। इस मन्दिरके दो भाग हैं। पहले भागमें ११ खण्डित मूर्तियाँ हैं जिनमें भगवान् पार्श्वनाथकी मूर्ति अत्यन्त भव्य है। दूसरे भागमें २६ शिलाफलक हैं। उनपर मूर्तियाँ अंकित हैं।

मन्दिर नम्बर ४—यह १८ स्तम्भोंपर आधारित है। इन स्तम्भोंमें-से २ स्तम्भ मण्डपके अन्तर्गत हैं, १२ को दीवारमें चिन दिया गया है। शेष ४ स्तम्भ मन्दिरके बीच में स्थित हैं। दीवारोंमें भीतरकी ओर अनेक मूर्तियाँ जड़ी हुई हैं। बाहर स्तम्भमें चारों ओर तीर्थंकरों और उपाध्यायोंकी पद्मासन मूर्तियाँ अंकित हैं। दायें स्तम्भमें ये विभिन्न आसनोंमें अंकित हैं। समवसरण वेदीमें विराजमान ऋषभनाथ तथा तीर्थंकर-माता की प्रतिमा दर्शनीय है। मन्दिरके आगे दुमंजिला मण्डप है, जिसमें नीचे और ऊपरके स्तम्भोंमें चारों ओर मूर्तियाँ अंकित हैं। शेषशय्यापर लेटी तीर्थंकरकी माताका अंकन अद्भुत है।

मन्दिर नम्बर ५—अत्यन्त सुन्दर सहस्रकूट चैत्यालय है। पूर्व और पश्चिमकी ओर दो द्वार हैं। दोनों द्वारोंपर सुन्दर अलंकरण हैं। उत्तर और दक्षिणके द्वारके पाषाण मोड़दार हैं। चैत्यालयमें १००८ मूर्तियाँ बनी हुई हैं। मन्दिरके द्वारपर चमरधारी यक्ष-यक्षिणी और द्वारपालकी मूर्तियाँ बनी हुई हैं। ऐसा सुन्दर सहस्रकूट चैत्यालय अन्यत्र अप्राप्य है।

मन्दिर नम्बर ६—यह चार स्तम्भोंपर बना हुआ है। इसमें ७ तीर्थंकर मूर्तियाँ दीवारमें जड़ी हुई हैं। इस मन्दिरमें एक मूर्ति भगवान् पार्श्वनाथकी है, जिसके सिरपर सर्प-फण नहीं है किन्तु दोनों ओर दो विशाल सर्प बने हुए हैं। कहा जाता है कि पुरानी रीति यही है।

मन्दिर नम्बर ७—चार स्तम्भोंपर आधारित यह चारों ओरसे खुला हुआ है। सीढ़ियाँ उत्तर और दक्षिणमें हैं। इसमें चरणोंके दो फलक हैं।

मन्दिर नम्बर ८—यह आठ स्तम्भोंपर बना हुआ लम्बाकार मण्डप है। इसमें तीन द्वार हैं। बायीं ओरके द्वारकी चौखटके ऊपर पद्मासन तीर्थंकर मूर्ति अंकित है।

मन्दिर नम्बर ९—इसके आगे एक चबूतरा है। मन्दिरका प्रवेश अलंकृत है। द्वारपर गंगा,

यमुना तथा अन्य देवी-देवताओंका अंकन है। मन्दिरमें वेदीपर १२ शिला-फलकोंपर विभिन्न मूर्तियाँ अंकित हैं।

मन्दिर नम्बर १०—यह चार स्तम्भोंपर आधारित गुमटीनुमा मण्डपके रूपमें बना हुआ है। इसके मध्यमें एक पंक्तिमें तीन चतुष्कोण स्तम्भ हैं। इनमें प्रत्येककी गुमटी खण्डित है। स्तम्भ ६ फुट ऊँचे हैं। जीर्णोद्धारके समय दो स्तम्भोंमें दो ताम्रपत्र मिले थे। इन तीनों स्तम्भोंके चारों ओर देव-कुलिकाओंमें तीर्थंकरों, साधु-साध्वियों और श्रावकोंकी मूर्तियाँ और शिलालेख हैं।

मन्दिर नम्बर ११—यह दो मंजिलका पंचायतन शैलीका मन्दिर है। आठ स्तम्भोंपर इसका मण्डप बना हुआ है। प्रवेश-द्वार सुन्दर एवं अलंकृत है। इसमें एक महामण्डप है। दीवालोंमें १२ स्तम्भ चिने हुए हैं। ४ स्तम्भ बीचमें हैं। गर्भगृहमें तीन तीर्थंकर मूर्तियाँ हैं।

दूसरे खण्डपर भी द्वार अलंकृत है। उसपर मूर्तियाँ बनी हुई हैं। यहाँ २५ शिलाफलक हैं, जिनमें १८ पर खड्गासन और ७ पर पद्मासन तीर्थंकर मूर्तियाँ बनी हुई हैं। गर्भगृहमें वेदीपर ५ मूर्तियाँ विराजमान हैं। इनमें श्वेत संगमरमरकी १ मूर्ति नयी है। गर्भगृह दक्षिणकी ओर है। दूसरी मंजिलका गर्भगृह इसीके ऊपर है।

इस मन्दिरके सामने मण्डपमें भगवान् ऋषभदेवके पुत्र बाहुबलीकी ११वीं शताब्दीकी मूर्ति है। दक्षिण भारतमें पायी जानेवाली गोम्मटेश्वर बाहुबलीकी मूर्तिसे इस मूर्तिमें कुछ विशेषता भी है। इस मूर्तिपर वामी, कुक्कुट, सर्प और लताओंके अतिरिक्त बिच्छू, छिपकली आदि भी अंकित किये गये हैं। देवयुगल लताओंको हटाते हुए दिखाये हैं जो कि दक्षिणकी मूर्तियोंमें देखनेको नहीं मिलते। बाहुबली स्वामीकी ऐसी ही एक मूर्ति चन्देरीमें भी मिलती है।

मन्दिर नम्बर १२—यह मन्दिर देवगढ़के सभी मन्दिरोंमें महत्त्वपूर्ण है और मुख्य मन्दिर माना जाता है। यह पश्चिमाभिमुख है। पहले अर्धमण्डप बना हुआ है। फिर मण्डप आता है जो ६-६ खम्भोंकी ६ पंक्तियोंपर आधारित है। बरामदेमें बायीं ओर १८ शिलाफलक हैं। दोपर पद्मासन और शेषपर खड्गासन मूर्तियाँ हैं। यह बरामदा ४२ फुट ३ इंच वर्गका है।

इस मन्दिरमें भगवान् शान्तिनाथकी मूलनायक प्रतिमा विराजमान है, जो १२ फुट ऊँची खड्गासन है। यह प्रतिमा अत्यन्त चित्ताकर्षक और अतिशय सम्पन्न है। इसके सम्बन्धमें अनुश्रुति है कि पहले इस प्रतिमाके सिरपर पाषाणका छत्र एक अंगुलके फासलेपर था किन्तु अब वह दो हाथके फासलेपर है।

मन्दिरकी उत्तरी दालानमें एक महत्त्वपूर्ण शिलालेख है। इसमें ज्ञानशिला लिखा हुआ है। यह १८ भाषाओं और लिपियोंमें लिखा हुआ है। इसे साखानामदी नामक व्यक्ति ने लिखाया था। भगवान् ऋषभदेवकी पुत्री ब्राह्मीने जिन १८ लिपियोंका आविष्कार किया था। वे सभी लिपियाँ इसमें लिखी हुई हैं। इसमें मौर्यकालकी ब्राह्मी और द्राविड़ी भाषाएँ भी हैं।

अर्धमण्डपके एक स्तम्भपर गुर्जर प्रतिहारवंशी राजा भोजका संवत् ९१९ का एक शिलालेख है।

इस मन्दिरका प्रवेश-द्वार और शिखर बड़े भव्य और कलापूर्ण हैं। गर्भगृहके प्रवेश-द्वारके ऊपरके शिलाफलकोंमें भगवान्की माताके सोलह स्वप्नों एवं नवग्रहोंका अनूठा अंकन है।

इसके प्रदक्षिणा-पथकी बहिर्भित्तियोंपर जैन शासनदेवियोंकी सुन्दर मूर्तियाँ बनी हुई हैं। प्रदक्षिणामें ५४ शिलाफलक हैं। इनमें-से ६ पर पद्मासन और शेषपर खड्गासन मूर्तियाँ अंकित

हैं। इनमें १५ पर अभिलेख हैं। इनमें जो बड़ी मूर्ति है, उसके दोनों ओर एक-एक चमरवाहक और एक-एक अम्बिकाकी मूर्ति है।

इस मन्दिरके बरामदेमें जो २४ शासनदेवियों (यक्षियों)की मूर्तियाँ पाषाणमें उत्कीर्ण हैं ऐसी सुन्दर यक्षी-मूर्तियाँ अन्यत्र कहीं नहीं मिलतीं। प्रत्येक मूर्तिके नीचे उसका नाम भी लिखा हुआ है।

मन्दिरके बरामदेमें एक चार फुट ऊँची मूर्ति है जो चीनी शिल्प-कलाकी प्रतीक है। यहाँ पहले २० भुजी चक्रेश्वरी और पद्मावतीकी मूर्तियाँ थीं, जिन्हें साहू संग्रहालयमें पहुँचा दिया गया है। इस मन्दिरकी दीवारोंका जीर्णोद्धार, ऐसा लगता है कि एक हजार वर्ष पहले हुआ हो। बहुत-से भारतीय और भारतीयेतर विद्वानोंने भिन्न-भिन्न प्रकारसे इस मन्दिरकी विशेषताओंका वर्णन किया है। इस मन्दिरका कोट आगरानिवासी सेठ पद्मचन्दजीने बनवाया था, जिसमें ११ से १५ नम्बर तकके मन्दिर हैं। इसकी दीवारमें अनेक मूर्तियाँ, जो इधर-उधर पड़ी हुई थीं, लगा दी गयी हैं। इससे अधिक हानि नहीं हो सकी।

मन्दिर नम्बर १३—यह उत्तराभिमुख है। इसके मण्डपमें २० शिलापट्टोंपर तीर्थंकर मूर्तियाँ हैं। गर्भगृहमें चार वेदियोंपर सात शिलापट्ट और आठ तीर्थंकर मूर्तियाँ हैं। यहाँ जो मूर्तियाँ हैं, उनमें केश-कला की विभिन्न शैलियाँ दर्शनीय हैं। देवगढ़के मन्दिरोंमें जो १८ प्रकारकी केश-कलाके नमूने प्राप्त होते हैं, कहा जाता है कि ये अन्यत्र कहीं भी प्राप्त नहीं हैं। यहाँसे ही इस कलाको विदेशोंमें ले जाया गया है। एक फलकके दोनों ओर खड्गासन मूर्तियाँ हैं।

मन्दिर नम्बर १४—आठ स्तम्भोंपर मण्डप है। फिर गर्भगृह है। इसमें दो कमरे हैं। दायें कमरेमें छह शिलापट्टोंपर ६ खड्गासन मूर्तियाँ हैं। बायें कमरेमें सात शिलाफलकोंपर मूर्तियाँ हैं। कुल ४ मूर्तियोंपर लेख हैं।

मन्दिर नम्बर १५—यह पश्चिमाभिमुख है। आठ स्तम्भोंपर अर्धमण्डप बना हुआ है। यहाँ ५ शिलापट्ट हैं। ४ शिलापट्टोंपर तीर्थंकर मूर्तियाँ हैं तथा एकपर शिलालेख है। द्वारकी चौखट कलापूर्ण है।

महामण्डपमें १६ स्तम्भ हैं। यहाँ १८ शिलाफलक हैं। ६ छोटी वेदियोंपर हैं। दोपर एक-एक पंक्तिका लेख है। चारों दिशाओंमें एक-एक गर्भगृह है। अर्धमण्डप पश्चिममें हैं। इसमें २ वेदियाँ हैं। उत्तरके गर्भगृहमें ३ मूर्तियाँ और मूर्तिखण्ड हैं। पूर्वी गर्भगृहमें द्वारपर गंगा-यमुना और द्वारके भीतर एक पद्मासन प्रतिमा तथा उसके दोनों ओर खड्गासन प्रतिमा है। भगवान् नेमिनाथकी मूर्ति अत्यन्त भव्य है। इसके दायीं ओर पार्श्वनाथ-मूर्ति है।

दक्षिणी गर्भगृहमें बाहरी ओर दो खड्गासन मूर्तियाँ हैं। भीतर अनेक मूर्ति-खण्ड हैं।

मन्दिर नम्बर १६—चार स्तम्भोंपर मण्डप बना है। एक महामण्डप है जिसमें ६-६ खम्भोंकी ३ पंक्तियाँ हैं। महामण्डपमें २५ विशाल शिलापट्ट हैं। ८ पर पद्मासन और १६ पर खड्गासन तीर्थंकर मूर्तियाँ हैं। एक शिलापट्टपर अम्बिकाकी मूर्ति है।

मन्दिर नम्बर १७—मण्डप ८ स्तम्भोंपर खड़ा है। यहाँ ३ शिलापट्टोंपर खड्गासन मूर्तियाँ हैं। महामण्डपमें ३१ शिलाफलक हैं। २२ पर खड्गासन और ९ पर पद्मासन मूर्तियाँ हैं।

मन्दिर नम्बर १८—यह दक्षिणाभिमुख है। इस मन्दिरकी शैली खजुराहोसे मिलती है। चबूतरेपर २ स्तम्भ खड़े हैं। मण्डप ८ खम्भोंपर आधारित है। मण्डपमें ३ फलकोंपर पद्मासन और ४ पर खड्गासन मूर्तियाँ बनी हुई हैं।

महामण्डपके प्रवेश द्वारपर दो मदनिका अंकित हैं तथा संगीत सभाका दृश्य बना हुआ है। यह मण्डप १६ खम्भोंपर ठहरा हुआ है। इसमें १६ शिलाफलक हैं। गर्भगृहका द्वार नीचा है। द्वारपर गंगा-यमुनाका अंकन है। गर्भगृह में ५ शिलापट्ट हैं। एक ७ फुट ७ इंचकी विशाल मूर्ति है।

मन्दिर नम्बर १९—यह दक्षिणाभिमुख है। मण्डपमें ८ स्तम्भ हैं। प्रवेशद्वारपर गंगा-यमुना, नाग-नागी, तीर्थंकर मूर्तियों तथा भरत और बाहुबलीकी मूर्तियोंका सुन्दर अंकन है। महामण्डपमें १६ स्तम्भ हैं। १२ शिलाफलक रखे हुए हैं। इनमेंसे ७ के शीर्ष कटे हुए हैं। मन्दिरके बरामदेमें चारभुजी खड़ी हुई सरस्वती, षोड़शभुजी गरुड़ासीना चक्रेश्वरी, वृषभासीना अष्टमुखी ज्वालामालिनी और पद्मावतीकी मूर्तियाँ बड़ी मनोज्ञ हैं। इनमेंसे एकपर विक्रम सं. ११२० खुदा हुआ है।

मन्दिर नम्बर २०—यह दक्षिणाभिमुख है। प्रवेश-द्वार पर गंगा, यमुना और तीर्थंकर-मूर्तियोंका अंकन है। मण्डपमें २४ स्तम्भ हैं तथा २७ शिलापट्ट रखे हैं। इनमें १४ पर खड्गासन और १३ पर पद्मासन प्रतिमाएँ अंकित हैं। गर्भगृहमें ५ शिलापट्ट हैं जिनमें ३ पर पद्मासन और २ पर खड्गासन मूर्तियाँ हैं। भगवान् महावीरकी पद्मासन मूर्ति अत्यन्त सुन्दर है।

मन्दिर नम्बर २१—मण्डप ८ स्तम्भोंपर आधारित है। यहाँ एक स्तम्भ खण्ड रखा हुआ है जिसपर ६ पंक्तियोंका एक लेख है। मण्डपमें एक कायोत्सर्ग मूर्ति है जो खण्डित है।

पश्चिमी कमरेमें ८ शिलाफलक हैं, जिनमें ३ पर अभिलेख हैं। एक मूर्तिका सिर कटा हुआ है।

पूर्वी कक्षमें भी ८ शिलाफलक हैं। इनकी मूर्तियाँ बड़ी सुन्दर हैं। किन्तु ४ मूर्तियोंके सिर कटे हुए हैं।

सन् १९५९ में मूर्ति-चोरोंने इस मन्दिरको बहुत क्षति पहुँचायी थी। अनेक मूर्तियोंके सिर काट ले गये। इन्द्रकी पूरी मूर्तिको ही छैनीसे काट दिया। इस मामलेमें मोहनजोदड़ो दिल्ली फर्म-के शिवचन्द आदिको सुप्रीम कोर्टसे कारावासका दण्ड भी हुआ।

मन्दिर नम्बर २२—यह दक्षिणाभिमुख है। मण्डप दो स्तम्भों और प्रवेश-द्वारपर स्थित है। द्वारके ऊपर एक पंक्तिका लेख है। बाहरी दीवारोंपर शिखराकृतियाँ बनी हुई हैं। गर्भगृहमें ३ शिलापट्टोंपर ३ पद्मासन मूर्तियाँ बनी हुई हैं।

मन्दिर नम्बर २३—प्रवेश-द्वार सुन्दर है। गर्भगृहकी वेदी सूनी है। यहाँ ५ शिलापट्ट हैं—३ पर कायोत्सर्ग और १ पर पद्मासन तीर्थंकर मूर्तियाँ अंकित हैं। अन्य १ शिलापट्टपर अम्बिका-की मूर्ति है।

मन्दिर नम्बर २४—मण्डपसे आगे द्वार है जिसपर गंगा-यमुना और तीर्थंकर मूर्तियोंका भव्य अंकन है। द्वारके सिरदलपर १ पंक्तिका लेख है। गर्भगृहमें ५ शिलापट्ट हैं—३ पर पद्मासन, १ पर खड्गासन मूर्तियाँ हैं तथा १ पर धरणेन्द्र-पद्मावती बने हुए हैं।

मन्दिर नम्बर २५—यह पूर्वाभिमुख है। मण्डप चार स्तम्भोंपर आधारित है। प्रवेशद्वारके ऊपर खड्गासन पार्श्वनाथका अंकन है। इसके बगलमें एक पंक्तिका लेख है। गर्भगृहमें ५ शिला-फलक हैं जिनमें २ पर पद्मासन और ३ पर खड्गासन प्रतिमाएँ हैं।

मन्दिर नम्बर २६—यह पूर्वाभिमुख है। मण्डप ८ स्तम्भोंपर खड़ा है। मण्डपमें ५ शिलापट्ट हैं। १ पर केवल भामण्डल है। प्रवेश-द्वारके सिरदलपर पाँच फणावलीवाली सुपार्श्वनाथकी मूर्ति है। गर्भगृहमें कुल १२ स्तम्भ हैं। यहाँ १३ शिलाफलक हैं, जिनमें ७ पर अभिलेख हैं। सन् १९५९

में मूर्ति-बेचकोंने यहाँकी कुछ तीर्थंकर मूर्तियों और १ धरणेन्द्र-पद्मावतीके सिर काट लिये थे।

मन्दिर नम्बर २७—यह पूर्वाभिमुख है। मण्डप दीवारोंपर आधारित है। प्रवेश-द्वारके सिरदलपर नेमिनाथ पद्मासन मुद्रामें आसीन हैं। उनके इधर-उधर पार्श्वनाथ और सुपार्श्वनाथ हैं। दायीं ओर १ पंक्तिका अभिलेख है। गर्भगृहके द्वारके ऊपर ऋषभदेव अंकित हैं। गर्भगृहमें २ शिलापट्ट हैं। १ पर चौबीसी बनी हुई है।

मन्दिर नम्बर २८—यह दक्षिणाभिमुख है। गर्भगृह २ सीढ़ी उतरकर निचाई पर है। इसमें ७ शिलापट्ट हैं, जिनमें २ पर पद्मासन और ५ पर खड्गासन मूर्तियाँ हैं। ३ पर लेख हैं। मन्दिरपर शिखर है। प्रवेश-द्वारपर भव्य शिखर है। जीर्णोद्धारके समय यथावत् मूर्ति लगा दी गयी है।

मन्दिर नम्बर २९—यह पश्चिमाभिमुख है। सिरदलपर तीन तीर्थंकर मूर्तियाँ हैं। इसकी वेदीपर ६ शिलापट्ट हैं। इनमेंसे एकपर सं. १२०३ का लेख है। एक शिलाफलकपर चौबीसी है और एकपर केवल भामण्डल और सिंहासन बना हुआ है।

मन्दिर नम्बर ३०—यह पश्चिमाभिमुख है। मण्डप ८ स्तम्भोंपर आधारित है। प्रवेश-द्वारके ऊपर तीन तीर्थंकर मूर्तियाँ हैं। गर्भगृहमें ३ वेदियाँ बनी हुई हैं। इनपर १२ शिलापट्ट रखे हुए हैं। ३ पर लेख हैं। एक सिंहासनपर लेख खुदा हुआ है। इसपर कोई मूर्ति नहीं है।

मन्दिर नम्बर ३१—यह दक्षिणाभिमुख है। प्रवेश-द्वारके दोनों ओर गंगा-यमुनाका अंकन है। सिरदलपर वीणा-पुस्तकधारिणी सरस्वती तथा शान्तिनाथकी मूर्ति बनी हुई है। बायीं ओर कोई देवी-मूर्ति थी जो खण्डित कर दी गयी। गर्भगृहकी वेदीमें एक शिलाफलकपर नेमिनाथकी मूर्ति है।

लघु मन्दिर

उपर्युक्त मन्दिरोंके अतिरिक्त कतिपय लघु मन्दिर भी हैं, जिनका परिचय इस प्रकार है—

मन्दिर नम्बर १—मन्दिर संख्या १२ के दक्षिणमें है। मण्डप चार स्तम्भोंपर खड़ा है। दीवारके बाहरी भागपर चार शिखरयुक्त देवकुलिकाएँ बनी हुई हैं। जिनमें एक-एक तीर्थंकर प्रतिमा है। गर्भगृहमें ५ शिलापट्ट हैं, जिनमें २ पर पद्मासन और ३ पर खड्गासन मूर्तियाँ हैं।

मन्दिर नं. २—यह मन्दिर नं. १२के दक्षिणमें बीचमें हैं। इसमें मण्डप नहीं है। पश्चिम भित्तिपर पाँच और पूर्व एवं दक्षिणकी दीवारपर चार-चार अलंकृत स्तम्भाकृतियाँ हैं। गर्भगृहमें तीन शिलापट्ट हैं। १ पर खड्गासन और २ पर पद्मासन मूर्तियाँ हैं।

मन्दिर नं. ३—मन्दिर नं. १२ के दक्षिणमें पश्चिमकी ओर स्थित है। यह मन्दिर मण्डपाकार है और तीन ओरसे खुला हुआ है। इसमें एक मूर्ति सवा सात फुट ऊँची है। दोनों ओर चमरवाहक हैं, किन्तु बायीं ओरका चमरवाहक नहीं है, कट गया है।

मन्दिर नं. ४—यह मन्दिर नं. १३के सामने है। प्रवेशद्वारपर गंगा-यमुना और सिरदलपर पद्मासन तीर्थंकर मूर्ति है। पश्चिमी भित्तिपर एक शिखरयुक्त मण्डपाकृति बनी हुई है, जिसमें खड्गासन तीर्थंकर प्रतिमा अंकित है। इसी प्रकार पूर्वी दीवारपर भी तीर्थंकर-मूर्ति बनी हुई है। गर्भगृहमें वेदीपर दो शिलापट्ट और खड्गासन पार्श्वनाथ मूर्ति है। शिलापट्टोंमें पद्मासन मूर्तियाँ हैं।

मन्दिर नं. ५—यह मन्दिर नं. १५ के पीछे है। प्रवेश-द्वारके सिरदलके मध्यमें एक

खड्गासन तीर्थंकर प्रतिमा है। इसकी पूर्वी दीवालके उत्तरकी ओर नवनिर्मित चहारदीवार मिलती है। इसके गर्भगृहमें तीन ओर वेदियाँ बनी हुई हैं। उनपर ६ शिलापट्ट हैं, जिनमें ३ पर खड्गासन और ३ पर पद्मासन-प्रतिमाएँ हैं।

मन्दिर नं. ६—इसके सिरदलके मध्यमें पद्मासन तीर्थंकर प्रतिमा है। इसकी दीवालों-पर स्तम्भोंके आकार बने हुए हैं। स्तम्भोंपर सुन्दर बेल-बूटे हैं। इसकी छत एक ही पत्थरकी है। इसके गर्भगृहमें तीन ओर नवनिर्मित वेदियाँ हैं, जिनपर ५ शिलापट्ट हैं। १ पर पद्मासन और शेषपर खड्गासन प्रतिमाएँ हैं।

यह मन्दिर नं. १५के पीछे छोटी मढ़िया कहलाती है।

मन्दिर नं. ७—यह मन्दिर १९के सामने स्थित है। बहिर्भित्तियोंपर चार-चार स्तम्भाकृतियाँ बनी हुई हैं। गर्भगृहमें चार शिलाफलकोंमें १ पर पद्मासन और शेषपर खड्गासन प्रतिमाएँ बनी हुई हैं।

मन्दिर नं. ८—यह मन्दिर नं. २६के उत्तरमें है। प्राचीन मन्दिरका जीर्णोद्धार करके यह बनाया गया है। प्रवेश-द्वारके सिरदलमें एक खड्गासन तीर्थंकर मूर्ति है। गर्भगृहमें चार शिलाफलक हैं, जिनपर ५ प्रतिमाएँ बनी हुई हैं—४ खड्गासन हैं और १ पद्मासन है। १ मूर्ति-पर लेख है।

मन्दिर नं. ९—मन्दिर नं. २७के दक्षिणमें है। पुराने मन्दिरके स्थानपर यह बनाया गया है। इसमें दो कक्ष हैं। बायें कक्षमें २ शिलाखण्ड हैं, जिनपर २ पद्मासन और २ खड्गासन मूर्तियाँ बनी हुई हैं। दायें कक्षमें १ शिलापट्टपर खड्गासन प्रतिमा है और २ छोटे अभिलेख अंकित हैं।

स्तम्भ

यहाँ छोटे-बड़े १९ स्तम्भ हैं, जिनका परिचय इस प्रकार है—

१—यह मन्दिर नं० १ के आगे बना हुआ है। इसके ऊपर ४ देव-कुलिकाएँ बनी हुई हैं, उनमें ४ खड्गासन प्रतिमाएँ अंकित हैं। दक्षिणी देवकुलिकाके नीचे अर्धचन्द्र लांछन बना हुआ है, जिससे ज्ञात होता है कि यह मूर्ति चन्द्रप्रभ भगवान्‌की है। इस स्तम्भके पूर्वी भागमें १० इंच लम्बी ९ पंक्तियोंका एक लेख है। इसके अनुसार वि. सं. १४९३में महेन्द्रचन्द्र नामक एक श्रावकने मूर्ति-प्रतिष्ठा करायी थी। स्तम्भकी ऊँचाई ५ फुट ३ इंच है।

२—मन्दिर नं. १ के पीछे उत्तरमें स्थित है। इस स्तम्भके नीचेके भाग में चार देव-कुलिकाओंमें अम्बिका, चक्रेश्वरी, धरणेन्द्र और पद्मावती बने हुए हैं। स्तम्भके मध्य भागमें कीर्तिमुखोंके चारों ओर घण्टियाँ लटक रही हैं। इसके ऊपर ४ देवकुलिकाएँ बनी हुई हैं, जिनमें ३ पद्मासन तीर्थंकर मूर्तियाँ बनी हैं और दक्षिणी देवकुलिकामें उपाध्याय परमेष्ठीकी मूर्ति है। उपाध्याय उपदेश मुद्रामें हैं। उनके निकट एक चौकी है। पीछी-कमण्डलु भी स्पष्ट दिखाई पड़ते हैं। उनके बायीं ओर हाथ जोड़े हुए एक भक्त बैठा है। पश्चिमी देवकुलिकामें पंच फणावलियुक्त भगवान् सुपार्श्वनाथकी मूर्ति है। शेष दो मूर्तियाँ चिह्न रहित हैं।

इस स्तम्भकी ऊँचाई सवा दस फुट है।

३—मन्दिर नं. १ के पीछे बना हुआ यह मानस्तम्भ है। इसके नीचेके भागमें ४ देव-कुलिकाएँ बनी हुई हैं। उत्तरकी देवकुलिकामें सिंहासनारूढ़ा अम्बिका अपने दोनों बालकों और

आम्रगुच्छक सहित विराजमान है। पूर्वमें गरुड़पर बैठी हुई चक्रेश्वरी है। दक्षिणमें नाग और पश्चिममें नागी बने हुए हैं। इनके ऊपर कीर्तिमुखोंसे कलापूर्ण घण्टियाँ लटक रही हैं। कीर्तिमुखोंके ऊपर देवकुलिकाएँ बनी हुई हैं। पूर्वमें पीछी-कमण्डलु सहित ६ मुनि उपदेश मुद्रामें बने हुए हैं। दक्षिणमें पीछी-कमण्डलु सहित, विनय मुद्रामें ६ अर्जिकाएँ, पश्चिममें ३ साधु, ३ अर्जिकाएँ क्रमसे पीछी सहित और उत्तरकी ओर बायेंसे श्रावक-श्राविका और साधु हाथ जोड़े हुए हैं। इनके मध्यमें आचार्य परमेष्ठी उपदेश मुद्रामें आसीन हैं।

यहाँ तक स्तम्भ चतुष्कोण है। इसके पश्चात् पाषाण गोल हो गया है। फिर कीचकोंके ऊपर चार देवकुलिकाओंमें चार पद्मासन-मूर्तियाँ हैं। पूर्व और दक्षिणमें हरिण चिह्नवाली शान्तिनाथकी प्रतिमा है। पश्चिममें फणयुक्त पार्श्वनाथ हैं। उत्तरकी देवकुलिकामें उपदेश मुद्रामें आचार्य परमेष्ठी विराजमान हैं। उनके समक्ष श्रावक बैठे हुए हैं।

इनके ऊपर और भी देवकुलिकाएँ बनी हुई हैं।

मानस्तम्भ अत्यन्त भव्य है। इसकी ऊँचाई चौकी सहित १६ फुट है।

४—यह मन्दिर १के पीछे है। चौकी समेत इसकी ऊँचाई १० फीट १० इंच है। अधोभागमें ४ देवकुलिकाएँ बनी हैं। इनमें क्रमशः नाग, नागी, अम्बिका और महाकाली हैं। मध्य भागमें कीर्तिमुखोंसे घण्टिकाएँ लटक रही हैं। इनके ऊपर ४ देवकुलिकाएँ बनी हुई हैं। दक्षिणकी देवकुलिकामें उपाध्याय और शेषमें पद्मासन तीर्थंकर मूर्तियाँ हैं।

५—यह मन्दिर नं. २-३-४ के बीचमें बना हुआ है। इसमें अधोभाग और मध्यभागमें कीर्तिमुख बने हुए हैं। मध्यके कीर्तिमुखोंसे साँकलदार घण्टियाँ लटकी हुई हैं। ऊपरी भागमें ४ देवकुलिकाएँ बनी हुई हैं। उत्तरमें आचार्य परमेष्ठी उपदेश मुद्रामें आसीन हैं। एक हाथमें ग्रन्थ है। पीछी-कमण्डलु पासमें रखे हुए हैं। पूर्वमें सप्त फणावलियुक्त पार्श्वनाथ, दक्षिणमें ऋषभदेव और पश्चिममें अजितनाथ पद्मासनमें विराजमान हैं। सबके नीचे एक-एक पंक्तिका लेख है। इस स्तम्भपर वि. संवत् ११०८ अंकित है।

६—मन्दिर नं. ५ के पश्चिममें बायीं ओर है। यह स्तम्भ केवल ४ फुटका है। इसमें चार देवकुलिकाएँ बनी हुई हैं। दक्षिणकी देवकुलिकामें पीछी-कमण्डलु लिये हुए अर्जिका है। शेष ३ पर पीछी-कमण्डलु लिये हुए मुनि कायोत्सर्गमें लीन हैं।

७—यह स्तम्भ मन्दिर नं. ६–७–९के मध्यमें है। इसमें पूर्व और पश्चिममें देवकुलिकाएँ बनी हुई हैं, जिसमें गलेमें माला धारण किये हुए कायोत्सर्ग मुद्रामें भट्टारककी एक-एक मूर्ति है। पूर्वमें एक पंक्तिका तथा पश्चिममें तीन लाइनका लेख है।

यह चौकी सहित पौने पाँच फुट ऊँचा है।

८—यह स्तम्भ मन्दिर नं. १२के सामने चबूतरेपर है। अधोभागमें चार देवकुलिकाएँ हैं। उत्तरमें सिंहवाहिनी, पूर्वमें मयूरवाहिनी, दक्षिणमें नरारूढ़ा और पश्चिममें वृषभारूढ़ा चतुर्भुजी देवी-मूर्तियाँ हैं। सम्भवतः ये महावीर तीर्थंकरकी सिद्धायिका, शान्तिनाथकी महामानसी (कन्दर्पा), सुपार्श्वनाथकी काली (मानवी) नामक देवियाँ होंगी। किन्तु दिगम्बर शास्त्रोंमें किसी नरारूढ़ा[1] देवीका वर्णन देखनेमें नहीं आया।

१—श्री ठक्कुर फेरु विरचित 'वास्तुसार प्रकरण' ग्रन्थके अनुसार पद्मप्रभ भगवान्की यक्षी अच्युता (श्यामा) नरवाहना मानी गयी है।

मध्य भागमें कीर्तिमुखोंसे लम्बी-लम्बी तीन श्रृंखलाओंमें बँधी हुई घण्टिकाएँ लटकती हुई अंकित हैं। इससे ऊपर भागमें चार देवकुलिकाएँ बनी हुई हैं जिनमें एक-एक खड्गासन तीर्थंकर मूर्तियाँ हैं।

यह १३ फुट ८ इंच ऊँचा है।

९—यह स्तम्भ मन्दिर नं. १२ के सामने है। यह ८ फुट ७ इंच ऊँचा है। इसके ऊपर कोई अंकन या अलंकरण नहीं है।

१०—यह मन्दिर नं. १२के महामण्डपमें रखा हुआ है। इसपर दो अभिलेख हैं—एक दो पंक्तिका और दूसरा १० पंक्तियोंका। उसके ऊपर देवकुलिकामें तीर्थंकर मूर्ति बनी हुई है।

यह ६ फुट २ इंच ऊँचा है।

११—यह मानस्तम्भ है जो मन्दिर नं. ११के सामने और मन्दिर नं. १२के दक्षिणमें है। यह तीन कटनीदार चौकीपर स्थित है और कुल ८ फुट ५ इंच ऊँचा है।

इसके अधोभागमें चार देवकुलिकाएँ बनी हुई हैं। इनमें उत्तरकी ओर धरणेन्द्र-पद्मावती, पूर्वमें गरुड़वाहिनी दशभुजी चक्रेश्वरी, दक्षिणमें द्वादशभुजी मयूरवाहिनी महामानसी, पश्चिममें वृषभारूढ़ा अष्टभुजी कालीदेवी उत्कीर्ण हैं।

स्तम्भपर फूल-पत्तियाँ, श्रृंखलायुक्त घण्टियोंका अंकन बहुत सुन्दर है। ऊपरके भागमें चारों दिशाओंमें चार कोष्ठक हैं। उत्तरकी ओर आचार्य परमेष्ठी उपदेश मुद्रामें पद्मासनमें विराजमान हैं। उनके दोनों ओर पीछीधारी एक साधु और अंजलिबद्ध दो-दो भक्त बैठे हैं। पूर्वकी ओर वि. संवत् ११११ का एक अभिलेख है। उसके ऊपर एक उपदेश देती हुई अर्जिका अंकित है। उसके दोनों ओर वस्त्राभूषणधारिणी अंजिलबद्ध तीन-तीन श्राविकाएँ बैठी हुई हैं। दक्षिणमें उपदेश मुद्रामें अर्जिका अंकित है। उनके पीछी-कमण्डलु दोनों दिखाई पड़ते हैं। उनके दोनों ओर एक-एक अर्जिका और दो-दो श्राविकाएँ विनय मुद्रामें आसीन हैं। पश्चिममें मध्यमें उपाध्याय परमेष्ठी उपदेश मुद्रामें बैठे हैं। उनके दोनों ओर एक-एक साधु और दो-दो श्रावक बैठे हैं।

इनके भी ऊपर चार देवकुलिकाएँ बनी हुई हैं। इनके शिखरोंके ऊपर लघु आमलक और कलश बने हुए हैं। इन कुलिकाओंमें दक्षिणमें सप्त फणाच्छादित पार्श्वनाथ कायोत्सर्गमें स्थित हैं। शेष तीन ओर तीर्थंकर प्रतिमाएँ खड्गासनमें अंकित हैं।

१२—यह मन्दिर नं. १२के दक्षिणमें स्थित है। इसके चारों ओर ११-११ पंक्तियोंमें ४-४ तीर्थंकर मूर्तियाँ अंकित हैं। सभी पद्मासनमें हैं।

यह स्तम्भ चौकी समेत ११ फुटका है।

१३—मन्दिर नं. १४के सामने दायीं ओर है। इसके अधोभागमें चारों ओर देवकुलिकाएँ बनी हुई हैं। पश्चिमकी देवकुलिकामें अम्बिका है तथा शेषमें यक्षी हैं। इनके ऊपर चारों ओर ११-११ पंक्तियोंमें ४-४ तीर्थंकर प्रतिमाएँ अंकित हैं। देवकुलिकाओंके ऊपर कलश भी बने हुए हैं। यह ११ फुट ऊँचा है।

१४—यह स्तम्भ मन्दिर नं. १५के सामने स्थित है। इसकी बनावट बहुत सुन्दर है। अधोभागमें १८ मेखलाएँ बनी हुई हैं। कीर्तिमुखोंके ऊपर लताओं और पत्रोंका सुन्दर अंकन किया गया है। ऊपरी भागमें खड्गासन सर्वतोभद्रिका प्रतिमाएँ हैं।

इसकी ऊँचाई ६ फुट ९ इंच है।

१५, १६—ये दोनों स्तम्भ मन्दिर नं. १८के सामने हैं। अधोभागमें मंगल घट बने हुए हैं,

जिनके ऊपर पत्र-पुष्पोंका अलंकरण है। मध्यभागमें जंजीरोंमें घण्टियाँ लटकी हुई हैं। दायीं ओर-के स्तम्भपर वि. संवत् ११२१का एक लेख है।

शृंखलाओंके ऊपर कीर्तिमुख हैं। ऊपरी भागमें चारों ओर कोष्ठक बने हुए हैं। उत्तरकी ओर ग्रन्थ हाथमें लिये आचार्य परमेष्ठी हैं, पादपीठमें पीछी-कमण्डलु है। इनके नीचेकी ओर आर्यिकाएँ हैं। शेष तीन ओर पद्मासन तीर्थंकर मूर्तियाँ हैं।

बायें स्तम्भपर आचार्य परमेष्ठीके सामने साधु और आर्यिकाएँ उपदेश श्रवण करते हुए दिखाये गये हैं। ये १३ फुट १० इंच ऊँचे हैं।

१७—यह स्तम्भ मन्दिर नं. २०के सामने है। इसमें एक सुसज्जित हर्म्यका दृश्य अंकित है। कीर्तिमुख और पुष्पमालाओंका भव्य अंकन किया गया है। मध्यमें शिखराकार देवकुलिकाएँ हैं, जिनमें पद्मासन सर्वतोभद्रिका प्रतिमाएँ हैं।

केवल यही मानस्तम्भ गोलाकार है। इसकी सूक्ष्म कला दर्शनीय है। यह चौकी समेत ११ फुट ११ इंच ऊँचा है।

१८—यह स्तम्भ मन्दिर नं. २६-२७के मध्यमें है। इसके अधोभागमें देवकुलिकाएँ बनी हुई हैं। जिनमें धरणेन्द्र-पद्मावती, अम्बिका आदि देवियाँ उत्कीर्ण हैं। इनके ऊपर पत्रावली, लताएँ हैं। उनके मध्यमें कीर्तिमुखोंसे घण्टिकाएँ लटक रही हैं। उनके ऊपर देवकुलिकाएँ हैं जिनमें पद्मासन तीर्थंकर मूर्तियाँ हैं।

यह पौने पाँच फुट ऊँचा है।

१९—यह स्तम्भ मन्दिर नं. २६-२८-३०के मध्यमें है। अधोभागमें देवकुलिकाएँ हैं। इनमें धरणेन्द्र, पद्मावती, अम्बिका आदि यक्ष-यक्षी हैं। इनके बाद ऊपर चारों ओर चौबीसी बनी हुई है। पाँच-पाँच पंक्तियोंमें ४-४ पद्मासन मूर्तियाँ हैं तथा छठवीं पंक्तिमें खड्गासन मूर्तियाँ हैं। यह ५ फुट ८ इंच ऊँचा है।

क्षेत्रपर बहुत-सी खण्डित मूर्तियाँ इधर-उधर बिखरी पड़ी हैं।

कुंजद्वार

यह द्वार पर्वतके पश्चिमकी ओर है और प्राचीन दुर्गका मुख्य द्वार है। यह १९ फुट ऊँचा और १० फुट चौड़ा है। यह जीर्ण दशामें है। इस द्वारके दोनों ओर १५ फुट चौड़ी प्राचीन प्राचीर है। इसका तोरण भव्य और कलापूर्ण है।

इस द्वारके दक्षिणमें लगभग १०० गजकी दूरीपर मुख्य सड़क और मन्दिरोंके बीच एक पक्का मार्ग बन गया है।

हाथी दरवाजा

दुर्गके प्रथम प्राचीरमें पूर्वकी ओर यह दरवाजा है। हाथियोंका आवागमन इसी द्वारसे होता था, इसलिए इस दरवाजेका नाम ही हाथी दरवाजा हो गया। द्वारके भीतर बायीं ओर एक शिलाफलक ८ फुटकी ऊँचाईपर लगा हुआ है। इसमें उपाध्याय परमेष्ठी अंकित हैं। हाथमें ग्रन्थ लिये हुए हैं, किन्तु वह कुछ खण्डित हो गया है। इनके दोनों ओर अंजलिबद्ध साधु खड़े हुए हैं। उनके हाथोंमें पीछी है। उपाध्यायके ऊपर पद्मासनमें एक तथा उसके दोनों ओर खड्गासन-में एक-एक तीर्थंकर प्रतिमा है। इसके बगलमें एक देवकुलिका बनी हुई है। इसमें एक पद्मासन तीर्थंकर प्रतिमा विराजमान है। किन्तु इसका मुख खण्डित है। इस प्रतिमाके कन्धोंपर जटाएँ

बिखरी हुई हैं। श्रीवत्स और अष्ट प्रातिहार्यका अंकन बहुत भव्य है। इसके दोनों ओर एक-एक पद्मासन तीर्थंकर मूर्ति है।

द्वारके भीतर दायीं ओर ७ फुट ८ इंचकी ऊँचाईपर एक शिलापट्ट है। एक देवकुलिकामें सप्तफण युक्त पार्श्वनाथ खड्गासनमें विराजमान हैं। पादपीठके दोनों ओर दो-दो मानवाकृतियाँ हैं, जो खण्डित हैं। उनके ऊपर पद्मासनमें एक तीर्थंकर मूर्ति है, जिसके दोनों ओर चँवर-वाहक हैं।

शिलापट्टके भीतरकी ओर देवकुलिकामें ललितासनमें बैठे हुए यक्ष-युगल अंकित हैं। एक तीर्थंकर मूर्ति कमलासनपर विराजमान है। यह पद्मासनमें है। सिरके ऊपर दो क्षत्र हैं।

घाटियाँ

पर्वतके दक्षिणकी ओर दो घाटियाँ हैं। इनमें-से नाहरघाटी पहाड़की ऊँची दीवारको काट-कर बनायी गयी है। इस घाटीमें अनेक गुफाएँ और शिलाओंपर अनेक देवकुलिकाएँ बनी हुई हैं। यहाँ एक गुफामें वि. संवत् ६०९ का एक शिलालेख मिला बताया जाता है जो गुप्तकालका प्रतीत होता है।

यहाँ बेतवाके तटपर उत्खननमें प्रागैतिहासिक कालके अस्थिपंजर प्राप्त हुए हैं। राजघाटी-की गुफामें एक शिलालेख वि. संवत् ११५४ का है। इसको चन्देलवंशी राजा कीर्तिवर्माके मन्त्री वत्सराजने उत्कीर्ण कराया था और उसने अपने राजाके नामपर इस स्थानका नाम कीर्तिगिरि रखा था।

अभिलेख

यहाँ लगभग ३०० छोटे-बड़े अभिलेख प्राप्त हुए हैं। ये अभिलेख भित्तियों, स्तम्भों और मूर्तियोंपर उत्कीर्ण हैं। कुछ शिलाओंपर भी अभिलिखित हैं। कुछ बेतवाकी तटवर्ती गुफाओं और पर्वत शिलाओंपर लिखे हुए प्राप्त हुए हैं। अधिकांश लेख दानके अवसरोंपर उत्कीर्ण कराये गये हैं। जैन स्मारकोंके लेखोंमें सबसे प्राचीन वि. संवत् ९१९ का है। यहाँके एक अभिलेखकी लिपि मौर्यकालीन ब्राह्मी लिपिसे बहुत कुछ मिलती-जुलती है। यह अभिलेख साहू जैन संग्रहालय-में रखा हुआ है। नाहरघाटी और दशावतार मन्दिरमें दो अभिलेख ऐसे प्राप्त हुए हैं जो गुप्तकालके हैं। वि. संवत् ९१९ का एक अभिलेख गुर्जर प्रतिहार शासक भोजके कालका है। यह मन्दिर नम्बर १२ के अर्धमण्डपमें एक स्तम्भपर उत्कीर्ण है। वि. संवत् ११२१ में गुर्जर प्रतिहार शासक राज्यपाल द्वारा एक मठका निर्माण किया गया (मन्दिर नम्बर १८ में) वि. संवत् १२१० के एक लेखके अनुसार महासामन्त उदयपालने मूर्तियोंके निर्माणमें आर्थिक सहयोग दिया था।

कुछ अभिलेखोंमें कुछ भौगोलिक नाम भी मिलते हैं, जैसे चन्देरीगढ़, पातीगढ़, लुअच्छगिरि, गोपालगढ़, वेत्रवती, करनाटकी।

कुछ अभिलेखोंमें कुछ ऐतिहासिक व्यक्तियोंके नाम भी मिलते हैं, जिससे अनेक इतिहास-प्रसिद्ध घटनाओंके काल-निर्धारणमें हमें सहायता मिलती है। इन पुरुषोंमें कुछ इस प्रकार हैं—गुर्जर प्रतिहार शासक भोजदेव, भोजका महासामन्त विष्णुराम यचिन्द, राजपाल (गुर्जर प्रतिहार-वंशके अन्तिम शासकोंमेंसे एक), उदयपाल देव, सुल्तान महमूद (मालवाका शासक सन् १४३५-७५), उदयसिंह उदेतसिंह, देवीसिंह दुर्गासिंह (बुन्देला शासक)।

कला-वैविध्य

यहाँके सभी मन्दिर पाषाणके हैं और इनमें चूने-गारेका कोई उपयोग नहीं किया गया है। यहाँ कलाकी विभिन्न कालोंकी विविध शैलियोंके दर्शन होते हैं। यहाँ गुण और परिमाणकी दृष्टिसे बहुल विविध प्रकारकी कला-वस्तुएँ मिलती हैं। इन विविध कलाकृतियोंको हम सुविधाकी दृष्टिसे ५ भागोंमें विभाजित कर सकते हैं।

(१) तीर्थंकर मूर्तियाँ—यहाँ तीर्थंकर मूर्तियाँ अन्य सब मूर्तियोंकी अपेक्षा अत्यधिक हैं। तीर्थंकर मूर्तियोंमें कुछ मूर्तियाँ बहुत प्राचीन है। मन्दिर नम्बर १२ के महामण्डपमें एक सिंहासन-पर एक शिलाफलक रखा हुआ है। उस फलकपर लगभग सवा चार फुट अवगाहनावाली एक मूर्ति है। यह यहाँकी सर्वाधिक प्राचीन मूर्तियोंमेंसे है। सिंहासनपर बीचमें धर्मचक्र और उसके दोनों ओर सिंह बने हुए हैं। मूर्तिके घुटने और नाक कुछ खण्डित हैं।

मन्दिर नम्बर १५ के मण्डपमें एक पद्मासन मूर्ति गुप्तकालके तुरन्त बादकी है। वास्तवमें यह मूर्ति भारतीय मूर्तिकलामें अपने ढंगकी अनूठी है।

सबसे विशाल मूर्तियोंमें मन्दिर नम्बर १२ में एक मूर्ति १२ फुट ४ इंच की है। यह भगवान् शान्तिनाथकी कहलाती है। मन्दिर नम्बर ६ में पद्मासन मूर्ति, मन्दिर नम्बर ९ में खड्गासन अभिनन्दननाथकी मूर्ति और मन्दिर नम्बर १५ में पद्मासन नेमिनाथकी मूर्तियाँ सर्वाधिक सुन्दर मूर्तियोंमें मानी जाती हैं। ये मूर्तियाँ गुप्तकाल की हैं। मन्दिर नम्बर २,२१ और २८ में भी कई मूर्तियाँ गुप्तकाल या उसके तत्काल बादकी हैं। १०-११वीं शताब्दीकी तो अनेक मूर्तियाँ हैं।

यहाँ तीर्थंकर मूर्तियोंमें वैविध्य भी दर्शनीय है। यहाँ द्विमूर्तिकाएँ, त्रिमूर्तिकाएँ, सर्वतो-भद्रिकाएँ, चौबीसी प्रतिमाएँ प्रचुर संख्यामें उपलब्ध हैं।

जटाओं सहित प्रतिमाएँ भी यहाँ बहुत हैं। जटाओंके विविध रूप भी देखनेको मिलते हैं। कहीं पाँच लटें कन्धेपर लहरा रही हैं तो कहीं कन्धेपर आती हुई दो लटें लटकते-लटकते बीसियों लटोंमें बदल गयी हैं। कहीं सिरपर उठी हुई लटोंकी चोटी बँधी दिखाई पड़ती है तो कहीं ये लटें पैरों तक पहुँच रही हैं। ऐसा लगता है कि यहाँ आकर कलाकी धारा सारे विधि-विधानों और बन्धनोंको तोड़कर उन्मुक्त भावसे प्रवाहित हो उठी है।

फणावलीवाली प्रतिमाएँ प्रायः पार्श्वनाथकी होती हैं। किन्तु कुछ ऐसी फणवाली प्रतिमाएँ भी यहाँ मिलती हैं जो पार्श्वनाथके अतिरिक्त अन्य तीर्थंकरोंकी भी हैं। मन्दिर नम्बर १२ के महामण्डपमें (दायेंसे बायीं ओर तीसरी) नेमिनाथ प्रतिमा, (जैन चहारदीवारीके प्रवेश-द्वारके दायीं ओर बाहर ऊपर दूसरे स्थान पर) तथा सुमतिनाथ प्रतिमाके ऊपर फणावली है, जबकि इन दोनों तीर्थंकरोंका लांछन पादपीठपर स्पष्ट अंकित है। पंच फणावलीवाली सुपार्श्वनाथ और सप्त फणावलीयुक्त पार्श्वनाथकी अनेक मूर्तियाँ यहाँपर हैं। सर्प-कुण्डलीके आसनपर बैठी पार्श्व-नाथ प्रतिमाएँ भी कई हैं। सर्प-कुण्डली आसन बनाती हुई और पीठके पीछे होती हुई ऊपर गरदन तक गयी है। उसके बाद सिरपर फणावलीका छत्र तना हुआ है।

(२) देव, देवियोंकी मूर्तियाँ—यहाँ इन्द्र, इन्द्राणी, यक्ष, यक्षी, विद्यादेवियाँ, लक्ष्मी, सरस्वती, नवग्रह, गंगा-यमुना, नाग-नागी, उद्घोषक, कीर्तिमुख, कीचक और क्षेत्रपाल आदिकी अनेक मूर्तियाँ मिलती हैं। इन्द्र-इन्द्राणी तीर्थंकरोंके साथ दिखाये गये हैं। उद्घोषक देव भी तीर्थंकर परिकरमें प्रदर्शित हैं। शेष देव और देवियोंकी मूर्तियाँ तीर्थंकरोंके साथ भी और स्वतन्त्र भी मिलती हैं। देव-देवियोंमें सर्वाधिक मूर्तियाँ यक्षियोंकी प्राप्त हुई हैं। यक्षोंमें केवल गोमुख, गोमेध

और धरणेन्द्र इन तीन यक्षोंकी ही मूर्तियाँ मिली हैं। मन्दिर नम्बर ३७, १२, १९, २२ में गोमुख यक्ष, मन्दिर नम्बर १२,१३,१५ और २३ में गोमेध यक्ष, तथा मन्दिर नम्बर २४,२८ और अनेक स्तम्भोंपर पद्मावती सहित धरणेन्द्रकी मतियाँ मिली हैं। धरणेन्द्र मूर्तियोंमें एक और विचित्रता यहाँ देखनेमें आयी। धरणेन्द्र और पद्मावती दोनोंकी गोदमें एक-एक बच्चा भी कहीं-कहीं दिखाया गया है।

यक्षियोंमें चक्रेश्वरी, अम्बिका और पद्मावतीकी मूर्तियाँ बहुतायतसे मिली हैं। ये तीर्थंकर मूर्तियोंके साथ भी हैं और स्वतन्त्र भी। स्वतन्त्र मूर्तियाँ अधिक हैं। ये सिरदलपर, देवकुलिकाओं में और भित्तियोंपर भी बनी हुई हैं। ये ललितासन, राजलीलासन और खड्गासनमें हैं। ये बहुमूल्य वस्त्रों और रत्नाभरणोंसे अलंकृत हैं। चक्रेश्वरी और पद्मावती बीसभुजी भी मिलती हैं। साहू जैन संग्रहालयमें ऐसी दो मूर्तियाँ रखी हैं। दोनोंके सिरपर तीर्थंकर मूर्तियाँ हैं। संग्रहालय-में एक फलकपर लगभग ३ फुट ऊँची चक्रेश्वरीकी ऐसी ही एक और मूर्ति रखी हुई है। उसके एक हाथमें यक्षमाला, एक हाथमें शंख, सात हाथोंमें चक्र हैं। ११ हाथ खण्डित हैं। उसके परिकर-में लक्ष्मी, सरस्वती और मालाधारी विद्याधर युगल हैं। संग्रहालयमें चक्रेश्वरीकी १ मूर्ति ४ फुट ४ इंचकी है। मन्दिर नं. १९में दशभुजी चक्रेश्वरीकी मूर्ति है। किन्तु इसके हाथ खण्डित हैं।

यहाँ अम्बिकाकी कई सौ मूर्तियाँ मिलती हैं। इसे नेमिनाथके अलावा ऋषभनाथ (मन्दिर नं. ४की भीतरी पश्चिमी दीवारमें) तथा पार्श्वनाथ (मन्दिर नं. १२के महामण्डपमें तीसरी मूर्ति) के साथ भी दिखाया है। मन्दिर नं. १२में अम्बिकाकी ५ फुट ७ इंच ऊँची एक मूर्ति अत्यन्त सुन्दर और कलापूर्ण है।

पद्मावतीकी भी कई सौ मूर्तियाँ यहाँ मिलती हैं। गोदमें बालक लिये हुए तथा अकेली दोनों प्रकारकी मूर्तियाँ मिलती हैं।

मन्दिर नं. १२की बाह्य भित्तियोंपर यक्षियोंके २४ फलक हैं। नीचे यक्षीका नाम और ऊपर तीर्थंकर मूर्ति हैं।

(३) साधु-साध्वियोंकी मूर्तियाँ—यहाँ आचार्य, उपाध्याय, साधु परमेष्ठियों और अर्जिकाओं की बहुत मूर्तियाँ हैं। सबके साथ पीछी तो अवश्य मिलती है, किन्तु कभी-कभी कमण्डलु नहीं दीख पड़ता। आचार्य परमेष्ठी पाठशालामें कुलपतिके रूपमें पढ़ाते हुए कभी मिलते हैं, कभी उपदेश मुद्रामें हाथ उठाकर उपदेश देते हुए दीखते हैं। कभी-कभी वे भक्तोंको केवल आशीर्वाद देते ही दीख पड़ते हैं।

उपाध्याय परमेष्ठी सदा एक हाथमें ग्रन्थ लिये हुए साधुओं या श्रावकोंको पढ़ानेकी मुद्रामें दिखाई देते हैं। साधु और साध्वियाँ प्रायः तीर्थंकरों, आचार्यों और उपाध्यायोंके समक्ष अंजलिबद्ध खड़े हुए या बैठे हुए दिखाई देते हैं। कभी पद्मासन या कायोत्सर्गासनमें ध्यानलीन भी मिलते हैं। भरत-बाहुबलीकी युगल मूर्तियाँ यहाँ अनेक स्थानोंपर हैं।

(४) तीर्थंकर-माता एवं श्रावक-श्राविका—मन्दिर नं. ४के गर्भगृहकी बायीं भित्तिमें लेटी हुई तीर्थंकर-माताकी ३ फुट १० इंच लम्बी एक मूर्ति जड़ी हुई है। माता मुकुट, कर्णकुण्डल, रत्नमाला, केयूर, कंकण, मेखला और पायल धारण किये हुए है। वह दायीं करवटसे लेटी हुई है। बगलमें खड़ी एक देवी चँवर ढोल रही है, एक पाँव दबा रही है। ऊपर तीर्थंकर मूर्तियाँ हैं। नीचेके भागमें एक पंक्तिका अभिलेख है। इसमें निर्माण-काल वि. संवत् १०२० है।

मन्दिर नं. ३०के गर्भगृहमें एक शिलाफलकपर तीर्थंकर-माताकी एक मूर्ति है।

श्रावक-श्राविकाओंकी अनेक मूर्तियाँ मिलती हैं, किन्तु वे तीर्थंकर, आचार्य और उपाध्यायके निकट अंजलिबद्ध या विनयावनत मुद्रामें मिलती हैं। उनका स्वतन्त्र अंकन बहुत कम मिलता है।

(५) फुटकर मूर्तियाँ—इसमें हम प्रकृति-चित्रण, प्रतीकांकन और उत्सव आदिको ले सकते हैं। यहाँके कलाकारोंको कुछ धार्मिक नियम और मर्यादाके वातावरणमें कार्य करना पड़ता था। किन्तु प्रकृतिके इस सुषमा-केन्द्रमें बैठकर प्रकृतिके सौन्दर्यसे व्यामोहित न हों, यह कैसे सम्भव था। पर्वतकी सुरम्य अधित्यका, नीचे कलकल शब्द करती हुई बेतवा, सुरभित समीर और पक्षियोंका उन्मुक्त कूजन! कलाकार मोहित हो गया। प्रकृति-सौन्दर्य ही तो उसकी प्रेरणा-शक्ति है। प्रकृतिका स्वतन्त्र अंकन करनेका अवकाश न सही किन्तु मूर्तियोंके बहाने उसने उदीयमान सूर्य, धवल ज्योत्स्ना बिखेरता पूर्णचन्द्र, प्रशान्त समुद्र, सरोवरमें किलोलें करता हुआ मत्स्य-युगल, लक्ष्मीका अभिषेक करता हुआ गज-युगल, अपनी ३२ सूँड़ोंको लहराता हुआ ऐरावत हाथी, निर्धूम अग्नि, नागेन्द्र भवन, रत्नजड़ित सिंहासन, आम्रगुच्छक, कल्पलता, अशोक वृक्ष, कमल, पुष्पपत्रावली आदिका भव्य अंकन किया। स्तम्भों, देवकुलिकाओं और भित्तियोंपर मूर्तियों और शिरदलोंमें उसने प्रकृति चित्रण किया है। वास्तवमें यहाँ आकर उसकी कला अत्यन्त मुखर हो उठी है। आनन्दमें भरकर उसने लोक जीवनके आनन्द पर्वोंका भी, कठोर पाषाणको छैनी-हथौड़ेसे अपनी इच्छानुकूल रूप देकर, अंकन किया है।

इसी प्रकार तीर्थंकर माताके १६ स्वप्न, चैत्यवृक्ष, सिद्धार्थवृक्ष, स्वस्तिक, अष्टप्रातिहार्य आदि प्रतीकोंका अंकन भी अत्यन्त भव्य हुआ है।

प्रेरक और प्रतिष्ठापक

यहाँ स्थित अभिलेखोंसे हम इस निष्कर्षपर पहुँचते हैं कि यहाँ अनेक मूर्तियोंका निर्माण साधुओं या अर्जिकाओंकी प्रेरणा या उपदेश द्वारा हुआ है। आर्यिकाओंमें इन्दुआ, आर्यिका गणी, आर्यिका धर्मश्री, आर्यिका नवासी, आर्यिका मदनका नाम मिलता है। इसी प्रकार साधुओंमें लोकनन्दीके शिष्य गुणनन्दी, कमलसेनाचार्य और उनके शिष्य श्रीदेव त्रिभुवनकीर्ति, जयकीर्ति, भावनन्दी, चन्द्रकीर्ति, यशःकीर्ति, आचार्य नागसेनाचार्य, कनकचन्द्र, लक्ष्मीचन्द्र, हेमचन्द्र, धर्मचन्द्र, रत्नकीर्ति, प्रभाचन्द्र, पद्मनन्दी, शुभचन्द्र, देवेन्द्रकीर्ति आदिने यहाँ मन्दिर-निर्माणकी प्रेरणा की अथवा प्रतिष्ठा करायी।

राजनीतिक स्थिति

उपर्युक्त विवरणसे सहज ही यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि यहाँपर कला और पुरातत्त्वकी जो सम्पदा सुरक्षित है, वह अनुपम है। लगता है कि बुन्देलखण्डमें उस समय जैनोंका पर्याप्त प्रभुत्व एवं प्रभाव रहा है। कलाकी दृष्टिसे इसे हम इस प्रदेशका स्वर्ण काल कहें तो अनुचित नहीं होगा।

इस प्रदेशपर किस वंशका कितने काल तक प्रभुत्व रहा, इसका कुछ आनुमानिक विवरण पुरातत्त्व विभागने देनेका प्रयत्न किया है। उसके अनुसार हजारों वर्ष पहले यहाँ शबर जातिका आधिपत्य था। पश्चात् पाण्डवों (ईसासे ३००० वर्ष पूर्व), सहरी (समय अज्ञात), गोंड (समय अज्ञात), गुप्त वंश (३०० से ६०० ई.), देववंश (९५० से ९६१ ई.), चन्देल वंश (१००० से १२१० ई.), मुगल(१२५० से १६०० ई.), बुन्देल वंश (१७०० से १८११ ई.) तत्पश्चात् अँगरेजोंका यहाँ आधिपत्य रहा। सन् १८११ में महाराज सिन्धियाने अपनी फौज भेजकर इसपर आधिपत्य कर

लिया। कुछ समय पश्चात् महाराज सिन्धियासे अँगरेजोंने एक सन्धि की, जिसके अनुसार देवगढ़ अंग्रेजोंने ले लिया और उसके बदले चन्देरी महाराज सिन्धियाको दे दिया।

देवगढ़के किलेकी दीवार कब किसने बनवायी, यह कहना कठिन है। किन्तु सुरक्षात्मक दृष्टिसे यह दुर्ग अत्यन्त सुदृढ़ है। इसकी दीवारकी मोटाई १५ फुट है। यह बिना गारे और चूनाके केवल पाषाणकी बनी हुई है। इसमें बुर्ज और गोला चलानेके लिए छेद भी बने हुए हैं। किलेके उत्तर-पश्चिमी कोनेमें दीवारकी मोटाई २१ फुट और लम्बाई ६०० फुट है। हो सकता है, यह दीवार किसी अन्य किलेकी रही हो, जो नष्ट हो गया।

एक विशेष दिशाकी ओर अबतक लोगोंका ध्यान नहीं गया। देवगढ़ सुरक्षा गढ़ अवश्य रहा है, किन्तु यह कभी किसीकी राजधानी नहीं रहा। प्रकृतिने एक ओर बेतवा नदी और दो ओर पहाड़ोंकी अभेद्य दीवार खड़ी करके जो इसे सुरक्षा प्रदान की है, उसके कारण विभिन्न राजवंशोंने इसे अभेद्य दुर्गके रूपमें रखा और उसकी रक्षाके लिए कुछ सेना भी रखी, किन्तु यहाँ दुर्गके भीतर राजमहल या सैनिकोंकी बैरकोंके कोई चिह्न दृष्टिगोचर नहीं होते। इसका उद्देश्य इतना ही हो सकता है कि इन देवमूर्तियोंको सुरक्षित रखा जाये। राजवंशोंने इस दुर्गपर आधिपत्यके जो भी प्रयत्न किये, वे केवल इस गौरवके लिए कि वह उन असंख्य देव-प्रतिमाओंका स्वत्वाधिकारी है जो कला सौष्ठव और विपुल परिमाणकी दृष्टिसे देश-भरमें अनुपम है। सम्भव है, अपनी भौगोलिक स्थितिके कारण इस प्रदेशपर दृष्टि रखनेके लिए इसका सैनिक महत्त्व भी रहा हो। लगता है, जब मुसलमान शासक यहाँ आये तो उन्होंने यहाँकी इस सांस्कृतिक निधि देव-प्रतिमाओंका खुलकर विध्वंस किया। बुन्देलखण्डमें लोग कहा करते हैं कि देवगढ़में इतनी प्रतिमाएँ हैं कि यदि एक बोरी भरकर चावल ले जायें और हर एक प्रतिमाके आगे केवल एक चावल ही चढ़ाले जायें तब भी चावल कम पड़ जायेंगे। आज वहाँ चारों ओर बिखरे हुए भग्नावशेषोंको देखें तो उक्त बुन्देलखण्डी कहावत असत्य नहीं जान पड़ती।

अतिशय क्षेत्र

इस क्षेत्रके चमत्कारोंके सम्बन्धमें भक्त जनोंमें अनेक प्रकारकी किंवदन्तियाँ प्रचलित हैं। कुछ लोगोंका विश्वास है कि क्षेत्रपर रात्रिके समय देव लोग पूजनके लिए आते हैं। वे आकर नृत्यगान-पूर्वक पूजन करते हैं। कुछ ऐसे प्रत्यक्षदर्शी भक्त लोग हैं, जिन्होंने रात्रिके समय मन्दिरोंसे नृत्य और गानकी ध्वनि आती सुनी है। इसी प्रकार भगवान् शान्तिनाथ मनोकामना पूर्ण करते हैं आदि अनेक प्रकारकी किंवदन्तियाँ यहाँ क्षेत्रके अतिशयोंको लेकर प्रचलित हैं। इसलिए यह क्षेत्र अतिशय क्षेत्र कहा जाता है।

हिन्दू मन्दिर

यद्यपि कोटके भीतर केवल जैन मन्दिर, मूर्तियाँ आदि ही मिलते हैं, किन्तु इसके बाहर दो हिन्दू मन्दिर और कुछ मूर्तियाँ हैं। नाहर घाटीमें जो गुफा है, उसमें एक सूर्य-मूर्ति, शिव लिंग और सप्त मातृकाओंके चिह्न मिलते हैं। यहीं निकट ही किलेके दक्षिण-पश्चिम कोने पर वाराहजीका एक मन्दिर है। यह मन्दिर विध्वस्त पड़ा है। मन्दिरके पास वाराहजीकी मूर्ति पड़ी है। उसकी एक टाँग खण्डित है। किलेके नीचे एक विष्णु मन्दिर है। इसका ऊपरका अंश नष्ट हो चुका है। यह मन्दिर गुप्तकालका कहा जाता है। यह मन्दिर पत्थरके जिन टुकड़ोंसे बना है, उन-

पर मूर्तियाँ खुदी हुई हैं। इसकी दीवारोंपर रामायणके दृश्य अंकित हैं। गुप्तकालकी कलाके प्रतिनिधि मन्दिरोंमें इस मन्दिरकी गणना की जाती है।

मेला

बीसवीं शताब्दीमें इस क्षेत्रमें कई बार विशाल आयोजनके साथ मेले हो चुके हैं, जिनमें हजारों-लाखों व्यक्तियोंने भाग लिया। पहला मेला सन् १९३४ में भरा था। उसके बाद सन् १९३६ में भरा। सन् १९३९ में गजरथ महोत्सव हुआ। तत्पश्चात् सन् १९५४ में, फिर बहुत बड़े स्तर-पर सन् १९५६ में मेला हुआ। सन् १९६५ में मुनिवर्य नेमिसागरजी महाराजका संघ सहित चातुर्मास हुआ। उसके कारण क्षेत्रपर भक्तजनोंकी खूब उपस्थिति रहती थी। इसी अवसरपर यहाँ एक क्षुल्लक दीक्षा भी हुई थी।

सीरौन

मड़ावरा नगरसे ६ कि. मी. पूर्वकी ओर सीरौन ग्राम है। गाँवके मकानों और निकटवर्ती जंगलमें अनेक खण्डित मूर्तियाँ बिखरी पड़ी हैं। जो सामग्री यहाँ मिलती है, वह पुरातत्त्व एवं कलाकी दृष्टिसे बहुमूल्य है। इस सामग्रीमें तीर्थंकर प्रतिमाएँ, देवी-देवताओंकी मूर्तियाँ, तोरण, पाषाण स्तम्भ आदि विपुल मात्रामें मिलते हैं। मूर्तियाँ प्रायः ११वीं शताब्दीसे लेकर १३वीं शताब्दी तककी हैं। यहाँ ५० फुट ऊँचा एक भग्न जैन मन्दिर भी दिखाई पड़ता है। इसमें एक पद्मासन तीर्थंकर प्रतिमा विराजमान है।

गिरार

श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र गिरार मडावरासे १६ कि. मी. उत्तर-पूर्वकी ओर है। इस क्षेत्रके अतिशयोंके सम्बन्धमें नाना प्रकारकी किंवदन्तियाँ प्रचलित हैं। अनेक लोग यहाँ अब भी मनौती मनाने आते हैं। इस स्थानके देखनेसे यह विश्वास करनेको जी चाहता है कि यहाँ कभी जैनोंकी बहुत बड़ी आबादी थी। किन्तु समय बदल गया। अब तो यहाँ केवल कुछ ही जैनोंके घर बाकी बचे हैं। यहाँ भगवान् वृषभदेवका एक विशाल जैन मन्दिर है। इसीकी तीर्थ क्षेत्रके रूपमें प्रसिद्धि है। माघ कृष्णा १४को यहाँ जैनोंका वार्षिक मेला होता है।

सैरोन जी

श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र सैरोन जी झाँसी जिलेमें ललितपुरसे झाँसी की ओर २१ कि. मी. है। २० कि. मी. सड़क पक्की है। क्षेत्र गाँव से कुछ दूरपर स्थित है। क्षेत्रके पीछेकी ओर लगभग एक फर्लांग दूरपर एक छोटी-सी नदी खैडर बहती है। यहाँ ठहरनेके लिए धर्मशाला है।

क्षेत्रके चारों ओर २०० फुट लम्बा पक्का परकोटा बना हुआ है जिसका निर्माण २०० वर्ष पूर्व सि. देवीसिंहने कराया था। क्षेत्रके द्वारमें प्रवेश करते ही सामने मानस्तम्भके दर्शन होते हैं। प्रांगणमें धर्मशाला बनी हुई है। एक ओर पुरानी बावड़ी है। प्रांगणमें पहले मन्दिरमें प्रवेश करके एक बड़ा गर्भगृह मिलता है जिसमें एक वेदी है। मूर्तियाँ प्राचीन हैं। वेदीके चारों ओर दीवालके सहारे अनेक खण्डित-अखण्डित प्राचीन मूर्तियाँ रखी हैं।

प्रांगणमेंसे दूसरे मन्दिरमें जानेपर एक अति भव्य प्रतिमाके दर्शन होते हैं। एक शिला-फलकमें १८ फुट ऊँची भगवान् शान्तिनाथकी मूर्ति है। यही क्षेत्रकी मूलनायक प्रतिमा है। इसका प्रवेश-द्वार पौने तीन फुट ऊँचा और डेढ़ फुट चौड़ा है। द्वारके तोरणपर द्वादश राशियाँ अंकित हैं। चौखटपर खड्गासन और पद्मासन तीर्थंकर मूर्तियाँ बनी हुई हैं। दरवाजेके दोनों ओर दो शिलाओंपर सहस्रकूट चैत्यालयका दृश्य अंकित है। मूलनायक प्रतिमाके हाथ और पैर खण्डित हैं। बादमें हाथोंको सुधार दिया गया है। भगवान्‌के अभिषेकके लिए दोनों ओर जीने बने हुए हैं। मूलनायकके अतिरिक्त शेष २३ तीर्थंकरोंकी प्रतिमाएँ भी हैं जिनमें कुछ खड्गासन हैं, कुछ पद्मासन हैं। इसी प्रकार तीसरे और चौथे मन्दिरोंमें भी प्राचीन मूर्तियाँ विराजमान हैं। मन्दिर-से बाहर धर्मशाला है। धर्मशालाके उस भागमें जहाँ बावड़ी है तथा प्रांगणमें दीवारके सहारे प्राचीन मूर्तियाँ रखी हैं। मूर्तियोंमें तीर्थंकर प्रतिमाएँ, और देवी-देवताओंकी प्रतिमाएँ हैं। देवी-मूर्तियाँ इतनी भव्य हैं, जिनकी समानता शायद खजुराहो और देवगढ़ ही कर सकेगा। देवी वस्त्रालंकारोंसे सुसज्जित हैं। हाथोंमें कंगन, गलेमें मौक्तिक माला, कमर में करधनी और कमर-पट्ट हैं। पैरोंमें पायल हैं। इन सबका अंकन इतना सुन्दर हुआ है कि प्रतिमा ही सजीव प्रतीत होती है। बाहुबलीकी एक प्रतिमा तो सचमुच ही अद्‌भुत है। जहाँ यह मानस्तम्भ बना है, वहाँ खुदाईके समय पाषाणमें अभिलिखित एक मन्त्र और मंगलकलश उपलब्ध हुए थे। जो सुरक्षित रखे हुए हैं।

यहाँ परकोटेके बाहर एक नयी धर्मशाला बन रही है। उसके कमरोंकी भीतरी दीवालोंमें अनेक मूर्तियाँ उनकी सुरक्षाकी दृष्टिसे चिन दी गयी हैं।

गाँवमें और आसपास २-३ मीलके घेरेमें प्राचीन मन्दिरोंके अवशेष बिखरे पड़े हैं। एक टीलेपर एक पद्मासन जैन मूर्ति रखी हुई है। इस मूर्तिका सिर नहीं है। आम जनता इसे 'बैठा देव' कहकर पूजती है और मनौती मनाती है। इसके धड़ तकका भाग नौ फुट ऊँचा है। इस प्रकारके टीलोंकी संख्या ४२ है जो यहाँ चारों ओर बिखरे हुए हैं। ये प्राचीन मन्दिरोंके धराशायी होनेसे बन गये हैं। 'बैठा देव' के पश्चिममें एक बावड़ी और कुआँ है। उसके निकट आठ जैन मन्दिरोंके खण्डहर हैं। प्रत्येकमें धर्मचक्र है।

यहाँ मन्दिरके अहातेमें एक बरामदेकी दीवालमें $5\frac{1}{2} \times 3\frac{3}{4}$ फुटका एक शिला-फलक लगा हुआ है, जो अभिलिखित है। इसमें वि. संवत् ९६४ से १००५ तकका विवरण दिया गया है। इस शिलालेखसे इतना तो स्पष्ट हो जाता है कि यह क्षेत्र दसवीं शताब्दीमें विद्यमान था। यहाँ देवगढ़-के समान ही मूर्तियोंकी बहुलता है। अधिकांश मूर्तियोंपर लेख नहीं हैं। मूर्तियोंकी रचना-शैलीसे अनुमान होता है कि ये मूर्तियाँ गुप्तोत्तर कालकी अर्थात् ७-८वीं शताब्दीकी होनी चाहिए।

बाहर धर्मशालाके एक कमरेमें एक चौबीसी है। जिसमें मूलनायक महावीरकी मूर्ति है। यह चौबीसी ६ फुट ऊँची है।

इन मन्दिरोंके परकोटेसे लगभग आठ फर्लांग दूर सैकड़ोंकी संख्यामें मूर्तियाँ पड़ी हुई हैं। कहीं-कहीं तो भग्न मूर्तियोंका ढेर लगा हुआ है। अनेक पुराने मन्दिरोंके भग्नावशेष भी पड़े हुए हैं। पुरातत्त्व और कलाकी दृष्टिसे इनका मूल्यांकन अभी तक नहीं किया गया है।

देवगढ़ और सैरोन निकट ही अवस्थित हैं। ललितपुरसे देवगढ़ २९ कि. मी. है और सैरोन १९ कि. मी. है। देवगढ़की कला अनिन्द्य है। सैरोनकी कलापर भी उसका प्रभाव पड़ा है। देवगढ़की कलाका बहुत बड़ा भाग जिस समय निष्पन्न हो रहा था, उसी कालमें सैरोनमें उन्हीं कलाकारोंके

छैनी-हथौड़े मूर्तियाँ गढ़ रहे थे, मन्दिर उठा रहे थे। इसलिए देवगढ़ और सैरोनकी तत्कालीन कलामें बहुत साम्य दिखाई पड़ता है। देवगढ़में जिस प्रकार मूर्ति-बाहुल्य है, सैरोनमें भी मूर्तियोंकी बहुलता है। देवगढ़में सबसे पुराना अभिलेख सं. ९१९ का है। लगभग उसी कालका अर्थात् सं. ९५४ का एक अभिलेख सैरोनमें मिलता है, जो यद्यपि अभी तक पूरा नहीं पढ़ा गया। किन्तु जो अंश पढ़ा गया, उसमें वहाँकी राजवंशावली दी गयी लगती है।

परकोटेके बाहर दायीं ओर सन् १९६१ में खुदाई हुई थी। उसके फलस्वरूप वेदी निकली; अनेक स्तम्भ, मूर्तियाँ और धर्मचक्र निकले। लगता है, यहाँ कोई विशाल मन्दिर रहा होगा, जिसका विध्वंस हो गया। परकोटेके बायीं ओर कुछ आगे चलकर एक पाषाण-द्वार खड़ा हुआ है। उसके ऊपर तीर्थंकर मूर्तियाँ अंकित हैं। इसे लोग 'धोबीकी पौर' कहते हैं। वस्तुतः यह किसी प्राचीन मन्दिरका द्वार है। इसके पासमें पत्थरोंका ढेर लगा हुआ है, जिसमें मूर्तियों और मन्दिरके पाषाणोंके खण्ड हैं। इस धोबीकी पौरके सामने जहाँ आजकल खेत बने हुए हैं, कभी मन्दिर बने हुए थे। हल चलाते हुए किसानोंको यहाँ अनेक बार मूर्तियाँ मिली हैं, जो परकोटेके अन्दर रखी हुई हैं। यहाँ मन्दिर थे, इस बातके स्पष्ट प्रमाण अब भी इन खेतोंमें मौजूद हैं।

इसी प्रकार क्षेत्र के पीछे मन्दिरोंके खण्डहर बिखरे पड़े हैं। इन खण्डहरोंको देखकर अनुमान होता है कि यहाँ लगभग बाईस जैन मन्दिर थे। ये खण्डहर भी धीरे-धीरे जमीनके बराबरमें होते जा रहे हैं।

गाँवमें कोई ऐसा घर नहीं मिलेगा, जिसमें जैन मन्दिरोंकी सामग्री न लगी हो। कई मकानोंमें तो मूर्तियोंके भाग लगे हैं। गाँवके दो हिन्दू मन्दिरोंमें भी जैन मूर्तियाँ रखी हैं। अधिकांश पार्श्वनाथकी प्रतिमाएँ हैं। हिन्दू लोग उन्हें पूजते हैं।

यहाँ देवी-मूर्तियोंमें सरस्वती, चक्रेश्वरी, ज्वालामालिनी और पद्मावतीकी मूर्तियाँ बहुलता-से मिलती हैं। कुछ तो जैन मन्दिरोंमें हैं और कुछ हिन्दू मन्दिरोंमें रखी हुई हैं या फिर जंगलमें पड़ी हुई हैं। पद्मावतीकी एक मूर्ति तो प्रायः ९ फुट ऊँची है। उसके ऊपर सर्प-फणकी चाड़ाई सवा पाँच फुट है।

यहाँ एक बातकी ओर स्वतः ध्यान आकृष्ट हो जाता है। यहाँ मूर्तियाँ तो सहस्राधिक हैं किन्तु लेख उनमें २-४ पर ही हैं। यहाँ तक कि मूलनायक भगवान् शान्तिनाथकी मूर्तिपर भी कोई लेख नहीं है। इसका कारण यह नहीं है कि ये मूर्तियाँ, जिनपर लेख नहीं हैं, चतुर्थ कालकी होंगी। मूर्तियाँ तो निश्चित रूपसे गुप्तोत्तर कालकी हैं। यहाँ जो लेख मिले हैं, उनमें प्राचीनतम उल्लेख सं. ९५४ का मिलता है और अधिकतम कालका लेख सं. १४५१ का है जिस समय बावड़ी-का जीर्णोद्धार किया गया। सम्भव है, किसी मूर्ति पर सं. ९५४ से भी पूर्वका कोई अभिलेख हो। किन्तु इतना तो निश्चित है कि ईसाकी नौवीं शताब्दीसे लेकर कई सौ वर्षों तक सैरोनका अपना सांस्कृतिक और धार्मिक महत्त्व रहा है। इस कालमें यहाँ गौड़वंश, भोजवंश और चन्देलवंशका शासन रहा और इन तीनों ही वंशोंने कलाके समुन्नयनमें विशेष रुचि ली। लगता है, खजुराहो और देवगढ़के समान सैरोन भी मूर्ति-निर्माणका केन्द्र रहा है। लगता है, मूर्तियोंका निर्माण तो इस कालमें बराबर होता रहा किन्तु उनकी प्रतिष्ठाका अवसर प्राप्त नहीं हो सका। वे निरन्तर पूजी जाती रहीं। इस तरह उनको पूज्यताका अधिकार प्राप्त हो गया।

क्षेत्रके निकट ही खैंडर नामक एक नदी और एक नाला बहता है। गाँवके निकटवाली बावड़ीका जल बड़ा शीतल है। यहाँकी कुछ विशेषताएँ हैं—जैसे बड़े-बड़े बरगदके वृक्ष, विशाल

शिलाएँ, टूटे हुए मन्दिर और मूर्तियाँ आदि। यहाँ आस-पासके क्षेत्रमें व्यवस्थित खुदाईकी आवश्यकता है। उसमें जो वस्तुएँ उपलब्ध हों, उन्हें संग्रहालयमें सुरक्षित रख देना चाहिए। इससे उन नष्ट प्राय मूर्तियोंका जीवन सुरक्षित हो सकेगा।

पवाजी (पावागिरि)

दिगम्बर जैन क्षेत्र पावागिरि उत्तरप्रदेशमें झाँसी जिलेके अन्तर्गत है। इसका पोस्ट आफिस पावा है। यह जगह झाँसीसे ४१ कि. मी. और ललितपुरसे ४८ कि. मी. है। उन दोनों स्टेशनोंके मध्यमें मध्य रेलवेके बसई अथवा तालबेहट स्टेशनपर उतरना चाहिए जो यहाँसे क्रमशः १३-१४ कि. मी. की दूरीपर पूर्वमें हैं। यह क्षेत्र सिद्धोंकी पहाड़ीपर स्थित है। कड़ेसरा तक सिमेण्ट रोड है। यहाँसे क्षेत्र केवल ३ कि. मी. है। यहाँपर मोटर व जीप जा सकती है। कच्चे मार्गमें २ नाले पड़ते हैं। क्षेत्रके पश्चिममें बेतवा नदी बहती है। दो पहाड़ियोंमें-से एक पहाड़ी 'सिद्धोंको पहाड़ी' कहलाती है जिसपर २ मढ़ियाँ बनी हैं। दोनोंकी बनावट एक-सी है परन्तु एक पुरानी प्रतीत होती है। दोनोंके बीच केवल २० फुटका ही अन्तर है। जैसी मढ़िया पहाड़ीकी चोटीपर है, वैसी ही क्षेत्रपालकी मढ़िया मूल भोंयरेके पास है। इन दोनों मढ़ियोंमें चरण चिह्न बने होंगे परन्तु अब वे यहाँ नहीं हैं। इन मढ़ियोंपर-से चारों ओरका दृश्य अत्यन्त मनोहर लगता है। एक ओर बेतवा, दूसरी ओर चेलना, चारों ओर पहाड़ियाँ और उसके बीचमें क्षेत्र। यह दृश्य अत्यन्त चित्ताकर्षक है। इन मढ़ियोंसे माता टीला बाँध और उससे रोका हुआ अगाध जल भी दिखाई देता है। उत्तरकी ओर जो नदी बहती है, उसे नाला कहा जाता है जिसके कई नाम हैं। नालेको बाँधके पास बेलानाला कहते हैं और दूसरे बाँधके पास इसका नाम बैलोताल पड़ता है। यह ताल बहुत बड़ा है। आगे पहाड़की परिक्रमा करता हुआ यह नाला 'बैकोना' नामसे पुकारा जाता है। किन्तु थोड़ा और आगे चलकर इसे 'बेलना' कहते हैं। ऐसा कहा जाता है कि यह बेलना चेलना का ही अपभ्रंश है। चेलना नदीपर रास्तेमें दो पुल भी बन चुके हैं।

जहाँ सिद्धोंकी पहाड़ी और क्षेत्रकी परिक्रमा देनेवाली चेलना नदी मिलती है वहीं एक शिला रखी है जिसे 'मेघासन देवीकी शिला' कहते हैं।

किंवदन्ती

कहा जाता है कि एक साधु सिद्ध पहाड़ीकी मढ़ियापर आकर रहा जो कभी नीचे नहीं आया। पहाड़ीके ऊपर ही उसकी मृत्यु हुई और वहींपर दाह-संस्कार भी हुआ। हो सकता है कि दूसरी मढ़िया उसकी स्मृतिमें बनायी गयी हो, क्योंकि वह सिद्ध पुरुष माना जाता था और उसीके कारण इसका नाम 'सिद्धोंकी मढ़िया' पड़ा।

नायककी गढ़ी—जहाँ सिद्धोंकी पहाड़ी प्रारम्भ होती है वहाँ लालाहैदोलका चबूतरा बना है, जहाँ कुछ खण्डित मूर्तियाँ पड़ी हैं। उसी चबूतरेसे 'नायककी गढ़ी' का बाहरी परकोटा शुरू हो जाता है। यहाँ गढ़ीके पूरे निशान, परकोटा, बावड़ी, सीढ़ियाँ तथा कमरोंके भग्नावशेष अब भी मिलते हैं। वस्तुतः यह नायककी गढ़ी नहीं है बल्कि एक विशाल जैन मन्दिरका खण्डहर है। यदि इस खण्डहरका उत्खनन हो तो इसमें इतिहासके कई बोलते पृष्ठ दबे पड़े मिलेंगे। बावड़ीकी सीढ़ियाँ इस कारीगरीसे निकाली गयी हैं कि आजके इंजीनियर भी उसे देखकर हैरान रह जाते हैं। यह विशाल मन्दिर 'सिद्धोंकी पहाड़ी' के ऊपर है।

सात भोंयरे बुन्देलखण्डमें रहे हैं, जिनमें-से १ भोंयरा पावागिरिका है। ये ७ भोंयरे इस प्रकार हैं—पावागिरि, देवगढ़, चन्देरी, सोरौन, करगुवाँ, पपौरा और थूबौन। कहा जाता है कि ये सातों भोंयरे देवपत-खेवपतके बनवाये हुए हैं। इस भोंयरेमें कुल ६ मूर्तियाँ हैं जो तीर्थंकर मल्लिनाथ, ऋषभनाथ, पार्श्वनाथ तथा नेमिनाथ आदिकी हैं। ये मूर्तियाँ वि. संवत् १२९९ एवं १३४५ की हैं। परन्तु जो मूर्तियाँ बावड़ीसे खुदाईमें मिली हैं उनमें एकपर वि. सं. १२९९ पड़ा हुआ है जिसकी प्रतिष्ठा यहीं हुई थी क्योंकि मूर्ति पर पवा शब्द लिखा हुआ है। इस प्रकार यहाँकी प्राचीनता असन्दिग्ध है। यह सिद्ध क्षेत्र है।

हिन्दी निर्वाण काण्डमें कहा है—

स्वर्णभद्र आदि मुनिचार, पावागिरिवर शिखर मझार।
चेलना नदी तीरके पास, मुक्ति गये बन्दों नित तास।

यहाँपर नवीन तीन जिनालय हैं। ३३ फुट ऊँचा एक मानस्तभ है। बाहुबली स्वामीको एक भव्य मूर्ति भी विराजमान की गयी है। सन् १९७० में यहाँ गजरथ महोत्सव हुआ था। उस समय इसकी प्रतिष्ठा हुई थी। पहाड़ीपर सुवर्णभद्र आदि मुनिराजोंके चरण-चिह्न और उनके ऊपर ३० फुट ऊँची छतरी बनी हुई है।

यात्रियोंके ठहरनेके लिए धर्मशाला बनी हुई है। क्षेत्रका वार्षिक मेला मंगसिर कृष्णा २ से ५ तक होता है। यहाँके 'भूरे बाबा' सबकी मनोकामना पूर्ण करते हैं, ऐसी प्रसिद्धि है।

आवश्यक निवेदन

पावागिरि सिद्धक्षेत्रके स्थानके सम्बन्धमें विवाद है। प्रचलित मान्यता उनके निकटवर्ती पावागिरिकी है। पवाजी अतिशय क्षेत्रके रूपमें प्रसिद्ध रहा है, किन्तु कुछ समयसे बुन्देलखण्डका प्रबुद्ध वर्ग यह दावा कर रहा है कि 'पवाजी ही वास्तविक पावागिरि है। बेतवा नदी ही वास्तवमें चेलना नदी है। इसलिए स्वर्णभद्र आदि चार मुनि जिस पावागिरिसे चेलनाके तटपर मुक्त हुए हैं, वह पावागिरि और चेलना यही है।' विस्तारभयसे इस सम्बन्धमें यहाँ अधिक कुछ नहीं लिखा जा सकता। मध्यप्रदेश सम्बन्धी ग्रन्थके तृतीय भागमें, जहाँ पावागिरिके सम्बन्धमें विवेचन किया है, इस विषयपर विस्तारपूर्वक चर्चा की गयी है।

ललितपुर (क्षेत्रपाल)

स्थिति

मध्य रेलवेके झाँसी-बीना जंकशनके बीच ललितपुर स्टेशन है जो उत्तरप्रदेशके जिला झाँसी मण्डलके अन्तर्गत बुन्देलखण्डका प्रमुख नगर है। भारतीय इतिहासके आधारपर यह स्थान चन्देल कलचुरी वंशके शासकोंके अधीन था। वर्तमानमें यहाँपर लगभग एक हजार दि. जैन परिवार हैं।

यह नगर दि. जैन तीर्थ क्षेत्रोंका जंकशन है। क्योंकि इसके चारों ओर यहाँसे लगभग ३० कि. मी. दूरीपर श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र देवगढ़ जी, ३० कि. मी. की दूरीपर श्री दि. जैन अतिशय क्षेत्र सैरोन जी, ३६ कि. मी. की दूरीपर दि. जैन अतिशय क्षेत्र चन्देरी, २० कि. मी. पर थूबौन जी एवं ६० कि. मी. की दूरीपर श्री दि. जैन अतिशय क्षेत्र पपौरा जी, अहार जी आदि विख्यात क्षेत्र हैं। इन्हीं विश्व विख्यात क्षेत्रोंसे घिरे हुए ललितपुर नगरके बीच विशाल एवं प्राचीन

चार शिखरवत् जिनालय तथा तीन चैत्यालय हैं। (श्री दि. जैन बड़ा मन्दिर, श्री दिगम्बर जैन नया मन्दिर, श्री पार्श्वनाथ अटा मन्दिर, श्री दि. जैन क्षेत्रपाल जी)। श्री दिगम्बर जैन क्षेत्रपाल जी स्टेशनसे चार फर्लांगकी दूरीपर एक विशालकोटके अन्दर अद्भुत जिनबिम्ब एवं चैत्यालयोंसे सुशोभित हैं। इसके प्रमुख हाथीद्वारसे प्रवेश करते ही सामने भव्य उत्तुंग मानस्तम्भ है। मानस्तम्भके बाद ही जमीनके समतलसे लगभग १० मीटरकी ऊँचाईपर एक टीलेपर विशाल परकोटेसे वेष्टित मन्दिर हैं जहाँ ९ प्राचीन वेदियाँ हैं। मन्दिर नं. ३ दरवाजेके सामने ही है। यह भगवान् अभिनन्दननाथका जिनालय है। इसमें भगवान् अभिनन्दननाथकी श्याम वर्ण पाषाणकी ४ फीट उत्तुंग पद्मासन भव्य प्रतिमा सं. १२४३की प्रतिष्ठित है, जो अत्यन्त मनोज्ञ है।

इसीके नीचे क्षेत्रपाल जीके नामसे एक शिलाखण्ड विद्यमान है। जिसके निकट एक कुण्ड है। ऐसी जनश्रुति है कि यह कुण्ड सतत घी डाले जानेपर भी कभी भरा नहीं जा सका। इसी मन्दिरकी दालानके खम्भेमें नीचे व ऊँचे खण्डमें भी चन्दप्रभ स्वामीकी एक प्राचीन मूर्ति है। मन्दिर नं. ४ में वि. सं. १२२३ की सफेद पाषाणकी सुन्दर मूर्ति है जिसमें आवाज आती है।

मन्दिर जी के प्रांगणमें एक विशालकाय हाथी विद्यमान है। जिसके सम्बन्धमें जनश्रुति है कि मध्य रात्रिके समय श्री क्षेत्रपाल जीकी सवारी नगर परिक्रमा हेतु निकलती थी।

मन्दिर नं. ७ में लगभग ७ फुट उत्तुंग वि. सं. १७०६ में निर्मित भगवान् पार्श्वनाथकी खड्गासन मूर्ति चट्टानमें उत्कीर्ण है जिसके चरणसे लेकर मस्तकके ऊपर तक ७ फणोंसे युक्त सर्प चिह्न बना हुआ है। इसकी पालिश चमकदार है। प्रतिमा अत्यन्त मनोज्ञ एवं आकर्षक है। स्मरण करनेसे मनोकामना सिद्ध होती है।

इसीके निकट प्राचीन भोंयरा है जिसमें चट्टानमें उत्कीर्ण १२ तीर्थंकरोंकी तथा ३५ देव-देवियोंकी एकसे एक सुन्दर मूर्तियाँ हैं। भगवान् बाहुबलीकी अत्यन्त मनोहर मूर्ति देखते ही बनती है। चट्टानमें उत्कीर्ण पार्श्वनाथ स्वामीकी ६ फुट ऊँची एक खड्गासन मूर्ति भी है।

मन्दिर नं. ९ तनिक ऊँचाईपर स्थित है। इसके भीतरकी वेदिकाके पीछे अति प्राचीन विशाल खड्गासन प्रतिमा आवरणसे आवेष्टित है। वेदीके सामने ही द्वारके ऊपर एक आलेमें भीतरकी ओर एक जिनप्रतिमा विराजमान है जो अपनी प्राचीनताकी स्वयं साक्षी है। पासमें ही एक वेदिकामें भगवान् पार्श्वनाथकी मूर्ति विराजमान है।

ये सभी मन्दिर अतिशययुक्त हैं। यहाँपर एक विशाल प्रवचन-हॉल है जहाँ अनेक आचार्यों, मुनियोंके चातुर्मास तथा समय-समयपर धार्मिक प्रवचन होते रहे हैं। आध्यात्मिक सन्त पूज्य श्री क्षुल्लक गणेशप्रसाद जी वर्णीने अपने चातुर्मासके समय कहा था कि भारत भ्रमणके बाद मैं कहता हूँ कि इस क्षेत्रपालजीसे अधिक सुख-शान्तिदायी मुझे अन्य क्षेत्र प्रतीत नहीं हुआ।

इसी क्षेत्रपालजीकी परिधिमें व्रती आश्रम, छात्रावास, श्री वर्णी जैन कालेज, धर्मशाला, विशाल बगीचा तथा (सरोवर) तलैया का मैदान है। पुलिस लाइनके पीछे भी इसकी काफी जमीन है। सब जमीन ९ एकड़के लगभग है।

ललितपुर नगरमें वि. सं. १७०६, १८४९, १९५५ तथा १९७९ में पंच-कल्याणक प्रतिष्ठाएँ एवं गजरथ महोत्सव हुए, शाहजाद नदीके डोढ़ा घाट के निकट बनी प्रतिष्ठा वेदिकाएँ जिनके स्मारक हैं।

बालाबेहट

बालाबेहट एक ग्राम है जो उत्तर प्रदेशके जिला झाँसीके अन्तर्गत स्थित है। यहाँपर पोस्ट-आफिस भी है। ललितपुरसे इस क्षेत्र तक प्रतिदिन मोटर जाती है। बरसातके दिनोंमें मोटरका आना-जाना बन्द हो जाता है। मार्ग इस प्रकार हैं—ललितपुरसे दक्षिणकी ओर ललितपुर-सागर रोड पर लगभग २५ कि. मी. जाते हैं। वहाँसे १३ कि. मी. कच्चा मार्ग है। ललितपुरसे अमझराघाटी होकर भी बालाबेहट जाते हैं। अमझराघाटीसे ५ कि. मी. पक्का मार्ग है, बादमें लगभग १४ कि. मी. कच्चा मार्ग है। यह रास्ता अपेक्षाकृत अच्छा है। एक अन्य रास्ता करोंदा स्टेशनसे है। यहाँसे १६ कि. मी. की दूरीपर उत्तर दिशामें कच्चे रास्तेसे बैलगाड़ी द्वारा वहाँ पहुँचा जा सकता है।

यह एक अतिशय क्षेत्र है। यहाँकी मुख्य प्रतिमा काले पाषाणकी भगवान् पार्श्वनाथकी है, जो डेढ़ फुट अवगाहनाकी है। यह प्रतिमा साँवलियाके नामसे प्रचलित है। कहते हैं, कि वि. सं. १५०० में किसी व्यक्तिको स्वप्न हुआ और उसने दूसरे दिन इस प्रतिमाको जमीनके अन्दरसे खोदकर निकाला। तभीसे इसकी प्रसिद्धि हो गयी है। अब यह प्रतिमा एक विशाल मन्दिरमें विराजमान है जो कि लगभग २०० वर्ष प्राचीन है। जब कभी रात्रिमें यहाँ देव नृत्य पूजन आदि करते हैं, बाजे बजते हैं, यह किंवदन्ती भी प्रचलित है। प्रतिमाके लेखसे प्रतीत होता है कि यह वि. सं. १४४६ में प्रतिष्ठित हुई थी।

क्षेत्र पर एक ही मन्दिर है। एक दूसरा मन्दिर भी है जो जीर्णावस्थामें है, अतः खाली पड़ा है। प्रतिमाओंकी कुल संख्या ५१ है। यहाँ दो धर्मशालाएँ हैं जिनमें एक जीर्ण है। गाँवमें अभी-अभी कुछ जैनोंके घर भी बस गये हैं।

चाँदपुर-जहाजपुर

मार्ग

यह क्षेत्र ललितपुर और जाखलोनसे आगे ललितपुर-बीना लाइन पर धौर्रा स्टेशनसे आधा मील दूरी पर बियाबान जंगलमें जीर्ण-शीर्ण अवस्थामें पड़ा हुआ है। यह देवगढ़से लगभग १८ मीलकी दूरीपर है। चाँदपुर और जहाजपुरके बीचसे रेलवे लाइन गुजरती है। चाँदपुर पूर्व और जहाजपुर पश्चिमकी ओर है।

चाँदपुरकी ओर जाते हुए कुछ मूर्तियाँ रास्तेमें भी पड़ी हुई हैं। यहाँ एक विशाल कोटसे घिरी हुई एक जगह है जिसमें ३ मन्दिर विद्यमान हैं। पहला मन्दिर ऊँचे चबूतरेपर छतरीनुमा बना है। चबूतरेपर चारों ओर बहुत-सी मूर्तियाँ बिखरी पड़ी हैं। इनमेंसे एक तो १२ फुटकी है। एक मन्दिर बीचमें है। उसमें घुसनेका दरवाजा बहुत छोटा है। इसमें एक १७ फुट ऊँची भगवान् शान्तिनाथकी मूर्ति है और इधर-उधर ८ मूर्तियाँ और रखी हैं। दो बहुत ही सुन्दर यक्षिणियोंकी भी मूर्तियाँ हैं। इस मन्दिरके बाहर २४ मूर्तियाँ पड़ी हैं। मन्दिरके सामने एक ६० फुटका मैदान है, जिसके ऊपर चलनेसे प्रतीत होता है कि यदि इसकी खुदाई करायी जाये तो बहुत अधिक पुरातत्त्व सामग्री मिलेगी।

इसके अलावा मन्दिरके परकोटेमें किसी समय चौबीसों भगवान्‌की चौबीसी रही होगी। परन्तु अब तो उस चौबीसीकी लगभग ५-६ प्रतिमा ही दिखाई देती हैं।

यहाँसे थोड़ी ही दूर पर चलकर रेलवे लाइन पार करके जब हम जाते हैं तो वहाँ पचासों मन्दिर एकके पास एक लगे टूटे पड़े हुए हैं। ये मन्दिर अधिकतर अजैनोंके हैं। केवल एक मन्दिर-में ही कुछ अंश जैनियोंके मिले हैं। इन भग्नावशेषोंसे थोड़ी दूरपर एक और कोट है जिसमें एक जीर्णशीर्ण महादेवका मन्दिर है। उसमें ३ बड़े-बड़े नादिये हैं और एक गणेशजीकी बड़ी मूर्ति है। इसमें एक कोट है और उसमें लगा हुआ पीछे एक बहुत बड़ा तालाब है। यहाँसे कुछ दूरपर और भी जैन मन्दिर और मूर्तियोंका होना सम्भव है।

दुधई

यह स्थान देवगढ़से ३० कि. मी. और ललितपुरसे ५० कि. मी. है (बाया जाखलोन)। शाहपुरासे यह १६ कि. मी. की दूरीपर अवस्थित है। अन्तिम ३ कि. मी. की सड़क तो बहुत ही खराब हालतमें है।

दुधई गाँवका पुराना नाम महौली है। यहाँपर ३ मन्दिर भग्नावशेष दिखाई देते हैं और वे सभी पुरातत्त्व विभागकी देख-रेखमें हैं। जिनमें दो विशाल मूर्तियाँ हैं। एक १४॥ फुट, दूसरी ११ फुटकी है। यह अच्छी दशामें है। लगभग ६६ टूटी मूर्तियाँ है और विपुल परिमाणमें भग्नावशेष पड़े हैं। यहाँपर कई मूर्तियाँ तो कुछ ही समय पहले खण्डित की गयी प्रतीत होती हैं। पहले मन्दिर-की छत नहीं है और दूसरा मन्दिर भी बहुत टूटी-सी हालतमें है। इस मन्दिरमें एक ११ फुट ऊँची पद्मासन मूर्ति है जो यहाँकी सबसे बड़ी मूर्तियोंमें-से है। कुछ दूरपर और भी मन्दिरोंके भग्नावशेष मिलते हैं। दुधईके रास्तेमें आखिरी मीलपर पुरातत्त्व विभागका बोर्ड नजर आता है जिसपर लिखा है 'नेमिनाथकी बारात'। यहाँपर १५० वर्ग फुट भूमिमें बहुत सारी मूर्तियाँ व मन्दिरोंके भग्नावशेष पड़े हैं। अनेक मूर्तियोंके सिर तो हाल ही में कटे प्रतीत होते हैं। सभी मूर्तियाँ और भग्नावशेष बिलकुल खुले मैदानमें पड़े हुए हैं और पुरातत्त्व विभागकी कोई विशेष देख-भाल प्रतीत नहीं होती।

बानपुर

श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र बानपुर 'क्षेत्रपाल' ललितपुर महरौनी होते हुए ५३ कि. मी. है। क्षेत्रपालसे एक मील आगे बानपुर गाँव है। गाँवमें भी दो विशाल मन्दिर हैं। यह क्षेत्र लगभग २५०×१८५ फुटमें अवस्थित है। इसके चारों ओर परकोटा बना हुआ है किन्तु यह कहीं-कहींसे टूट गया है। यहाँपर एक पुरानी धर्मशाला बनी हुई है, जिसमें पाँच कमरे हैं।

क्षेत्रपर कुल पाँच मन्दिर हैं। यहाँ एक कुआँ है। पूजनके लिए पुजारीकी व्यवस्था है। मन्दिर नं. १ में छह फुट ऊँची एक मनोज्ञ प्रतिमा है। एक प्रतिमा संगमरमरकी है जो आधुनिक है। इसी प्रतिमा की पूजा होती है। मन्दिर नं. २ में एक प्रतिमा ९ फुट ९ इंच की है। इसके अतिरिक्त ४ मूर्तियाँ और हैं। मन्दिर नं. ३ में एक पद्मासन प्रतिमा वि. सं. १५४१ की है। मन्दिर नं. ४ में भगवान् शान्तिनाथकी अत्यन्त मनोज्ञ प्रतिमा है, जिसकी अवगाहना १५ फुट है। यही इस क्षेत्रकी मूलनायक प्रतिमा कहलाती है। इस प्रतिमाके दायें-बायें ७ फुट ऊँची मूर्तियाँ भगवान् कुन्थुनाथ और अरनाथ की हैं। इन मूर्तियोंके लेखोंके अनुसार इनका प्रतिष्ठा काल वि. सं. १००१ है। ये चारों मन्दिर चबूतरेपर बने हुए हैं। इस चबूतरे के नीचे एक हौज-सा बना हुआ है।

पाँचवाँ मन्दिर इस हौजके दूसरी ओर है, जिसमें एक सहस्रकूट चैत्यालय बना हुआ है। यह अत्यन्त कलापूर्ण एवं भव्य है। यह १२ फुट ऊँचा है। इसका निर्माण-काल भी वि. सं. १००१ है। इसके परिक्रमा-पथकी दीवालोंमें बाहर और भीतर प्राचीन प्रतिमाएँ अंकित हैं।

इस सहस्रकूट चैत्यालयकी स्थापना अथवा प्रतिष्ठा किसने करायी थी—इस सम्बन्धमें श्री अहार क्षेत्रपर भगवान् शान्तिनाथके पादपीठमें उत्कीर्ण लेखसे कुछ प्रकाश पड़ता है। यह लेख वि. सं. १२३९ का है। इसके अनुसार अहारजीके प्रतिमा-प्रतिष्ठाताके प्रपिताके प्रपिता इस सहस्रकूट चैत्यालयके प्रतिष्ठापक थे। वह उल्लिखित श्लोक इस प्रकार है—

गृहपति-वंश-सरोरुह-सहस्ररश्मि: सहस्रकूटं यः।
बाणपुरे व्यधिधासीत् श्री मानसिंह देवपाल इति॥

अर्थात् गृहपति वंशरूपी कमलोंको प्रफुल्लित करनेके लिए सूर्यके सदृश यहाँ श्रीसम्पन्न देवपाल हुए जिनके द्वारा बाणपुरमें सहस्रकूट चैत्यालय बनवाया गया।

इस क्षेत्रके अहातेमें कई मन्दिरों और मूर्तियोंके भग्नावशेष पड़े हुए हैं। यहाँसे लगभग १२ मील दूर सोजना नामक गाँवमें कई जैन मूर्तियाँ पड़ी हुई हैं। गाँवका मन्दिर भी बहुत विशाल है। इसमें १५-१६वीं शताब्दी की प्रतिमाएँ विद्यमान हैं।

मदनपुर

मार्ग

श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र मदनपुर झाँसी जिलेके अन्तर्गत मडावरासे दक्षिणकी ओर १७ कि. मी. है। झाँसीसे मडावरा २५० कि. मी. है। मडावरा ग्राममें भी ११ विशाल जैन मन्दिर हैं तथा ९ छोटे मन्दिर हैं। स्व. पूज्य गणेशप्रसादजी वर्णीका जन्म इसी गाँवमें हुआ था। झाँसीसे मदनपुर तक पक्की सड़क है और बसें बराबर आती-जाती हैं। महरौनीसे भी मदनपुरके लिए पक्का मार्ग बन गया है जो आगे जाकर बरौदियाकलाँपर झाँसी-सागर राष्ट्रीय मार्गसे मिल जाता है। ललितपुर ग्रामसे बरौदियाकलाँ (ललितपुर-सागर रोड) होकर यह स्थान ७६ कि. मी. पड़ता है। मदनपुर ग्राममें जैनोंके केवल दो घर हैं। इस ग्राममें थाना भी बन गया है जिससे असुरक्षाका भय बिलकुल भी नहीं रहा। मदनपुर गाँवसे क्षेत्र तकका मार्ग भी बहुत सुन्दर बन गया है। चम्पोमढ़ और मोदीमढ़ जानेका भी मार्ग बन गया है। जंगल कटवा दिये गये हैं। क्षेत्रसे थाना ३-४ फर्लांग दूर है। थानेके निकट ही सरकारी डाक बँगला बना हुआ है।

क्षेत्र-दर्शन

गाँवमें एक प्राचीन मन्दिर है जो जीर्ण-शीर्ण दशामें है। गर्भगृहके ऊपर लगभग ४० फुट ऊँचा शिखर बना हुआ है। मन्दिरमें ६ श्वेत पाषाण और ६ धातुकी प्रतिमाएँ हैं, जो १५वीं शताब्दीसे १८वीं शताब्दी तक की हैं।

गाँवसे उत्तरकी ओर लगभग ५०० गज चलनेपर पर्वतपर पंचमढ़ी मिलती है। जिनमेंसे चार मन्दिर तो चारों कोनोंपर और एक सबके मध्यमें बना हुआ है। चारों मढ़ोंकी ऊँचाई १५ फुट है तथा बीचके मढ़की ऊँचाई २० फुट है। प्रत्येक मढ़में एक-एक खड्गासन प्रतिमा सीमेण्टसे दीवालमें जोड़कर खड़ी की गयी है, जिनकी अवगाहना पाँच-पाँच फुटकी है। प्रत्येक पर लेख

अभिलिखित हैं। इनमें दो मूर्तियाँ वि. सं. १३१२ की हैं। दो मूर्तियाँ सं. १६१८ की हैं। एक मूर्ति-लेख अस्पष्ट है। इन मढ़ोंका जीर्णोद्धार हो चुका है।

पंचमढ़ीके सामने पश्चिमाभिमुख एक विशाल मन्दिर है जो तीन फुट ऊँची कुरसीपर बना है। यह २८ फुट ऊँचा है। मन्दिरके आगे चार पाषाण-स्तम्भोंपर आधारित मण्डप बना हुआ है। मन्दिर के ऊपर शिखर बना हुआ है और शिखरमें एक कोठरी बनी हुई है। मन्दिरके प्रवेश-द्वारके ऊपर पद्मासन मूर्ति अंकित है। प्रवेश-द्वारसे गर्भगृह साढ़े चार फुट गहरा है। गर्भगृहमें तीन खड्गासन प्रतिमाएँ हैं। मध्यमें १० फुट ऊँची भगवान् शान्तिनाथकी प्रतिमा है, जो खण्डित है। मूर्ति-लेखके अनुसार इसका प्रतिष्ठा-काल वि. सं. १२०४ है। इसके दोनों ओर सात फुट अवगाहना-वाली भगवान् कुन्थुनाथ और अरनाथकी प्रतिमाएँ हैं। इनके अतिरिक्त दो मूर्तियाँ खण्डित पड़ी हुई हैं, जिनके धड़ मन्दिरमें हैं तथा सिर मन्दिरके बाहर पड़े हुए हैं।

एक ढाई फुट ऊँची सर्वतोभद्रिका प्रतिमा रखी हुई है। मन्दिरके बाहर एक शिला-फलकपर एक फुट ऊँची पन्द्रह तीर्थंकर मूर्तियाँ बनी हुई हैं। एक भग्न मानस्तम्भ भी है।

इस मन्दिरसे लगभग ३०० गज आगे एक खण्डित मढ़ मिलता है। अब तो यह टीला बन गया है। अब भी नौ फुट ऊँची एक मूर्ति इन खण्डहरोंके बीचमें खड़ी हुई है किन्तु घुटनों तक यह मिट्टीमें डूबी पड़ी है। इन भग्नावशेषोंमें खोज की जाये तो अनेक मूर्तियाँ निकलनेकी सम्भावना है। इस स्थानसे लगभग दो फर्लांग उत्तरकी ओर बढ़नेपर चम्पोमढ़ मिलता है। इसके मार्गमें पहले कँटीली झाड़ियोंका बीहड़ जंगल पड़ता था किन्तु अब मार्ग बन गया है। जंगल साफ हो गया है।

इस समय यहाँ एक ही मन्दिर है। किन्तु चारों ओर मूर्तियों और मन्दिरोंके इतने अवशेष पड़े मिलते हैं, जिनसे अनुमान होता है कि यहाँ भी चारों कोनोंपर चार मढ़ बने हुए होंगे। मन्दिरके बाहर मण्डप बना हुआ है। इसके प्रवेश-द्वारसे गर्भगृह ४॥ फुट निचाई में है। मन्दिरकी दीवालोंपर नाना प्रकारके देवी-देवताओं और पशु-पक्षियोंके चित्र बनाये हुए हैं। इसी प्रकार प्रवेश-द्वारकी दीवालोंपर और इधर-उधर नाना प्रकारके जीवोंके चित्र उत्कीर्ण किये गये हैं। गर्भगृहमें अष्ट प्रातिहार्ययुक्त तीन मूर्तियाँ विराजमान हैं। मध्यवाली मूर्तिका आकार लगभग ९ फुट ३ इंच है। इसके मूर्ति-लेखके अनुसार इसकी प्रतिष्ठा 'फाल्गुन शुक्ला १०, वि. सं. १२०४ को हुई थी। इसके दोनों ओर ७-७ फुट ऊँची भगवान् महावीरकी प्रतिमाएँ हैं। इनके चरणोंके समीप २॥-२॥ फुटके छह इन्द्र और चमरवाहक हैं। मूर्तियों के हाथ खण्डित हैं। इन मूर्तियोंके ऊपर दीवालमें भी दो पद्मासन लाल पाषाणकी प्रतिमाएँ अंकित हैं।

इस मढ़के तीन कोनोंपर यद्यपि वर्तमानमें कोई मन्दिर नहीं है, केवल भग्नावशेषोंके टीले बने हुए हैं, किन्तु मढ़के दक्षिणकी ओर एक और अर्धभग्न मढ़ बना हुआ है। केवल दीवालें खड़ी हैं। इस मढ़में शान्ति-कुन्थु-अरनाथकी खड्गासन प्रतिमाएँ विराजमान हैं। मध्यकी प्रतिमा १० फुटकी और शेष दोनों प्रतिमाएँ ७ फुटकी हैं। इस मढ़का नाम चम्पोमढ़ पड़नेका कारण चम्पोवृक्ष हैं, जो इस मढ़के चारों ओर अब भी विपुल मात्रामें लगे हुए हैं।

इस मन्दिरके देखनेसे प्रतीत होता है कि एक चबूतरेपर चारों कोनोंपर मन्दिर होंगे। चम्पोमढ़ीकी मूर्तियाँ १२०१ संवत् की हैं। यदि पंचमढ़ी और चम्पोमढ़ीकी परस्पर तुलना की जाये तो चम्पोमढ़ीका बीचका मन्दिर सबसे सुन्दर सिद्ध होगा। पंचमढ़ीपर जो पाँचों मन्दिर हैं, वे अच्छी दशामें नहीं हैं और जो एक मन्दिर अलग बना हुआ है, वही मुख्य मन्दिर मालूम होता

है। इससे यह भी अनुमान होता है कि पंचमढ़ीके पाँचों मन्दिर उस मन्दिरसे बादमें बनाये गये थे। यही बात पहाड़ीके तीसरे कोनेके मन्दिरसे प्रतीत होती है। क्योंकि वहाँ भी बीचका बड़ा मन्दिर वैसा ही है और चबूतरेके चारों कोनोंपर मन्दिरोंके भग्नावशेष दृष्टिगोचर होते हैं।

यहाँ पास ही एक छोटी नदी है। उसमें अनेक जैन मूर्तियाँ पड़ी हुई हैं।

नगरका इतिहास

चम्पोमढ़से लगभग दो फर्लांग आगे प्राचीन भवनोंके खण्डहर पड़े हुए हैं, जो पुरपट्टन नगरके कहे जाते हैं। पूर्व कालमें यहाँ श्री-सम्पन्न पुरपट्टन या पाटनपुर नामका एक नगर था। राजा मदनसेन इस नगरके शासक थे। आमोती-दामोती नामकी उनकी दो रानियाँ थीं। एक किंवदन्ती प्रचलित है कि दोनों रानियाँ प्रतिदिन नयी साड़ी पहनती थीं। दूसरे दिन उन साड़ियोंको गरीबोंके लिए दान कर देती थीं। विशेषता यह थी कि वे साड़ियाँ इसी नगरमें बनायी जाती थीं। इस काममें ३६५ जुलाहे नियुक्त थे। राज्यकी ओरसे उनके भरण-पोषणकी समुचित व्यवस्था थी। एक जुलाहा वर्षमें दो साड़ियाँ बनाकर देता था। सत्रहवीं शताब्दीमें इन्हीं मदनसेनके नामपर मदनपुर नामक नगरकी स्थापना हुई। बुन्देलखण्डके इतिहासमें राजा मदनसेन और उनकी आमोती-दामोती रानियोंकी बड़ी ख्याति रही है।

बाजना बावड़ी

मोदीमढ़के नीचे पूर्वकी ओर एक प्राचीन बावड़ी बनी हुई है जिसे बाजना बावड़ी कहा जाता है। बावड़ीमें पत्थर डालनेसे ऐसी आवाज होती है जैसे बर्तनपर पत्थर पड़नेसे होती है। यह भी किंवदन्ती प्रचलित है कि इस नगरमें जब कोई धार्मिक समारोह या उत्सव होता था और उसके लिए जितने बरतनोंकी आवश्यकता होती थी तो धार्मिकजन बावड़ीके तटपर आकर अपनी आवश्यकता का निवेदन कर देते थे और तत्काल उनकी आवश्यकता पूरी हो जाती थी।

इस बावड़ीके निकट एक खेतमें एक विशाल आकारकी तीर्थंकर मूर्ति पड़ी हुई है। मूर्ति खण्डित है। स्थानीय लोग उसे 'दाना देवता' कहते हैं और उस खेतको 'दानेका खेत'।

मोदीमढ़

यहाँ एक मढ़ और है जिसे मोदीमढ़ कहा जाता है। यह पाटनपुर नगरकी ओर चम्पोमढ़-से दो फर्लांगकी दूरीपर स्थित है। यह पूर्वाभिमुख है। इसका शिखर जीर्ण-शीर्ण है। गर्भगृहका फर्श उखड़ा हुआ है। मढ़की दीवालें ५॥ फुट चौड़ी हैं और उनकी ऊँचाई २५ फुट है। इसमें तीन प्रतिमाएँ विराजमान हैं। मध्यमें शान्तिनाथकी प्रतिमा है जो ९ फुट ऊँची है। उसके दायें-बायें शान्तिनाथ और महावीरकी ~~६ फुट~~ ऊँची प्रतिमाएँ विराजमान हैं। तीनोंपर मूर्तिलेख हैं। इसके अनुसार मूर्तियोंकी प्रतिष्ठा फाल्गुन शुक्ल ४ सं. १६८८में हुई थी। उसके चारों कोनोंपर चार मढ़ होने चाहिए। उनके अवशेषोंके टीले बने हुए हैं। इन टीलोंमें ही एक वृक्षके सहारे भगवान् ऋषभदेवकी ८ फुट ऊँची खड्गासन प्रतिमा मौजूद है।

दर्शनीय स्थल

यहाँ आस-पासमें दो स्थल दर्शनीय हैं, जिनका अपना ऐतिहासिक महत्त्व है। एक तो पुरपट्टन नगरके ध्वंसावशेषोंके बीच बना हुआ जौहर कुण्ड, जहाँ आततायियोंसे अपने शीलधर्मकी रक्षाके लिए अगणित भारतीय वीरांगनाओंने अग्निमें हँसते हुए कूदकर जौहर व्रत किया था। भारतीय आत्मा-

के लिए ऐसे स्थल पवित्र तीर्थस्थल हैं जहाँ किसी धर्म, जाति, सम्प्रदाय और वर्गके भेदभावके बिना केवल स्त्रीत्वकी निष्कलंक गौरव-गाथा गूँजती है। दूसरा स्थल है आल्हा-ऊदलका बैठका। ये दो भवन हैं जो आल्हा और ऊदलसे सम्बन्धित बताये जाते हैं। आल्हा-ऊदल महाराज पृथ्वीराजके दरबारके दो सामन्त-पुत्र थे। किन्तु वे अपने दुस्साहस, शौर्य और वीरताके लिए प्रसिद्ध थे। उनकी वीरताकी सम्भव असम्भव कहानियाँ और गीत बुन्देलखण्ड और ब्रज-प्रदेशमें अब भी बड़े चावसे गाये और सुने जाते हैं।

ये दोनों भवन पुरातत्त्व विभागके संरक्षणमें हैं। ये मदनपुर ग्रामके पूर्व-दक्षिणमें १० फुट ऊँची पत्थरकी कुरसीपर निर्मित हैं। उल्लेखनीय बात यह है कि इन भवनोंकी छतें एक ही पत्थरसे बनी हैं। एक छतका आकार १३॥ × ८॥ फुट है और इसके लिए एक ही पत्थर काममें लाया गया है। इसी प्रकार स्तम्भोंमें एक ही पत्थर तराशकर लगाया गया है। उदाहरणके तौरपर एक खम्भा ६। फुट लम्बा, ५।। फुट मोटा अठपहलूदार है। इसके ऊपर छह इंच मोटा गोलाकार पाषाण है। यह सब एक ही पत्थरको तराशकर बनाया गया है। ये सब पत्थर जो मकानके काम में आये हैं, यहींकी खानसे निकाले गये थे। यह भी कहा जाता है कि इन दोनों अप्रतिम वीरोंने इन पत्थरोंको अपने हाथोंसे उठाकर खुद ही इस मकानका निर्माण किया था।

वार्षिक मेला

क्षेत्रपर फागुन कृष्ण चतुर्दशीसे पंचमी तक प्रति वर्ष वार्षिक मेला भरता है। इस मेलेमें आसपासके हजारों जैन-जैनेतर व्यक्ति आते हैं और जिनेन्द्र देवके दर्शन करते एवं अन्य धार्मिक आयोजनोंमें सम्मिलित होते हैं।

करगुवाँ

श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र करगुवाँ झाँसी शहरसे ५ कि. मी. की दूरीपर झाँसी-लखनऊ राजमार्गपर मेडिकल कालेजके ठीक सामने आधा कि. मी. दूर पहाड़ीकी मनोरम तलहटीमें अवस्थित है। यहाँ आठ एकड़ जमीनपर प्राचीन परकोटा बना हुआ है। क्षेत्र इसी परकोटेके अन्दर है। परकोटेके अन्दर आम, जामुन आदि फलदार वृक्ष लगे हुए हैं तथा कुछ भूमिपर खेती भी होती है। मन्दिर भूगर्भ (भोंयरे) में है। पहले यहाँ अन्धकार रहता था। किन्तु कुछ समय पहले जैन समाजने यहाँ जीर्णोद्धार कराया था। अब तो भूगर्भमें एक विशाल हॉल बन गया है और उसमें प्रकाशकी समुचित व्यवस्था हो गयी है।

इस भोंयरेमें अब केवल सात प्रतिमाएँ हैं। छह प्रतिमाओंपर संवत् १३४३ खुदा हुआ है और एक महावीर स्वामीकी प्रतिमापर संवत् १८५१ खुदा हुआ है। यहाँ मूलनायक भगवान् प्रतिमा पार्श्वनाथकी है। इस प्रतिमाके निकट प्रायः सर्प देखे गये हैं किन्तु किसीको उन्होंने कभी भी काटा नहीं। अनेक भक्तजन यहाँ मनौती मनाने आते हैं। इस कारण यह अतिशय क्षेत्रके रूपमें प्रसिद्ध है।

इन सात प्रतिमाओंमें पाँच पद्मासन हैं तथा दो खड्गासन प्रतिमाएँ हैं। ये प्रायः तीनसे चार फुट ऊँची हैं।

यहाँ पहले बहुत मूर्तियाँ थीं। किन्तु कहते हैं कि अँगरेजोंने जब १८१४ ई. में झाँसीपर आक्रमण किया था, उस समय उच्छृंखल अँगरेज सैनिकोंने बहुत-सी मूर्तियोंको तोड़-फोड़ डाला।

इस क्षेत्रके अतिशयोंकी अनेक किंवदन्तियाँ प्रचलित हैं। कहते हैं, लगभग दो सौ वर्ष पहलेकी बात है। एक गाड़ी खण्डित जिनप्रतिमाओंसे भरी हुई इधरसे निकली। जैसे ही वह गाड़ी मन्दिरकी भूमिसे गुजरने लगी, गाड़ी वहीं रुक गयी। उस समय झाँसीका नाम बलवन्तनगर था। यह समाचार वहाँ भी पहुँचा। अनेक व्यक्ति आये, अनेक उपाय किये, किन्तु गाड़ी नहीं चली।

उसी रातको बलवन्तनगरके प्रमुख जैन पंच श्री नन्हेजूको स्वप्न हुआ कि जिस स्थानपर गाड़ी रुकी है उसके नीचे जमीनमें जैनमूर्तियाँ हैं। उन्हें तुम निकलवाओ। प्रातःकाल श्री नन्हेजूने यह स्वप्न अपने मित्रों और परिचितोंको सुनाया और तब यह निश्चय हुआ कि उस स्थानकी खुदाई करायी जाये। सब लोग उस स्थानपर गये और खुदाई आरम्भ की गयी। कुछ गहरा खोदने-पर मूर्तियाँ दिखाई देने लगीं। तब यह निश्चय हुआ कि पहले रक्षाका प्रबन्ध हो जाये, तभी आगे खुदाई करायी जाये। इस निर्णयके अनुसार खुदाई रोक दी गयी।

उस समय बलवन्तनगरमें बाजीराव पेशवा द्वितीयका शासन था। श्री नन्हेजू उनके सम्मानप्राप्त दरबारी थे। सिंघईजीने दरबारमें जाकर यह आश्चर्यजनक समाचार सुनाया। चर्चा-के पश्चात् यह निश्चय हुआ कि महाराज उस स्थानपर जायेंगे। तदनुसार महाराज और सिंघईजी घोड़ोंपर करगुवाँ पहुँचे। उनके सामने खुदाई की गई। थोड़ी देरमें भव्य जिन प्रतिमाएँ प्रकट हुईं। जनता हर्षित होकर जय-जयकार करने लगी।

तभी महाराज और नन्हेजूने मनोरंजनके तौरपर घोड़ोंकी दौड़का निश्चय किया। दोनोंने घोड़े दौड़ाये। भाग्यने सिंघईजीका साथ दिया। उनका घोड़ा जीत गया। महाराजने उनसे इच्छा-नुसार इनाम लेनेका आग्रह किया। सिंघईजीने अवसरका लाभ उठाकर उस भूगर्भ स्थानके चारों ओर आठ एकड़ जमीन माँग ली। महाराजने उन्हें तत्काल प्रदान कर दी। सिंघईजीने समाजके सहयोगसे उस भूमिके चारों ओर परकोटा खिंचवाया, बगीचा लगवाया और विशेष समारोहके साथ पंचकल्याणक प्रतिष्ठा करायी, जिसमें भगवान् महावीरकी उपर्युक्त प्रतिमा विराजमान करायी।

क्षेत्रके सामने ही जबसे मेडिकल कालेज खुला है, तबसे क्षेत्रपर यात्री अधिक संख्यामें आने लगे हैं। अभी मार्च सन् १९७२ में एक विशाल मेला हुआ था। इस भूगृहकी वेदीका जीर्णोद्धार किया गया था और वेदी-प्रतिष्ठा की गयी थी। इस अवसरपर एकत्रित जनसमूहने महावीर शोध-संस्थान और बुन्देलखण्ड महावीर विश्वविद्यालयकी स्थापनाका निश्चय किया। शोध-संस्थानका शिलान्यास तो १२ मार्च सन् १९७२ को समाजके विख्यात उद्योगपति दानवीर साहू शान्तिप्रसाद जीके कर-कमलों द्वारा सम्पन्न हो चुका है। क्षेत्रसे संलग्न ५५ एकड़ भूमिमें विश्वविद्यालयका निर्माण-कार्य प्रारम्भ हो गया है।

वार्षिक मेला—

यहाँ वर्षमें दो मेले भरते हैं—चैत्र शुक्ला त्रयोदशी (भगवान् महावीरका जन्म-दिवस तथा कार्तिक कृष्णा अमावस्या (भगवान् महावीरका निर्वाण-दिवस)। इसके अतिरिक्त दशलक्षण पर्वके पश्चात् कलशाभिषेकका मेला। यहाँ एक पुजारी और एक माली की व्यवस्था है।

धर्मशालामें दो कमरे हैं। एक पक्के चबूतरेपर टिनका सायबान पड़ा हुआ है। यात्रियोंके लिए सुविधाजनक यह होगा कि वे झाँसीमें जैन धर्मशालामें ठहरें और ताँगे-रिक्शोंसे यहाँ आकर दर्शन-पूजनका आनन्द लें।

परिशिष्ट–१

देहली

देहली

दिल्ली या देहली भारतकी राजधानी है। भारतका राजनीतिक केन्द्र होने तथा विश्वकी राजनीति में प्रभावक भाग लेनेके कारण देश और विदेशोंकी दृष्टिमें दिल्लीका अत्यधिक महत्त्व है। अपने इस अन्तर्राष्ट्रीय महत्त्वके कारण अब यह सांस्कृतिक और आर्थिक केन्द्र भी बनती जा रही है। एशियाके सम्भावित नेतृत्व और अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्रमें अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिकाके कारण आज देहलीको जो स्थान प्राप्त है, सम्भवतः इससे पहले इसे यह स्थान कभी नहीं मिला। पुरातनकालसे भारतके इतिहासमें इसे सदा ही युद्धों और विनाशोंके बीचसे गुजरना पड़ा है। यह अनेक बार बसी, उजड़ी, और फिर बसी। वर्तमान देहलीके चारों ओर फैले हुए ध्वंसावशेष इसके साक्षी हैं और ये विभिन्न समयोंके विभिन्न राजवंशोंके इतिहासको अपने सीनेमें दबाये पड़े हैं।

दिल्लीके नाम

साहित्यमें इसका सर्वप्रथम उल्लेख हमें इन्द्रप्रस्थके रूपमें महाभारत कालमें मिलता है। बादमें समय-समयपर इसके नामोंमें परिवर्तन होता रहा। इसलिए साहित्यमें इस नगरके कई नाम मिलते हैं, जैसे ढिल्ली, ढिल्लिका, योगिनीपुर, जोइणीपुर, जहानाबाद, दिल्ली, देहली। अपभ्रंश भाषाके ग्रन्थोंमें ढिल्ली और जोइणीपुर ये दो नाम ही मिलते हैं।

एक किंवदन्ती है कि सम्राट् समुद्रगुप्तने लोहेकी एक लाट इन्द्रप्रस्थमें गड़वायी थी। तोमर-वंशी राजा अनंगपाल (प्रथम) से किसी ज्योतिषीने यह कहा कि यह लाट जितनी अधिक स्थिर होगी, आपका राज्य भी उतना अधिक स्थिर रहेगा। राजा अनंगपालने दुबारा मजबूत गड़वानेके विचारसे लोहेकी लाट (किल्ली) उखड़वायी तो देखा कि एक ओर उसके किनारेपर खून लगा हुआ है। राजाने लोहेकी वह किल्ली पुनः वहीं गड़वा दी। किन्तु अबकी बार वह कीली उतनी नीची नहीं गयी, जितनी पहले चली गयी थी। अतः वह कीली कुछ ढीली रह गयी, जिससे लोग इसे ढीली या ढिल्ली कहने लगे। ढिल्ली ही बदलते-बदलते दिल्ली बन गयी। और अँगरेजोंके जमानेमें दिल्लीको देहली कहा जाने लगा।

ढिल्ली शब्दका प्रयोग ग्यारहवीं शताब्दी और उसके पश्चाद्वर्ती कालमें खूब होने लगा था। अपभ्रंश और प्राकृतके कई जैनग्रन्थों तथा शिलालेखोंमें, जो आजसे प्रायः एक हजार वर्ष प्राचीन हैं, ढिल्लीका उल्लेख मिलता है। दिल्लीके इतिहास-निर्णयमें इन जैनग्रन्थों और शिला-लेखोंका अपना विशेष महत्त्व है। वि. सं. ११८९ (सन् ११३२)में कवि श्रीधरने अपभ्रंश भाषामें पार्श्वपुराणकी रचना की थी। इस ग्रन्थकी रचना दिल्लीके तत्कालीन नरेश अनंगपाल (तृतीय) के मुख्य मंत्री श्रावकप्रवर नट्टल साहूकी प्रेरणासे की गयी थी। इसमें कवि ढिल्लीका वर्णन करते हुए लिखता है—

'हरियाणए देसे असंखगाम। गामियणय जणि अणवरय काम।
परचक्क विहट्टणु सिरिसंघट्टणु जो सुरवइणा परिगणियं।
रिउ रुहिरावट्टणु बिउलु पवट्टणु ढिल्ली नामेण जि भणियं॥

अर्थात् हरियाणा देशमें असंख्य ग्राम हैं। वहाँके ग्रामीण लोग बड़े अध्यवसायी हैं। उन्हें दूसरेकी अधीनता स्वीकार नहीं है और शत्रुका रुधिर बहानेमें वे अभ्यस्त हैं। स्वयं इन्द्र इस देशकी प्रशंसा करते हैं। इस देशकी राजधानी ढिल्ली है।

इसी प्रकार 'गणधरसार्द्ध शतक बृहद्वृत्ति' जिसकी रचना वि. सं. १२९५ में हुई थी, में ११वीं शताब्दीके श्वेताम्बर आचार्य वर्द्धमानसूरिके सम्बन्धमें इस प्रकार विवरण मिलता है।

"स्वाचार्यानुज्ञातः कतिपययतिपरिवृतः ढिल्ली-बादलीप्रमुखस्थानेषु समाययौ।"

अर्थात् (आचार्य वर्द्धमानसूरि) अपने गुरुकी आज्ञा लेकर कुछ यतियोंके साथ ढिल्ली-बादलीको गये।

दिल्ली और बादली आज भी विद्यमान हैं। बादली दिल्लीमें ही सम्मिलित है।

ढिल्लीकी तरह जोइणीपुर या योगिनीपुरका उल्लेख भी अनेक प्राचीन ग्रन्थोंमें मिलता हैं। यह नाम भी लगभग एक हजार वर्ष पूर्व प्रचलित था। ढिल्लीको ही योगिनीपुर कहते थे।

बादशाह गयासुद्दीन तुगलकके समयमें (हिजरी सन् ७२५ में) लिखा हुआ एक शिलालेख[1] जो सं. १३६५ का है, और दमोहके पास बटियागढ़में मिला था, उसमें लिखा है—

अस्ति कलियुगे राजा शकेन्द्रो वसुधाधिपः।
योगिनीपुरमस्थाय यो भुङ्क्ते सकलां महीम्॥
सर्वसागरपर्यन्तं वशीचक्रनराधिपान्।
महमूद सुरत्राणो नाम्ना शूरोऽभिनन्दतु॥

अर्थात् कलियुगमें एक शकेन्द्र (मुसलमान) राजा है जो योगिनीपुरमें रहकर समस्त पृथ्वीका भोग करता है और जिसने सागर पर्यन्त राजाओंको वशमें किया है। वह शूरवीर महमूद सुलतान यश प्राप्त करे।

इसी प्रकार वि. सं. १३०५ में खरतरगच्छीय जिनपालोपाध्यायने 'युगप्रधानाचार्य गुर्वावली' नामक एक ग्रन्थकी रचना की थी। इसमें मणिधारी आचार्य जिनचन्द्रसूरिका जीवन-परिचय दिया गया है। एक बार योगिनीपुरके राजा मदनपालने आचार्य मणिधारीजीसे योगिनीपुर पधारनेका अनुरोध किया। उस समय मणिधारीजीके गुरु श्री जिनदत्त सूरिने अपने प्रतापी शिष्यको योगिनीपुर जानेका निषेध किया था। किन्तु मणिधारीजी महाराज फिर भी योगिनीपुर गये। इसी प्रसंगका वर्णन करते हुए ग्रन्थमें लिखा है—

'श्री मदनपालमहाराजोपरोधात् युष्माभिर्योगिनीपुरमध्ये कदापि न विहर्तव्यमित्यादि श्रीजिनदत्तसूरिदत्तोपदेशत्यागेन हृदये दयमाना अपि श्रीपूज्याः श्रीढिल्लीं प्रति प्रस्थिताः।'

इस अवतरणमें योगिनीपुर और ढिल्ली ये दोनों ही नाम आये हैं। इससे लगता है कि इन दोनोंका कुछ समय तक साथ-साथ प्रचलन रहा है। उपर्युक्त गुर्वावली ग्रन्थसे इस रहस्यपर भी प्रकाश पड़ता है कि ढिल्लीका नाम योगिनीपुर क्यों पड़ा। यहाँपर ६४ योगिनियोंका[2] पीठस्थान

---

१. नागरी प्रचारिणी पत्रिका, वर्ष ४४ में मध्यप्रदेशका इतिहास नामक लेख।

२. ६४ योगिनियोंके नाम इस प्रकार हैं—

अक्षोभ्या, रूक्षकर्णी, राक्षसी, क्षपणा, क्षमा, पिंगाक्षी, अक्षया, क्षेमा, इला, नीलालया, लोला, रक्ता, (लक्ता), बलाकेशी, लालसा, विमला, दुर्गा (या हुताशा), विशालाक्षी, ह्रींकारा (या हुंकारा), बड़वामुखी, महाक्रूरा, क्रोधना, भयंकरी, महानना, सर्वज्ञा, तरला, तारा, ऋग्वेदा, हयानना, सारा,

होनेके कारण इसे योगिनीपुर भी कहते थे। इस प्रकारके पीठस्थान उज्जयिनी, दिल्ली और अजमेरमें थे तथा आधा भरुकच्छमें था। किन्तु लगता है, दिल्लीका पीठस्थान अधिक लोकमान्य और चमत्कारपूर्ण रहा होगा। अतः इस पीठस्थानकी ख्यातिके कारण नगरका योगिनीपुर नाम पड़ गया।

दिल्लीको किसने बसाया

दिल्लीकी स्थापना किसने की, इस जिज्ञासाका समाधान वि. सं. १३८४ के उस शिलालेख-से हो जाता है, जो दिल्ली म्युजियममें विद्यमान है। उसमें लिखा है—

देशोऽस्ति-हरियानाख्यो पृथिव्यां स्वर्गसन्निभः।
ढिल्लिकाख्या पुरी तत्र तोमरैरस्ति निर्मिता॥

इसमें बताया गया है कि हरियाना देशमें ढिल्लिका नगरीको तोमरोंने बसाया।

ढिल्लिका (अथवा ढिल्ली) हरियाना देशकी राजधानी थी। इतिहासकारोंके मतानुसार जिस तोमरवंशी राजाने इस नगरी की स्थापना की थी, वह अनंगपाल प्रथम था। इसका राज्या-भिषेक कनिंघमके अनुसार सन् ७३६ में हुआ था। पं. लक्ष्मीधर वाजपेयीकी भी मान्यता यही है। तोमर राजा प्रतिहारोंके करद थे। अनंगपाल प्रथमके वंशजोंने ढिल्लीपर कुछ वर्षों तक राज्य किया। उन्हें चन्द्रदेव राठौड़ने भगा दिया। वे लोग यहाँसे भागकर कन्नौज चले गये। फिर द्वितीय अनंगपाल दिल्लीमें आया और उसे जीतकर अपनी राजधानी बनायी। उसका राज्या-भिषेक वि. सं. ११०८[3] (सन् १०५१) में हुआ। उसने नवीन शहर बसाया। इस शहरके अवशेष कुतुबमीनारके आसपास अब भी मिलते हैं।

अनंगपाल (द्वितीय) से लगभग सौ वर्ष बाद अनंगपाल (तृतीय) हुआ। इसकी पुष्टि कविवर बुध श्रीधर द्वारा रचित पार्श्वनाथ चरित (रचनाकाल सं. ११८९) से भी होती है। उसमें हरियाणा प्रदेशकी राजधानी ढिल्लीका वर्णन करते हुए लिखा है—

जहि असिवर तोडिउ रिउ कपालु। णरणाहु प्रसिद्ध अणंगवालु।
णिरुदलवड्ढिय हम्मीर वीरु। वंदियणविंद पवियण्ण चीरु॥

रससंग्राही (अथवा सुसंग्राही या रुद्रसंग्राही), शबरा (या शम्बरा), तालजंघिका, रक्ताक्षी, सुप्रसिद्धा, विद्युज्जिह्वा, करंकिणी, मेघनादा, प्रचण्डा, उग्रा, कालकर्णी, वरप्रदा, चण्डा (अथवा चन्द्रा), चण्डवती (या चन्द्रावती), प्रपंचा, प्रलयान्तिका, शिशुवक्त्रा, पिशाची, पिशितासवलोलुपा, धमनी, तपनी, रागिणी (अथवा वामनी), विकृतानना, वायुवेगा, बृहत्कुक्षी, विकृता, विश्वरूपिका, यमजिह्वा, जयन्ती, दुर्जया, जयन्तिका (अथवा यमान्तिका), विडाली, रेवती, पूतना और विजयान्तिका।

—अग्निपुराण, अध्याय ५२

योगिनियाँ आठ अथवा चार हाथोंसे युक्त होती हैं। इच्छानुसार शस्त्र धारण करती हैं।

१. Archeological Survey of India, Vol. I., p. 149

२. दिल्ली अथवा इन्द्रप्रस्थ, पृष्ठ ६।

३. मि. कनिंघम।

४. पं. लक्ष्मीधर वाजपेयी—दिल्ली अथवा इन्द्रप्रस्थ।

इसमें ढिल्लीनरेश अनंगपालकी वीरताका वर्णन किया गया है। कवि श्रीधर अनंगपाल (तृतीय) के समकालीन था और उसने अपना ग्रन्थ नट्टल साहूकी प्रेरणासे ढिल्ली (दिल्ली) में रहकर ही लिखा था। वि. सं. १२०७ के लगभग चाहमानवंशी (जो बादमें चौहानवंशी कहलाने लगे) राजा आनाके पुत्र विग्रहराज (बीसलदेव चतुर्थ) ने अनंगपालको उखाड़ फेंका और ढिल्ली (दिल्ली) को छीनकर उसे अजमेरका सूबा बना दिया।

विजोल्याके एक शिलालेखसे जो वि. सं. १२२६ का है, भी इस बातका समर्थन होता है। उसमें विग्रहराजकी प्रशंसा करते हुए कहा है—

प्रतोल्यां च बलभ्यां च येन विश्रामितं यशः।
ढिल्लिका-ग्रहणश्रान्तमाशिका लाभलम्भितः ॥२२॥

अर्थात् ढिल्ली लेनेसे थके हुए और आशिका (हाँसी) के लाभसे लाभान्वित विग्रहराजने अपने यशको प्रतोली और बलभीमें विश्रान्ति दी। अर्थात् इन चारों राज्योंको उसने हराया।

इसके बाद तो दिल्लीपर अधिकारके लिए संघर्ष होते रहे। और इसपर चौहान, गुलाम, खिलजी, तुगलक और मुगल वंशोंने तथा अँगरेजोंने आठ शताब्दी तक शासन किया। यह दिल्लीके ही नहीं, समूचे देशके इतिहासमें अन्धकारपूर्ण युग कहलाता है, जिसमें कला, साहित्य और संस्कृतिका कोई उल्लेखनीय विकास नहीं हो पाया। नवसृजनकी बातको जाने दें, इस कालमें कला और संस्कृतिको भीषण क्षति पहुँची। इस कालमें मन्दिरों और मूर्तियोंका भयंकर विनाश किया गया।

ध्वस्त जैन मन्दिर

विनाशके चक्रसे जैन मन्दिर भी न बच पाये। कलाकी विनाश-लीलाके इस कालमें कितने जैन मन्दिरों और मूर्तियोंका विध्वंस हुआ, यह जाननेका कोई प्रामाणिक साधन हमारे पास नहीं है। किन्तु एक मन्दिरके विध्वंसके तो निश्चित प्रमाण आज भी उपलब्ध है।

ऊपर उल्लेख किया जा चुका है कि अनंगपाल (तृतीय) का मुख्यमन्त्री अग्रवालवंशी नट्टल साहू था। उसीकी प्रेरणासे कवि बुध श्रीधरने सं. ११८९में अपभ्रंश भाषाके 'पार्श्वनाथ चरित्र'की रचना की थी। एक स्थानपर कविने नट्टल साहूकी प्रशंसा करते हुए एक तथ्यका उद्‌घाटन किया है कि नट्टल साहूने एक सुन्दर जैन मन्दिरका निर्माण कराया है। कवि लिखता है—

येनाराध्य विशुद्ध-धीरमतिना देवाधिदेवं जिनं
सत्पुण्यं समुपार्जितं निजगुणैः संतोषिता बान्धवाः।
जैनं चैत्यमकारि सुन्दरतरं जैनीं प्रतिष्ठां तथा
स श्रीमान् विदितः सदैव जयतात् पृथ्वीतले नट्टलः॥

—पार्श्वनाथचरित, सन्धि-५

अर्थात् जिसने निर्मल बुद्धिसे देवाधिदेव जिनेन्द्रदेवकी आराधना करके पुण्योपार्जन किया है, जिसने अपने गुणोंसे बान्धव जनको सन्तुष्ट किया है, जिसने सुन्दर जैन मन्दिरका निर्माण कराके उसकी प्रतिष्ठा करायी है, उस सुप्रसिद्ध श्री-सम्पन्न नट्टलकी इस दुनियामें जय हो।

१. नागरी प्रचारिणी पत्रिका, भाग १, पृ. ४०५, टिप्पण ४४।

नट्टल साहू द्वारा निर्मित इस मन्दिरको तेरहवीं शताब्दीमें कुतुबुद्दीन ऐबकने तोड़ दिया और उसके स्थानपर कुतुबमीनारके निकट 'कुव्वतुल इस्लाम' नामक मसजिदका निर्माण कराया। इस मसजिदका निरीक्षण करते हुए जनरल कनिंघमको मसजिदकी दीवारपर एक अभिलेख इस आशयका मिला कि यह मसजिद २७ हिन्दू मन्दिरोंको तोड़कर उसकी सामग्रीसे बनायी गयी। अवश्य ही इन तोड़े गये मन्दिरोंमें वह जैन मन्दिर भी था। इस मसजिदका ध्यानपूर्वक निरीक्षण करनेपर दीवारों और छतोंमें अनेक स्थानोंसे प्लास्टर उखड़ गया है। इससे भीतरके पाषाण-स्तम्भ और पाषाण-शिलाएँ दिखाई देने लगी हैं। ऐसे कई शिला-स्तम्भ हैं, जिनपर जैन तीर्थंकरोंकी मूर्तियाँ उत्कीर्ण हैं। ये मूर्तियाँ दीवारों और छतोंमें बेतुके ढंगसे जुड़ी हुई हैं। जैन धर्मके अनेक चिह्न और चित्र भी उत्कीर्ण किये हुए मिलते हैं। कुव्वतुल मसजिदके उत्तर-पूर्व और दक्षिण-पूर्व-वाले ऊपरी कोनेवाले कमरोंमें छतोंके पाँच-पाँच पैनलोंमें पद्मासन और कायोत्सर्गासन तीर्थंकर-मूर्तियाँ, सुमेरु पर्वतपर भगवान्का देवेन्द्र द्वारा अभिषेक आदि दृश्य उत्कीर्ण मिलते हैं। इसी प्रकार पाषाण-स्तम्भोंपर खुदी हुई जंजीरोंमें लटकते घण्टे, मीन-युगल आदि जैन धर्ममें मान्य मांगलिक चिह्न आज भी देखे जा सकते हैं।

यह मन्दिर भगवान् आदिनाथका था, ऐसी धारणा है। 'युगप्रधानाचार्य गुर्वावली' नामक ग्रन्थसे, जिसका उल्लेख ऊपर किया जा चुका है, एक पार्श्वनाथ चैत्यकी सूचना मिलती है। सम्भवतः यह मन्दिर आदिनाथ मन्दिरसे अलग कोई दूसरा मन्दिर रहा हो। उस मन्दिरका भी आज कोई चिह्न नहीं मिलता।

इन जैन मन्दिरोंके अतिरिक्त उस समय देहलीमें जैन मन्दिर थे या नहीं? यदि थे तो कितने और कहाँ-कहाँपर थे? इन सब प्रश्नोंका कोई प्रामाणिक उत्तर देनेकी स्थितिमें आज कोई इतिहासकार नहीं है। किन्तु तत्कालीन साहित्यसे कई जैन मन्दिरोंका पता चलता है। आमेरके शास्त्र भण्डारमें विद्यमान 'क्रिया कलाप सवृत्ति' नामक ग्रन्थसे ज्ञात होता है कि उस समय (सन् १३४३ में) दिल्लीमें 'दरबार चैत्यालय' था, जिसमें काष्ठासंघ, माथुर गच्छ और पुष्कर गणके साधु नयसेन और दुर्लभसेन विराजमान थे।

सैयदवंशके बादशाह मुबारिकशाह (सन् १४२१-२३) के मन्त्रीका नाम साहू हेमराज[3] था। उन्होंने एक भव्य जिनमन्दिरका निर्माण कराया था।

बादशाह बाबरके कालमें सन् १५३०में साहू साधारणने एक मन्दिरका निर्माण कराया था।

---

१. इस मसजिदके बाहर पुरातत्त्व विभागकी ओरसे सूचना-पट्ट लगा हुआ है, उसमें लिखा है—

कुव्वतुल इस्लाम (इस्लामकी शक्ति) मसजिदके नामसे प्रसिद्ध यह इमारत भारतमें स्थित प्राचीन-तम मसजिद है। इसके मध्य स्थित आयताकार (४३.२ मी. × ३२.१ मी.) सहनके चारों ओर दालान बने हैं, जिनमें प्रयुक्त खम्भे तथा दूसरी वास्तु सामग्री मूलतः २७ हिन्दू एवं जैन मन्दिरोंको ध्वस्त कर प्राप्त की गयी थी।

२. क्रिया-कलाप सटीक प्रशस्ति, प्रशस्ति संग्रह, पृ. १७।

३. पाण्डव पुराण प्रशस्ति (भट्टारक यशःकीर्ति विरचित)—

तहो णंदणु णंदणु हेमराउ, जिनधम्मोवरि जसु णिच्च भाउ।
सुरताण मुमारख तणइं रज्जे, मतितणे थिउपिय भारत कज्जे॥

४. इल्लराजके पुत्र महिन्दु (महाचन्द्र) द्वारा रचित भगवान् शान्तिनाथ चरित्र।

पं. भगवतीदासने सन् १६२३में 'चूनड़ीरास' ग्रन्थकी रचना की थी। उसकी प्रशस्तिमें मोतीबाजार स्थित पार्श्वनाथ मन्दिरका उल्लेख किया गया है।

उपर्युक्त सब मन्दिर आज कहाँ हैं या कौन-से हैं, अथवा वे नष्ट हो गये, इसकी खोज होना आवश्यक है।

दिल्ली के कुछ महत्त्वपूर्ण जैन मन्दिर

लाल मन्दिर

यह मन्दिर लालकिलेके लाहोरी गेटके सामने चाँदनीचौक में है। यह दिल्लीके जैन मन्दिरोंमें सबसे प्राचीन है। जहाँ यह मन्दिर बना हुआ है, वहाँ मुगल बादशाह शाहजहाँके समय में उर्दू बाजार नामका एक बाजार था। इसलिए शाही जमानेमें इसे उर्दू मन्दिर भी कहते थे। इस मन्दिरका नाम लश्करी मन्दिर भी था। कहते हैं, शाही फौजके एक जैन अफसरने एक टैण्ट में अपने दर्शन-पूजनके लिए एक तीर्थंकर प्रतिमा रख ली थी। शाही सेनाके अन्य जैन अधिकारी भी यहाँ दर्शन करने आते थे। धीरे-धीरे उस टैण्टके स्थानमें जैन मन्दिर बनानेकी चर्चा चली। फलतः सन् १६५६ में यहाँ इस मन्दिरका निर्माण हुआ। केन्द्रीय स्थानपर होने तथा कुछ दैवी चमत्कारोंके कारण इस मन्दिरकी मान्यता सबसे अधिक होने लगी। एक किंवदन्ती प्रचलित है कि बादशाह औरंगजेबने हुक्म निकाला कि मन्दिरोंमें बाजे न बजाये जायें। शाही हुक्म हो जानेपर भी यहाँ नगाड़े बजते रहे। आश्चर्य की बात तो यह थी कि बाजे बजानेवाला वहाँ कोई दिखाई नहीं पड़ता था। बादशाहको सरकारी अधिकारियोंके कथनपर विश्वास नहीं हुआ। अतः वे स्वयं मन्दिरमें देखने गये, तब उन्हें इसपर विश्वास ही नहीं करना पड़ा, वे बहुत प्रभावित भी हुए और इस मन्दिरमें बाजे बजानेकी छूट दे दी। इस मन्दिरके सम्बन्धमें इस प्रकारकी आश्चर्यजनक और भी कई किंवदन्तियाँ सुनी जाती हैं।

वर्तमानमें मन्दिरमें आठ वेदियाँ हैं। प्राचीन वेदीमें भट्टारक जिनचन्द्र द्वारा सं. १५४८ (सन् १४९१) में प्रतिष्ठित भगवान् पार्श्वनाथकी पद्मासन श्वेत पाषाणकी प्रतिमा लगभग पौने दो फुटकी विराजमान है। उसके अगल-बगलकी मूर्तियाँ भी इसी संवत् की प्रतिष्ठित हैं।

यहाँ एक वेदीमें पद्मावती देवीकी प्रतिमा विराजमान है, जिसके ऊपर लघु आकारकी पार्श्वनाथ प्रतिमा विराजमान है। जैनोंमें देवीकी इस प्रतिमाकी बड़ी मान्यता है। भक्तजन यहाँ मनौती मनाते हैं और दीपक चढ़ाते हैं।

इस मन्दिरके मुख्य द्वारके समक्ष मानस्तम्भ और पुष्पवाटिका है। मन्दिरके बाहर उदासीनाश्रम, धर्मशाला, पक्षी-चिकित्सालय (जो भारतमें अपनी किस्मका एक ही चिकित्सालय है), जैन साहित्य सदन पुस्तकालय आदि लोकोपयोगी संस्थाएँ हैं। मन्दिरका सभा-भवन काफी विशाल है।

नया मन्दिर धर्मपुरा

इसका निर्माण सं. १८५७ (सन् १८००) में प्रारम्भ हुआ था और वैशाख सुदी ३ सं. १८६४ (सन्१८०७) में इसकी प्रतिष्ठा हुई। कहते हैं, उस कालमें इसके निर्माणपर आठ लाख रुपये व्यय हुए थे। (कुछ लोग इस संख्याको पाँच लाख बताते हैं) मन्दिरकी मूल वेदी मकरानेके संगमरमरकी

बनी हुई है। मूलनायक भगवान् आदिनाथ (सं. १६६४) की प्रतिमा संगमरमरकी १० फुट ऊँची वेदीमें विराजमान है। जिस कमलासनपर यह प्रतिमा विराजमान है, उसकी कीमत दस हजार रुपये तथा वेदीकी लागत सवा लाख रुपये बतायी जाती है। (यह लागत उस समयकी है, जब राज चार आने और मजदूर दो आना रोज लेते थे।) कमलके नीचे संगमरमरके पत्थर में चारों दिशाओंकी ओर मुख किये हुए चार सिंहोंके जोड़े बने हुए हैं। इनके मूँछोंके बालोंकी बारीक कारीगरी दर्शनीय है। वेदीमें बहुमूल्य पाषाणकी पच्चीकारी और बेलबूटोंका अनुपम अलंकरण इतना कलापूर्ण और बारीक किया गया है, जिसे देखनेके लिए देश और विदेशके अनेक कलामर्मज्ञ आते रहते हैं और उसे देखकर आश्चर्य करते हैं। वेदीके चारों ओर दीवारोंपर जैन कथानकोंको लेकर कलापूर्ण स्वर्णखचित चित्रांकन किया गया है।

मूलनायक प्रतिमा अब मन्दिरमें मौजूद नहीं है। कहा जाता है कि वह खण्डित हो गयी थी और बम्बईके समुद्रमें प्रवाहित कर दी गयी थी।

पहले इस मन्दिर में एक वेदी थी। बादमें एक वेदी उन प्रतिमाओंके लिए बनायी गयी, जिनकी रक्षा गदरके जमानेमें की गयी थी। बादमें मूल वेदीके दायीं और बायीं ओरके दालानमें दो वेदियाँ और बनायी गयीं। इन वेदियोंमें नीलम मरकतकी तथा पाषाणकी संवत् १११२ तककी प्रतिमाएँ हैं। एक छत्र स्फटिकका बना हुआ है। यह दिल्लीका प्रथम शिखरबन्द मन्दिर है। इस मन्दिरके निर्माता राजा हरसुखरायजी ने शिखरके लिए बादशाहसे विशेष आज्ञा ली थी। तब शिखर बन सका था।

अन्तिम वेदीमें कुल ४९ प्रतिमाएँ विराजमान हैं। बायीं ओर तीन पहलूवाली काले पाषाणकी एक प्रतिमा है। इसमें दो ओर १ पद्मासन और खड्गासन प्रतिमाएँ हैं। इसके ऊपरका लेख इस प्रकार है—

सं. १५३ माघ शुक्ला १० चन्द्रे। दूसरी ओर भी यही लेख है। पुरातत्त्ववेत्ताओंके अनुसार यह संवत् १२५३ होना चाहिए। इसी वेदीपर दायीं ओर ऐसे ही पाषाणका एक शिलाफलक तीन पहलूवाला है। इसके ऊपर छोटा-सा शिखर बना हुआ है। इसमें बीचमें पद्मासन तीर्थंकर प्रतिमा है। इधर-उधर दोनों पहलुओंपर एक-एक खड्गासन मूर्ति है। दायीं ओर पद्मासन मूर्तिके ऊपर हाथी की सूँड़ बनी हुई है। कहा जाता है कि ये दोनों शिलाफलक महरौलीसे लाये गये थे, वहाँ सम्भवतः प्राचीन कालमें जैन मन्दिर था।

इसी वेदीपर एक खड्गासन मूर्ति सं. ११२३ की है। यह गहरे कत्थई रंगकी १ फुट अवगाहनाकी है।

वेदियोंके अतिरिक्त कमरेमें आधुनिक कालका एक सहस्रकूट चैत्यालय है। जिसकी चारों दिशाओंमें एक शिलापर १००८ प्रतिमाएँ उत्कीर्ण हैं।

इस मन्दिरमें शास्त्र-भण्डार भी है, शास्त्रोंका संग्रह सुन्दर है। मन्दिर के साथ ही धर्मशाला, शिशु सदन, प्राइमरी स्कूल, लड़कियोंका स्कूल है। जैन मित्र-मण्डल द्वारा संचालित वर्धमान जैन पुस्तकालय भी यहींपर है।

ऐसा सुना जाता है कि लगभग ५० वर्ष पूर्व यहाँ की बहुत-सी खण्डित मूर्तियोंको समुद्रमें प्रवाहित करा दिया गया। बहुत-सी मूर्तियोंपर लेख भी थे।

राजा हरसुखराय

नया मन्दिर धर्मपुराके निर्माता राजा हरसुखराय हिसारवासी लाला हुकूमतरायके सबसे

बड़े पुत्र थे। लालाजी हिसारके माने हुए रईसोंमें थे। दिल्लीके मुगल बादशाह शाहआलम (सं. १८१६-१८६३) ने आपको दिल्ली बुलाया और उनसे दिल्लीमें ही रहनेका अनुरोध किया। लालाजीने बादशाहके अनुरोधको स्वीकार करके दिल्लीमें ही अपने परिवारको बुला लिया। बादशाहने उन्हें रहनेके लिए एक मकान दिया। लालाजी वहीं रहने लगे। आपके पाँच पुत्र थे—हरसुखराय, मोहनलाल, संगमलाल, सेवाराम और तनसुखराय। पानीपतके एक जैन रईसको, जिनका नाम लाला सन्तलाल था, बादशाहने दिल्ली बुलाया और उन्हें भी रहनेके लिए एक मकान दे दिया। संवत् १८४८ में लाला हरसुखरायने लाला सन्तलालके साझेमें साहूकारेकी कोठी खोली। संवत् १८५२ में लाला हरसुखरायको शाही खजांची बना दिया गया और बादशाहने उन्हें राजाका खिताब देकर सम्मानित किया। बादमें सल्तनतकी ओरसे उन्हें तीन जागीरें और सनदें भी मिली थीं। वे बादशाहके अत्यन्त विश्वासपात्र व्यक्तियोंमें-से थे। कोषकी सुरक्षा, वृद्धि और आवश्यकता आ पड़नेपर बादशाह और सल्तनतके लिए धनकी व्यवस्था करनेका दायित्व राजा साहबके ऊपर था। जिसे वे बड़ी योग्यता और निष्ठाके साथ पूरा कर रहे थे। बादशाह उनसे अत्यन्त प्रसन्न थे और खजानेका सारा भार उनपर सौंपकर वह निश्चिन्त हो गये थे और उन्हें अपने अत्यन्त विश्वसनीय नवरत्नोंमें स्थान दिया था।

यह वह समय था, जब मुगल सल्तनत अपनी अन्तिम साँसें ले रही थी। औरंगजेबकी अनुदार और असहिष्णु नीतिके कारण चारों ओर विद्रोह सुलग रहा था। बादशाहकी मृत्यु होते ही वह विद्रोह फूट पड़ा। भरतपुरके जाट, पंजाबके सिख, राजस्थानके राजपूत और दक्षिणमें मरहठे उठ खड़े हुए और उन्होंने स्वतन्त्र राज्य खड़े कर लिये। औरंगजेबकी मृत्युका समाचार पाते ही उसके दोनों पुत्र—मुअज्जम और आजम अपनी-अपनी सेनाएँ लेकर दिल्लीकी गद्दीपर कब्जा करने चल पड़े। दोनोंका आमना-सामना जाजऊ (आगरा-धौलपुरके बीचमें एक गाँव) के मैदानोंमें हुआ। उसमें आजम मारा गया और मुअज्जम बहादुरशाहके नामसे मुगल सम्राट् बन गया। उसका शासनकाल १७६४ से १७६९ तक था। किन्तु सल्तनतकी स्थिति दिनोंदिन खराब होती गयी। विद्रोह बढ़ते गये, राज्य-कोष खाली होता गया। इसके बाद कई बादशाह हुए। फिर मुहम्मदशाह (सं. १७७६-१८०५) गद्दीपर बैठा। वह स्वयं तो अयोग्य था किन्तु आमेर नरेश सवाई जयसिंहसे व्यवस्था करनेके लिए उसने सहयोग माँगा। सवाई राजाने सहयोग देना सहर्ष स्वीकार कर लिया। उसने आकर जाटोंका विद्रोह शान्त कर दिया। सं. १७८४ में सवाई राजा बादशाहकी नौकरी (आगराकी सूबेदारी) छोड़कर आमेर चला गया।

कुछ वर्षों बाद ईरानका लुटेरा शासक नादिरशाह मुगल हुकूमतको कमजोर जानकर करनाल तक आ पहुँचा। वहाँ मुहम्मदशाह की सेनाओंसे उसका युद्ध हुआ। उसमें मुहम्मदशाह २४ फरवरी सन् १७३९ को पराजित हुआ। नादिरशाह दिल्लीपर चढ़ आया और उसने अपने सैनिकोंको दिल्लीको लूटने और कत्लेआमका हुक्म दे दिया। फलतः ३० करोड़ रुपये, बेशुमार हीरे-जवाहरात, बेगमें और उनके वस्त्राभूषण, तख्तताऊस और कोहनूर हीरा उसके हाथ लगे।

सं. १८०५में मुहम्मदकी मृत्यु हो गयी। उसके बाद अहमदशाह (सं. १८०५-११), आलमगीर द्वितीय (सं. १८११-१८१६), शाहआलम (सं. १८१६-१८६३) गद्दी पर बैठे। चारों ओर विद्रोहके कारण अब मुगल सल्तनत सिकुड़-सिमटकर बहुत थोड़े प्रदेशपर रह गयी। संवत् १८१४ में नादिरशाहके उत्तराधिकारी अहमदशाह अब्दालीने दिल्लीपर आक्रमण किया और उसे

जीतकर एक माह तक दिल्लीकी लूटमार करता रहा। और अपार धन-दौलत लेकर वह ईरान वापस चला गया।

नादिरशाह और अहमदशाह अब्दालीकी लूटोंके बीच एक बार और भी दिल्लीकी लूट हुई। वह लूट भरतपुरके जाट नरेश सूरजमलने सं. १८१० में की।

इस प्रकार लगातार तीन बार लूट होनेके कारण कोष बिलकुल खाली हो गया। मुगल सल्तनत कमजोर पड़ चुकी थी। राजा लोग कर अदा करनेमें आनाकानी करते थे। ऐसे समयमें राजा हरसुखरायने कोषका काम सम्हाला और बड़ी योग्यतासे निभाया। उनकी योग्यता और कुशलतासे प्रसन्न होकर कई रियासतोंने उन्हें अपने यहाँका खजांची नियुक्त किया था। भरतपुर-नरेशने उन्हें अपने दरबारका कौंसिलर नियुक्त किया था।

राज्यमें भारी गड़बड़ी मची हुई थी। राजा साहबने अपने परिवारको सुरक्षाकी दृष्टिसे हिसार भेज दिया। एक दिन कुछ डाकू उनके घरपर जा धमके। आपने उनसे पूछा—'तुम्हें क्या चाहिए, धन ?' और उन्होंने अपनी तिजोरी खोल दी और कहा—'तुम्हें जितना धन चाहिए, ले लो।' डाकू जैसे ही तिजोरीमें-से धन निकालनेको तैयार हुए, तभी सरदार कड़ककर बोला—'खबरदार! किसीने मालको जो हाथ लगाया। यह आदमी नेक और शरीफ है। इसका माल हजम नहीं होगा।' सब डाकू माल छोड़कर वहाँसे चले गये।

वि. संवत् १८५८ में आपके मनमें मन्दिर-निर्माणकी भावना हुई। आपने बादशाहसे धर्मपुरामें उपयुक्त स्थान लेकर मन्दिर और उसके ऊपर शिखर बनानेकी आज्ञा ले ली। सात वर्षमें आठ लाखकी लागतसे भव्य कलापूर्ण मन्दिर बनकर तैयार हो गया। शिखर भी लगभग बन चुका था, केवल १-२ दिनका कार्य बाकी था। तभी उन्होंने मदद बन्द करवा दी। लोगोंने देखा—मन्दिरकी मदद क्यों बन्द हो गयी! २-४ दिन हो गये, मदद चालू नहीं हुई। जनतामें इस बातको लेकर कुछ कानाफूसी शुरू हो गयी। जब एक सप्ताह तक मदद चालू नहीं हुई तो लोगोंमें नाना भाँतिकी चर्चाएँ होने लगीं। कुछ असूया-रसिकोंने तो राजा साहबकी निन्दा तक करना आरम्भ कर दिया। पंचायतके प्रमुख लोगोंने इस मसलेपर परस्पर परामर्श किया और निश्चय किया कि राजा साहबसे मिलकर पता लगाया जाये कि मन्दिरकी मदद क्यों रुक गयी है।

पंच लोग मिलकर राजा साहबके घर पहुँचे। राजा साहबने सबका हार्दिक स्वागत किया और आदरपूर्वक सबको आसन दिया। उन्होंने पान, सुपाड़ी, इत्र आदि द्वारा सबका यथोचित सम्मान किया। यह सब शिष्टाचार समाप्त होनेपर राजा साहब हाथ जोड़कर बोले—'मेरा अहो-भाग्य है कि बिरादरीके सरदार लोग यहाँ पधारे और मेरी इज्जत बढ़ायी। कहिए, सरदार साहबानोंने कैसे कष्ट किया ?'

एक पंच बोले—'हुजूर! देख रहे हैं, कई दिनोंसे मन्दिरमें तामीरका काम बन्द पड़ा है। एकाएक क्या बात हो गयी, क्या हुजूर इसपर रोशनी डालनेकी इनायत बख्शेंगे।'

सुनकर राजा साहब एकाएक गम्भीर हो गये। बोले—'मैं शर्मिन्दा हूँ कि आप लोगोंको इस बातके लिए इतनी तकलीफ उठानी पड़ी। मैं कई दिनसे सोच रहा था कि बिरादरीके लोगोंके पास जाऊँ और सारी हकीकत कह जाऊँ। मेरी बदकिस्मती है कि मैं कामोंमें इतना मशगूल रहा कि जा नहीं सका। लेकिन जब सभी सरदार लोग खुद ही पधारे हैं तो मुझे कहनेमें झिझक क्या। फिर आप लोग तो मेरे भाई-बन्धु हैं। आप लोगोंसे ही नहीं कहूँगा तो मैं निश्चिन्त कैसे हो पाऊँगा। बात यह है कि मेरे पास जो कुछ था वह मैं लगा चुका। अब मेरे पास लगाने

को नहीं है। अब मेरी लाज आप लोगोंके हाथ है।'

यह असम्भव-जैसी बात सुनते ही पंच लोग बोले—'हुजूर ! आप हमें शर्मिन्दा कर रहे हैं। हमारे पास जो कुछ है, सब आपका ही है। आप हुक्म फरमावें, लाख-दो लाख अभी हाजिर हो जायेगा।'

राजा साहब खुश होते हुए बोले—'यह तो आप सब सरदारोंकी मेरे ऊपर मेहरबानी और प्रेम है। लेकिन मैं तो सारी बिरादरीसे लूँगा। अपने भाइयोंके सामने झोली फैलानेमें शर्म किस बात की।'

पंचोंने सम्मिलित भी और अलग-अलग भी बहुत कहा, इसरार किया—'यह तो हम लोगों-के मरनेकी बात होगी कि हम लोगोंके रहते हुए आप भरी पंचायतमें झोली पसारें। आप हुक्म तो दीजिए जो कहेंगे, हम लोग ही आपसमें इकट्ठा कर लेंगे।'

किन्तु राजा साहब किसी भी तरह नहीं माने और उनकी इच्छानुसार एक दिन सारी पंचायत बुलायी गयी। राजा साहबने अपनी बात दुहरा दी, जो पंचोंके समक्ष कही थी। अन्तमें बोले—'सब भाई यहाँ मौजूद हैं। हर भाई मेरी झोलीमें एक आना डालता चला जाये, अधिक नहीं लूँगा।' यों कहकर राजा साहब वास्तवमें ही झोली पसारकर खड़े हो गये। जो आता गया, इकन्नी डालता गया। किसीने रुपया या गिन्नी डालनी चाही तो झोली बन्द हो गयी। लाचार सबने इकन्नी ही डाली। इस बातको लेकर बिरादरीमें नाना भाँति की चर्चाएँ हुईं।

दूसरे दिनसे मन्दिरमें तामीरका काम पुनः चालू हो गया। काम था ही कितना, ५-७ दिनमें समाप्त हो गया। फिर राजा साहबने पंचायत बुलाकर प्रतिष्ठा और कलशारोहणका मुहूर्त निश्चित किया। वैशाख शुक्ला ३ सं. १८६४ को प्रतिष्ठा हुई। तभी एक भयंकर दुर्घटना हो गयी। लाल किलेके सामने परेडके मैदानमें विशाल पण्डाल बनाया गया था। पण्डाल खूब सजाया गया था। यहींपर सारे धार्मिक विधि-विधान हो रहे थे। तभी कुछ विद्वेषी लोगोंने पण्डालमें आग लगा दी और सोने-चाँदीकी चीजें—छत्र, चमर, बरतन आदिको लूट लिया। इस काण्डसे स्त्री-पुरुषोंमें भगदड़ मच गयी। राजा साहब बड़े उदास मनसे खड़े-खड़े यह काण्ड देखते रहे। दूसरे दिन राजा साहब बादशाहके दरबारमें पहुँचे और सारी घटना कह सुनायी। बादशाहने कोतवाल द्वारा गुण्डों-को बुलाया और कड़ी फटकार दी। गुण्डोंसे सब सामान वापस दिलाया। तब प्रतिष्ठाका कार्य सम्पन्न हुआ।

जब शिखरपर कलश और ध्वजाके आरोहणका समय आया तब अन्य व्यक्तियोंके समान राजा साहब भी बैठे हुए थे। मुहूर्त-काल बीत रहा था। प्रतिष्ठाचार्यने प्रतिष्ठाकारक यजमानको आनेका आदेश दिया। फिर भी राजा साहब बैठे रहे। तब पंचोंने राजा साहबसे अनुरोध किया—'हुजूर ! शुभ काममें देर कैसी, शुभ मुहूर्तमें ही कलशारोहण और ध्वजारोहण करना है आपको।' तब राजा हरसुखराय बोले—'शुभ काम शुभ मुहूर्तमें तो होना ही चाहिए। किन्तु आप लोग यह सब मुझसे क्यों कह रहे हैं ?' पंचोंने आश्चर्य प्रकट करते हुए कहा—'वाह साहब ! आपसे नहीं तो किससे कहें। आप मालिक हैं। मन्दिर आपका है, प्रतिष्ठा आप करा रहे हैं।' राजा साहबने हैरत प्रकट करते हुए बड़ी विनम्रतासे उत्तर दिया—'आप लोग क्या कह रहे हैं ! न मन्दिर मेरा है, न मैं प्रतिष्ठाकारक ही हूँ। आमन्त्रण पत्रिकामें देखिए, अग्रवाल दिगम्बर जैन पंचायतका नाम है। मन्दिरमें सारी बिरादरीका पैसा लगा है। अब कलश और ध्वजारोहणमें या तो सारी बिरादरी हाथ लगायेगी या फिर कोई नहीं लगायेगा।'

उस समय लोगोंको मन्दिरकी तामीर बन्द करने और हर एकसे एक-एक आना झोलीमें लेनेका रहस्य ज्ञात हुआ। सब लोग राजा साहबकी निरीहवृत्ति और निरभिमानता देखकर दंग रह गये।

आपकी निरीहता और निरभिमानताका सबसे बड़ा प्रमाण और क्या हो सकता है कि आपने नया मन्दिर धर्मपुराके अतिरिक्त पटपड़गंज, हस्तिनापुर, करनाल, सोनपत, हिसार, पानीपत, सांगानेर आदि अनेक स्थानोंपर मन्दिरोंका निर्माण किया। निर्माण पूरा होते ही सभी जगह आपने उसे पंचायतके सुपुर्द कर दिया। साथ ही, मन्दिरमें कहीं कोई ऐसा चिह्न तक न छोड़ा जिससे मन्दिरसे उनका सम्बन्ध प्रकट हो सके। यशोलिप्सा और अभिमानसे अपने आपको बचानेवाले व्यक्ति संसारमें विरल होते हैं।

वे दीन-असमर्थोंकी गुप्त सहायता किया करते थे। जहाँ रुपयेकी आवश्यकता होती, वह किसी बहानेसे रुपये भेज देते थे। कभी गिन्दौड़ेमें रखकर, कभी बड़े लड्डूमें रखकर। इस प्रकारकी सहायताओंके बारेमें किसीको कानों कान खबर तक न हो पाती थी।

संवत् १८६७ में आपके मनमें रथयात्रा निकालने की भावना उत्पन्न हुई। किन्तु वे यह भी जानते थे कि रथयात्राके लिए शाही हुक्म मिलना कठिन है, कठिन ही नहीं, असम्भव है। यह सोचकर वे उपयुक्त अवसरकी प्रतीक्षा करते रहे।

एक दिन वे चाँदनी चौकमें-से गुजर रहे थे। उन्होंने देखा कि सुनहरी मसजिदकी सुनहरी पालिश धुँधली पड़ गयी है। उन्होंने उसी समय रंग-रोगनके कारीगर बुलाये और मसजिदपर सुनहरी पालिश करनेका हुक्म दे दिया। कुछ दिन पश्चात् बादशाह उधरसे हाथीपर गुजरे। उनकी निगाह सुनहरी मसजिदकी तरफ गयी। उन्होंने पूछा—'यह पालिश किसने करायी ?' दीवान बोला—'हुजूर ! राजा हरसुखरायके हुक्मसे हुई है।' बादशाह सुनकर चुप हो गया किन्तु मनमें वह राजा साहबसे बहुत खुश हुआ। दूसरे दिन दरबारमें अपनी प्रसन्नता प्रकट करते हुए बोला—'राजा साहब ! माबदौलत तुमसे बहुत खुश हैं। तुम्हें जो माँगना हो, वह माँग लो।'

राजा साहब दरबारी शिष्टाचारसे बोले—'हजूरकी ऐन इनायत है। हजूर अगर कुछ ख्याल न करें तो भगवान्‌की सवारी निकालने की मेरी ख्वाहिश है। आलमपनाह हुकुम अता फरमाने की नवाजिश फरमायें।' राजा साहबने वरदान तो माँगा किन्तु डरते-डरते। उन्हें विश्वास नहीं था कि वरदान उन्हें मिल सकेगा। मुसलमानी सल्तनतमें रथयात्रापर न जाने कबसे पाबन्दी चली आ रही थी। किन्तु उनके आश्चर्यका ठिकाना न रहा, जब बादशाहने रथयात्राकी स्वीकृति देकर हुकमनामेपर अपनी मुहर लगा दी। राजा साहब कृतज्ञतासे अभिभूत हो गये। उन्होंने बार-बार धन्यवाद देकर अपनी कृतज्ञता प्रकट की। इसके बाद जो रथयात्रा निकली, उसमें जैनोंके हर्षका पार नहीं था।

कुछ वर्षों तक आप अँगरेजी सल्तनतके भी खजांची रहे। संवत् १८७९ में कोठीकी साझेदारी समाप्त हो गयी। उसके एक वर्ष बाद संवत् १८८० में आपका स्वर्गवास हो गया।

आपके पुत्र सुगनचन्द हुए। आपने भी राजा साहबकी परम्पराको निभाया तथा धर्म एवं समाजके प्रत्येक कार्यमें रुचिपूर्वक भाग लिया।

सेठका कूँचा बड़ा मन्दिर

इस मन्दिरका निर्माण सेठ इन्द्रराजजीने २०० वर्ष पूर्व कराया था। ये यहीं सेठके कूँचामें रहते थे। मुख्य वेदी और उसमें विराजमान मूलनायक भगवान् आदिनाथकी प्रतिमा मन्दिरके

स्थापना कालसे ही है। नये मन्दिरके समान इसकी वेदी भी तीन कटनीवाली है। उसमें गन्धकुटी बनी हुई है जहाँ कमलासनपर भगवान् आदिनाथकी कृष्ण पाषाणकी पालिशदार पद्मासन पौने दो फुट अवगाहनावाली प्रतिमा विराजमान है। इस प्रतिमाके पादपीठपर लेख भी है, जिसके अनुसार इसकी प्रतिष्ठा संवत् १२५३ (सन् ११९६) में वैशाख शुक्ला ५ सोमवारको की गयी थी। कुल ५ वेदियाँ हैं।

मन्दिरके सामने छोटा दिगम्बर जैन मन्दिर है। इसमें ६ वेदियाँ हैं। यहाँ पद्मावती देवी की मूर्ति बहुत भव्य है और उसकी बहुत मान्यता है।

यह मन्दिर जिस भवनमें है, उसमें नीचे आ. नमिसागर जैन पारमार्थिक औषधालय है तथा ऊपर दो मंजिलोंमें त्यागी भवन है।

मन्दिरके सामने ही जैन हायर सेकेण्डरी स्कूल है।

●

परिशिष्ट–२

पोदनपुर-तक्षशिला

पोदनपुर

क्षेत्र मंगल

निर्वाण भक्ति (संस्कृत) में पोदनपुरको निर्वाण-क्षेत्र स्वीकार किया है, जो इस प्रकार है—

'द्रोणीमति प्रबलकुण्डलमेढ्रके च,
वैभारपर्वततले वरसिद्धकूटे।
ऋष्याद्रिके च विपुलाद्रिबलाहके च,
विन्ध्ये च पोदनपुरे वृषदीपके च ॥२९॥

....

ये साधवो हतमलाः सुगतिं प्रयाताः ॥३०॥

इसमें पोदनपुरको निर्वाण-भूमि माना है।

प्रसिद्धि

पोदनपुरकी प्रसिद्धि भरत-बाहुबली-युद्धके कारण विशेष रूपसे हुई है। जब भगवान् ऋषभदेवको नीलांजना अप्सराकी आकस्मिक मृत्यु देखकर संसारसे वैराग्य हो गया और वे दीक्षाके लिए तत्पर हुए, तब उन्होंने अपने सौ पुत्रोंको विभिन्न देशोंके राज्य बाँट दिये। उन्होंने अयोध्याकी राजगद्दी पर अपने बड़े पुत्र भरतका राज्याभिषेक किया तथा दूसरे पुत्र बाहुबलीको युवराज पद देकर उन्हें पोदनपुरका राज्य दे दिया।

एक ओर ऋषभदेवके दीक्षाकल्याणक महोत्सवकी तैयारियाँ हो रही थीं, दूसरी ओर भरतका राजसिंहासन महोत्सव मनाया जा रहा था। भगवान्‌ने अपने हाथोंसे भरतके सिरपर राज-मुकुट पहनाया और दीक्षा लेने चल दिये। अपार जनमेदिनी, इन्द्रों और देवोंने भगवान्‌का दीक्षा महोत्सव मनाया।

महाराज भरत और उसके सभी भाई अपने-अपने देशमें शान्तिपूर्वक राज्य करने लगे। कुछ समय बाद महाराज भरतकी आयुधशालामें चक्ररत्न उत्पन्न हुआ। भरत विशाल सैन्य लेकर दिग्विजयके लिए निकले। उन्होंने कुछ ही वर्षोंमें सम्पूर्ण भरत क्षेत्र जीत लिया। उन्होंने अपने भाइयोंको भी अधीनता स्वीकार करनेके लिए पत्र लिखे। ९८ भाइयोंने आपसमें परामर्श किया और सब मिलकर भगवान्‌के पास पहुँचे। भगवान्‌ने उन्हें उपदेश दिया, जिससे उनके मनमें वैराग्य उत्पन्न हो गया। फलतः उन्होंने भगवान्‌के पास ही मुनिदीक्षा धारण कर ली।

दिग्विजयके बाद जब भरतने अयोध्यामें प्रवेश किया तो उन्हें यह देखकर आश्चर्य हुआ कि चक्र नगरके भीतर प्रवेश नहीं कर रहा। उन्होंने सन्देहयुक्त होकर बुद्धिसागर पुरोहितसे इसका कारण पूछा। पुरोहितने विचार करके उत्तर दिया, "आपके भाई बाहुबली आपकी आज्ञा नहीं मानते।"

भरतने परामर्श करके एक चतुर दूतको बाहुबलीके पास पोदनपुर भेजा। दूतने बाहुबलीकी सेवामें पहुँचकर अपना परिचय दिया और अपने आनेका उद्देश्य भी बताया। बाहुबलीने

भरतकी अधीनता स्वीकार करनेसे स्पष्ट इनकार कर दिया। जब सम्राट् भरतको यह खबर पहुँची तो वे विशाल सेना लेकर पोदनपुरके मैदानोंमें जा डटे। बाहुबली भी अपनी सेना सजाकर नगरसे निकले और उन्होंने भी भरतकी सेनाके समक्ष अपनी सेना जमा दी। दोनों सेनाओं की भयानक मुठभेड़ हुई, जिसमें दोनों ओरके अनेक व्यक्ति हताहत[1] हुए। तब दोनों राजाओंके मन्त्रियों-ने परस्पर परामर्श करके निश्चय किया कि देशवासियोंका व्यर्थ नाश न हो; अतः दोनों राजाओंमें धर्मयुद्ध होना चाहिए। दोनों भाइयोंने मन्त्रियोंके इस परामर्शको स्वीकार किया और दोनोंमें दृष्टियुद्ध, जलयुद्ध और मल्लयुद्ध करनेका निश्चय हुआ। बाहुबली सवा पाँच सौ धनुषके थे और भरत पाँच सौ धनुषके थे। इस ऊँचाईका लाभ बाहुबलीको मिला। वे दृष्टियुद्धमें जीत गये। फिर जलयुद्ध हुआ। उसमें भी बाहुबलीकी विजय हुई। अन्तमें मल्लयुद्ध हुआ। दोनों ही अप्रतिम वीर थे। किन्तु बाहुबली शारीरिक बलमें भी भरतसे बढ़-चढ़कर थे। उन्होंने क्षणमात्रमें भरतको हाथोंमें ऊपर उठा दिया। बाहुबलीने राजाओंमें श्रेष्ठ बड़े भाई तथा भरत क्षेत्रको जीतनेवाले भरतको जीतकर भी 'ये बड़े हैं' इस गौरवसे उन्हें पृथ्वीपर नहीं पटका, बल्कि उन्हें अपने कन्धे-पर बैठा लिया।

बाहुबलीकी तीनों ही युद्धोंमें निर्णायक विजय हो चुकी थी। सब लोग उनकी जयजयकार कर रहे थे। इस अपमानसे क्षुब्ध होकर भरतने बाहुबलीपर चक्ररत्न चला दिया। किन्तु चक्र बाहुबलीकी प्रदक्षिणा देकर लौट आया। बाहुबली भरतके भाई थे तथा चरमशरीरी थे, इसलिए चक्र उनके ऊपर कुछ प्रभाव नहीं डाल सका। बाहुबलीके मनपर इस घटनाका बड़ा प्रभाव पड़ा। वे मनमें विचार करने लगे—'बड़े भाईने इस नश्वर राज्यके लिए यह कैसा लज्जाजनक कार्य किया है। यह राज्य व्यक्तिको छोड़ देता है किन्तु व्यक्ति राज्यको नहीं छोड़ना चाहता। धिक्कार है इस क्षणिक राज्य और राज्यकी लिप्साको।' यह विचार कर आहिस्तेसे उन्होंने भरतको एक ऊँचे स्थानपर उतार दिया। उन्होंने भरतसे अपने अविनयकी क्षमा माँगी और अपने पुत्र महाबली[2]को राज्य सौंपकर गुरुके निकट मुनिदीक्षा[3] ले ली। गुरुकी आज्ञामें रहकर उन्होंने शास्त्रोंका अध्ययन किया तथा एकलबिहारी रहे। फिर कैलास[4] पर्वतपर जाकर एक वर्षका प्रतिमायोग धारण करनेका नियम लेकर घोर तप किया। एक वर्ष तक उसी स्थानपर खड़े रहनेके कारण दीमकोंने उनके चारों ओर बामी बना ली। बामियोंमें सर्प आकर रहने लगे। उनमें लताएँ उग आयीं। चिड़ियोंने उनमें घोंसले बना लिये। एक स्थानपर निराहार खड़े रहकर ध्यान लगाना कितना दुर्धर तप है!

किन्तु बाहुबलीके मनमें एक विकल्प था कि मेरे कारण भरतको क्लेश पहुँचा[5] है। जब एक वर्ष समाप्त हुआ तो चक्रवर्ती भरतने आकर उन्हें प्रणाम किया। तभी बाहुबलीको केवलज्ञान हो गया। चक्रवर्तीने केवलज्ञान उत्पन्न होनेसे पूर्व भी मुनिराज बाहुबलीकी पूजा की और केवलज्ञान उत्पन्न होनेके अनन्तर अर्हन्त भगवान् बाहुबलीकी पूजा की। इन्द्रों और देवोंने भी आकर उनकी पूजा की।

---

१. पद्मपुराण ४।६९; पउमचरिउ, स्वयम्भू कृत ४।१०।

२. पउमचरिउ (स्वयम्भू) के अनुसार सोमप्रभ।

३. आदि पुराण ३६।१०४।

४. हरिवंश पुराण ११।९८।

५. स्वयम्भू कृत पउमचरिउके अनुसार उनके मनमें यह कषाय थी कि मैं भरतकी धरतीपर खड़ा हूँ।

भगवान् बाहुबली केवलज्ञानके बाद पृथ्वीपर विहार करते रहे। पश्चात् भगवान् ऋषभदेवके सभासद[2] हो गये, और कैलास पर्वतपर जाकर मुक्त हुए।

पोदनपुरकी अवस्थिति

पोदनपु क्षेत्र कहाँ था, वर्तमानमें उसकी क्या स्थिति है, अथवा क्या नाम है, इस बातको जनता प्रायः भूल चुकी है। कथाकोषों और पुराणोंमें पोदनपुरमें घटित कई घटनाओंका उल्लेख मिलता है, किन्तु उनसे पोदनपुरकी भौगोलिक स्थितपर विशेष प्रकाश नहीं पड़ता फिर भी दिगम्बर पुराणों, कथाकोषों और चरितग्रन्थों आदिमें इधर-उधर बिखरे हुए पुष्पोंको यदि एकत्र करके उन्हें एक सूत्रमें पिरोया जाये तो उनसे सुन्दर माला बनायी जा सकती है।

पोदनपुरके लिए प्राचीन ग्रन्थोंमें कई नामोंका प्रयोग मिलता है। जैसे पोदन, पोतन, पोदनपुर। प्राकृत और अपभ्रंशमें इसे ही पोयणपुर कहा गया है।

समाजमें पोदनपुरके सम्बन्धमें एक धारणा व्याप्त है कि यह दक्षिणमें कहीं था। भगवान् ऋषभदेवने पुत्रोंको राज्य देते समय भरतको अपने स्थानपर अयोध्याका राजा बनाया और अन्य ९९ पुत्रोंको विभिन्न देशों या नगरोंके राज्य दिये। बाहुबलीने अपनी राजधानी पोदनपुरमें बनायी।

हरिषेण कथाकोष (कथा २३) में पोदनपुरके सम्बन्धमें साधारण-सा संकेत इस प्रकार दिया गया है।

अथोत्तरापथे देशे पुरे पोदननामनि।
राजा सिंहरथो नाम सिंहसेनास्य सुन्दरी ॥३॥

इससे स्पष्ट होता है कि पोदनपुर नामक नगर उत्तरापथ देशमें था।

इसी प्रकार कथा २५ में 'तथोत्तरापथे देशे पोदनाख्ये पुरेऽभवत्' यह पाठ है। इससे तो लगता है कि पोदनपुर दक्षिणापथमें नहीं, उत्तरापथमें अवस्थित था। किन्तु अन्य पुष्ट प्रमाण इसके विरुद्ध हैं और उनसे पोदनपुर दक्षिणमें था, ऐसा निश्चित होता है। जनताकी परम्परागत धारणाका अवश्य कोई सबल आधार रहा है।

दक्षिणापथमें होने की इस धारणाको वीर मार्तण्ड चामुण्डरायके चरितसे अधिक बल मिला है। श्रवणबेलगोलके शिलालेख नं. २५० (८०) ता. १६३४ में श्रवणबेलगोलकी बाहुबली प्रतिमाके निर्माण और प्रतिष्ठा सम्बन्धी एक कहानी दी गयी है, जो बहुप्रचलित हो चुकी है।

'भरत चक्रवर्तीने पोदनपुरमें ५२५ धनुष ऊँची स्वर्णमय बाहुबली-प्रतिमा बनवायी थी। कहते हैं, इस मूर्तिको कुक्कुट-सर्प चारों ओरसे घेरे रहते हैं, इसलिए आदमी पास नहीं जा सकता।

एक जैनाचार्य जिनसेन थे। वे दक्षिण मथुरा गये। उन्होंने पोदनपुरकी इस मूर्तिका वर्णन चामुण्डरायकी माता काललदेवीसे किया। उसने यह नियम ले लिया कि जबतक मुझे इस मूर्तिका दर्शन नहीं होगा, मैं दूध नहीं पीऊँगी। इस नियमका समाचार गंगवंशी महाराज राचमल्लके मन्त्री चामुण्डरायको उनकी स्त्री अजितादेवीने बता दिया। तब चामुण्डरायने उस मूर्तिकी तलाशके लिए चारों ओर अपने सैनिक भेजे और स्वयं अपनी माताको लेकर चल दिये। मार्गमें चन्द्रगिरि (श्रवणबेलगोल) में ठहरे। रात्रिको पद्मावतीदेवीने चामुण्डरायको स्वप्न दिया कि सामने दोड्डबेट (विन्ध्यगिरि अथवा इन्द्रगिरि) पर्वतपर श्रीगोम्मट स्वामीकी मूर्ति जंगलके भीतर छिपी हुई है।

१. आदि पुराण ३६-२०२।

२. हरिवंश पुराण १०१।१०२।

यदि तू यहाँसे खड़े होकर सामने पर्वतपर तीर मारेगा तो मूर्ति प्रकट होगी। चामुण्डरायने ऐसा ही किया। सुबह उठकर णमोकार मन्त्र पढ़कर सामने पर्वतपर तीर मारा। तीर लगते ही मूर्ति-का मुख प्रकट हुआ। तब उन्होंने पाँच सौ कारीगर लगाकर गोम्मटेश्वर बाहुबलीकी उस अद्भुत मूर्तिका निर्माण कराया। चामुण्डरायने अपने गुरु श्री अजितसेनकी आज्ञासे अपनी माताको समझाया कि पोदनपुर जाना हो नहीं सकता, तुम्हारी प्रतिज्ञा यहीं पूर्ण हो गयी।

इस कथाका समर्थन कई शिलालेखों और चन्द्रगिरिपर स्थित एक अभिलिखित पाषाणसे, जो चामुण्डराय चट्टानके नामसे प्रसिद्ध है, भी होता है। सम्भवतः दक्षिणमें बाहुबलीकी विशाल प्रतिमाएँ इसी कारण बनीं।

राजाबली कथे और मुनिवंशाभ्युदय काव्यमें बताया है कि बाहुबलीकी मूर्तिकी पूजा श्री रामचन्द्र, रावण और मन्दोदरीने की थी।

इन उल्लेखोंको पढ़कर मनमें यह बात जमती है कि पोदनपुर कहीं दक्षिणमें रहा होगा।

इस सम्बन्धमें यति मदनकीर्ति विरचित शासनचतुस्त्रिंशिकाके दो श्लोक उल्लेखनीय हैं—पद्य दो और सात। पद्य संख्या २ में ऋषि-मुनि और देवताओं द्वारा वन्दनीय पोदनपुरके बाहुबली स्वामीके अतिशयका वर्णन तथा पद्य संख्या ७ में जैनबद्रीमें देवों द्वारा पूजित दक्षिण गोम्मटदेवकी स्तुति की गयी है।

भरत-बाहुबलीका युद्ध कहाँ हुआ था

इस प्रश्नका उत्तर पद्मपुराण और हरिवंश पुराणमें मिलता है। पद्मपुराण[1]में उल्लेख है कि चक्रवर्ती भरत अपनी चतुरंग सेनाके द्वारा पृथ्वीतलको आच्छादित करता हुआ युद्ध करनेके लिए पोदनपुर गया। हरिवंश पुराणमें इस प्रश्नका और भी अधिक स्पष्ट उत्तर दिया है। वह उल्लेख इस प्रकार है—

पोदनान्निर्ययौ योद्धुमक्षौहिण्या युतो द्रुतम् ॥११।७८॥
चक्रवर्त्यपि संप्राप्तः सैन्यसागररुद्धदिक्।
विततापरदिग्भागे चम्वोः स्पर्शस्तयोरभूत् ॥११।७९॥

अर्थात् वे (बाहुबली) शीघ्र ही अक्षौहिणी सेनाके साथ युद्धके लिए पोदनपुरसे निकल पड़े। इधर सेनारूपी सागरसे दिशाओंको व्याप्त करते हुए चक्रवर्ती भरत भी आ पहुँचे, जिससे वितता नदीके पश्चिम भागमें दोनों सेनाओंकी मुठभेड़ हुई।

इस समस्याका स्पष्ट समाधान आचार्य गुणभद्रने 'उत्तरपुराण' में किया है—

'जम्बूविशेषणे द्वीपे भरते दक्षिणे महान्।
सुरम्यो विषयस्तत्र विस्तीर्णं पोदनं पुरम् ॥७३।६॥

अर्थात् जम्बूद्वीपके दक्षिण भरतक्षेत्रमें एक सुरम्य नामका बड़ा भारी देश है और बड़ा विस्तृत पोदनपुर नगर है।

श्री वादिराज सूरिने भी पार्श्वनाथ चरित सर्ग १ श्लोक ३७-३८ और सर्ग २ श्लोक ६५ में पोदनपुरको सुरम्य देशमें बताया है।

---

१. पद्मपुराण ४,६७-६८।

कभी-कभी ग्रन्थोंकी साधारण लगनेवाली बातें शोधखोजके सन्दर्भमें बड़ी महत्त्वपूर्ण बन जाती हैं। पार्श्वनाथ चरितमें सुरम्य देशको शालि चावलोंके खेतोंसे भरा हुआ बताया है। यह कथन पोदनपुरको चावल बहुल प्रदेशमें होनेका संकेत करता है।

आदिपुराणमें कथन है कि जब भरतका दूत पोदनपुर पहुँचा, तब उसे नगरके बाहर खेतोंमें पके हुए धान खड़े मिले थे—

बहिः पुरमथासाद्य रम्याः सस्यवतीर्भुवः।
पक्वशालिवनोद्देशान् स पश्यन् प्राय नन्दथुम् ॥२८॥

सोमदेव विरचित 'उपासकाध्ययन (यशस्तिलक चम्पू)' में लिखा है—

'रम्यकदेशनिवेशोपेतपोदनपुरनिवेशिनो'[1]

अर्थात् रम्यक देशमें विस्तृत पोदनपुरके निवासी।

यहाँ भी पोदनपुरको रम्यक देशमें बताया है। पुण्यास्रव कथाकोष कथा–२ में 'सुरम्य-देशस्य पोदनेश' वाक्य है। अर्थात् उसमें भी पोदनपुरको सुरम्य देशमें माना है।

बौद्ध ग्रन्थ चुल्ल कलिंग और अस्सक जातकमें पोटलि (पोतलि) को अस्सक जनपदकी राजधानी बताया है। और अस्सक देशको गोदावरी नदीके निकट सह्य पर्वत पश्चिमी घाट और दण्डकारण्यके मध्य अवस्थित लिखा है। सुत्तनिपात ९७७ में अस्सकको गोदावरीके निकट बताया है। पाणिनि ११३७३ अश्मकको दक्षिण प्रान्तमें बताते हैं। महाभारत (द्रोणपर्व) में अश्मक पुत्रका वर्णन है। उसकी राजधानी पोतन या पातलि थी। इसमें पोदन्य नाम भी दिया है।

हेमचन्दराय चौधरीने महाभारतके पोदन्य और बौद्ध ग्रन्थोंके पोत्तनको एक मानकर उसकी पहचान आधुनिक बोधनसे की है। यह आन्ध्र प्रदेशके मंजिरा और गोदावरी नदियोंके संगमसे दक्षिणमें स्थित है। इस मान्यताका समर्थन 'वसुदेव हिण्डि' के निम्नलिखित उद्धरणसे होता है—

'उत्तिण्णामो गोयावरिं नदिं। तत्थ वहामा कयण्हिगा सीहवाहीहिं तुरएहिं पत्ता मो पोयणपुरं।'[2]

अर्थात् गोदावरी नदीको पारकर पोदनपुर पहुँच गया।

उपर्युक्त प्रमाणोंसे पोदनपुर अश्मक, सुरम्य अथवा रम्यक देशमें गोदावरीके निकट था। जो आधुनिक आन्ध्र प्रदेशका बोधन मालूम पड़ता है।

श्वेताम्बर परम्परा

हमें आश्चर्य होता है कि इस सम्बन्धमें श्वेताम्बर और दिगम्बर परम्परामें नामोंमें एक-रूपता नहीं है।

महापुराण, हरिवंश पुराण, पद्मपुराण इन सबमें बाहुबलीके नगरका नाम पोदनपुर मिलता है। श्वेताम्बर-दिगम्बर दोनों परम्पराओंके मध्यमार्गी अथवा यापनीय संघके आचार्य विमल सूरिने 'पउमचरिउ' में कई स्थानोंपर बाहुबलीकी नगरीका नाम तक्खसिला (तक्षशिला) दिया है। यथा—

'तक्खसिलाए महप्पा बाहुबली तस्स निच्च पडिकूलो।
भरत नरिंदस्स सया न कुणइ आणा पणामं सो' ॥४।३८॥

---

१. उपासकाध्ययन कल्प, २८, श्लोक ३९१ में असत्य फलकी कथा।

२. वसुदेव हिण्डी २४वाँ पद्मावती लम्ब, पृ. ३५४।२४०, पंचम सोमश्री लम्ब, पृ. १८७।२४१।

अर्थात् तक्षशिलामें महान् बाहुबली रहता था। वह सदा भरत राजाका विरोधी था और उनकी आज्ञाका पालन नहीं करता था।

'पत्तो तक्खसिलपुरं जयसद्दुखुट्ट कलयलारावो।
जुज्झस्स कारणत्थं सन्नद्धो तक्खणं भरहो' ॥४।४०॥

अर्थात् भरत तक्षशिला पहुँचे और तत्क्षण युद्ध करनेके लिए तैयार हो गये। उस समय जय शब्दके उद्घोषका कलकल शब्द सर्वत्र फैल गया।

'बाहुबली पि महप्पा भरहनरिन्दं समागयं सोउं।
भडचडयरेण महया तक्खसिलाओ विणिज्जाओ' ॥४।४१॥

अर्थात् महात्मा बाहुबली भी भरत राजाका आगमन सुनकर सुभटोंकी महती सेनाके साथ तक्षशिलासे बाहर निकला।

विमलसूरि मानते हैं कि दोनोंमें दृष्टि और मुष्टि युद्ध हुआ।

विमलसूरिने कई कथानकोंमें पोदनपुरका उल्लेख किया है। वे कथानक दिगम्बर पुराणोंमें भी उपलब्ध होते हैं—जैसे मधुपिंगल और कुण्डलमण्डित, गजकुमार आदि। किन्तु यह आश्चर्य-जनक है कि बाहुबलीके चरित्रमें उन्होंने पोदनपुरका उल्लेख नहीं किया। वहाँ उन्होंने पोदनपुरके स्थानपर तक्षशिलाका ही उल्लेख किया है।

श्वेताम्बर ग्रन्थोंमें जहाँपर भी बाहुबलीका चरित्र-चित्रण किया है, वहाँ सर्वत्र बहली (वाह्लीक) देश और तक्षशिला नगरका उल्लेख मिलता है। एक प्रकारसे श्वेताम्बर साहित्यमें पउमचरिउकी ही परम्पराका अनुसरण मिलता है। यहाँ इस प्रकारके कुछ उद्धरण देना समुचित होगा—

'बहुलीदेशसीम्नि गतः सैन्येन च तत्र स्थापितवान्।'

—कल्पसूत्र, समयसुन्दरगणी कृत कल्पलता व्याख्या।

अर्थात् बाहुबली भी भरतको आया जानकर सेना सहित बहली देशकी सीमापर आया।

'ततो भरतेन बहुविलापदुःखितेन बाहुबलिपुत्राय सोमयशसे तक्षशिलाराज्यं दत्वा अयोध्या-नगर्यां समागतम्'।

—कल्पसूत्र २१४, कल्पलता व्याख्या

—अति विलापसे दुःखी भरत तब बाहुबलीके पुत्र सोमयशको तक्षशिलाका राज्य देकर अयोध्या नगरीमें वापस आ गया।

'तक्खसिला-बहली देशे बाहुबलेर्नगर्याम्।'

—अभिधानराजेन्द्र कोश

अर्थात् तक्षशिला बहली देशमें बाहुबलीकी नगरी।

'तक्खसिलाइ पुरीए वहलीविसयावयंसभूयाए।'

—कुमारपाल प्रतिबोध २१२

अर्थात् तक्षशिला बहली देशका एक अंगभूत।

'स्वामिशिक्षां दौत्यदीक्षामिवादाय ससौष्ठवाम्।
सुवेगो रथमारुह्याचलत्तक्षशिलां प्रति' ॥१।५।२५॥

—परिशिष्ट पर्व

—स्वामीकी शिक्षाको वौत्यकी दीक्षाके समान स्वीकार करके वह सुन्दर सुवेग रथपर चढ़कर तक्षशिक्षाके लिए चला।

'षड्भ्यो भरतखण्डेभ्यः खण्डान्तरमिव स्थितम्।
भरताज्ञानभिज्ञं स बहलीदेशमासदत्॥'

—परिशिष्ट, पर्व १।५।४९

अर्थात् वह भरतके अज्ञानको समझनेवाले बहली देशमें पहुँचा जो छह भरत खण्डोंसे पृथक् खण्डकी तरह स्थित था।

'भरतावरजोत्कर्षाकर्णनाद्विस्मृतं मुहुः
अनुस्मरन् वाचिकं स प्राप तक्षशिलापुरीम्॥'

—परिशिष्ट, पर्व १।५।५३

अर्थात् वह भरतके लघुभ्राता बाहुबलीके उत्कर्षकी बातें सुनकर बार-बार भरतके दिये हुए आदेशोंको भूल जाता था और बार-बार वह उन्हें याद करता था। इस प्रकार वह तक्षशिला-पुरी पहुँचा।

'दिने दिने नरपतिर्गच्छंश्चक्रपदानुगः।
राश्यन्तरमिवादित्यो बहलीदेशमासदत्॥'

—परिशिष्ट, पर्व १।५।२८३

अर्थात् सम्राट् भरत दिन-रात चलता हुआ बहली देश पहुँचा, मानो सूर्य एक राशिसे चक्कर लगाता हुआ दूसरी राशिमें पहुँचा हो।

'बाहुबलिणो तक्खसिला दिण्णा'

—विविध तीर्थंकल्प, पृ. २७

अर्थात् बाहुबलीको तक्षशिला दी।

'तक्षशिलायां बाहुबली निर्निर्मितं धर्मचक्रं'

—विविध तीर्थंकल्प, पृ. ८५

अर्थात् बाहुबलीने तक्षशिलामें धर्मोपदेश दिया।

उपर्युक्त उल्लेखोंसे यह स्पष्ट है कि श्वेताम्बर ग्रन्थोंके अनुसार बाहुबलीको तक्षशिलाका राज्य मिला था। तक्षशिला बहली देशमें स्थित थी। अर्थात् उस प्रदेशको बहली अथवा वाह्लीक कहा जाता था और तक्षशिला उसकी राजधानी थी।

तक्षशिलाका स्थापना-काल

इसमें सन्देह नहीं है कि तक्षशिला बहली देशमें थी। किन्तु विचारणीय प्रश्न यह है कि ऋषभदेवके कालमें तक्षशिला नामकी कोई नगरी थी भी या नहीं।

वाल्मीकि रामायणके अनुसार श्री रामचन्द्रने भरतको उसके ननिहाल केकय देशका राज्य दिया था। रघुवंशके अनुसार उसे केकयके साथ सिन्धु देश भी मिला था। केकय और सिन्धु दोनों देश मिले हुए थे।

प्रसिद्ध पुरातत्त्ववेत्ता कनिंघम आधुनिक पश्चिमी पाकिस्तान स्थित गुजरात, शाहपुर और जेहलम जिलोंको प्राचीन केकय देश मानते हैं। केकय देशकी राजधानी उन दिनों राजगृह या

१. Ancient Geography of India, p. 164.

गिरिव्रज थी, जिसकी पहचान जेहलम नदीके किनारे पर बसे हुए आधुनिक गिरजाक (जलालपुर) बस्तीसे की गयी है।

भरतके पुत्र (रामायणके अनुसार) तक्ष और पुष्कर थे। उन दोनोंने गान्धार देशको जीता और दोनोंने अपने नामपर तक्षशिला और पुष्करावती नामक नगरियाँ बसायीं। तक्षशिला नगरी बड़े महत्त्वपूर्ण स्थानपर बसायी थी। वह पंजाबसे काश्मीर तथा पंजाबसे कपिश देश जानेवाले मार्गपर नियन्त्रण रखती थी। पुष्करावती नगरी कुभा (काबुल) और सुवास्तु (स्वात) नदीके संगमपर थी। उत्तर भारतके मैदानसे कपिश और उड्डीयान (स्वातकी उत्तरी दून) जानेवाला रास्ता पुष्करावती होकर जाता था।

इस विवरणसे स्पष्ट है कि तक्षशिलाकी स्थापना श्रीरामचन्द्रके कालमें या उनके कुछ समय पश्चात् हुई थी। ऋषभदेवके कालमें तक्षशिला नामकी कोई नगरी नहीं थी[1]। ऐसी स्थितिमें श्वेताम्बर ग्रन्थोंमें बाहुबलीकी नगरीका नाम तक्षशिला किस कारण दिया, यह अवश्य विचारणीय है। ऐसा प्रतीत होता है कि जिस कालमें आगम ग्रन्थ लिखे गये, उस समय उन आगम ग्रन्थोंके कर्ता आचार्योंके सामने तक्षशिलाकी अत्यधिक प्रसिद्धि रही थी। उसकी ख्यातिसे प्रभावित होकर ही उन आचार्योंने तक्षशिला नामका प्रयोग करना उचित समझा। फिर उस परम्पराके परवर्ती ग्रन्थकारोंने इस नामको ही अपना लिया।

पोदनपुरको ही तक्षशिला कहा जाने लगा, यह सम्भावना-मूलक कल्पना है। उसके लिए कोई ठोस आधार नहीं है।

विमल सूरि कृत पउमचरिउके[2] अनुसार पोतन नगर (पोदनपुर) श्री रामचन्द्रजीके कालमें अत्यन्त समृद्ध नगर था। जब रामचन्द्र लंका विजय करके अयोध्या लौटे, तब एक दिन उन्होंने अपने लघुभ्राता शत्रुघ्नसे कहा—इस पृथ्वीपर तुम्हें जो प्रिय नगर हो, वह माँगो। मैं वह दूँगा। इस साकेतपुरीको ग्रहण करो अथवा पोतननगर, पुण्ड्रवर्धन या अन्य अभीष्ट देश।

उपर्युक्त कथनसे ऐसा लगता है कि श्री रामचन्द्रके कालमें भी पोतनपुर विख्यात और समृद्ध नगर था। किन्तु तक्षशिला इससे भिन्न थी, जिसे भरतके पुत्र तक्षने बसाया और अपनी राजधानी बनाया।

एक नवीन कल्पना

एक मधुर कल्पना यह भी की गयी है कि बाहुबलीको उत्तरापथ और दक्षिणापथ दोनों तरफ राज्य दिया गया था। उन्होंने उत्तरापथके अपने राज्यकी राजधानी पोदनपुर बनायी। जब भरतने आक्रमण किया तो उन्होंने तक्षशिलापर आक्रमण किया, पोदनपुरके ऊपर नहीं किया। क्योंकि बाहुबली प्रायः तक्षशिलामें ही रहते थे।

इस कल्पनाका आधार कुछ भी नहीं है। 'विविध तीर्थकल्प' हस्तिनापुर कल्पके अनुसार भगवान् ऋषभदेवने बाहुबलीको तक्षशिला और हस्तिनापुरका राज्य दिया था। इससे इस कल्पनाका खण्डन हो जाता है कि बाहुबली ने अपने दक्षिण राज्यकी राजधानी पोदनपुर बनायी।

---

१. भारतीय इतिहासकी रूपरेखा, भाग १, पृ. १५६।

२. पउमचरिउ, ८६।२।

आदिपुराणमें[1] भगवज्जिनसेनने बताया है कि वृषभदेवने राज्यव्यवस्थाके लिए चार व्यक्तियोंको दण्डधर (राजा) नियुक्त किया—हरि, अकम्पन, काश्यप और सोमप्रभ। सोमप्रभ भगवान् ऋषभदेवसे कुरुराज नाम पाकर कुरुदेशका राजा हुआ और कुरुवंशका शिखामणि कहलाया।

[2]हरिवंशपुराणमें सोमप्रभका नाम सोमयश दिया है और उन्हें बाहुबलीका पुत्र तथा सोमवंश (चन्द्रवंश) का कर्ता बताया है।

उक्त पुराणोंके अनुसार हस्तिनापुरका राज्य सोमप्रभको दिया था, न कि बाहुबलीको। बाहुबलीको तो पोदनपुरका ही राज्य दिया था। सोमप्रभ और बाहुबलीको ऋषभदेव द्वारा राज्य देनेका काल भी भिन्न-भिन्न है। जिस कालमें ऋषभदेव समाज-व्यवस्था, वर्ण-व्यवस्था, विवाह-व्यवस्था स्थापित करनेमें लगे हुए थे, उस समय दण्डनीतिकी व्यवस्थाके लिए अन्य तीन व्यक्तियों-के साथ सोमप्रभको भी राजा बनाया था और उसे कुरुजांगल देशका राज्य दिया था। किन्तु दीक्षा लेनेसे पूर्व ऋषभदेवने अपने सौ पुत्रोंको राज्य दिया। उनमें बाहुबली को पोदनपुरका राज्य दिया।

इन प्रमाणोंसे बाहुबलीको तक्षशिला और पोदनपुर मिलनेकी कल्पनाका निरसन हो जाता है।

कुछ पौराणिक घटनाएँ

हस्तिनापुरके[3] राजा महापद्म और सुरम्य देशके पोदनपुरके राजा सिंहनादमें बहुत समयसे शत्रुता चली आ रही थी। अवसर पाकर महापद्मने पोदनपुरके ऊपर आक्रमण कर दिया। पोदन-पुरमें सहस्रकूट नामक एक चैत्यालय था, जिसमें एक हजार स्तम्भ लगे हुए थे। महापद्म चैत्यालय-को देखकर बड़ा प्रसन्न हुआ। उसके मनमें भी यह भावना जागृत हुई कि मैं भी अपने नगरमें इसी प्रकारका सहस्र स्तम्भवाला चैत्यालय बनवाऊँगा। उसने एक पत्र अपने अमात्यको लिखा—'महास्तम्भसहस्रस्य कर्तव्यः संग्रहो ध्रुवम्' अर्थात् तुम एक हजार स्तम्भ अवश्य संग्रह कर लो।

पत्रवाचकने स्तम्भके स्थानपर स्तभ पढ़ा और उसका अर्थ हुआ कि तुम हजार बकरे इकट्ठे कर लेना। तदनुसार उन्होंने एक हजार बकरे इकट्ठे कर लिये। जब महाराज आये और उन्हें वाचककी इस भूलका पता चला तो बड़े क्रुद्ध हुए और वाचकको कठोर दण्ड दिया।

एक अनुस्वारकी भूलका कैसा परिणाम निकला।

एक अन्य कथा इस प्रकार मिलती है। पाटलिपुत्रनरेश गन्धर्वदत्तकी पुत्री गन्धर्वदत्ता अत्यन्त रूपवती थी। उसने प्रतिज्ञा की थी कि जो मुझे गन्धर्व विद्यामें पराजित कर देगा, उसे ही वरण करूँगी। अनेक कलाकार आये और पराजित होकर लौट गये। एक दिन विजयार्ध पर्वतके निकटवर्ती पोदनपुरके निवासी पंचाल उपाध्यायने गन्धर्वदत्ताकी प्रतिज्ञा सुनी। वह अपने पाँच सौ शिष्योंको लेकर पाटलिपुत्र पहुँचा और वहाँ राजकन्याको पराजित करके उसके संग विवाह किया।

---

१. आदिपुराण, १६।२५५-८।

२. हरिवंशपुराण, १३।१६।

३. आराधना कथाकोष, कथा ९५। हरिषेण कथाकोष, कथा २५ में पोदनपुरको उत्तरापथमें बताया है, जब कि आराधना कथा कोषमें उसे सुरम्य देशमें बताया है।

इस कथामें पोदनपुरको विजयार्ध पर्वतके निकट बताया है।

एक अन्य कथानक इस प्रकार मिलता है। द्वारकानगरीमें वासुदेव कृष्णकी महारानी गन्धर्वदत्ताका पुत्र गजकुमार था। पोदनपुरनरेश अपराजितको पराजित करनेके लिए श्रीकृष्णने कई बार प्रयत्न किया, किन्तु वह अपराजित ही रहा। तब गजकुमार सेना लेकर अपराजितके नगर तक पहुँचा। दोनों सेनाओंमें भयानक युद्ध हुआ। और राजकुमारने अपराजित को पराजित कर दिया। नारायण श्रीकृष्णने उसका समुचित सम्मान किया।

किन्तु विजय पाकर गजकुमार उच्छृंखल हो गया। वह स्त्रियोंका शीलभंग करने लगा। एक दिन भगवान् नेमिनाथका समवसरण द्वारकानगरीमें आया। भगवान्का उपदेश सुनकर गजकुमारको वैराग्य हो गया। उसने भगवान्के निकट मुनिदीक्षा ले ली। फिर बिहार करते हुए गजकुमार मुनि गिरनार पर्वतपर पहुँचे। वहाँ वे ध्यान लगाकर खड़े हो गये। वहाँ पांसुल नामक व्यक्तिने उनपर घोर उपसर्ग किये। सन्धियोंमें कीलें ठोंक दीं। किन्तु फिर भी मुनिराज ध्यानसे विचलित नहीं हुए। उन्होंने समाधि-मरण द्वारा शरीर त्यागकर स्वर्ग प्राप्त किया।

—आराधना कथाकोष, कथा ५९

एक और घटनाके अनुसार अयोध्यानरेश त्रिदशंजय नरेशके पुत्र जितशत्रुका विवाह पोदनपुरनरेश व्यानन्दकी पुत्री विजयाके साथ हुआ। जिनकी पवित्र कुक्षिसे द्वितीय तीर्थंकर भगवान् अजितनाथका जन्म हुआ।

ऐसा भी उल्लेख है कि भगवान् पार्श्वनाथ अपने पूर्वभवमें पोदनपुरके राजा अरविन्दके पुरोहित विश्वभूतिके पुत्र मरुभूति थे। उनका भाई कमठ था जो दुष्ट प्रकृतिका था। मरुभूतिकी अनुपस्थितिमें उसने मरुभूतिकी स्त्रीके साथ दुराचार किया। ज्ञात होते ही राजाने कमठको कठोर दण्ड दिया और नगरसे निकाल दिया। तब कमठ पोदनपुरसे चलकर भूताचलपर पहुँचा। वहाँ एक तापसाश्रममें कुतप करने लगा।

इस प्रकार अनेक पौराणिक घटनाओंका सम्बन्ध पोदनपुरके साथ रहा है। किन्तु इतने प्रसिद्ध और समृद्ध नगरका विनाश किन कारणोंसे और किस कालमें हो गया अथवा यह प्रकृतिके प्रकोपसे नष्ट हो गया, इस सम्बन्धमें कोई स्पष्ट उल्लेख प्राचीन साहित्यमें अथवा इतिहास ग्रन्थोंमें कहीं भी देखनेमें नहीं आया।

तक्षशिला

तक्षशिला पाकिस्तानमें वर्तमान रावलपिण्डी जिलेमें था। कनिंघमके मतानुसार यह 'कलाका सराय' से एक मील, कटक और रावलपिण्डीके बीचमें और शाहधेरीके निकट था। आजकल यहाँ इस प्राचीन नगरीके खण्डहर पड़े हुए हैं। इन खण्डहरोंमें जो मीरगाँवके नीचे है, वे तक्षशिलाको सबसे पुरानी बस्तीके हैं।

सैण्टमार्टिन इसे हसन अब्दुल, जो शाहधेरीसे आठ मील दूर है, के उत्तर-पश्चिममें आठ मील दूर बताता है।

इस नगरकी स्थापना, जैसा कि पहले बताया जा चुका है, श्री रामचन्द्रके भ्राता भरतने अपने पुत्र तक्षके नामपर की थी। तक्ष यहाँका राजा[1] बनाया गया था।

कथा सरित्सागरके अनुसार तक्षशिला वितस्ता (झेलम) के तटपर अवस्थित थी।

---

१. रामायण, उत्तरकाण्ड, ११४, २०१।

यह कुछ समय एक गान्धार देशकी भी राजधानी रही। उस समय गान्धारमें पूर्वी अफगानिस्तान और उत्तर-पश्चिमी पंजाब था।

इस नगरपर सूर्यवंशी राजाओंका बहुत समय तक अधिकार रहा। किन्तु तक्षके वंशमें कौन-कौन राजा हुए, इसका कोई व्यवस्थित और प्रामाणिक इतिहास नहीं मिलता। महाभारत युद्धने समूचे आर्यावर्त और विशेषकर पंजाबके राज्योंको कमजोर कर दिया था। अतः कहीं-कहीं उत्पात होने लगे थे। गान्धार देशके नागों ने तक्षशिलापर अधिकार कर लिया।

कहा जाता है, जिस दिन महाभारत युद्ध समाप्त हुआ, उसी दिन अभिमन्युकी स्त्री उत्तराके गर्भसे परीक्षितका जन्म हुआ था। पाण्डवोंके पीछे हस्तिनापुरकी गद्दीपर परीक्षित बैठा।

तक्षशिलाके नाग धीरे-धीरे अपनी शक्ति बढ़ा रहे थे। उन्होंने पंजाबपर अधिकार कर लिया। फिर पंजाब लाँघकर हस्तिनापुरपर भी उन्होंने आक्रमण कर दिया। अब कुरु राज्य इतना निःशक्त था कि राजा परीक्षितको नागोंने मार डाला। इस समय तक्षशिलाके नागोंका राजा तक्षक था।

परीक्षितका पुत्र जनमेजय प्रतापी राजा था। उसने अपनी शक्ति खूब बढ़ायी और अपने पिताकी मृत्युका बदला लेनेके लिए नागवंशको निर्मूल करनेका संकल्प कर लिया। वासुकी, कुलज, नीलरक्त, कोणप, पिच्छल, शल, चक्रपाल, हलीमक, कालवेग, प्रकालन, सुशरण, हिरण्यबाहु, कक्षक, कालदन्तक, तक्षकपुत्र शिशुरोम, महाहनु आदि अनेक नाग सरदारोंको सम्राट् जनमेजयने जीता जला दिया था। पीछे नागराज वासुकीके भागिनेय आस्तीकने बड़े अनुनय-विनयसे नागोंकी सन्धि करायी[1]। इन नागोंने अपना प्रभाव-विस्तार खूब किया। मथुरापर नागोंकी सात पीढ़ियोंने राज्य[2] किया। काश्मीरमें भी उनका राज्य था। ईसा पूर्व छठा शताब्दीमें विदिशामें नागराज शेष, पुरंजय भोगी, रामचन्द्र, चन्द्रांशु, नखवन्त, धनधर्षण, नगर और भूतनद प्रसिद्ध नागराजा हुए।

जब सिकन्दरने भारतपर आक्रमण किया, उस समय तक्षशिलाका राजा आम्भि था। उसने सिकन्दरसे बिना लड़े ही उसकी अधीनता स्वीकार कर ली थी। उसकी सहायतासे सिकन्दरकी सेनाने सिन्ध पार की और तक्षशिला पहुँचकर अपनी थकान उतारी।

मौर्य सम्राट् बिन्दुसारके कालमें तक्षशिलाने दो बार विद्रोह किया। एक बार अशोकको और दूसरी बार कुणालको वहाँ विद्रोह दबानेको जाना पड़ा। विद्रोह दबानेके लिए कोई शक्तिका प्रयोग नहीं करना पड़ा, बल्कि बड़े रोचक और नाटकीय ढंगसे स्वयं शान्त हो गया। जब कुमार अशोक तक्षशिलाके निकट पहुँचा तो तक्षशिलाके पौर नगरीसे साढ़े तीन योजन आगे तक सारे रास्तेको सजाकर मंगल घट लिये हुए उसकी सेवामें उपस्थित हुए और कहने लगे—'न हम कुमारके विरुद्ध हैं, न राजा बिन्दुसार के। किन्तु दुष्ट अमात्य हमारा परिभव[3] करते हैं।'

इसके पश्चात् जब अशोक राजगद्दीपर बैठा, तब उसने अपने पुत्र कुणालको तक्षशिलाका उपरिक (गवर्नर) बनाया। कुणाल जन्मसे ही सुरूप और सुकुमार था। उसकी आँखें बड़ी सुन्दर

---

१. महाभारत।

२. वायु और ब्रह्माण्ड पुराण।

३. दिव्यावदान।

थीं। अशोकने वृद्धावस्थामें तिष्यरक्षिता नामक एक युवतीसे विवाह किया था। एक बार एकान्त पाकर तिष्यरक्षिता कुणालकी आँखोंको देखकर उसपर मुग्ध हो गयी। विमाताके इस घृणित प्रस्तावको कुणालने अस्वीकृत कर दिया। इससे तिष्यरक्षिता उसकी शत्रु बन गयी। अवसर पाकर एक दिन उसने तक्षशिलाके पौरजनोंको एक कपट-लेख भेजकर अशोकके नामसे यह आदेश भिजवाया कि कुमारको अन्धा कर दिया जाये। इस आदेशको पाकर पौरजन भयभीत हो गये। तब कुणालने इस आदेशको राजाका और पिताका आदेश मानकर उनकी आज्ञाको पालना अपना कर्तव्य समझा और खुशीसे आँखें निकलवा दीं। जब कुणाल अपनी स्त्री कांचनमालाके साथ पाटलिपुत्र आया और अशोकको इस भयानक षड्यन्त्रका पता चला तो उसने तिष्यरक्षिताको जिन्दा जलवा दिया तथा जो लोग इस षड्यन्त्रमें शामिल थे, उन्हें मरवा दिया या निर्वासित कर दिया। साथ ही, तक्षशिलामें जिस स्थानपर कुणालने अपनी आँखें निकलवायी थीं, वहाँ स्तूप खड़ा करवा दिया। यह स्तूप चीनी यात्री ह्वान च्वांगके समय तक वहाँ मौजूद था। इस स्तूपके खण्डहर सिरकायके डेढ़ मील पूर्वमें वरपल नामक गाँवमें पड़े हुए हैं। ये खण्डहर रावलपिण्डीसे उत्तर-पश्चिममें २६ मील पर हैं और कलाका सराय रेलवे स्टेशनसे २ मील हैं। इस नगरकी भूमिपर अब हाहधेरी, सिरकाय, सिरमुख, कच्छाकोट गाँव बस गये हैं।

ईसा पूर्व प्रथम शताब्दीमें वैक्ट्रियासे निकाले जानेपर कुषाणोंने इसे अपनी राजधानी बनाया था। सिकन्दरने इसको ईसा पूर्व ३२६ में जीता था। उसके चार वर्ष बाद मौर्य सम्राट् चन्द्रगुप्तने इसे अपने राज्यमें मिला लिया था। ईसा पूर्व १९० में ड्रेमिट्रियसने इसे जीत लिया और यह ग्रीक राजाओंकी भारतीय राजधानी बन गया। उसके बाद यह नगर शक, पल्लव और कुषाण राजाओंके आधिपत्यमें रहा।

विख्यात विश्वविद्यालय

यहाँ ईसाकी प्रथम शताब्दी तक पश्चिमके बलभी, पूर्वके नालन्दा, दक्षिणमें कांचीपुरम् और मध्य-भारतके धन कटकके समान उत्तरापथका प्रसिद्ध विश्वविद्यालय था। पाणिनि जैसा वैयाकरण, विख्यात वैद्य जीवक यहीं पढ़े थे। सम्भवतः चाणक्यने भी यहीं शिक्षा प्राप्त की थी। इस विश्वविद्यालयमें शस्त्र और शास्त्र दोनों प्रकारकी शिक्षाकी व्यवस्था थी। दूर-दूरसे लोग यहाँ पढ़ने आते थे। सिरकायसे चार मीलपर विशाल भवनोंके भग्नावशेष पड़े हुए हैं। यहींपर यह विश्वविद्यालय था। इसकी ख्याति सुदूर देशों तक थी।

जैनधर्मका केन्द्र

ईसा पूर्व ३२६ में सिकन्दर अटकके निकट सिन्ध नदीको पार करके तक्षशिलामें आकर ठहरा। उसने दिगम्बर जैन मुनियोंके उच्च-चरित्र, उन्नत ज्ञान और कठोर साधनाके सम्बन्धमें अनेक लोगोंसे प्रशंसा सुनी थी। इससे उसके मनमें दिगम्बर जैन मुनियोंके दर्शन करनेकी प्रबल आकांक्षा थी। जब उसे यह ज्ञात हुआ कि नगरके बाहर अनेक नग्न जैनमुनि एकान्तमें तपस्या कर रहे हैं, तो उसने अपने एक अमात्य ओनेसीक्रेटसको आदेश दिया—तुम जाओ और एक जिम्नोसाफिस्ट (दिगम्बर जैनमुनि) को आदर सहित लिवा लाओ।

ओनेसीक्रेटस वहाँ गया, जहाँ जंगलमें जैनमुनि तपस्या कर रहे थे। वह जैन संघके आचार्यके पास पहुँचा और कहा—आचार्य! आपको बधाई है। परमेश्वरका पुत्र सम्राट् सिकन्दर, जो सब मनुष्योंका राजा है, आपको अपने पास बुलाता है। यदि आप उसका निमन्त्रण स्वीकार

करके उसके पास चलेंगे तो वह आपको बहुत पारितोषिक देगा। यदि आप निमन्त्रण अस्वीकार करके उसके पास नहीं जायेंगे तो सिर काट लेगा।

श्रमण साधु संघके आचार्य दौलामस (सम्भवतः धृतिसेन) सूखी घासपर लेटे हुए थे। उन्होंने लेटे हुए ही सिकन्दरके अमात्यकी बात सुनी और मुसकराते हुए बोले—सबसे श्रेष्ठ राजा बलात् किसीकी हानि नहीं करता, न वह प्रकाश, जीवन, जल, मानव शरीर और आत्माका बनानेवाला है, न इनका संहारक है। सिकन्दर देवता नहीं है क्योंकि उसकी एक दिन मृत्यु अवश्य होगी। वह जो पारितोषिक देना चाहता है, वे सभी पदार्थ मेरे लिए निरर्थक हैं। मैं तो घासपर सोता हूँ। ऐसी कोई वस्तु अपने पास नहीं रखता, जिसकी रक्षाकी मुझे चिन्ता करनी पड़े, जिसके कारण अपनी शान्तिकी नींद भंग करनी पड़े। यदि मेरे पास सुवर्ण या अन्य कोई सम्पत्ति होती तो मैं ऐसी निश्चिन्त नींद न ले पाता। पृथ्वी मुझे सभी आवश्यक पदार्थ प्रदान करती है, जैसे बच्चेको उसकी माता सुख देती है। मैं जहाँ कहीं जाता हूँ, वहाँ मुझे अपनी उदर पूर्तिके लिए कमी नहीं, आवश्यकतानुसार सब कुछ (भोजन) मुझे मिल ही जाता है। कभी नहीं भी मिलता तो मैं उसकी कुछ चिन्ता नहीं करता। यदि सिकन्दर मेरा सिर काट डालेगा तो वह मेरी आत्मा को तो नष्ट नहीं कर सकता। सिकन्दर अपनी धमकीसे उन लोगोंको भयभीत करे जिन्हें सुवर्ण, धन आदिकी इच्छा हो या जो मृत्युसे डरते हों। सिकन्दरके ये दोनों अस्त्र हमारे लिए शक्तिहीन हैं, व्यर्थ हैं। क्योंकि न हम स्वर्ण चाहते हैं, न मृत्युसे डरते हैं। इसलिए जाओ, सिकन्दरसे कह दो कि दौलामसको तुम्हारी किसी वस्तुकी आवश्यकता नहीं है। अतः वह तुम्हारे पास नहीं आवेगा। यदि सिकन्दर मुझसे कोई वस्तु चाहता है तो वह हमारे समान बन जावे।"

आनेसीक्रेटसने सारी बातें सम्राट्से कहीं। सिकन्दरने सोचा—जो सिकन्दरसे भी नहीं डरता वह महान् है। उसके मनमें आचार्य दौलामसके दर्शनोंकी उत्सुकता जागृत हुई। उसने जाकर आचार्य महाराजके दर्शन किये। जैन मुनियोंके आचार-विचार, ज्ञान और तपस्यासे वह बड़ा प्रभावित हुआ। उसने अपने देशमें ऐसे किसी साधुको ले जाकर ज्ञान-प्रचार करनेका निश्चय किया। वह कल्याण मुनिसे मिला और उनसे यूनान चलनेकी प्रार्थना की। मुनिने उसकी प्रार्थना स्वीकार कर ली। यद्यपि आचार्य किसी मुनिके यूनान जानेकी बातसे सहमत नहीं थे।

जब सिकन्दर तक्षशिलासे अपनी सेनाके साथ यूनानको लौटा, तब कल्याण मुनि भी उसके साथ-साथ बिहार कर रहे थे। मुनि कल्याणने एक दिन मार्गमें ही सिकन्दरकी मृत्युकी भविष्यवाणी की। मुनिके वचनोंके अनुसार ही बेबीलोन पहुँचनेपर ई. पू. ३२३ में अपराह्ण बेलामें सिकन्दरकी मृत्यु हो गयी। मृत्युसे पहले सिकन्दरने मुनि महाराजके दर्शन किये और उनसे उपदेश सुना। सम्राट्की इच्छानुसार यूनानी कल्याण मुनिको आदरके साथ यूनान ले गये। कुछ वर्षों तक उन्होंने यूनानवासियोंको उपदेश देकर धर्म प्रचार किया। अन्तमें उन्होंने समाधिमरण किया। उनका शव राजकीय सम्मानके साथ चितापर रखकर जलाया गया। कहते हैं, उनके पाषाण चरण एथेन्समें किसी प्रसिद्ध स्थानपर बने हुए हैं।

तक्षशिलामें उस समय दिगम्बर मुनि रहते थे, इस बातकी पुष्टि अनेक इतिहास-ग्रन्थोंसे होती है।

"एलेक्जैण्डर (सिकन्दर) ने उन दिगम्बर मुनियोंके पास ओनेसीक्रेटसको भेजा। उसका

---

१. Mc. Crindle, Ancient India, p. 70.

कहना है कि उसने तक्षशिलासे २० स्टैडीज दूर १५ व्यक्तियोंको विभिन्न मुद्राओंमें खड़े हुए, बैठे हुए या लेटे हुए देखा, जो बिलकुल नग्न थे। वे शाम तक इन आसनोंसे नहीं हिलते थे। शामके समय वे शहरमें आ जाते थे। सूर्यका ताप सहना सबसे कठिन काम था।"

—प्लूचार्च, ऐंशियेण्ट इण्डिया, पृ. ७१

"दिगम्बर जैन धर्म प्राचीन कालसे अबतक पाया जाता है। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि जिम्नोसोफिस्ट, जिनको यूनानियोंने पश्चिमी भारतमें देखा था, वे जैन थे, वे ब्राह्मण या बौद्ध नहीं थे। सिकन्दरने दिगम्बर मुनियोंका समुदाय तक्षशिलामें देखा था। उनमें-से कल्याण नामक मुनि फारस तक उसके साथ गये। इस युगमें इस धर्मका उपदेश चौबीस तीर्थंकरोंने दिया है और महावीर उनमें अन्तिम तीर्थंकर हैं।"

—ई. आई. थामस कृत 'दी लाइफ ऑफ बुद्ध'

इसी पुस्तकमें एक स्थानपर लिखा है कि सिकन्दरके आदमियोंने जैन-बौद्ध धर्मको वैक्ट्रिया, औक्सियाना तथा अफगानिस्तान तथा भारतके बीचकी घाटियोंमें उन्नत रूपसे फैला हुआ पाया था।

मेजर जनरल जे. एस. आर. फर्लांगने भी अपनी पुस्तक 'तुलनात्मक धर्म-विज्ञान (Science of Comparative Religions) में तक्षशिलामें दिगम्बर जैनमुनियोंके पाये जाने और सिकन्दरके साथ कल्याण नामक दिगम्बर जैन मुनिके जाने की बातका समर्थन किया है।

इन प्रमाणोंसे यह सिद्ध होता है कि सिकन्दरके आक्रमणके समय तक्षशिला जैन धर्मका केन्द्र था और यहाँ अनेक दिगम्बर जैन मुनि रहते थे।

परिशिष्ट–३

उत्तरप्रदेशके दिगम्बर जैन तीर्थों-
का संक्षिप्त परिचय और यात्रा-मार्ग

दिल्ली

यह बहुत प्राचीन शहर है। मुगलकालसे यह भारतकी राजधानी रही है। आजकल भी यह भारतकी राजधानी है। केन्द्रीय सरकारका सचिवालय, लोकसभा, राज्यसभा, सुप्रीमकोर्ट, सेनाका मुख्यालय यहींपर है। भारतकी स्वतन्त्रताके बाद दिल्लीका जितना विकास हुआ है, उतना देशके किसी नगरका नहीं हुआ। अब तो यह व्यापारिक केन्द्र भी हो गयी है। यहाँ जैनोंकी संख्या लगभग एक लाख होगी। प्रायः सभी मुहल्लों और कॉलोनियोंमें दिगम्बर जैन मन्दिर हैं। मुख्य मन्दिर इस प्रकार हैं : लाल मन्दिर (लाल किलेके सामने चाँदनी चौकमें, नया मन्दिर धर्मपुरा), दिगम्बर जैन मन्दिर सेठका कूँचा, पंचायती मन्दिर, मेरु मन्दिर और मसजिद खजूर, वैदवाड़ा, पहाड़ी धीरज, दिल्ली गेट, दरियागंज, जयसिंगपुराके मन्दिर। यहाँ अखिल भारतीय दिगम्बर जैन परिषद्, परिषद् परीक्षा बोर्ड, दिगम्बर जैन भगवान् महावीर २५००वाँ निर्वाण महोत्सव समितिके कार्यालय हैं। भारतवर्षीय जैन बाल आश्रम, और वीर सेवा मन्दिरके भवन यहींपर हैं। ठहरनेके लिए कूँचा बुलाकी बेगममें २, धर्मपुरा, वेदवाड़ामें १-१, पहाड़ी धीरजमें १, दरियागंजमें मक्खनलालजी जैनकी धर्मशाला है। दर्शनीय स्थानोंमें पार्लियामेण्ट हाउस, राष्ट्रपति भवन, कुतुबमीनार, चिड़ियाघर, अजायबघर, लाल किला, पुराना किला। हुमायूँका मकबरा, गान्धी समाधि आदि हैं। यहाँ देशके सभी भागोंसे रेलें आती हैं। शहरमें घूमनेके लिए डी. टी. सी. की बसें, टैक्सी, फोर सीटर, टू सीटर स्कूटर, ताँगे, रिक्शे आदि की सुविधा है।

बड़ागाँव

दिल्लीसे बस द्वारा दिल्ली-सहारनपुर सड़कपर २२ कि. मी. खेखड़ा जाना चाहिए। बस स्टैण्ड पर ताँगे और रिक्शे मिलते हैं। बस स्टैण्डसे मेरठके बस स्टैण्ट पर जाकर मेरठवाली बससे अथवा रिक्शे द्वारा बड़ागाँव जा सकते हैं। खेखड़ासे बड़ागाँव ५ कि. मी. है जिसमें २ कि. मी. कच्चा मार्ग है। यह अतिशय क्षेत्र है। यहाँ भगवान् पार्श्वनाथकी चमत्कारी प्रतिमा है। लोग यहाँ मनौती मनाने आते हैं। यहाँ जैन धर्मशाला है। किन्तु खेखड़ामें ठहरनेमें अधिक सुविधा रहती है। खेखड़ा बड़ी मण्डी है।

हस्तिनापुर

खेखड़ा से हस्तिनापुर लगभग ९० कि. मी. है। दिल्लीसे मेरठ ६० कि. मी. और मेरठसे हस्तिनापुर ३७ कि. मी. है। हस्तिनापुरमें भगवान् ऋषभदेवको राजकुमार श्रेयान्सने सर्वप्रथम आहार दिया था। भगवान् शान्तिनाथ, कुन्थुनाथ और अरनाथके गर्भ, जन्म, तप और ज्ञान-कल्याणक यहींपर हुए थे। ये तीर्थंकर भी थे और चक्रवर्ती भी थे। बलि आदि मन्त्रियोंने अकम्पनाचार्य आदि ७०० मुनियोंपर जब घोर उपसर्ग किये, तब मुनि विष्णुकुमारने यहींपर उन मुनियोंकी रक्षा की थी। कौरव-पाण्डव यहींके रहनेवाले थे।

यहाँ राजा हरसुखरायका बनवाया हुआ जैनमन्दिर है। उसके सामने ३१ फुट ऊँचा

मानस्तम्भ है। मन्दिरमें भगवान् शान्तिनाथकी मूलनायक प्रतिमा है। इसके पीछे एक मन्दिर और है। उसमें लगभग ६ फुटकी भगवान् शान्तिनाथकी खड्गासन प्रतिमा दर्शनीय है।

क्षेत्रसे ३ मील दूरपर भगवान् शान्तिनाथ, एक कम्पाउण्डमें भगवान् कुन्थुनाथ और अरहनाथ तथा उससे आगे भगवान् मल्लिनाथकी टोंकें हैं। क्षेत्रसे टोंकों तक कच्चा मार्ग है—ताँगे द्वारा जा सकते हैं।

क्षेत्रपर ठहरनेके लिए कई धर्मशालाएँ बनी हुई हैं। क्षेत्रपर दिगम्बर जैन गुरुकुल, और मुमुक्षु आश्रम स्थित हैं। क्षेत्रका वार्षिक मेला कार्तिकी अष्टाह्निकामें होता है। फाल्गुनी अष्टाह्निका और ज्येष्ठ कृष्णा १४ को छोटे मेले होते हैं।

श्रीनगर

हस्तिनापुरसे मेरठ वापस आकर मुरादाबाद जाना चाहिए। वहाँसे मुरादाबाद-हरिद्वार लाइनके नजीबाबाद स्टेशनपर उतरकर बस द्वारा कोटद्वार होते हुए श्रीनगर १६० कि. मी. है। ऋषिकेशसे श्रीनगर बस मार्गसे १०७ कि. मी. पड़ता है। जैन मन्दिर अलकनन्दा नदीके तटपर अवस्थित है। ठहरनेके लिए जैन धर्मशाला बनी हुई है। यहाँ भगवान् पार्श्वनाथकी एक प्रतिमा है, जिसके चमत्कारोंके बारेमें अनेक किंवदन्तियाँ प्रचलित हैं।

कैलास और बदरीनाथ

श्रीनगरसे बस द्वारा रुद्र प्रयाग होते हुए केदारनाथ, बदरीनाथ जा सकते हैं। पक्की सड़क है।

बदरीनाथकी मूर्ति वस्तुतः भगवान् ऋषभदेव की मूर्ति है। यह दो भुजावाली पद्मासन प्रतिमा है। दो भुजाएँ नकली लगायी हुई हैं। न्हवनके पश्चात् मूर्तिको अलंकृत किया जाता है। तब मन्दिरके पट खोले जाते हैं और तब 'निर्वाण-दर्शन' कराया जाता है। बोली लेनेपर कुछ लोगोंको न्हवनके समय दिगम्बर मूर्तिके दर्शनकी अनुमति प्राप्त हो जाती है।

यहाँ भगवान् ऋषभदेवने तपस्या की थी। नाभिराज और मरुदेवीने यहींपर तपस्या की थी। भगीरथने यहीं गंगाके किनारे तप किया था। उन्हींके नामपर गंगाकी एक धाराका नाम भागीरथी हो गया है।

बदरीनाथसे कैलास-यात्राका मार्ग आजकल बन्द है। बदरीनाथसे जोशीमठ होते हुए नीती घाटी ९४ कि. मी. है। यह भारतीय सीमाका अन्तिम गाँव है। इससे आगे होती गाँव ११ कि. मी. है। यहाँ चीनी सेनाकी चौकी है। इससे आगे कैलास तकका सारा प्रदेश चीनके आधिपत्य-में है।

अहिच्छत्र

बदरीनाथसे बस द्वारा ऋषिकेश लौटकर वहाँसे रेल द्वारा मुरादाबाद, मुरादाबादसे चन्दौसी और चन्दौसीसे आँवला स्टेशन जाना चाहिए। आँवला स्टेशनसे अहिच्छत्र १८ कि. मी. है। स्टेशनसे क्षेत्र तक जानेके लिए ताँगे मिलते हैं। इस क्षेत्रपर भगवान् पार्श्वनाथके ऊपर संवरदेवने उपसर्ग किया था। नागकुमार जातिके धरणेन्द्र और पद्मावतीने भगवान्के ऊपर सर्पफण फैला दिया और भगवान्को ऊपर उठा लिया। तभी भगवान्को केवलज्ञान हो गया। इन्द्र और देवोंने आकर भगवान्के केवलज्ञानकी पूजा की और समवसरणकी रचना की। भगवान्ने

वहींपर अपना प्रथम उपदेश दिया। अहिच्छत्रमें भगवान् पार्श्वनाथकी मूलनायक प्रतिमा है, जिसे 'तिखालवाले बाबा' कहा जाता है। उनके चमत्कारोंकी अनेक किंवदन्तियाँ प्रचलित हैं। अहिच्छत्रसे मिले हुए रामनगरके मन्दिरमें भगवान् पार्श्वनाथकी भव्य प्रतिमा है। कहा जाता है कि यहींपर भगवान्के फणपर पात्रकेशरी नामक ब्राह्मण विद्वान्को अपनी शंकाका उत्तर लिखा हुआ मिला था, जिससे उन्होंने जैनधर्म स्वीकार कर लिया और वे प्रसिद्ध आचार्य पात्रकेशरीके रूपमें विख्यात हुए।

चौरासी मथुरा

आँवला स्टेशनसे अलीगढ़-हाथरस होते हुए मथुरा आना चाहिए। मथुरा जंकशनसे ५ कि. मी. चौरासी सिद्धक्षेत्र है। यहाँसे अन्तिम केवली जम्बूस्वामीको निर्वाण प्राप्त हुआ था। विद्युच्चर आदि ५०० मुनियोंपर यहींपर भयानक उपसर्ग हुआ था। मनु आदि सप्तर्षियोंके प्रभावसे नगरमें फैला हुआ मरी रोग शान्त हुआ था। यहाँ कंकाली टीले तथा अन्य स्थानोंसे अनेक जैन मूर्तियाँ, आयागपट्ट आदि निकले थे। उनमें-से कुछ सामग्री यहाँके अजायबघरमें सुरक्षित है। यह सामग्री दर्शनीय है। क्षेत्रके अतिरिक्त घियामण्डी, घाटी, जयसिंहपुरामें भी मन्दिर हैं। सेठजीकी हवेलीमें एक चैत्यालय है। एक मन्दिर वृन्दावनमें है। क्षेत्रपर धर्मशाला बनी हुई है। घियामण्डीमें भी एक जैनधर्मशाला है।

आगरा

मथुरासे रेल या बस द्वारा आगरा आना चाहिए। ठहरनेके लिए मोतीकटरा दिगम्बर जैन बड़ा मन्दिरकी धर्मशाला और कचौड़ा बाजार बेलनगंजकी जैन धर्मशाला अधिक सुविधाजनक हैं। आगरामें ३६ दिगम्बर जैन मन्दिर हैं। उनमें मोतीकटरा, बेलनगंज, धूलियागंज, राजामण्डी, नाईकी मण्डी और छीपीटोलाके मन्दिर बड़े हैं। रोशन मुहल्लेमें शीतलनाथजीका मन्दिर है। इस मन्दिरपर श्वेताम्बर समाजका अधिकार है। केवल भगवान् शीतलनाथकी मूर्ति ही दिगम्बर है, शेष सब मूर्तियाँ श्वेताम्बर हैं। शीतलनाथ स्वामीका अभिषेक प्रातः छह बजे होता है। उस समय मूर्ति अपने असली रूपमें होती है। यह मूर्ति अत्यन्त चित्ताकर्षक और अतिशयसम्पन्न है। ताजगंजके मन्दिरमें चिन्तामणि पार्श्वनाथकी वह मूर्ति विराजमान है, जिसकी पूजा कविवर बनारसीदास आदि करते थे। यहाँ ताजमहल, लाल किला, सिकन्दरा दर्शनीय है। फतहपुर सीकरी भी दर्शनीय है जो आगरासे ११ कि. मी. है।

शौरीपुर

आगरासे बस द्वारा बटेश्वर जाना चाहिए। आगरासे बटेश्वर ७० कि. मी. है। यहाँ जैन मन्दिर और धर्मशाला है। इस मन्दिरकी दो मंजिलें जमुनाके अन्दर हैं। इसमें भगवान् अजितनाथकी मूर्ति अत्यन्त भव्य है। बटेश्वरसे शौरीपुर लगभग ४ कि. मी. है। मार्ग कच्चा है। जीप, कार आ सकती है। यहाँपर तेईसवें तीर्थंकर भगवान् नेमिनाथके गर्भ और जन्म-कल्याणक मनाये गये थे। सुप्रतिष्ठ मुनिको यहाँ केवलज्ञान हुआ था। मुनि धन्यको यहीं मोक्ष प्राप्त हुआ। मुनि अलसत्कुमार और यम मुनिको भी यहाँसे निर्वाण हुआ था।

फीरोजाबाद

बटेश्वरसे बस द्वारा फीरोजाबाद जाना चाहिए। यहाँ सेठ छदामीलालजी द्वारा निर्मित

मन्दिर दर्शनीय है। यहाँ धर्मशाला भी है। ठहरने आदिकी अच्छी सुविधा है। शहरमें चन्दाप्रभु मन्दिरमें भगवान् चन्द्रप्रभकी स्फटिक प्रतिमा अत्यन्त सुन्दर है। स्फटिककी इतनी बड़ी और सुन्दर मूर्ति सम्भवतः कहीं नहीं है। यह शहर चूड़ियोंके व्यवसायके लिए सारे देशमें प्रसिद्ध है।

चन्दवार

फीरोजाबादसे चन्दवार ६ कि. मी. है। मार्ग कच्चा है। केवल जीप द्वारा जाना ही सुविधाजनक है और वह भी किसी परिचितको साथ ले जाकर। यहाँ केवल पाँच प्रतिमाएँ हैं, जो लगभग एक हजार वर्ष प्राचीन हैं।

मरसलगंज

चन्दवारसे वापस फीरोजाबाद आकर मरसलगंज जाना चाहिए। फीरोजाबादसे क्षेत्र २२ कि. मी. है। फरिहा-कोटला-फीरोजाबाद, टूंडला-एटा रोड अथवा फरिहा-मैनपुरी रोडकी किसी बससे फरिहा उतरना चाहिए। फरिहासे क्षेत्र ६ फर्लांग है। यह अतिशय क्षेत्र है। यहाँ प्रति तीसरे वर्ष मेला भरता है।

कम्पिला

फीरोजाबादसे बस द्वारा फर्रुखाबाद अथवा रेल द्वारा कायमगंज जाना चाहिए। फीरोजाबादसे कायमगंज १५७ कि. मी. है। कायमगंजसे कम्पिला ६ कि मी. है। पक्की सड़क है। बस और इक्के बराबर मिलते हैं। यहाँ भगवान् विमलनाथके गर्भ, जन्म, तप और ज्ञान कल्याणक हुए थे। राजा द्रुपदकी पुत्री द्रौपदीका स्वयंवर यहीं हुआ था। यहाँका वार्षिक मेला चैत्र कृष्णा अमावस्यासे चैत्र शुक्ला तृतीया तक होता है।

इलाहाबाद

कायमगंजसे रेल द्वारा कानपुर जाना चाहिए जो १७० कि. मी. है। तथा कानपुरसे इलाहाबाद रेल मार्ग द्वारा १९२ कि. मी. है। इलाहाबादका प्राचीन नाम पुरिमताल था। भगवान् ऋषभदेवने यहाँ एक वटवृक्षके नीचे बैठकर तपस्या की और वहीं केवलज्ञान प्राप्त हो गया। जिससे उस वटवृक्षको अक्षयवट कहने लगे तथा पुरिमतालका नाम प्रयाग हो गया। वह अक्षयवट (वंश परम्परासे) किलेके भीतर अबतक मौजूद है। भगवान्का प्रथम समवसरण भी यहीं लगा था और उनका प्रथम उपदेश यहीं हुआ था। यहाँके संग्रहालयमें कई जैन मूर्तियाँ हैं जो इतिहास और कलाकी दृष्टिसे महत्त्वपूर्ण हैं। यहाँ संगम, नेहरू भवन आदि दर्शनीय हैं।

कौशाम्बी

इलाहाबादसे बस द्वारा कौशाम्बी ६० कि. मी. दूर है। यहाँपर भगवान् पद्मप्रभुके गर्भ और जन्म कल्याणक हुए थे। चन्दनबालाने यहीं भगवान् महावीरको आहार दिया था। यहाँ एक मन्दिर और धर्मशाला है। बस कौशाम्बीके रेस्ट हाउस तक आती है। यहाँसे लगभग तीन कि. मी. कच्चे मार्गसे क्षेत्र तक पहुँच सकते हैं।

पभोसा

यह क्षेत्र यमुनाके तटपर कौशाम्बीसे प्राय: १० कि. मी. दूर एक छोटी-सी पहाड़ीपर है। कौशाम्बीसे यमुनाके रास्ते नाव द्वारा लगभग १० कि. मी. है। अकिलसरायसे पच्छिम सरीरा

तक बसें भी चलती हैं। पच्छिम सरीरासे यह क्षेत्र लगभग पाँच कि. मी. है, मार्ग कच्चा है। यहीं-पर भगवान् पद्मप्रभुने दीक्षा ली थी और यहीं उन्हें केवलज्ञान हुआ था। नारायण श्रीकृष्णका निधन जरत्कुमारके बाणसे यहींपर हुआ था। यहाँ पद्मप्रभु भगवान्की मूर्तिमें अद्भुत चमत्कार है। वह मूर्ति बादामी वर्णकी है। किन्तु जैसे-जैसे सूर्य मध्याह्नकी ओर चढ़ता है, मूर्तिका रंग रक्तवर्ण होता जाता है फिर घटते घटते शामको वह अपने असली रूपमें आ जाती है। दूसरा चमत्कार यह है कि यहाँ केशरकी वर्षा होती है। विशेषतः कार्तिक सुदी १३ और चैत्र सुदी १५ को खूब केशर बरसती है। यहाँकी मूर्तियाँ बहुत प्राचीन हैं।

लखनऊ

पभोसासे वापस इलाहाबाद आकर वहाँसे लखनऊ जाना चाहिए। इलाहाबादसे लखनऊ सीधी लाइन है। यदि लखनऊ न जाना हो तो इलाहाबादसे बस और ट्रेनें सीधी अयोध्या जाती हैं। इलाहाबादसे अयोध्या १६० कि. मी. है।

लखनऊमें चारबाग स्टेशनके पास ही मुन्नेलाल कागजीकी धर्मशाला है। धर्मशालामें मन्दिर भी है। इसके अतिरिक्त चौक, यहियागंज, डालीगंजके मन्दिर भी दर्शनीय हैं। दर्शनीय स्थानोंमें म्यूजियम, (यहाँ बहुत जैन सामग्री रखी हुई है), चिड़ियाघर, छोटा-बड़ा इमामबाड़ा आदि दर्शनीय हैं।

अयोध्या

लखनऊसे अयोध्या १३५ कि. मी. है। रायगंज मुहल्लेमें बड़ी मूर्ति भगवान् ऋषभदेवकी विराजमान है। मन्दिरके आगे उद्यान और धर्मशाला है। कटरा मुहल्लेमें पुराना मन्दिर है और धर्मशाला है। स्टेशनसे दोनों जगहके लिए रिक्शे बराबर मिलते हैं। अयोध्याकी रचना देवोंने की थी। यहाँ ऋषभदेव, अजितनाथ, अभिनन्दननाथ, सुमतिनाथ और अनन्तनाथ इन पाँच तीर्थंकरोंके गर्भ, जन्म, तप और केवलज्ञान कल्याणक हुए थे। केवल ऋषभदेवका ज्ञानकल्याणक प्रयागमें हुआ था। इन पाँचों तीर्थंकरोंकी टोंकें बनी हुई हैं। कटरा मुहल्लामें सुमतिनाथकी, सरयू नदीके किनारे अनन्तनाथकी, कटरा स्कूलके पास अभिनन्दननाथकी, इसके पास ही मुनि शीतलनाथकी, बक्सरिया टोलामें ऋषभदेवकी, और बेगमपुरामें अजितनाथकी टोंकें हैं। चक्रवर्ती भरत, जिनके नामपर इस देशका नाम भारतवर्ष पड़ा, भगवान् रामचन्द्र और सीताकी क्रीड़ास्थली यही नगरी थी। हिन्दू, बौद्ध, सिख और मुसलमान सभी इसको अपना तीर्थ मानते हैं। यहाँ चैत्र-कृष्णा ७ से ९ तक मेला होता है।

रतनपुरी

अयोध्यासे रतनपुरी २४ कि. मी. है। बसें मिलती हैं। यह फैजाबाद-बाराबंकी रोडके किनारेपर सड़कसे २ फर्लांगपर रौनाही गाँव है। गाँवके अन्दर दिगम्बर समाजके दो मन्दिर हैं। यहाँ भगवान् धर्मनाथके गर्भ, जन्म, दीक्षा और ज्ञानकल्याणक हुए थे तथा उन्होंने यहींपर धर्मचक्र प्रवर्तन किया था। यहाँ छोटी-सी धर्मशाला भी है।

त्रिलोकपुर

अयोध्यासे बाराबंकी सड़क मार्ग द्वारा १६७ कि० मी० है। बस और रेल जाती हैं। बाराबंकीसे बस या टैम्पू द्वारा बिन्दौरा नहर १९. कि. मी. तक पक्की सड़क है। वहाँसे बायीं

ओर नहरके किनारे कच्चे मार्गसे ६ कि. मी. दूर त्रिलोकपुर गाँव है। विन्दौरा स्टेशनसे ५ कि. मी. पड़ता है। साइकिल द्वारा या पैदल जा सकते हैं। यहाँ दो दिगम्बर जैन मन्दिर हैं। नेमिनाथ भगवान्का मन्दिर अतिशय क्षेत्र कहलाता है। कहते हैं वहाँ जाकर लोगोंकी मनोकामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं।

श्रावस्ती

त्रिलोकपुरसे बाराबंकी आकर वहाँसे रेल या बस द्वारा गौण्डा-बलरामपुर होकर श्रावस्ती आना चाहिए। यहाँ भगवान् सम्भवनाथके गर्भ, जन्म, तप और ज्ञानकल्याणक हुए थे।

यहाँसे मुनि मृगध्वज, मुनि नागदत्त मुक्त हुए थे। जैननरेश सुदृढ़ध्वज अथवा सुहलदेवने महमूद गजनवीके भानजे और सिपहसालार सैयद सालार मसऊद गाजीको यहीं परास्त किया था। अलाउद्दीन खिलजीने यहाँके मन्दिरों, मूर्तियों, विहारों और स्तूपोंको तोड़कर खण्डहर बना दिया। भगवान् सम्भवनाथका प्राचीन मन्दिर जीर्णशीर्ण दशामें वहाँ अब भी खड़ा है। आजकल यह सोमनाथका मन्दिर कहलाता है। कहा जाता है कि इसके निकट अठारह जैन मन्दिर थे, जो अब खण्डहरोंके रूपमें पड़े हुए हैं।

क्षेत्रपर नवीन मन्दिर और धर्मशाला बन गये हैं।

वाराणसी

यहाँ अयोध्यासे भी जा सकते हैं और चाहें तो कानपुरसे वाराणसी, लखनऊ, इलाहाबाद, अयोध्या और श्रावस्ती जा सकते हैं तथा श्रावस्तीसे सीधे गोरखपुर होते हुए काकन्दी, ककुभग्राम जा सकते हैं।

वाराणसीमें दो तीर्थंकरों–सुपार्श्वनाथ और पार्श्वनाथके गर्भ, जन्म, तप और ज्ञानकल्याणक हुए थे। भेलूपुरामें पार्श्वनाथ तथा भदैनीघाटमें सुपार्श्वनाथका जन्म हुआ था। भेलूपुरामें एक मन्दिर और धर्मशाला दिगम्बर और श्वेताम्बर समाजकी सम्मिलित हैं। एक ही वेदीपर दिगम्बर प्रतिमाएँ भी हैं और श्वेताम्बर प्रतिमाएँ भी हैं। इसी प्रकार धर्मशालामें भी दोनों ठहर सकते हैं। दोनों ही समाजोंके कार्यालय यहाँपर हैं। इस मन्दिरके अलावा यहाँ दो मन्दिर दिगम्बर समाजके हैं। सम्मिलित मन्दिरके बगलमें जो दिगम्बर मन्दिर है, उसमें कई प्रतिमाएँ लगभग एक हजार वर्ष प्राचीन हैं। बाहर जो दिगम्बर मन्दिर है, उसमें वेदीपर सोनेका काम, दीवालोंके चित्र तथा पद्मावती देवीकी मूर्ति विशेष उल्लेखनीय है।

भदैनीघाटमें स्याद्वाद महाविद्यालयका भवन है। उसके ऊपर सुपार्श्वनाथ भगवान्का मन्दिर है। मन्दिरके नीचे गंगा बह रही है। इसके पास ही छेदीलालका मन्दिर है। कुछ लोग इसे सुपार्श्वनाथकी जन्मभूमि मानते हैं।

मैदागिनमें दिगम्बर जैन धर्मशाला है। यहाँ ठहरनेकी अच्छी सुविधा है। धर्मशालाके बीचमें मन्दिर भी बना हुआ है।

सिंहपुरी

वाराणसीसे सड़क मार्ग द्वारा ६ कि. मी. सारनाथ है। वाराणसीसे मोटर, टैक्सी आदि बराबर मिलती हैं। यहाँ भगवान् श्रेयान्सनाथके गर्भ, जन्म, तप और ज्ञानकल्याणक हुए थे। मन्दिरके बाहर ही एक स्तूप बना हुआ है। कुछ लोग इसे सम्राट् अशोकका बनाया हुआ मानते हैं और कुछ सम्राट् सम्प्रति द्वारा निर्मित मानते हैं।

चन्द्रपुरी

सिंहपुरीसे चन्द्रपुरी १७ कि. मी. है। इस गाँवका नाम चन्द्रावती है जो वाराणसी-गोरखपुर रोडपर सड़कसे हटकर २ कि. मी. दूर अवस्थित है। २ कि. मी. का यह मार्ग कच्चा है किन्तु सवारी चली जाती हैं। यहाँ भगवान् चन्द्रप्रभके गर्भ, जन्म, तप और ज्ञानकल्याणक हुए थे। जैन मन्दिर गंगाके तटपर स्थित है। यहाँ धर्मशाला भी बनी हुई है।

काकन्दी

वाराणसीसे देवरिया जाना चाहिए। वहाँसे टैक्सी आदि द्वारा काकन्दी जा सकते हैं। यह देवरिया-सलेमपुर मार्गपर १४ कि. मी. सड़क मार्गसे चलकर और १ मील कच्चा रास्ता पार करके काकन्दी क्षेत्र पहुँचते हैं। यहाँ भगवान् पुष्पदन्तके गर्भ और जन्म कल्याणक हुए थे। अभयघोष मुनिको यहींसे निर्वाण हुआ था।

इस स्थानका वर्तमान नाम खुखुन्दू है।

ककुभग्राम

इस स्थानको आजकल 'कहाऊँ' कहते हैं। यह काकन्दीसे १६ कि. मी. है। मार्ग कच्चा है। बस, जीप जा सकती हैं। यहाँ पुष्पदन्त भगवान्‌के तप और ज्ञान कल्याणक हुए थे।

यहाँ २४ फुट ऊँचा पाषाणका प्राचीन मानस्तम्भ है जो ई. सन् ४६० का है। स्तम्भमें नीचेके भागमें सवा दो फुट अवगाहनाकी पार्श्वनाथ प्रतिमा है तथा स्तम्भके शीर्षपर पाँच तीर्थंकर प्रतिमाएँ हैं। इसके निकट ही दो खण्डित जैन प्रतिमाएँ हैं जो गुप्तकालकी लगती हैं।

पावा (नवीन)

कुछ लोग सठियाँव गाँवको पावा मानते हैं। यह देवरियासे कसिया (कुशीनारा) होते हुए ५६ कि. मी. है। यहाँ एक छोटा-सा गाँव टीलों पर बसा हुआ है। चारों ओर टीले और खण्डहर दिखाई पड़ते हैं। अभी तक यहाँ कोई जैन मूर्ति या मन्दिर नहीं निकला है।

देवगढ़

पावासे लौटकर कानपुर होते हुए झाँसी-ललितपुर रेल द्वारा पहुँचना चाहिए। ललितपुरसे बस द्वारा देवगढ़ ३२ कि. मी. है। पक्की सड़क है। मार्ग पहाड़ी घाटियोंमें होकर जाता है। यह क्षेत्र एक पहाड़ीपर है। उसके नीचे बेतवा नदी बहती है। पहाड़ीके नीचे दिगम्बर जैनधर्मशाला, साहू जैन म्यूजियम और दिगम्बर जैन मन्दिर है। इसके पास ही गुप्तकालका एक मन्दिर है, जिसे दशावतार मन्दिर कहते हैं। तथा वनविभागका विश्रामगृह है। पहाड़ीपर प्राचीन दुर्गकी दीवार है, जिसके पश्चिममें कुंजद्वार और पूर्वमें हाथी दरवाजा है। इस दीवारके बाद फिर एक दूसरी दीवार आती है। इसे दूसरा गेट कहते हैं। इसके भीतर ही जैन मन्दिर हैं। इस दीवारके भीतर भी एक दीवार है, जिसके दोनों ओर खण्डित-अखण्डित असंख्य-मूर्तियाँ हैं। यहाँ छोटे-बड़े कुल ४० जैन मन्दिर हैं। २९ पाषाण स्तम्भ हैं तथा लगभग ५०० अभिलेख हैं। यहाँकी मूर्तियाँ, मन्दिर और स्तम्भ शिल्प-कलाके उत्कृष्ट उदाहरण हैं। यहाँ पंच परमेष्ठियों, शासन देवताओं, देव-देवियों, तीर्थंकर माता, मंगल चिह्नों आदिका अंकन बहुत सुन्दर हुआ है। यह एक अतिशय क्षेत्र है। कहते हैं, जब कभी रात्रिमें देव अब भी यहाँ पूजनके लिए आते हैं। ऐसी भी किंवदन्ती है कि यहाँ भगवान् शान्तिनाथके दर्शन करनेसे मनोकामना पूर्ण हो जाती है।

करगुवाँ

यह क्षेत्र सदर झाँसीसे लखनऊ रोडपर साढ़े तीन मील दूर है। तीन मील तक पक्की सड़क है तथा आधा मील कच्चा मार्ग है। यहाँ एक परकोटा बना हुआ है। यहाँ धर्मशालाके कुछ कमरे बने हुए हैं। धर्मशालाके पासमें एक पुरानी मढ़िया बनी हुई है। उसके नीचे एक भोंयरा (तलघर) बना हुआ है। उसमें २० प्रतिमाएँ हैं, जो काफी प्राचीन हैं।

पवाजी

यह झाँसीसे ४९ कि. मी. और ललितपुरसे ४८ कि. मी. है तथा इन दोनों स्थानोंके मध्यवर्ती बसई अथवा तालबेहट स्टेशनसे यह क्षेत्र ८-९ मील है। सड़कपर कड़ेसरा स्थान है जहाँसे यह क्षेत्र सड़कसे उतरकर २ मील पड़ता है। बस और जीप जा सकती है। यह दो पहाड़ियोंके बीचमें स्थित है। क्षेत्रके पश्चिममें बेतवा नदी बहती है। एक ओर चेलना नदी है। दो पहाड़ियोंमें-से एक सिद्धोंकी पहाड़ी कहलाती है। इसके ऊपर दो मढ़िया बनी हुई हैं। इस पहाड़ीपर प्राचीन कालमें एक जैन मन्दिर था, जिसके अवशेष और कुछ खण्डित मूर्तियाँ पड़ी हुई हैं। लोग इसे नायककी गढ़ी कहते हैं। भोंयरेमें ६ जैन मूर्तियाँ हैं। एक मूर्ति यहाँ बावड़ीसे निकली थी। उसपर संवत् २९९ अंकित है। कुछ लोग निर्वाणकाण्डमें आया हुआ पावागिरि सिद्ध क्षेत्र इसी क्षेत्रको मानते हैं। वे कहते हैं कि स्वर्णभद्र आदि मुनि अपने समस्त कर्मोंका नाश करके यहाँसे विमुक्त हुए हैं।

क्षेत्रपाल ललितपुर

यह स्थान स्टेशनसे तीन मील है। इसमें एक कम्पाउण्डमें पाँच जैन मन्दिर बने हुए हैं। उनमें-से एक भोंयरे में है। भोंयरेमें १२ प्रतिमाएँ तीर्थंकरोंकी हैं और ३५ देवी-देवताओंकी प्रतिमाएँ हैं। क्षेत्रपालमें धर्मशाला भी बनी हुई है।

दुधई

यह देवगढ़से ३० कि. मी. और ललितपुरसे वाया जाखलौन लगभग ५० कि. मी. है। इस दुधई गाँवका पुराना नाम 'महोली' है। यहाँ तीन मन्दिरोंके खण्डहर पड़े हुए हैं। ये सभी पुरातत्त्व विभागके अन्तर्गत हैं। कुछ मूर्तियाँ अच्छी दशामें हैं तथा ६६ मूर्तियाँ खण्डित दशामें पड़ी हुई हैं। दो मूर्तियाँ क्रमशः १४॥ फुट और ११ फुट अवगाहना की हैं। ये सब खुलेमें पड़ी हुई हैं। कुछ मूर्तियोंके सिर काट डाले गये हैं। दुधईका नाम 'नेमिनाथकी बरात' भी है।

चाँदपुर-जहाजपुर

ललितपुर-बीना लाइनपर धौर्रा स्टेशन है। स्टेशनसे आधा मील दूर जंगलमें दोनों क्षेत्र हैं। रेलवे लाइनके पूर्वमें चाँदपुर और पश्चिममें जहाजपुर है। इन स्थानोंपर और आसपासमें बहुत-सी मूर्तियाँ पड़ी हुई हैं। एक कोटके भीतर तीन मन्दिर हैं। इनमें १७ फुट और १२ फुटकी भी मूर्तियाँ मौजूद हैं। रेलवे लाइनकी दूसरी ओर भी भग्न मन्दिर और मूर्तियाँ बहुत हैं।

बानपुर

यह क्षेत्र ललितपुरसे महारौनी होते हुए ५३ कि. मी. है। यहाँ गाँवके बाहर क्षेत्रपालका मन्दिर है। मन्दिरके चारों ओर कोट है। कोटके अन्दर ५ मन्दिर हैं। इनमें एक सहस्रकूट चैत्यालय है, जो लगभग एक हजार वर्ष प्राचीन है।

मदनपुर

यह स्थान ललितपुरसे बरौदिया कलाँ होकर ७५ कि. मी. है, रोड पक्का है। ललितपुरसे महरौनी होकर ८३ कि. मी. है, जिसमें ६२ कि. मी. पक्की सड़क है। आगेका २१ कि. मी. जो कच्चा रास्ता था, अब पक्का हो गया है। यह क्षेत्र एक पहाड़ीपर है। ललितपुर-से महरौनी, मड़ावरा होकर मदनपुर तक बसें प्रतिदिन आती-जाती हैं। पहाड़ीके तीन कोनोंपर तीन मन्दिर बने हुए हैं। बड़े मन्दिरमें एक १२ फुटकी तथा दो आठ-आठ फुटकी मूर्तियाँ हैं। तथा इनसे छोटी १९ मूर्तियाँ हैं। यह स्थान पंचमढ़ी कहलाता है। उत्तर-पश्चिमकी ओर कोनेमें कुछ मन्दिर मिलते हैं। यह स्थान चम्पोमढ़ी कहलाता है। यहाँ भी बीचका मन्दिर अच्छी हालतमें है। तीसरे कोनेमें बीचका मन्दिर ठीक दशामें है, शेष ४ मन्दिर भग्नदशामें हैं। इस स्थानको मोदीमठ कहते हैं। पहाड़ीपर अनेक जैन मूर्तियाँ खण्डित दशामें पड़ी हैं। पासमें एक नदी भी है, वहाँ भी जैन मूर्तियाँ मिलती हैं।

बालाबेहट

ललितपुरसे मालथौन होकर यह क्षेत्र ५३ कि. मी. है, जिसमें ४० कि. मी. पक्का रोड है तथा १३ कि. मी. कच्चा मार्ग है। यह अतिशय क्षेत्र है। यहाँ मुख्य प्रतिमा काले पाषाणकी सवा फुट अवगाहनाकी भगवान् पार्श्वनाथकी है। यह साँवलिया पार्श्वनाथके नामसे प्रसिद्ध है। इसके अतिशयोंकी काफी किंवदन्तियाँ प्रचलित हैं। यहाँ धर्मशाला भी है।

सेरोन

यह क्षेत्र क्षेत्रपाल ललितपुरसे २१ कि. मी. है। यहाँ एक परकोटेके भीतर ६ मन्दिर हैं। यह क्षेत्र जंगलमें है। क्षेत्रपर लगभग डेढ़ सौ मूर्तियाँ हैं। लगभग एक मील दूर मन्दिरों और मूर्तियोंके भग्नावशेष पड़े हुए हैं। एक तालाबमें भी कुछ मूर्तियाँ पड़ी हैं।

सीरौन

ललितपुरसे मड़ावरा होकर ७४ कि. मी. है। यहाँ एक भग्न मन्दिर है, जिसमें एक मूर्ति है। किन्तु जंगलमें तथा गाँवके मकानोंमें बहुत-सी मूर्तियाँ हैं।

आवश्यक सूचना

जो लोग उत्तरप्रदेशके तीर्थोंकी यात्रा करके बिहारके तीर्थोंकी यात्राके लिए जाना चाहें, उन्हें देवरियासे छपरा होते हुए सीधे वैशाली निकल जाना चाहिए। वे देवगढ़ और उसके निकटवर्ती और तीर्थोंकी यात्रा बादमें कर सकते हैं।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

अकृत्रिम चैत्यालय जयमाला–पं. दिलसुख
अग्नि पुराण–महर्षि व्यास
अनेकार्थ कोष–कवि धनंजय
अभिधान चिन्तामणि–आचार्य हेमचन्द्र
अभिधान राजेन्द्र कोष–राजेन्द्र सूरि
अर्द्ध कथानक–कविवर बनारसीदास
आदि पुराण–भगवज्जिनसेन
आप्त मीमांसा–आचार्य समन्तभद्र
आराधना कथाकोष–ब्रह्म नेमिदत्त
आवश्यक चूर्णि
आवश्यक सूत्र
आशाधर प्रतिष्ठा पाठ–पं. आशाधर
उत्तरपुराण–आचार्य गुणभद्र
उत्तराखण्डकी यात्रा–सेठ गोविन्ददास
उत्तराध्ययन सूत्र
उपांग
अंगुत्तर निकाय
कल्पसूत्र
कल्याणका तीर्थांक
कहकोसु–मुनि श्रीचन्द्र
कविवर बनारसीदास–डॉ. रवीन्द्रकुमार
कुमारपाल प्रतिबोध–आचार्य हेमचन्द्र
क्रियाकलाप–आचार्य प्रभाचन्द्र
गणधर सार्द्धशतक बृहद्वृत्ति
गोमट्टसार–आचार्य नेमिचन्द्र
चारित्रसार–चामुण्डराय
चूनड़ी रास–पं. भगवतीदास
छान्दोग्य उपनिषद्
जयसेन प्रतिष्ठापाठ–आचार्य जयसेन
जैन शिलालेख संग्रह–सं. पं. विजयमूर्ति
जम्बू सामि चरित–कवि वीर
जम्बूस्वामिचरितम्–कवि राजमल्ल
णायकुमार चरिउ (भूमिका)–डॉ. हीरालाल
तिलोयपण्णत्ति–आचार्य यतिवृषभ
तीर्थ जयमाला–भट्टारक ज्ञानसागर
तीर्थवन्दन संग्रह–भट्टारक ज्ञानसागर
तीर्थवन्दना–भट्टारक गुणकीर्ति
तीर्थ वन्दना–भट्टारक उदयकीर्ति
दर्शन-दिग्दर्शन–राहुल सांकृत्यायन
दिल्ली अथवा इन्द्रप्रस्थ–पं. लक्ष्मीधर वाजपेयी
दिव्यावदान
दीघ निकाय
धर्मामृत–आचार्य नयसेन
धवल ग्रन्थ–आचार्य जिनसेन
नागरी प्रचारिणी पत्रिका
निर्वाण काण्ड–आचार्य पूज्यपाद
निर्वाण भक्ति–आचार्य कुन्दकुन्द
न्यायविनिश्चयालंकार–वादिराज सूरि
पउम चरिउ–कवि स्वयम्भू
पउमचरिय–विमल सूरि
पद्मपुराण–रविषेण आचार्य
पद्मपुराण–महर्षि व्यास
पद्मावती कल्प
परिशिष्ट पर्व–आचार्य हेमचन्द्र
पाण्डवपुराण–भट्टारक यशकीर्ति
पार्श्वनाथ चरित–वादिराज सूरि
पार्श्वपुराण–कवि बुध श्रीधर
पासणाह चरिउ–आचार्य पद्मकीर्ति
पुण्यास्रव कथाकोष–ब्र. नेमिदत्त
प्रतिष्ठा तिलक–आचार्य नेमिचन्द्र
प्रशस्ति-संग्रह––पं. परमानन्द शास्त्री
प्राचीन भारत–रमेशदत्त मजूमदार
बाहुबली देव-चरित्र–कविवर धनपाल
ब्रजका इतिहास–प्रो. कृष्णदत्त वाजपेयी
ब्रजका सांस्कृतिक इतिहास–प्रभूदयाल मीतल
ब्रह्माण्ड पुराण–महर्षि व्यास
भगवती आराधना–आचार्य शिवार्य
भगवती सूत्र
भरतेश्वर बाहुबली वृत्ति
भारतीय इतिहासकी रूपरेखा–जयचन्द्र विद्यालंकार
भूगोल-संयुक्त प्रान्त अंक
मज्झिम निकाय

मद्रास व मैसूर प्रान्तके प्राचीन जैन स्मारक–
सं. ब्र. शीतलप्रसाद जी
मनुस्मृति–महर्षि मनु
महाभारत–महर्षि व्यासदेव
मार्कण्डेय पुराण– ,,
मीराते मसऊदी–अब्दुर्रहमान चिश्ती
मेरी तमिल यात्रा–डी. जी. महाजन
मंजुश्री मूलकल्प
यशस्तिलक चम्पू–आचार्य सोमदेव
युगप्रधानाचार्य गुर्वावलि–जिनपाल उपाध्याय
रत्नकरण्ड श्रावकाचार–आचार्य समन्तभद्र
रामायण–वाल्मीकि
लिंगपुराण–महर्षि व्यास
वरांग चरित–आचार्य जटासिंहनन्दी
वसुदेव हिण्डि
वसुनन्दि प्रतिष्ठा पाठ–आचार्य वसुनन्दी
वसुनन्दि श्रावकाचार– ,,
वायुपुराण–महर्षि व्यास
वास्तुसार प्रकरण–ठक्कुर फेरु
विनय पिटक
विविध तीर्थ कल्प–आचार्य जिनप्रभसूरि
विष्णुपुराण–महर्षि व्यास
वैशालीकी नगर वधू–आचार्य चतुरसेन शास्त्री
शतपथ ब्राह्मण
शान्तिनाथ चरित्र–महिन्दु (महाचन्द्र)
श्रीमद्भागवत–महर्षि व्यास
तीसर्वर्थ वन्दना–भट्टारक ज्ञानसागर
सर्वतीर्थ वन्दना–भट्टारक नमनसागर
सामायिक नित्य प्रतिक्रमण पाठ
स्कन्ध पुराण–महर्षि व्यास
स्तुति विद्या
स्वयम्भू स्तोत्र-आचार्य समन्तभद्र
हरिवंशपुराण–आचार्य जिनसेन
हरिषेण कथाकोष
हरिषेण चरित–कवि शंकर
हस्तिनापुर–डॉ. ज्योतिप्रसाद
हिन्दी विश्वकोष–डॉ. नगेन्द्रनाथ बसु
हिमालयेर पथे पथे– उमाप्रसाद मुखोपाध्याय
क्षत्र चूड़ामणि–वादीभसिंह सूरि
त्रिलोकसार–आचार्य नेमिचन्द्र
Ancient India : Mc. Crindle
Ancient India : Plutarch
Ancient Indian Historical Tradition
Ancient Geography : Cunningham
An early history of Vaishali :
Dr. Yogendra Mishra
Archeological Survey of India Report
Buddhist Legends, Part II :
Berlingam
Chronology of India : Mrs. M. Duff
Early history of India : Vincent Smith
Glimpses of Political History :
Dr. B. C. Law
Inscriptions of Shravanbelgola :
R. Narsimhachari
Journal of Asiatic Society of Bengal :
Dr. Hoe
Life in Ancient India
Political History of Ancient India
Pre-Historic India and Ancient Egypt :
S. K. Roy
Quintus Curtius
Records of Western World :
Rev. Beal
Royal Asiatic Society, vol. I
Science of Comparative Religions :
Major General J.S.R. Furlong
Shravasti in Ancient Literature :
Dr. Vimal Charan Law
The Hindu History of India :
A.K. Majumdar
The Journal of the Orissa & Bihar
Research Society
The Life of Buddha :
E.I. Thomas

चित्र-सूची

१. हस्तिनापुर—भगवान् शान्तिनाथकी भव्य प्रतिमा, संवत् १२३७।

२. हस्तिनापुर—दिगम्बर जैन मन्दिरमें मुख्य वेदीका दृश्य, मूलनायक भगवान् शान्तिनाथ।

३. पारसनाथका किला—भूगर्भसे प्राप्त भगवान् महावीरकी प्रतिमा, संवत् १०६३।

४. पारसनाथका किला—भूगर्भसे प्राप्त पंच बालयति। अनुमानतः एक हजार वर्ष प्राचीन।

५. बड़ागाँव—दि. जैन अतिशयक्षेत्र पर मूलनायक भगवान् पार्श्वनाथ।

६. बड़ागाँव—दि. जैन क्षेत्रके मन्दिरमें 'भगवान् विमलनाथ'की लगभग १००० वर्ष प्राचीन प्रतिमा।

७. मथुरा—दि. जैन सिद्ध क्षेत्र चौरासीके मूलनायक भगवान् अजितनाथ।

८. मथुरा—श्री दि. जैन सिद्धक्षेत्र चौरासीमें अन्तिम केवली श्री जम्बूस्वामीके चरण।

९. मथुरा—श्री दि. जैन सिद्धक्षेत्र, चौरासीमें भूगर्भसे प्राप्त भगवान् पार्श्वनाथकी अति प्राचीन प्रतिमा। वि. संवत् १८९।

१०. मथुरामें भूगर्भसे प्राप्त तीर्थंकर-प्रतिमा, कुषाण काल, मथुरा संग्रहालय।

११. मथुराका एक अभिलिखित आयागपट्ट, कुषाण-काल, लखनऊ म्युजियम।

१२. मथुराका सुन्दर धर्मचक्रसे अलंकृत जैन आयागपट्ट। कुषाण काल, लखनऊ म्युजियम।

१३. आगरा—मोतीकटराके दि. जैन बड़ा मन्दिरमें मूलनायक भगवान् सम्भवनाथ—वि. संवत् ११४७।

१४. आगरा—ताजगंजके दिगम्बर जैन मन्दिरमें चिन्तामणि पार्श्वनाथकी भव्य प्रतिमा।

१५. आगरा—मोती कटराके दि. जैन बड़ा मन्दिरमें चौबीसी—वि. संवत् १२७२।

१६. आगरामें भूगर्भसे प्राप्त भगवान् मुनि सुव्रतनाथकी प्रतिमा। वि. संवत् १०६३, लखनऊ म्युजियम।

१७. शौरीपुर—पंचमठीके अहातेमें भूगर्भसे प्राप्त प्राचीन प्रतिमा।

१८. वटेश्वर—भगवान् अजितनाथकी मनमोहक प्रतिमा, वि. संवत् १२२४।

१९. चन्दवार—दिगम्बर जैन मन्दिरमें विराजमान भगवान् ऋषभदेवकी जटायुक्त प्रतिमा, वि. संवत् १०५६।

२०. चन्दवार—मानस्तम्भका शीर्ष भाग, वि. संवत् १०५३।

२१. फिरोजाबाद—चन्द्रप्रभ दि. जैन मन्दिरमें भगवान् चन्द्रप्रभकी प्रसिद्ध स्फटिक प्रतिमा।

२२. फिरोजाबाद—छोटी-छिपैटीके दिगम्बर जैन मन्दिरमें पाँच भरतके चौबीस तीर्थंकर।

२३. फिरोजाबाद—सेठ छदामीलालजी द्वारा निर्मित संगमरमरका भव्य जिनालय।

२४. फिरोजाबाद—सेठ छदामीलालजी द्वारा निर्मित जिनालयकी मूलनायक प्रतिमा।

२५. मरसलगंज—दिगम्बर जैन अतिशय-क्षेत्रपर मूलनायक भगवान् आदिनाथ।

२६. अहिच्छत्र—तिखालवाले बाबा भगवान् पार्श्वनाथ।

२७. अहिच्छत्र क्षेत्र—भगवान् पार्श्वनाथकी अद्भुत प्रतिमा। चरण चौकीपर चौबीस तीर्थंकर प्रतिमाएँ हैं।

२८. अहिच्छत्र क्षेत्र—रामनगर मन्दिरमें मूलनायक भगवान् पार्श्वनाथ।

२९. अहिच्छत्र क्षेत्र—नूँदीमें भूगर्भसे प्राप्त भगवान् पार्श्वनाथकी प्राचीन प्रतिमा।

३०. कम्पिला क्षेत्र—भगवान् विमलनाथकी मूलनायक प्रतिमा।

३१. वाराणसी—भदैनी घाटके मन्दिर और स्याद्वाद महाविद्यालयके पृष्ठ भागका दृश्य।

३२. वाराणसी—भगवान् सुपार्श्वनाथकी जन्मभूमि भदैनी घाटके मन्दिरकी वेदी।

३३. वाराणसी—भगवान् पार्श्वनाथके जन्मस्थल भेलूपुरामें दिगम्बर-श्वेताम्बरोंका संयुक्त मन्दिर।

३४. वाराणसी—भेलूपुरा दिगम्बर जैन मन्दिरकी मध्यवेदी।

३५. वाराणसी—उदयसेन खड्गसेनके जैन मन्दिरमें पद्मावती देवीकी मनोज्ञ मूर्ति।

३६. वाराणसी—राजघाटमें भूगर्भसे प्राप्त पंच बालयतिकी मूर्ति। ८-९वीं शताब्दी।

३७. भगवान् श्रेयांसनाथकी जन्मभूमि सिंहपुरीके मन्दिरमें भगवान् श्रेयांसनाथकी प्रतिमा।

३८. सारनाथ—भूगर्भसे प्राप्त प्राचीन तीर्थंकर-मूर्ति। ७वीं शताब्दी, लखनऊ संग्रहालय।

३९. भगवान् चन्द्रप्रभकी जन्म-नगरी चन्द्रपुरीके जैन मन्दिरकी वेदीका दृश्य।

४०. प्रयाग—भगवान् चन्द्रप्रभकी छठीं शताब्दीकी प्रतिमा। प्रयाग संग्रहालय।

४१. प्रयाग—अम्बिका देवीकी ६ फुट उन्नत भव्य मूर्ति। इस फलकपर चौबीस यक्षियोंकी मूर्तियाँ भी उत्कीर्ण हैं। प्रयाग संग्रहालय।

४२. प्रयाग—पार्श्वनाथ दिगम्बर जैनपंचायती मन्दिरमें भूगर्भसे प्राप्त भगवान् पार्श्वनाथकी भव्य प्रतिमा।

४३. प्रयाग—पंचायती दिगम्बर जैन बड़ा मन्दिरकी वेदीका दृश्य। सभी प्रतिमाएँ प्राचीन हैं।

४४. कौशाम्बी—दिगम्बर जैन मन्दिरमें भगवान् पद्मप्रभके चरण चिह्न, जहाँ भगवान्का जन्म हुआ था।

४५. कौशाम्बी—दिगम्बर जैन मन्दिरमें चैत्य।

४६. पभोसा—दिगम्बर जैन मन्दिरमें भगवान् पद्मप्रभकी सातिशय प्रतिमा।

४७. पभोसा—दिगम्बर जैन मन्दिरके पीछे पहाड़की एक शिलामें उत्कीर्ण चार जैन प्रतिमाएँ।

४८. अयोध्या—दिगम्बर जैन बड़ा मन्दिरमें भगवान् ऋषभदेवकी २८ फुट ऊँची प्रतिमा।

४९. अयोध्या—प्राचीन दिगम्बर जैन मन्दिर कटराकी मुख्य वेदी।

५०. तीर्थंकर धर्मनाथकी जन्म नगरी—रतनपुरीके दिगम्बरजैन मन्दिरमें धर्मनाथ भगवान्की मूर्ति।

५१. रतनपुरी—भगवान् धर्मनाथके चरण-चिह्न, जहाँ भगवान्का गर्भ-कल्याणक हुआ था।

५२. दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र त्रिलोकपुर भगवान् नेमिनाथकी प्रतिमा। वि. सं. ११९७।

५३. त्रिलोकपुर—दिगम्बर जैन पार्श्वनाथ मन्दिरका भव्य शिखर।

५४. श्रावस्ती—सोमनाथ (सम्भवनाथ) मन्दिरके अवशेष, जहाँ भगवान् सम्भवनाथका जन्म हुआ था।

५५. श्रावस्तीमें भूगर्भसे प्राप्त भगवान् नेमिनाथकी मनोज्ञ मूर्ति। ९वीं शताब्दी, लखनऊ म्युजियम।

५६. श्रावस्तीमें भूगर्भसे प्राप्त भगवान् महावीरकी मूर्ति। १०वीं शताब्दी, लखनऊ म्युजियम।

५७. श्रावस्तीमें प्राप्त भगवान् सम्भवनाथकी मूर्ति। ९वीं शताब्दी, लखनऊ म्युजियम।

५८. काकन्दी (खुखुन्दू) भगवान् नेमिनाथकी भव्य प्रतिमा। समय अनुमानतः छठीं शताब्दी।

५९. काकन्दी (खुखुन्दू) में प्राप्त अम्बिकादेवीकी मूर्ति। समय १२वीं शताब्दी, लखनऊ राजकीय संग्रहालय।

६०. ककुभग्राम (कहाऊँ) में गुप्तकालीन मानस्तम्भ। शीर्षपर ८ जिन प्रतिमाएँ विराजमान हैं।

६१. ककुभग्राम (कहाऊँ) में गुप्तकालीन पार्श्वनाथ प्रतिमा। प्रतिमा खण्डित है।

६२. देवगढ़—मन्दिर नं० १२ की भीतरी भित्तिमें जैन मूर्तियाँ।

६३. देवगढ़—भीतरी चहारदीवारीमें जैन मूर्तियाँ।

६४. देवगढ़—बाहुबलीकी भव्य प्रतिमा। किन्नरियाँ लताओंको हटाती हुई।

६५. देवगढ़—एक मन्दिरमें शुकनासिकाका दृश्य।

६६. देवगढ़—उपाध्याय परमेष्ठीकी सौम्य मूर्ति।

६७. देवगढ़—एक जैन मन्दिरके सामने भव्य मान-स्तम्भ।
६८. देवगढ़—एक दीवालमें अनेक जैन प्रतिमाएँ।
६९. देवगढ़—साहू जैन संग्रहालयमें विंशतिभुजी चक्रेश्वरी।
७०. सैंरोन—गोमेध यक्ष और अम्बिका यक्षी। शीर्षपर तीर्थंकर नेमिनाथ विराजमान हैं।
७१. सैंरोन क्षेत्र के जैन मन्दिरोंका भव्य दृश्य। केन्द्रीय सर्वेक्षण विभाग, आगरा क्षेत्र।
७२. सीरोन—एक भग्न मन्दिर।
७३. चाँदपुर—क्षेत्रपर स्थित प्राचीन जैन मन्दिर।
७४. चाँदपुर क्षेत्र—कुछ खण्डित मूर्तियाँ।
७५. दुधई क्षेत्र—जैन मन्दिर और उसका अद्भुत शिखर।
७६. बानपुर—एक शिलाफलक जिसपर ५६ कलात्मक मूर्तियाँ उत्कीर्ण हैं।
७७. बानपुर—सहस्रकूट चैत्यालयका शिखर।
७८. मदनपुर—मोदीमठमें शान्तिनाथ, कुन्थुनाथ और अरहनाथ।
७९. दिल्ली—श्री दिगम्बर जैन लाल मन्दिर पद्मावती देवीकी सातिशय प्रतिमा।
८०. दिल्ली—श्री दिगम्बर जैन लाल मन्दिरमें भित्ति चित्र।
८१. दिल्ली—श्री दिगम्बर जैन नया मन्दिर, धर्मपुराकी कलापूर्ण मुख्य वेदी।
८२. दिल्ली—सेठका कूचा मन्दिरकी मुख्य वेदी और मूलनायक भगवान् आदिनाथ।
८३. दिल्ली—कुव्वतुल इस्लाम मसजिद (जैन मन्दिर) का एक स्तम्भ जिसमें तीन और पद्मासन तीर्थंकर मूर्तियाँ बनी हुई हैं।
८४. दिल्ली—कुव्वतुल इस्लाम मसजिदमें एक पाषाणस्तम्भ जिसपर शृंखलायुक्त घण्टे लटक रहे हैं।

चित्र

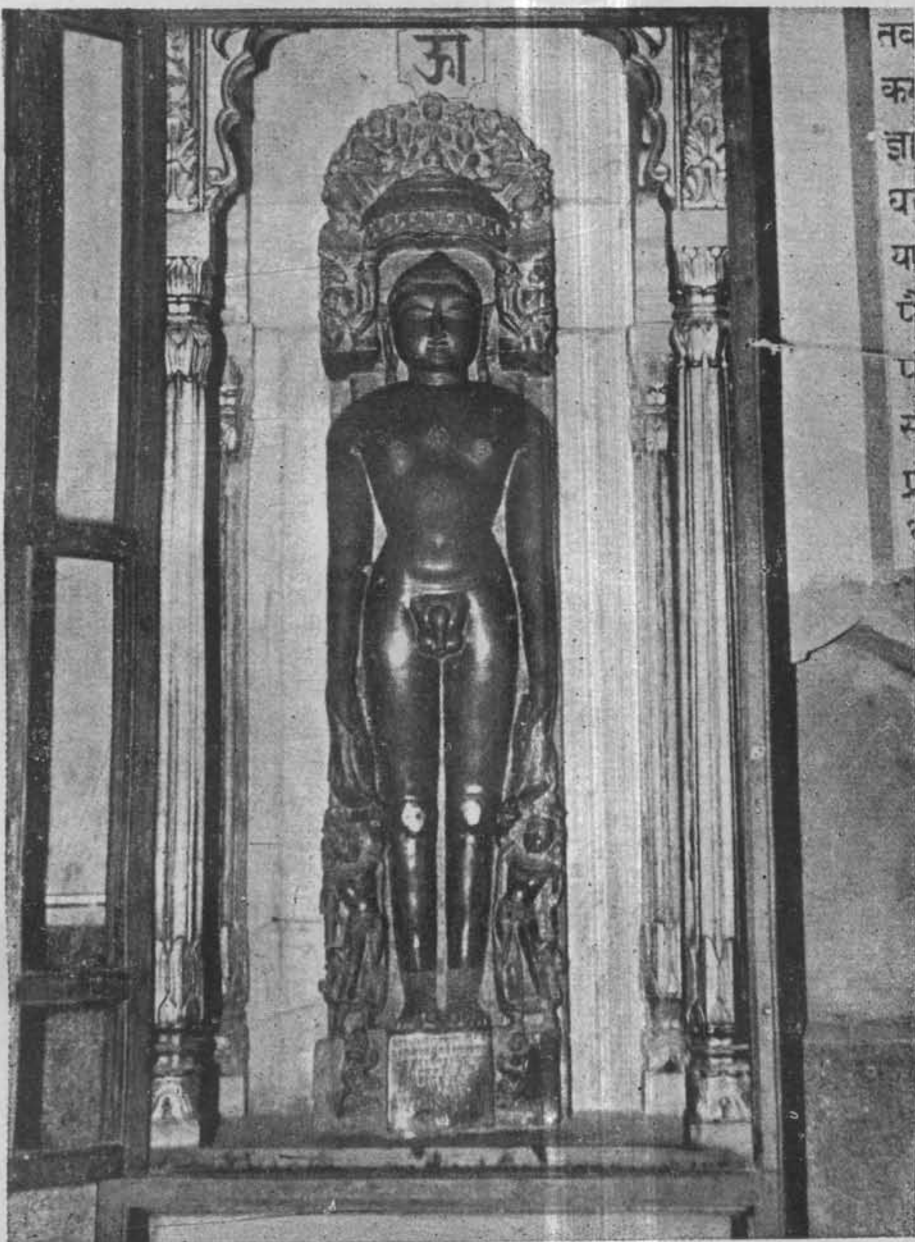

१. हस्तिनापुर—भगवान् शान्तिनाथ की भव्य प्रतिमा, संवत् १२३७।

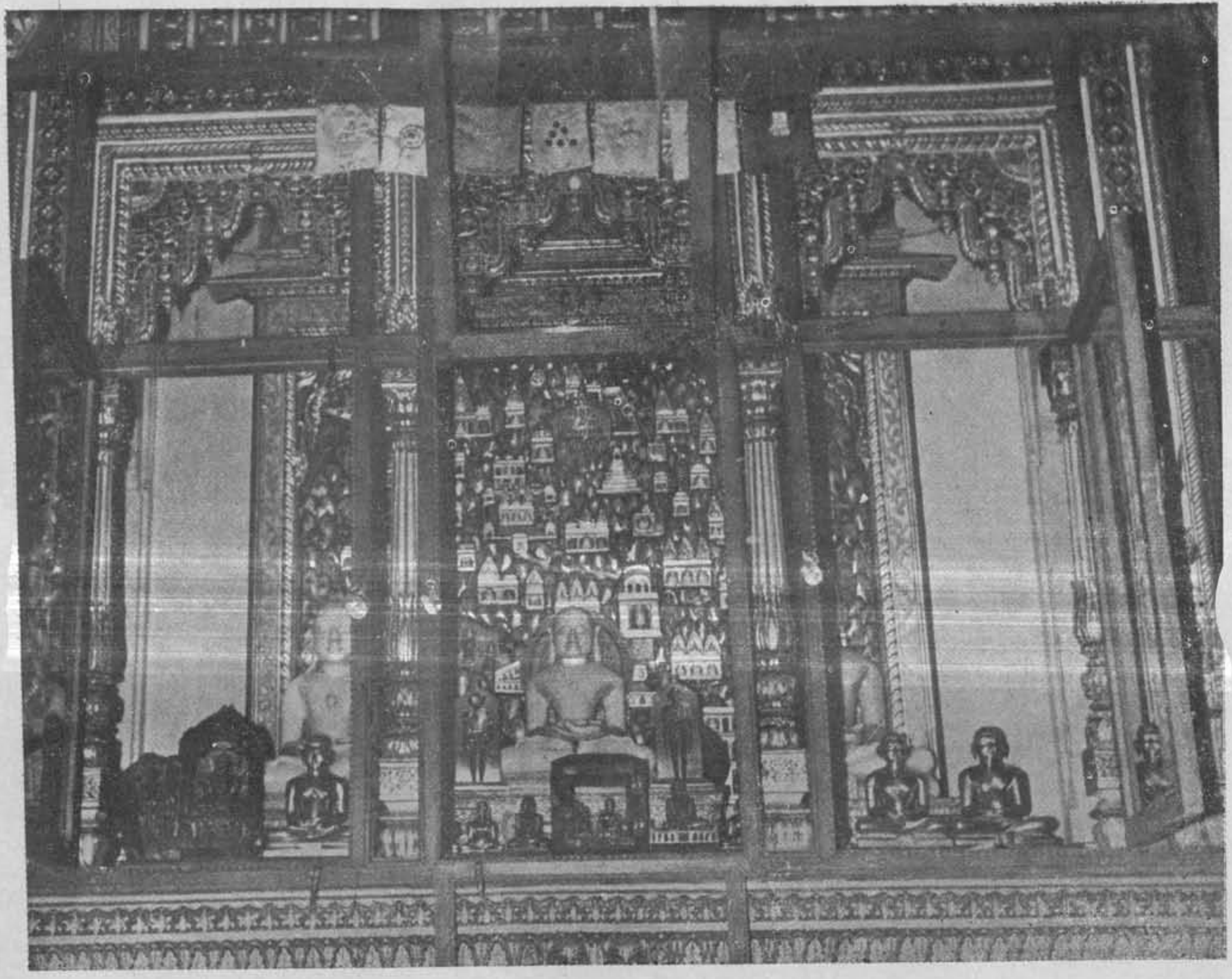

२. हस्तिनापुर—दिगम्बर जैन मन्दिर में मुख्य वेदी का दृश्य, मूलनायक भगवान् शान्तिनाथ ।

४. पारसनाथ का किला—भूगर्भ से प्राप्त पंच बालयति । अनुमानतः एक हजार वर्ष प्राचीन ।

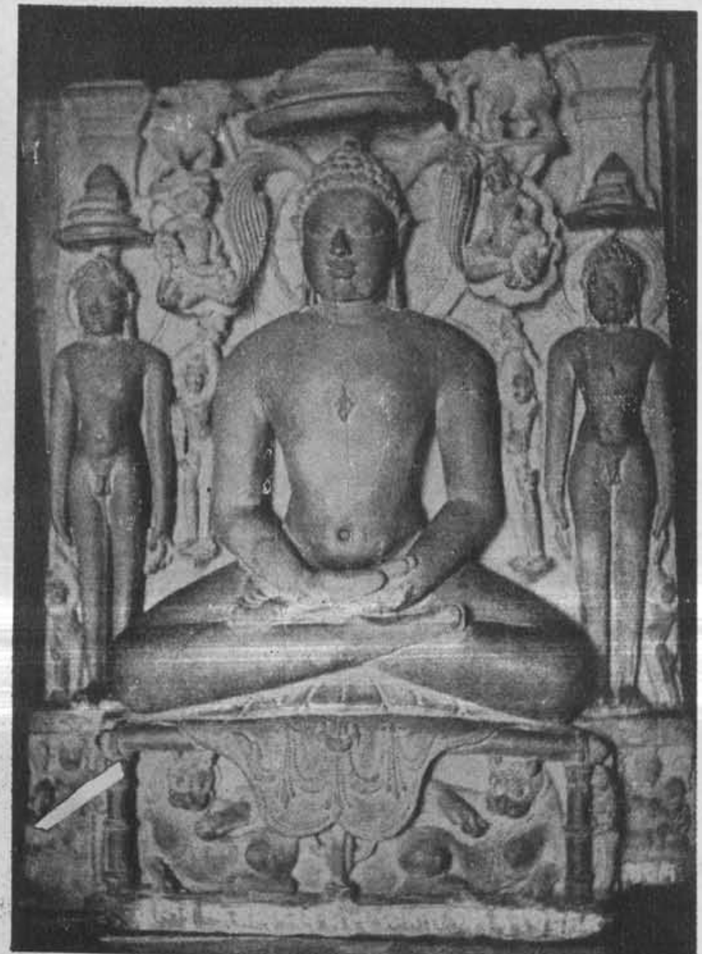

३. पारसनाथ का किला—भूगर्भ से प्राप्त भगवान् महावीर की प्रतिमा, संवत् १०६३ ।

५. बड़ागांव—दि० जैन अतिशय क्षेत्र पर मूलनायक भगवान् पार्श्वनाथ ।

६. बड़ागाँव—दि० जैन क्षेत्र के मन्दिर में 'भगवान् विमलनाथ' की लगभग १००० वर्ष प्राचीन प्रतिमा।

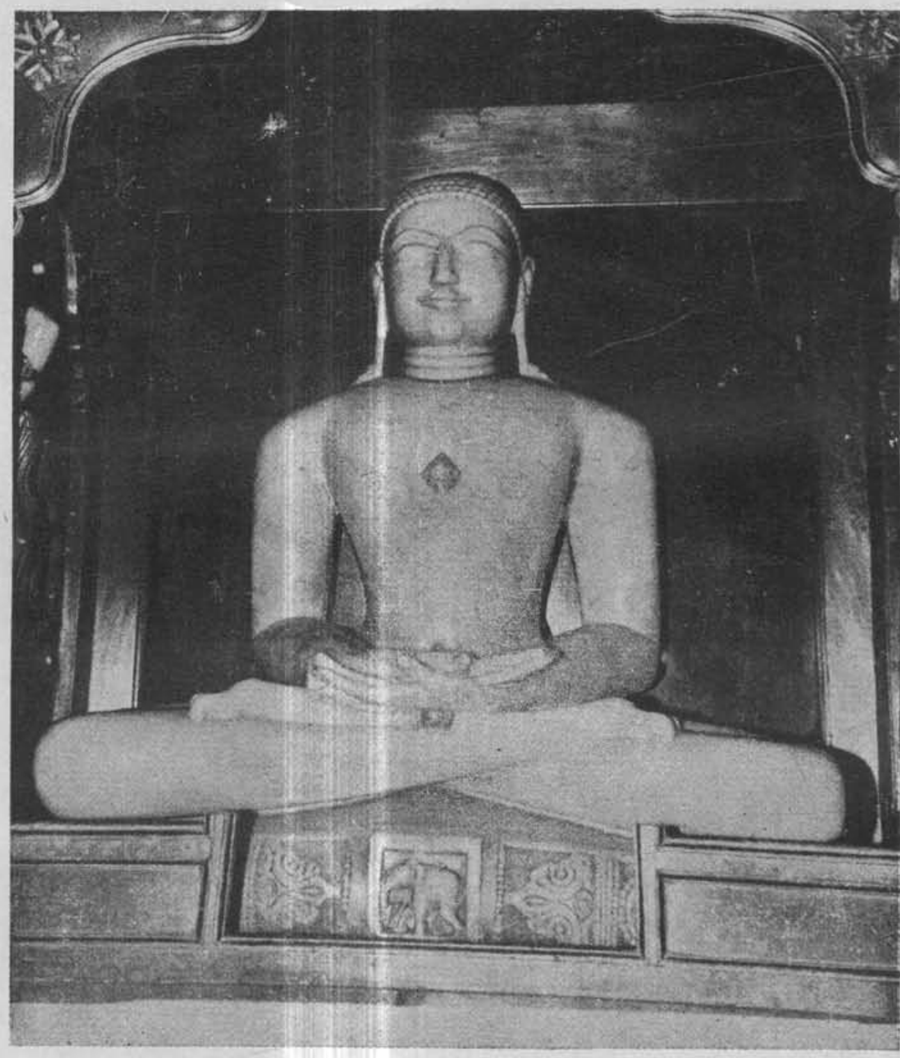

७. मथुरा—दि० जैन सिद्ध क्षेत्र चौरासी के मूलनायक भगवान् अजितनाथ।

८. मथुरा—श्री दि० जैन सिद्धक्षेत्र चौरासी, में अन्तिम केवली श्री जम्बूस्वामी के चरण।

९. मथुरा—श्री दि० जैन सिद्धक्षेत्र, चौरासी में भूगर्भ से प्राप्त भगवान् पार्श्वनाथ की अति प्राचीन प्रतिमा। वि० संवत् १८९।

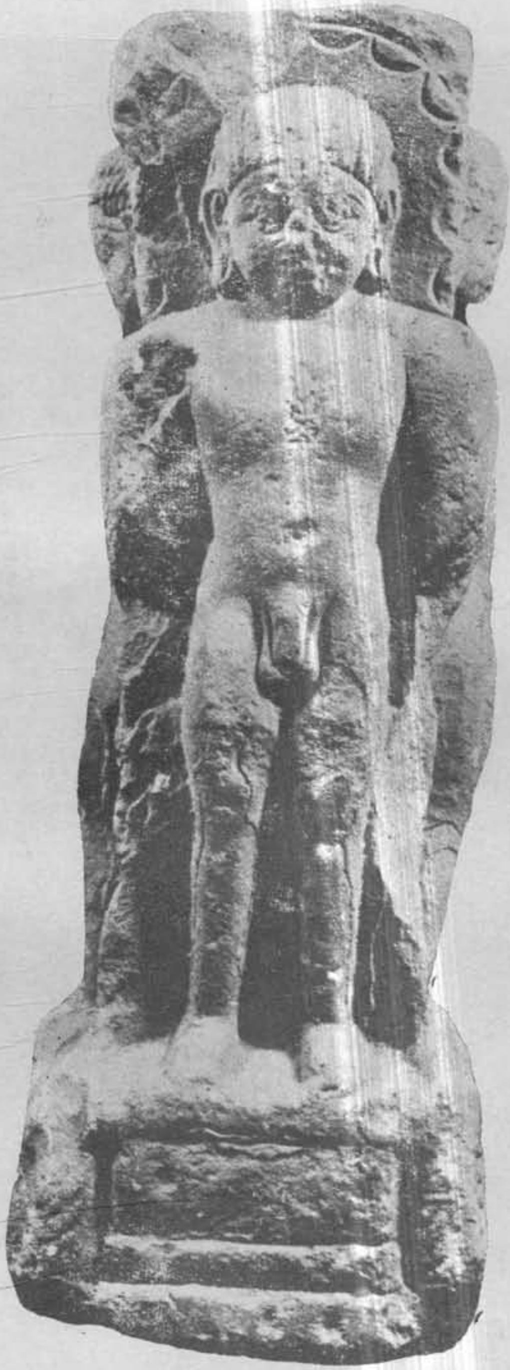

१०. मथुरा में भूगर्भ से प्राप्त तीर्थंकर-प्रतिमा कुषाणकाल, मथुरा संग्रहालय ।

११. मथुरा का एक अभिलिखित आयागपट्ट, कुषाणकाल, लखनऊ म्युजियम ।

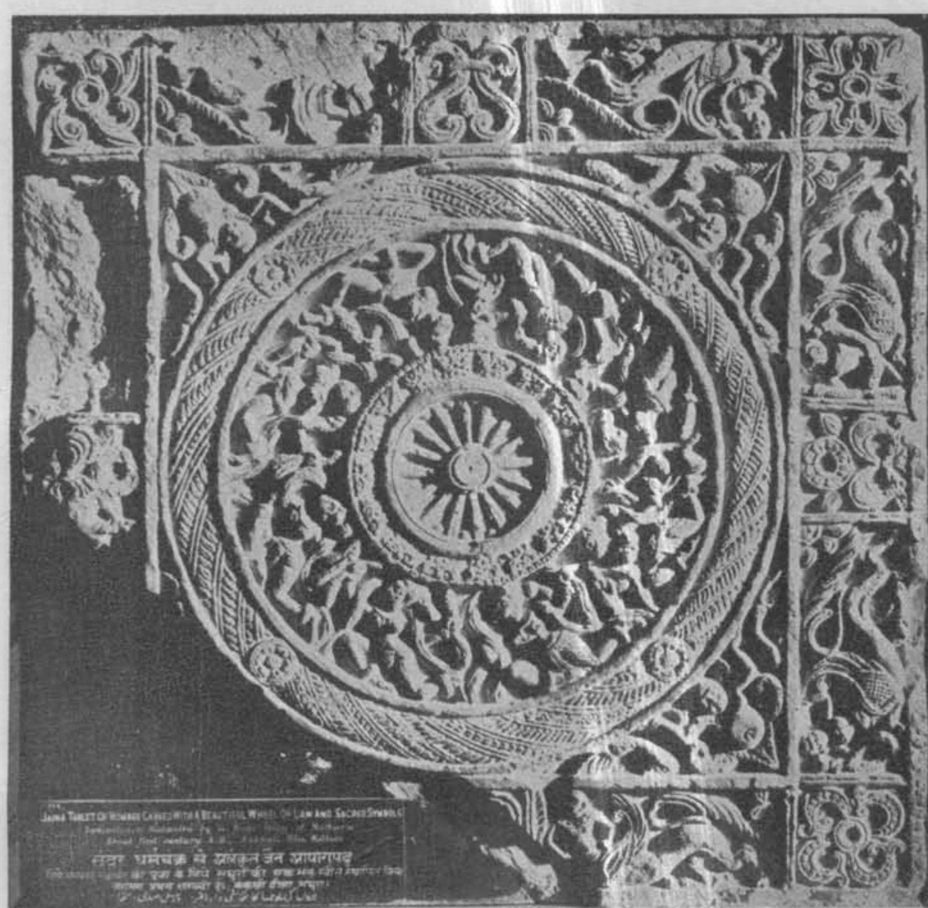

१२. मथुरा का सुन्दर धर्मचक्र से अलंकृत जैन आयागपट्ट। कुषाणकाल, लखनऊ म्युजियम।

१३. आगरा—मोतीकटरा के दि० जैन बड़ा मन्दिर में मूलनायक भगवान् सम्भवनाथ—वि० संवत् ११४७।

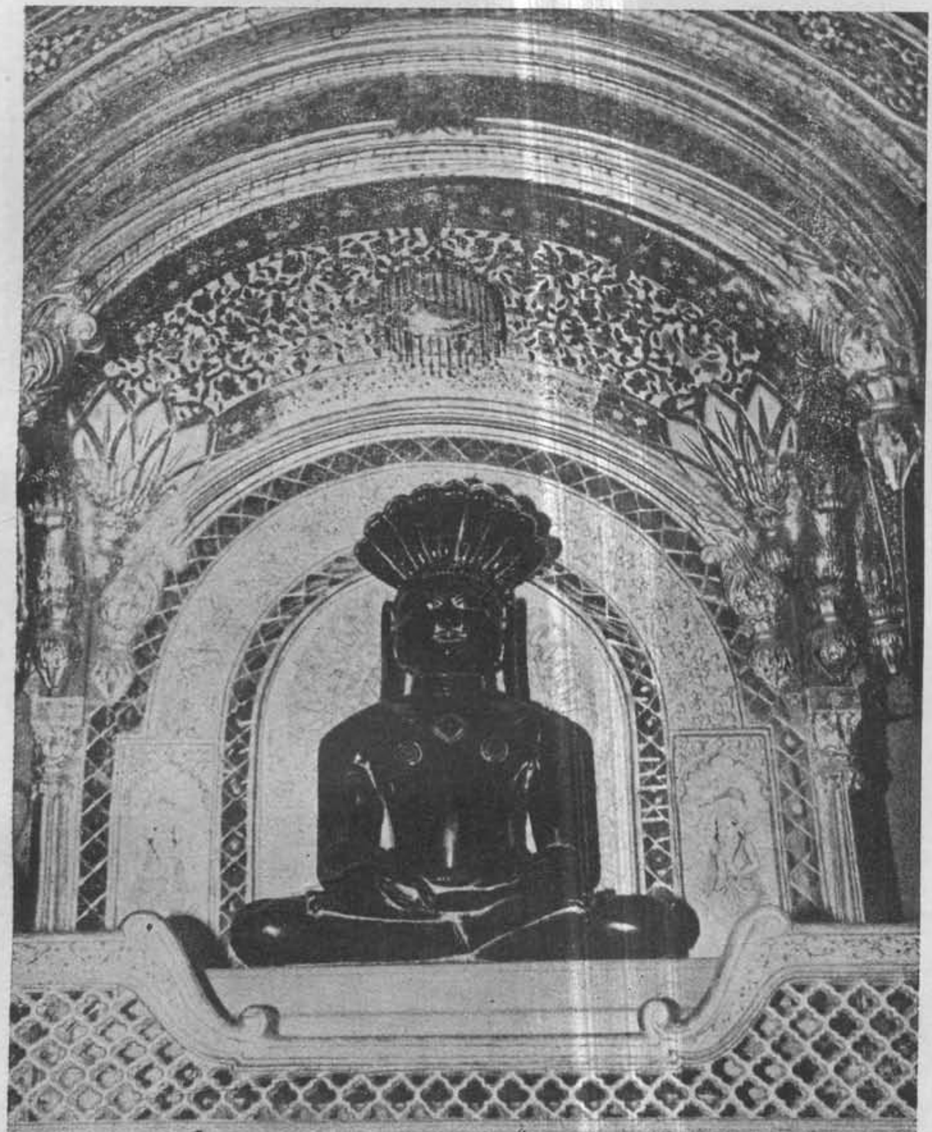

१४. आगरा—ताजगंज के दिगम्बर जैन मन्दिर में चिन्तामणि पार्श्वनाथ की भव्य प्रतिमा ।

१५. आगरा—मोती कटरा के दि० जैन बड़ा मन्दिर में चौबीसी—वि० संवत् १२७२।

१६. आगरा में भूगर्भ से प्राप्त भगवान् मुनिसुव्रतनाथ की प्रतिमा। वि० संवत् १०६३, लखनऊ म्युजियम।

१७. शौरीपुर—पंचमठी के अहाते में भूगर्भ से प्राप्त प्राचीन प्रतिमा।

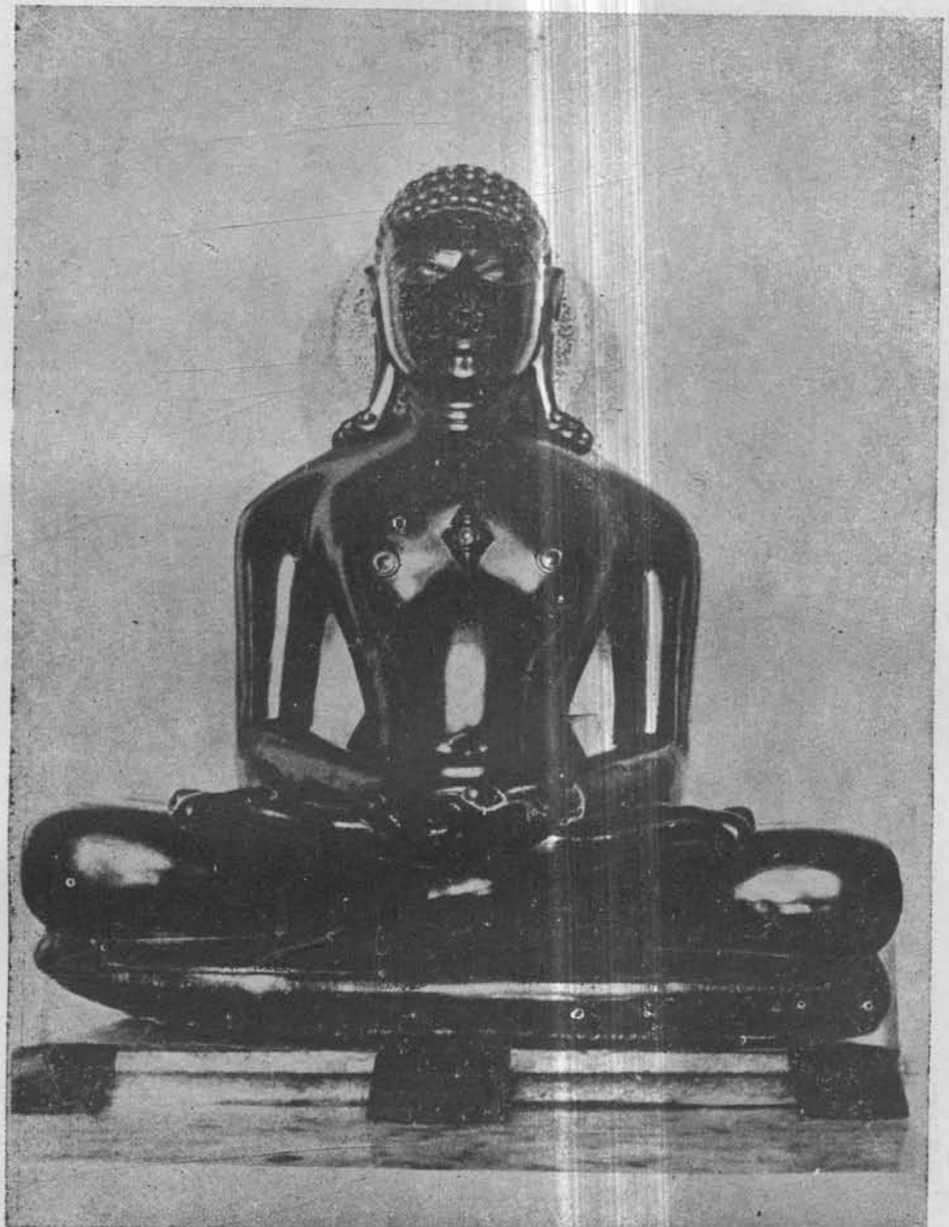

१८. बढेश्वर—भगवान् अजितनाथ की मनमोहक प्रतिमा, वि० सं० १२२४।

१९. चन्दवार—दि० जैन मन्दिर में विराजमान भगवान् ऋषभदेव की जटायुक्त प्रतिमा। वि० संवत् १०५६।

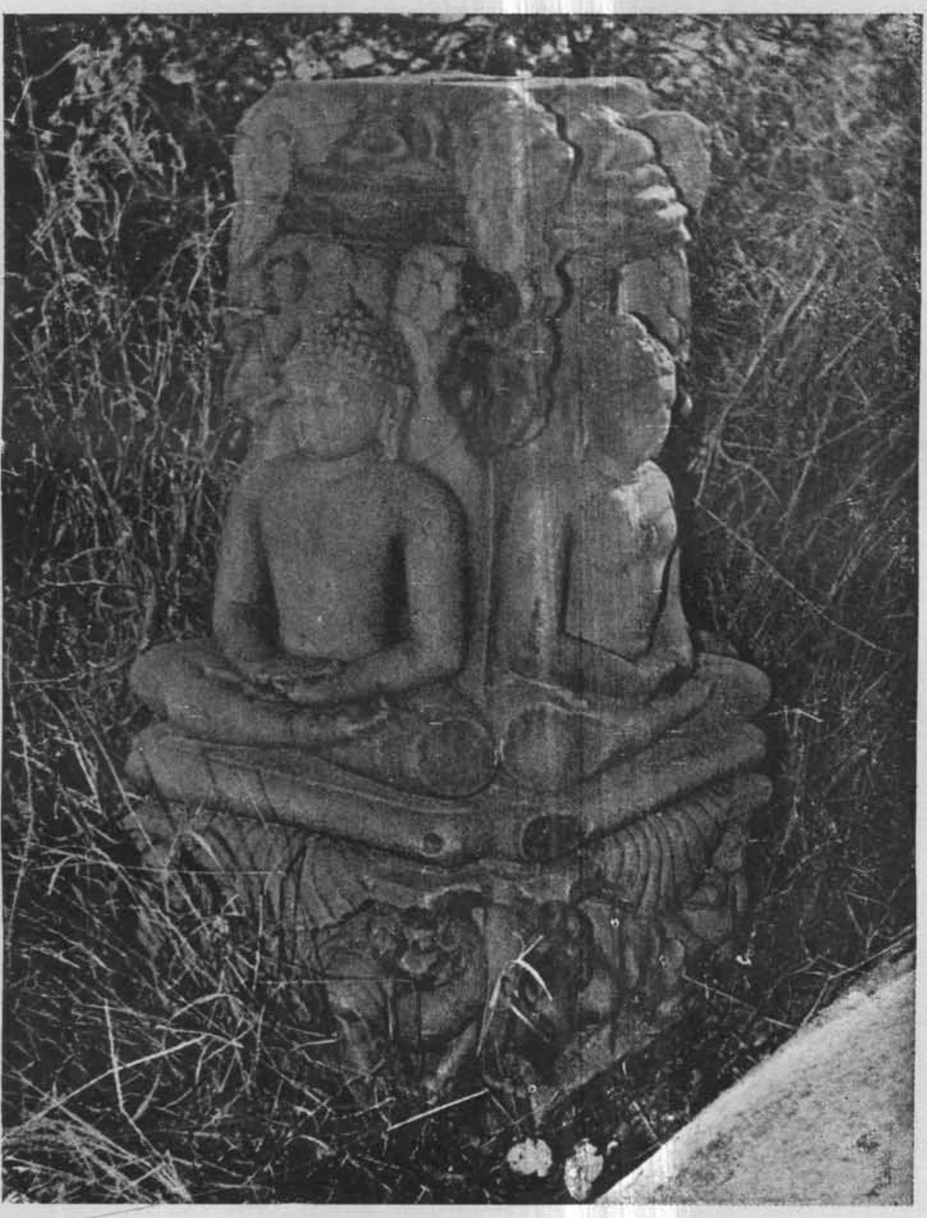

२०. चन्दवार—मानस्तम्भ का शीर्ष-भाग, वि० संवत् १०५३।

२१. फिरोजाबाद—चन्द्रप्रभ दि० जैन मन्दिर में भगवान् चन्द्रप्रभ की प्रसिद्ध स्फटिक प्रतिमा।

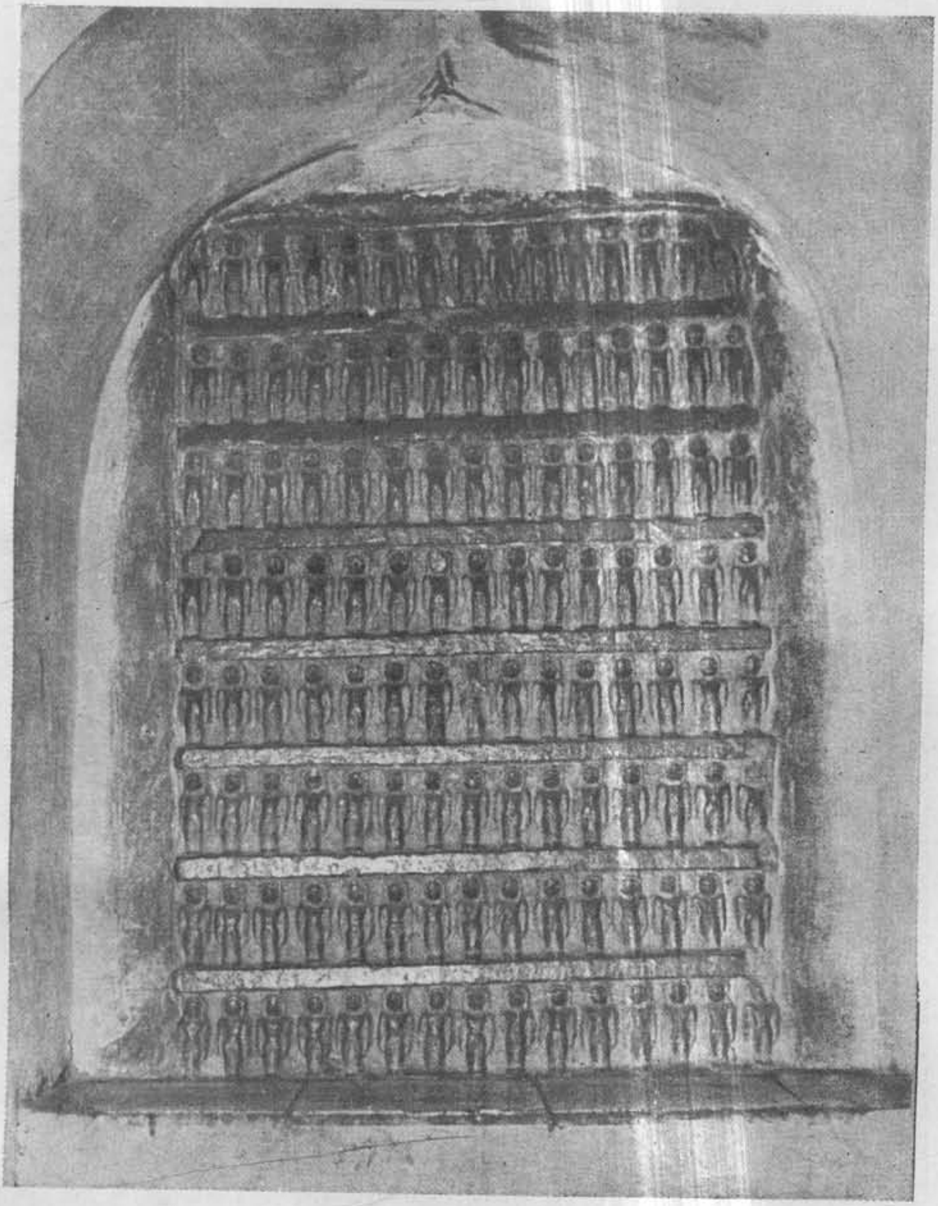

२२. फिरोजाबाद—छोटी-छिपेटी के दिगम्बर जैन मन्दिर में पांच भरत के चौबीस तीर्थंकर।

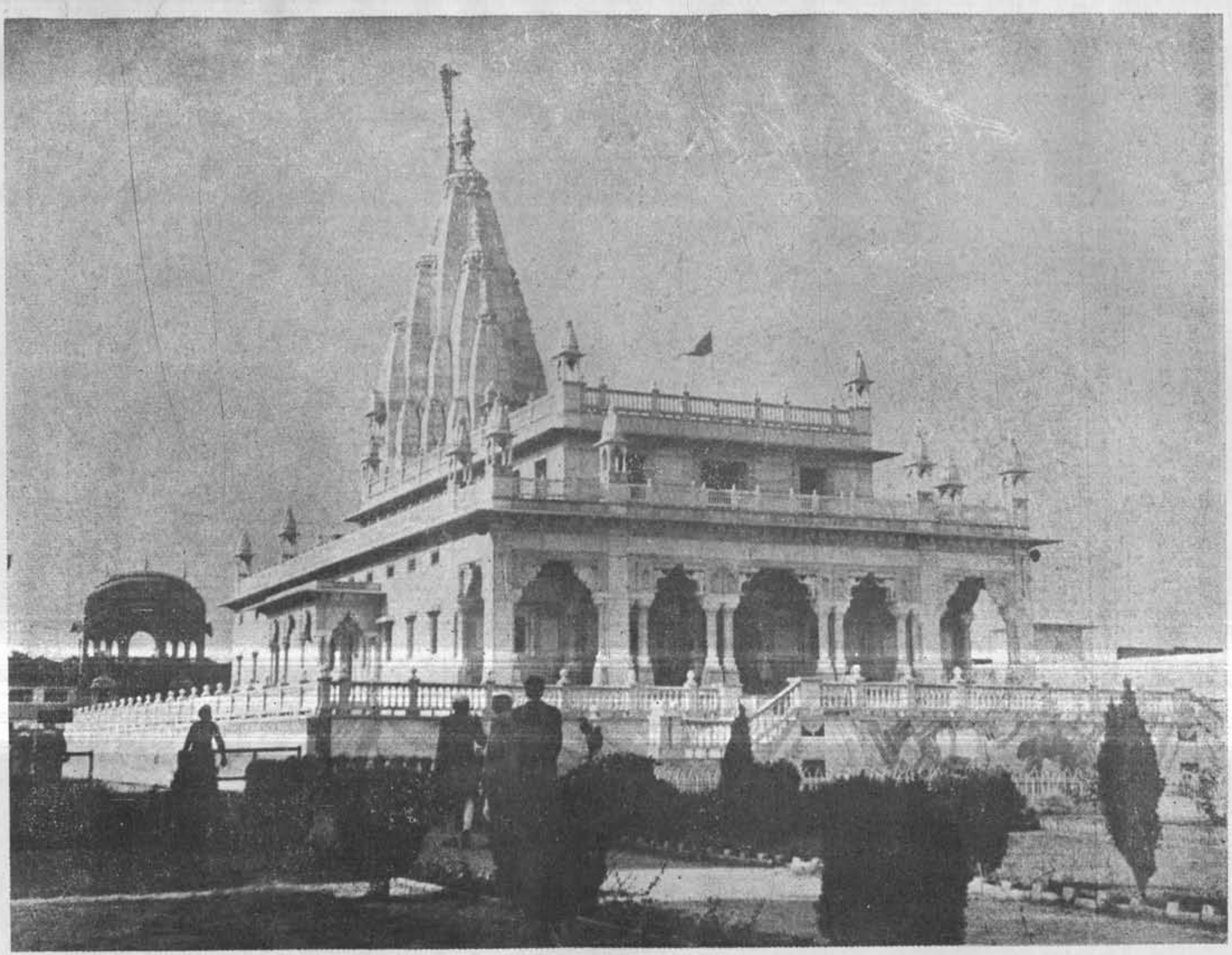

२३. फिरोजाबाद—सेठ छदामीलाल जी द्वारा निर्मित संगमरमर का भव्य जिनालय।

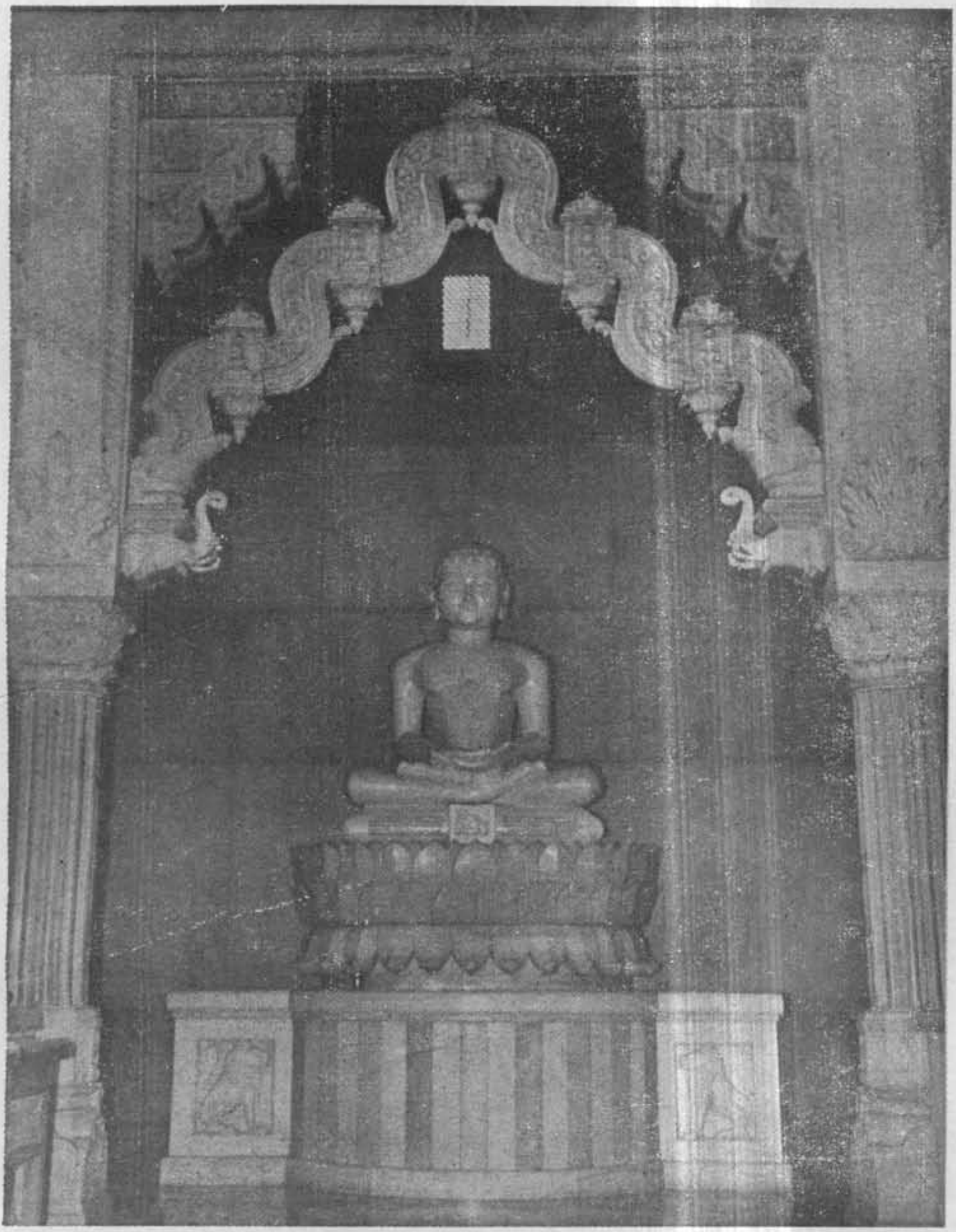

२४ फिरोजाबाद—सेठ छदामीलाल जी द्वारा निर्मित जिनालय की मूलनायक प्रतिमा।

२५. मरसलगंज—दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र पर मूलनायक भगवान् आदिनाथ।

२६. अहिच्छत्र—तिखाल वाले बाबा भगवान् पार्श्वनाथ ।

२७. अहिच्छत्र क्षेत्र—भगवान् पार्श्वनाथ की अद्‍भुत प्रतिमा। चरण चौकी पर चौबीस तीर्थंकर प्रतिमाएँ हैं।

२८. अहिच्छत्र क्षेत्र—बूँदी में भूगर्भ से प्राप्त भगवान् पार्श्वनाथ की प्राचीन प्रतिमा।

२९. अहिच्छत्र क्षेत्र—रामनगर मन्दिर में मूलनायक भगवान् पार्श्वनाथ ।

३०. कम्पिला क्षेत्र—भगवान् विमलनाथ की मूलनायक प्रतिमा।

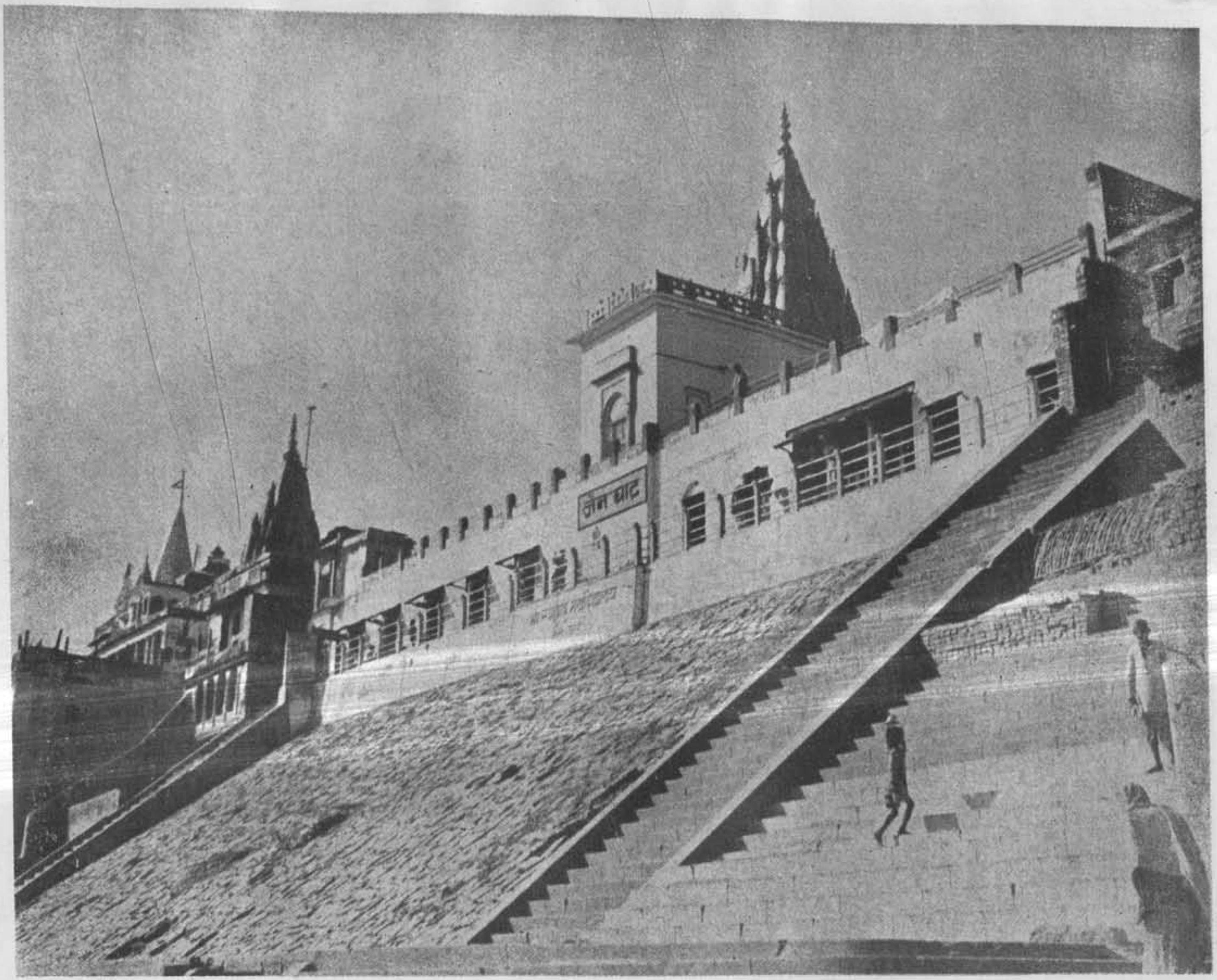

३१. वाराणसी—भदैनी घाट के मन्दिर और स्याद्वाद महाविद्यालय के पृष्ठ भाग का दृश्य

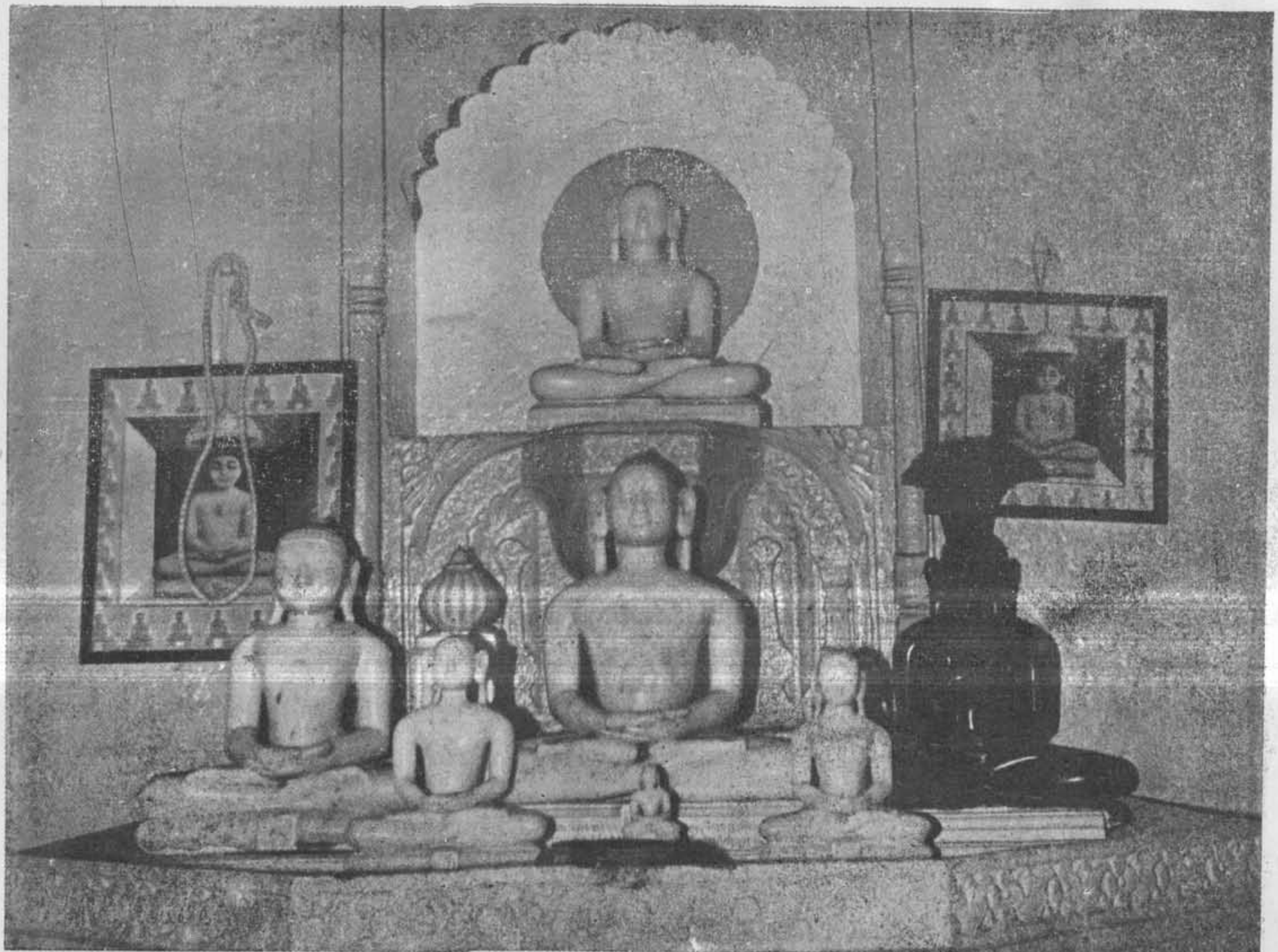

३२. वाराणसी—भगवान् सुपार्श्वनाथ की जन्मभूमि भदैनी घाट के मन्दिर की वेदी।

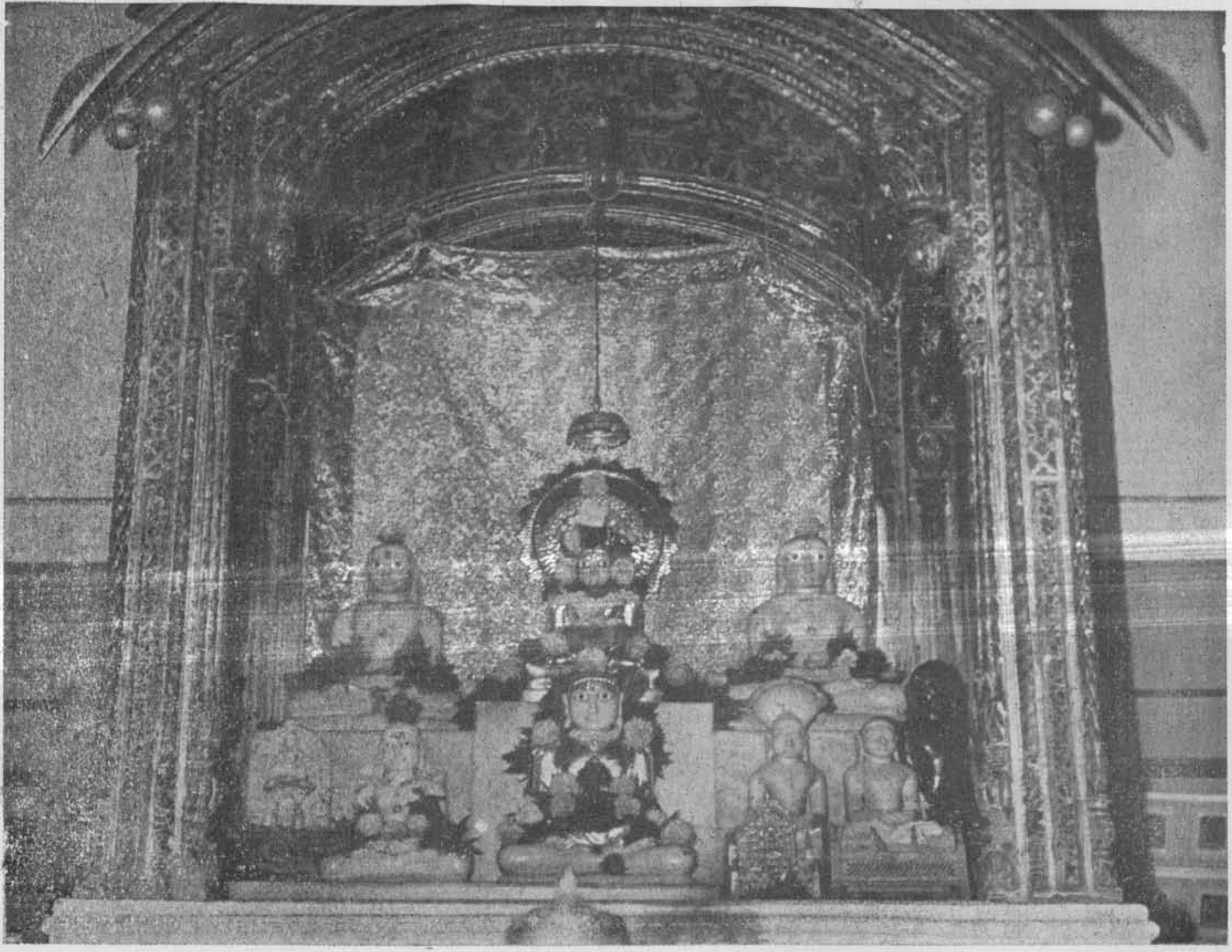

३३ वाराणसी—भगवान् पार्श्वनाथ के जन्म स्थल भेलूपुरा में दिगम्बर श्वेताम्बरों का संयुक्त मन्दिर ।

३४. वाराणसी—भेलूपुरा दिगम्बर जैन मन्दिर की मध्य वेदी ।

३५. वाराणसी––उदयसेन खड्गसेन के जैन मन्दिर में पद्मावती देवी की मनोज्ञ मूर्ति ।

३६. वाराणसी—राजघाट में भूगर्भ से प्राप्त पंच बालयति की मूर्ति।
८-९वीं शताब्दी।

३७. भगवान् श्रेयांसनाथ की जन्मभूमि सिंहपुरी के मन्दिर में भगवान् श्रेयांसनाथ की प्रतिमा।

३८. सारनाथ—भूगर्भ से प्राप्त प्राचीन तीर्थंकर-मूर्ति। ७वीं शताब्दी, लखनऊ संग्रहालय।

३९. भगवान् चन्द्रप्रभ की जन्म-नगरी चन्द्रपुरी के जैन मन्दिर की वेदी का दृश्य।

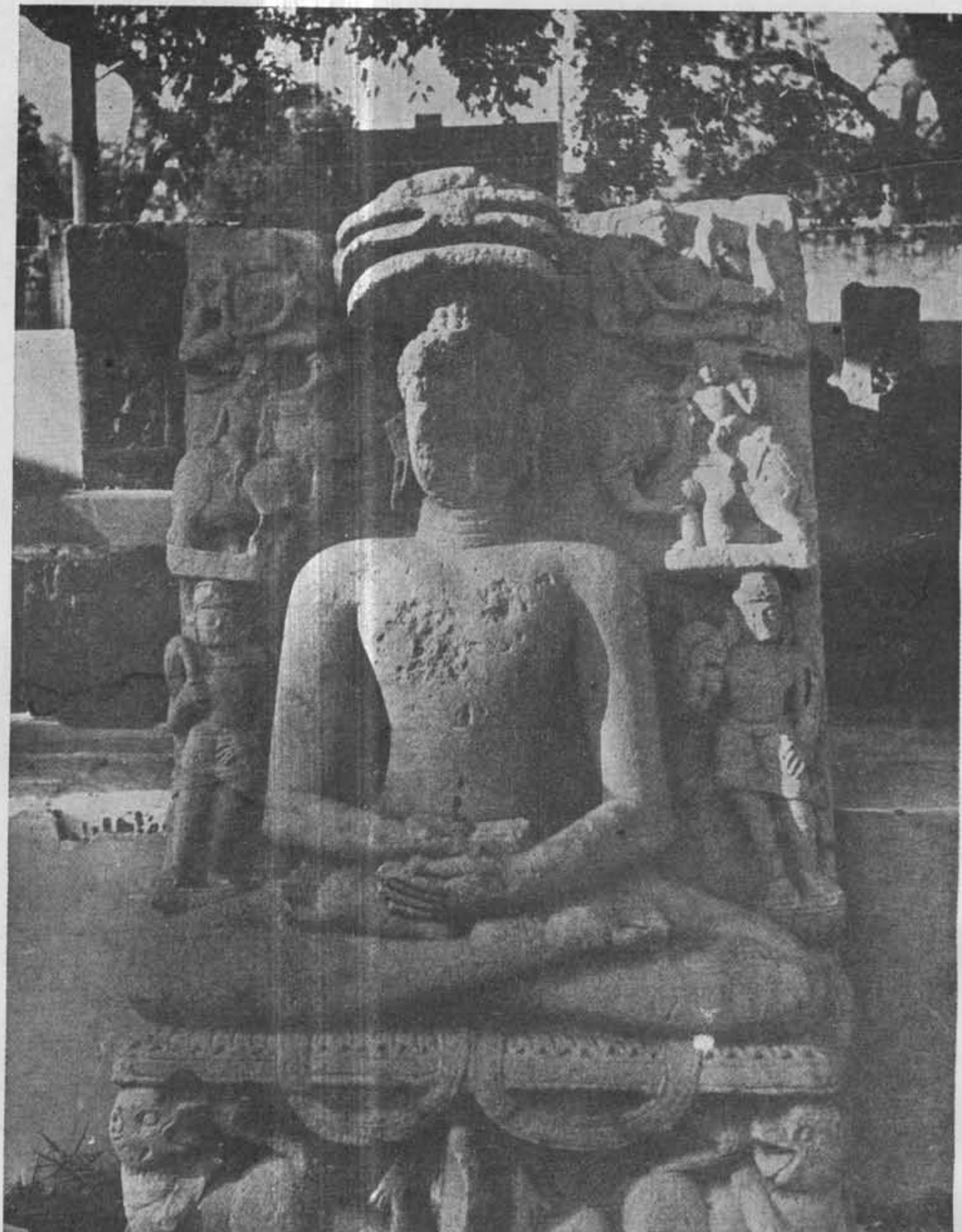

४०. प्रयाग—भगवान् चन्द्रप्रभ को छठवीं शताब्दी की प्रतिमा। प्रयाग संग्रहालय।

४१. प्रयाग—अम्बिका देवी की ६ फुट उन्नत भव्य मूर्ति। इस फलक पर चौबीस यक्षियों की मूर्तियाँ भी उत्कीर्ण हैं। प्रयाग संग्रहालय।

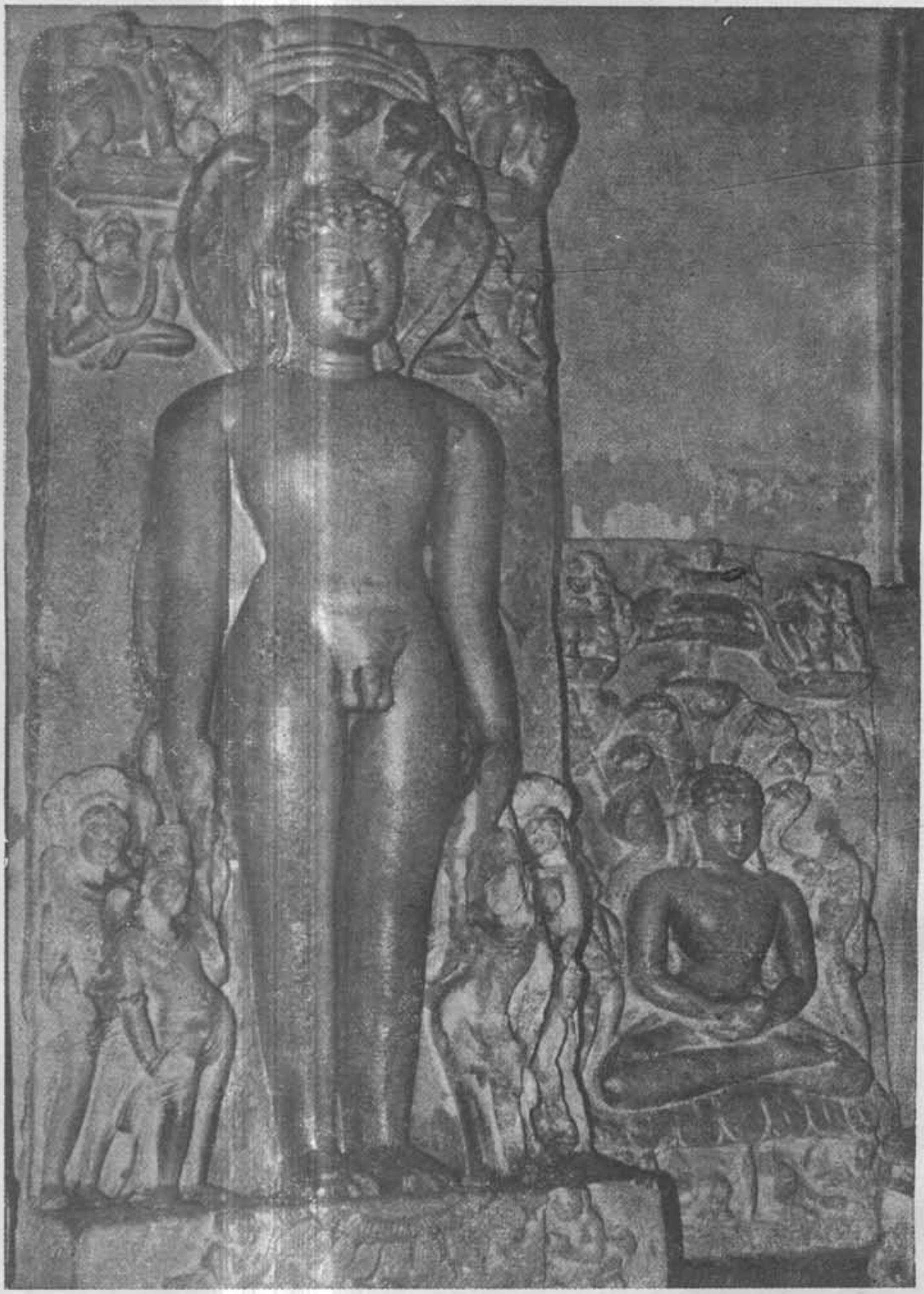

४२. प्रयाग—पार्श्वनाथ दिगम्बर जैन पंचायती मन्दिर में भूगर्भ से प्राप्त भगवान् पार्श्वनाथ की भव्य प्रतिमा ।

४३. प्रयाग—पंचायती दिगम्बर जैन बड़ा मन्दिर की वेदी का दृश्य । सभी प्रतिमाएँ प्राचीन हैं ।

४४. कौशाम्बी—दिगम्बर जैन मन्दिर में भगवान् पद्मप्रभ के चरण चिह्न, जहां भगवान् का जन्म हुआ था।

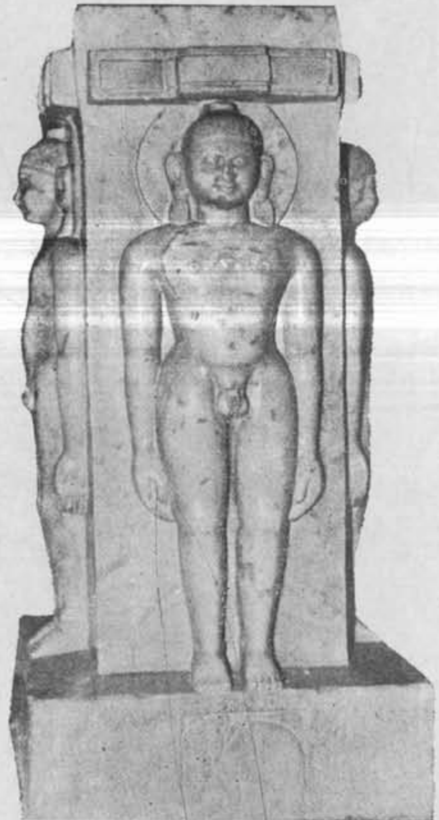

४५. कौशाम्बी—दिगम्बर जैन मन्दिर में चैत्य।

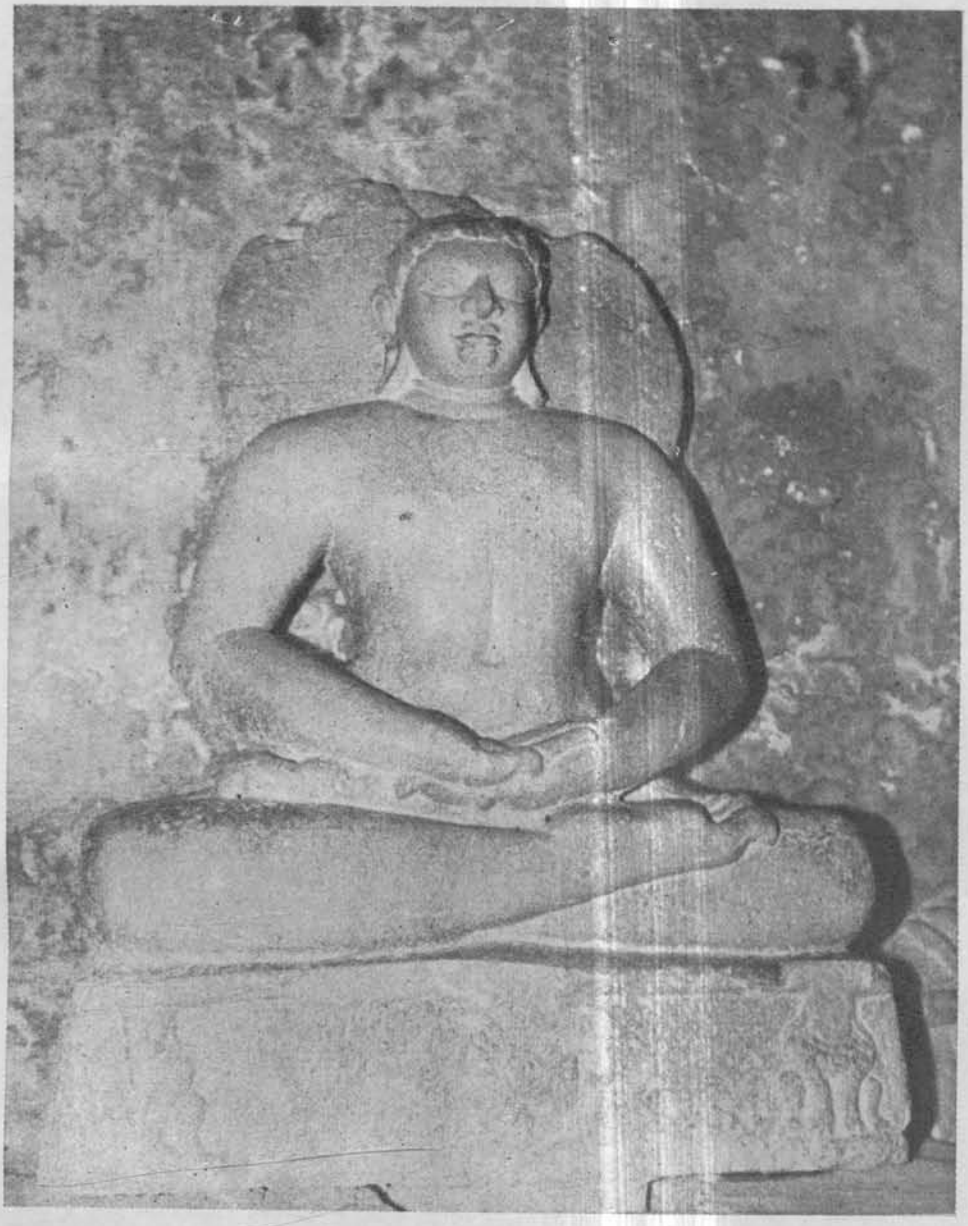

४६. पमौसा—दिगम्बर जैन मन्दिर में भगवान् पद्मप्रभ की सातिशय प्रतिमा।

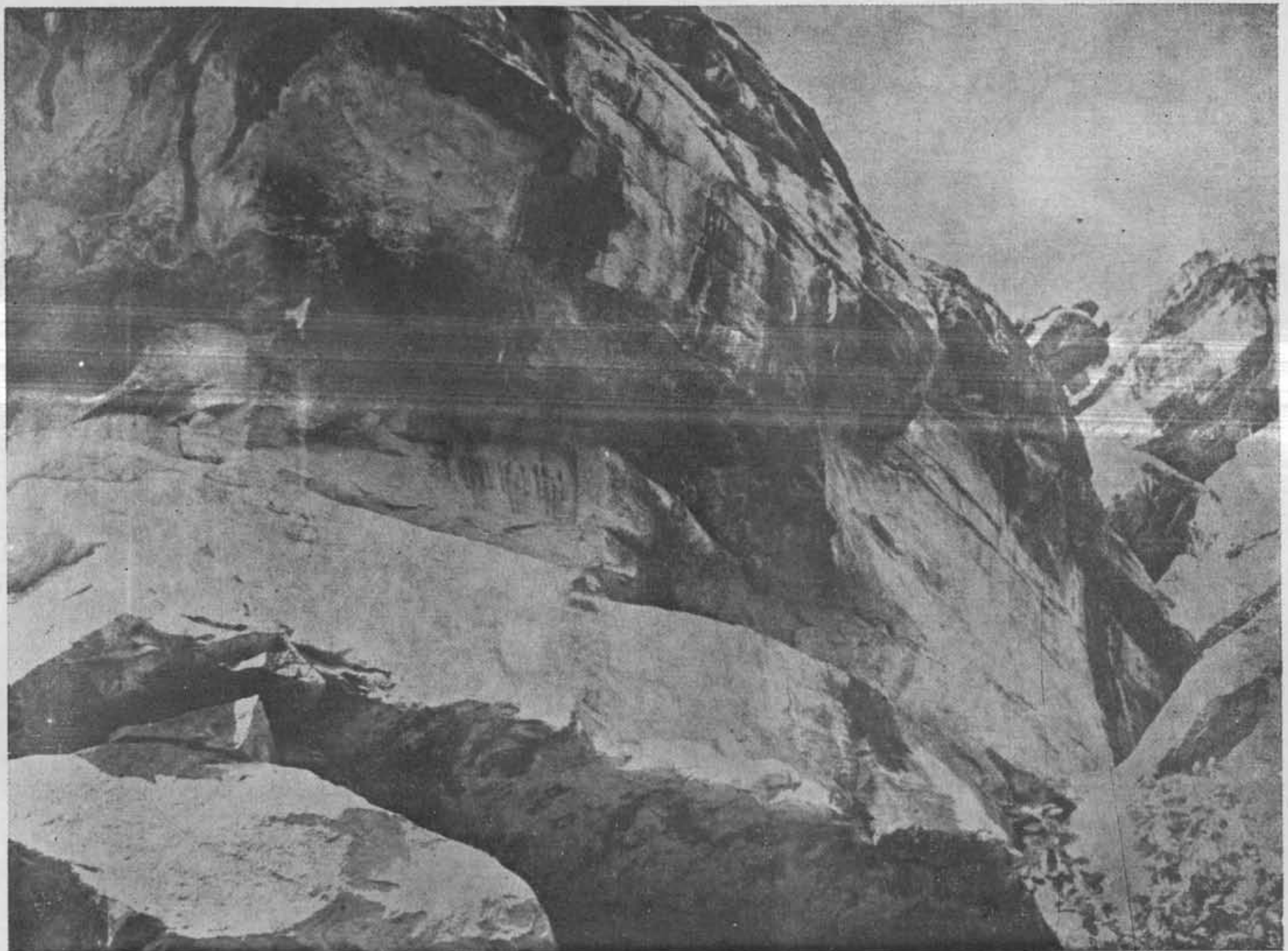

४७. पमौसा—दिगम्बर जैन मन्दिर के पीछे पहाड़ की एक शिला में उत्कीर्ण चार प्रतिमाएँ ।

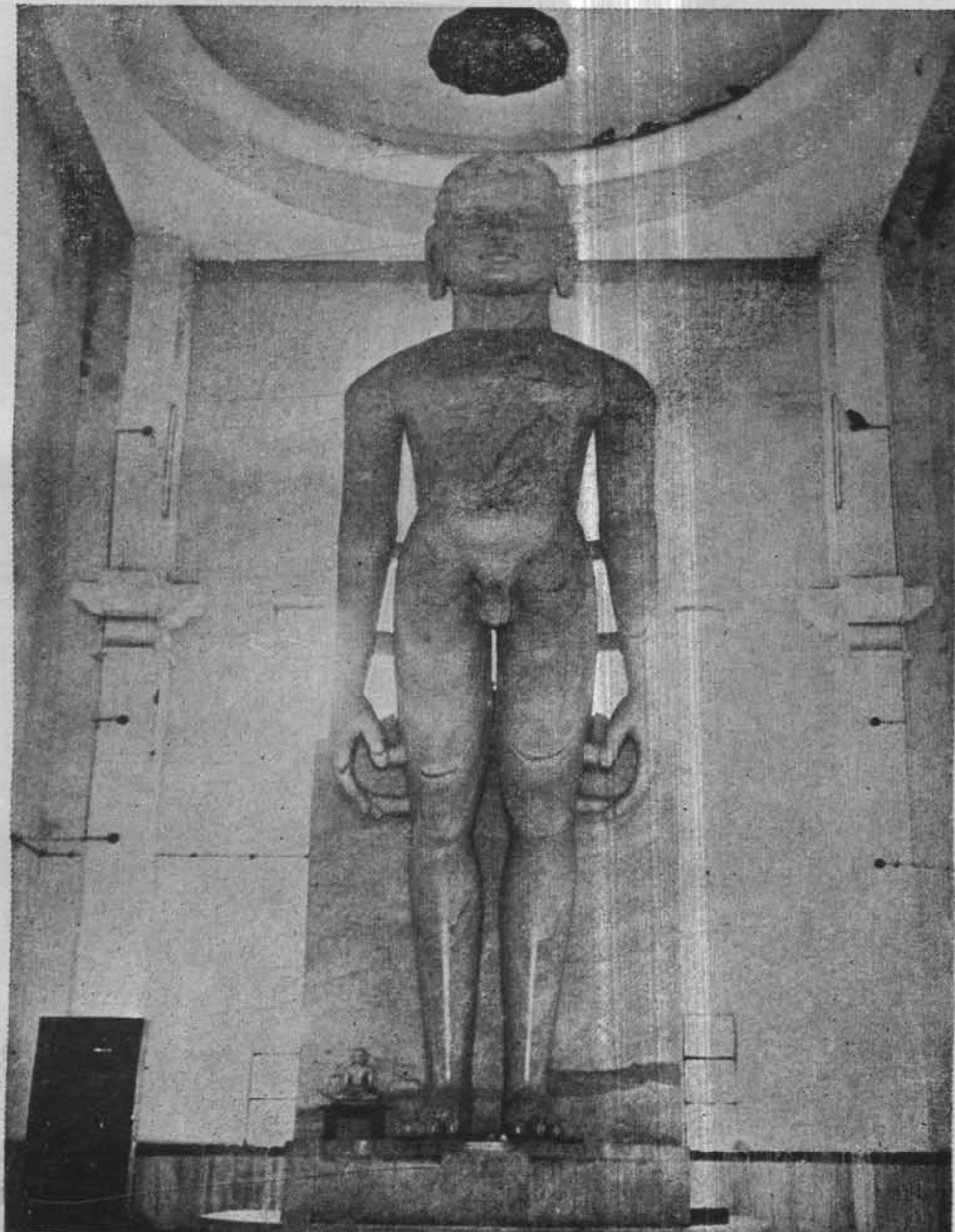

४८. अयोध्या—दिगम्बर जैन बड़ा मन्दिर में भगवान् ऋषभदेव की २८ फुट ऊँची प्रतिमा।

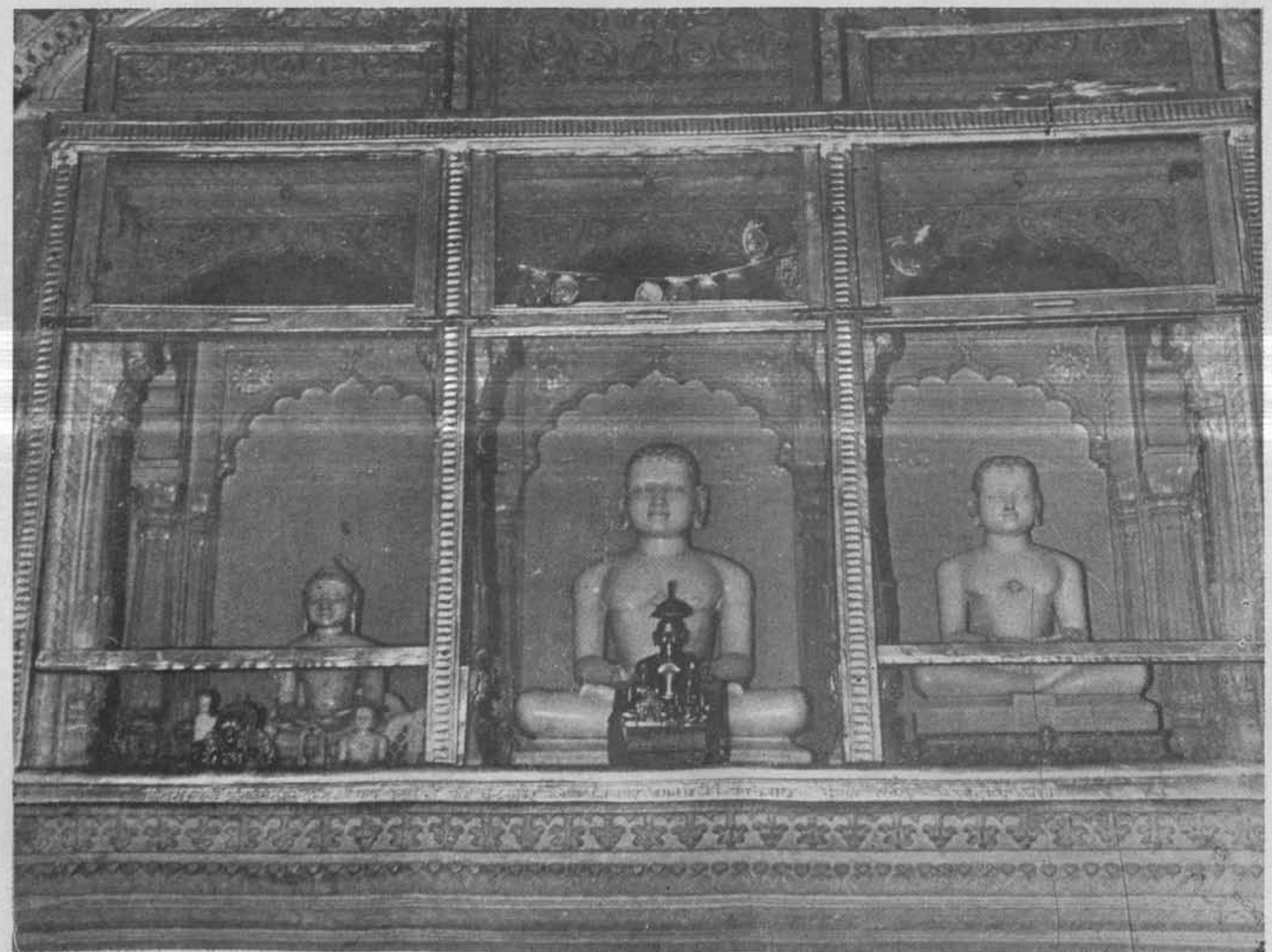

४९. अयोध्या—प्राचीन दिगम्बर जैन मन्दिर कटरा की मुख्य वेदी ।

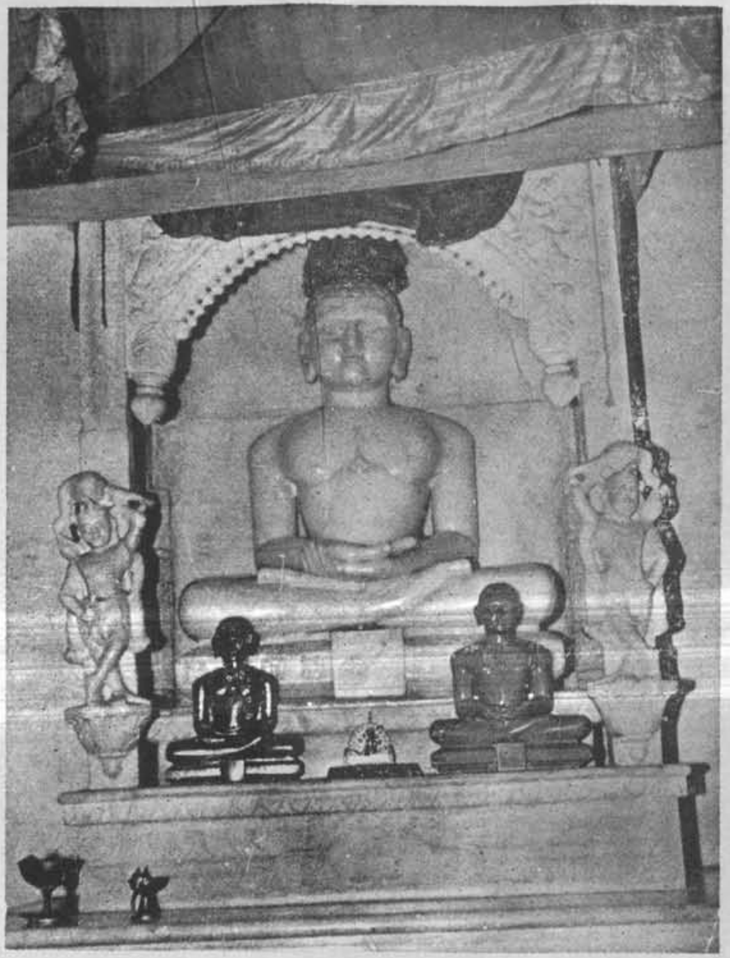

५०. तीर्थंकर धर्मनाथ की जन्म नगरी रतनपुरी के दिगम्बर जैन मन्दिर में धर्मनाथ भगवान् की मूर्ति

५१. रतनपुरी—भगवान् धर्मनाथ के चरण-चिह्न जहाँ भगवान् का गर्भ-कल्याणक हुआ था ।

५२. दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र त्रिलोकपुर भगवान् नेमिनाथ की प्रतिमा। वि० सं० ११९७।

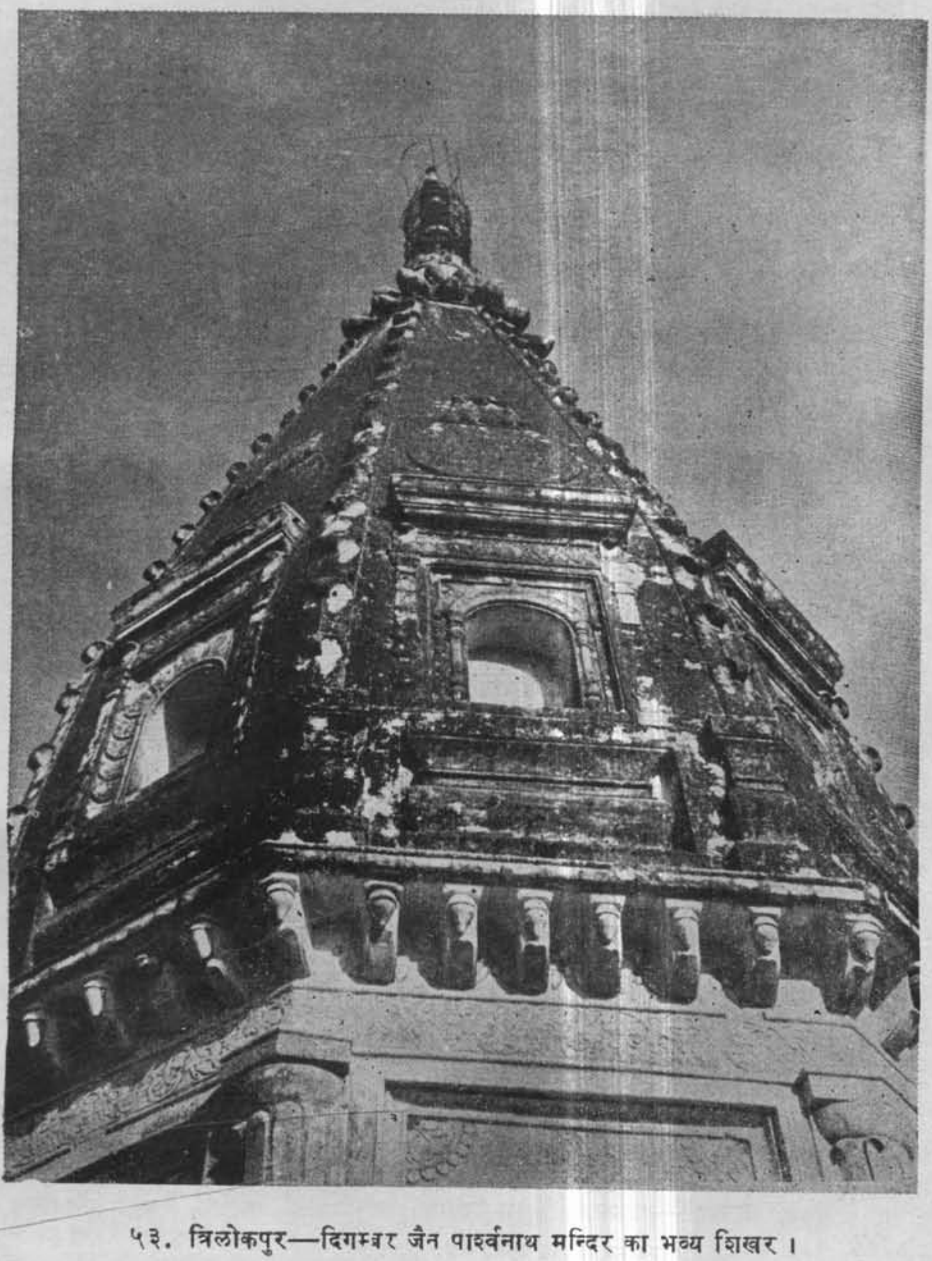

५३. त्रिलोकपुर—दिगम्बर जैन पार्श्वनाथ मन्दिर का भव्य शिखर ।

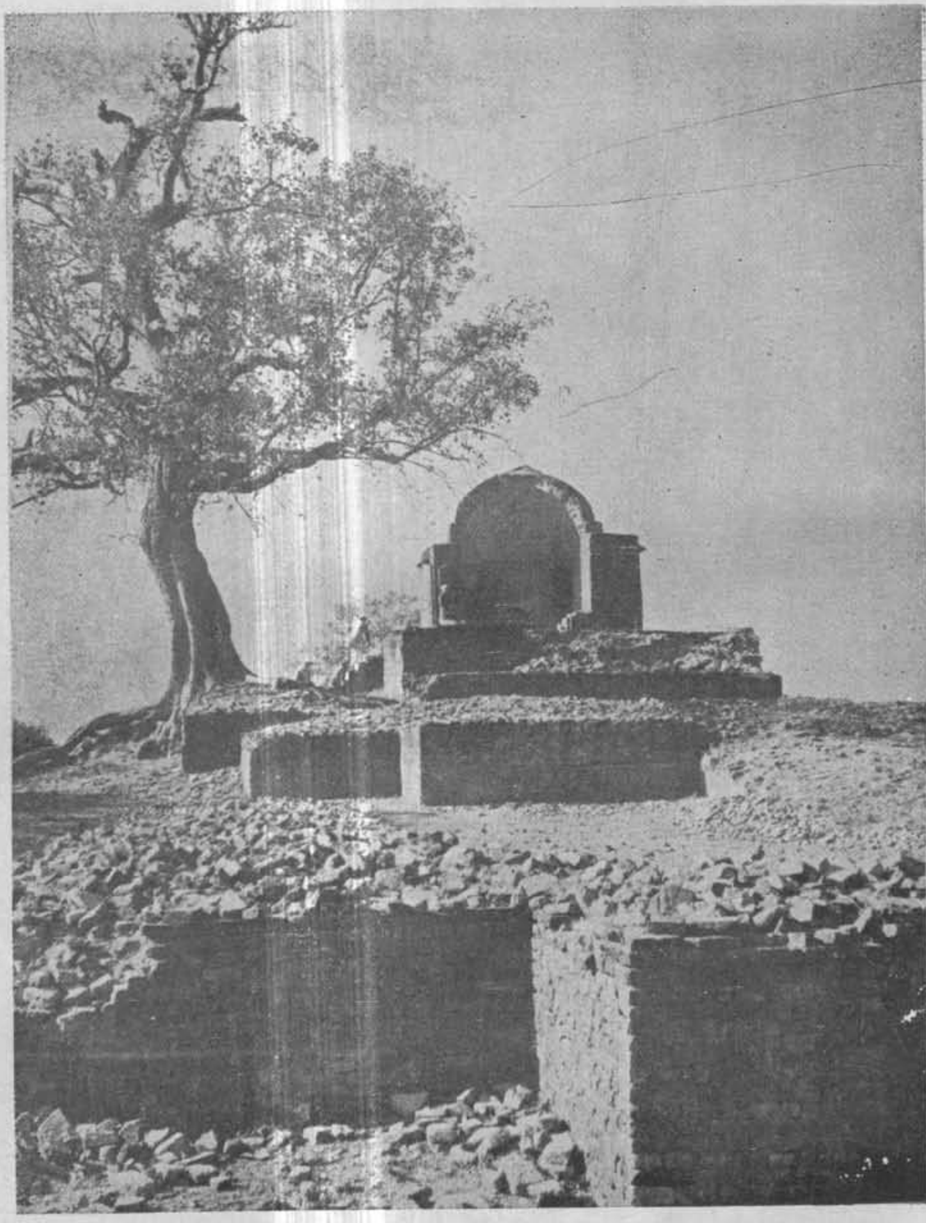

५४. श्रावस्ती—सोमनाथ (सम्भवनाथ) मन्दिर के अवशेष, जहाँ भगवान् सम्भवनाथ का जन्म हुआ था।

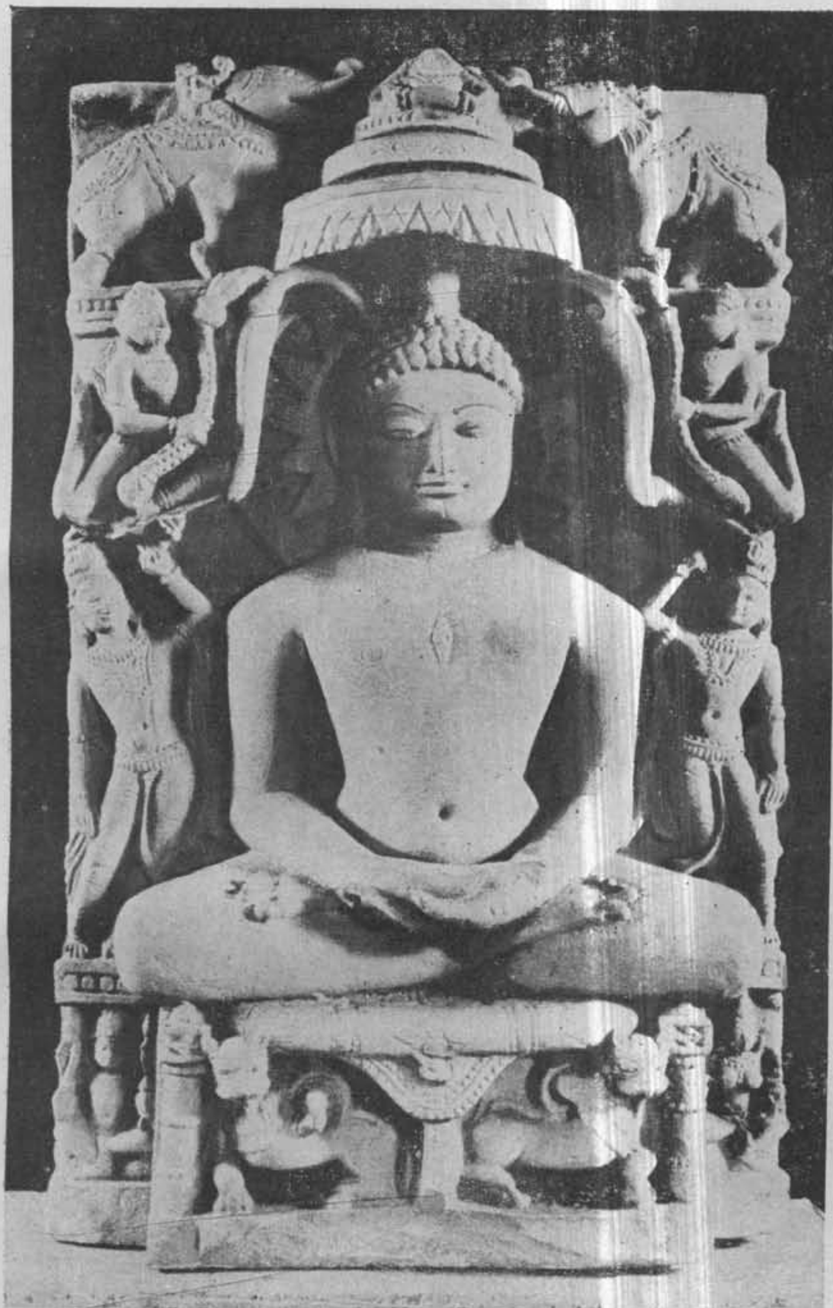

५५. श्रावस्ती में भूगर्भ से प्राप्त भगवान् नेमिनाथ की मनोज्ञ मूर्ति । ९वीं शताब्दी, लखनऊ म्युजियम ।

५६. श्रावस्ती में भूगर्भ से प्राप्त भगवान् महावीर की मूर्ति। १०वीं शताब्दी, लखनऊ म्युजियम।

५७ श्रावस्ती में प्राप्त भगवान् सम्भवनाथ की मूर्ति। ९वीं शताब्दी, लखनऊ म्यूजियम।

५८. काकन्दी (खुखुन्दू) भगवान् नेमिनाथ की भव्य प्रतिमा । समय अनुमानतः छठवीं शताब्दी ।

५९. काकन्दी (खुखुन्दू) में प्राप्त अम्बिकादेवी की मूर्ति । समय १२वीं शताब्दी, लखनऊ राजकीय संग्रहालय ।

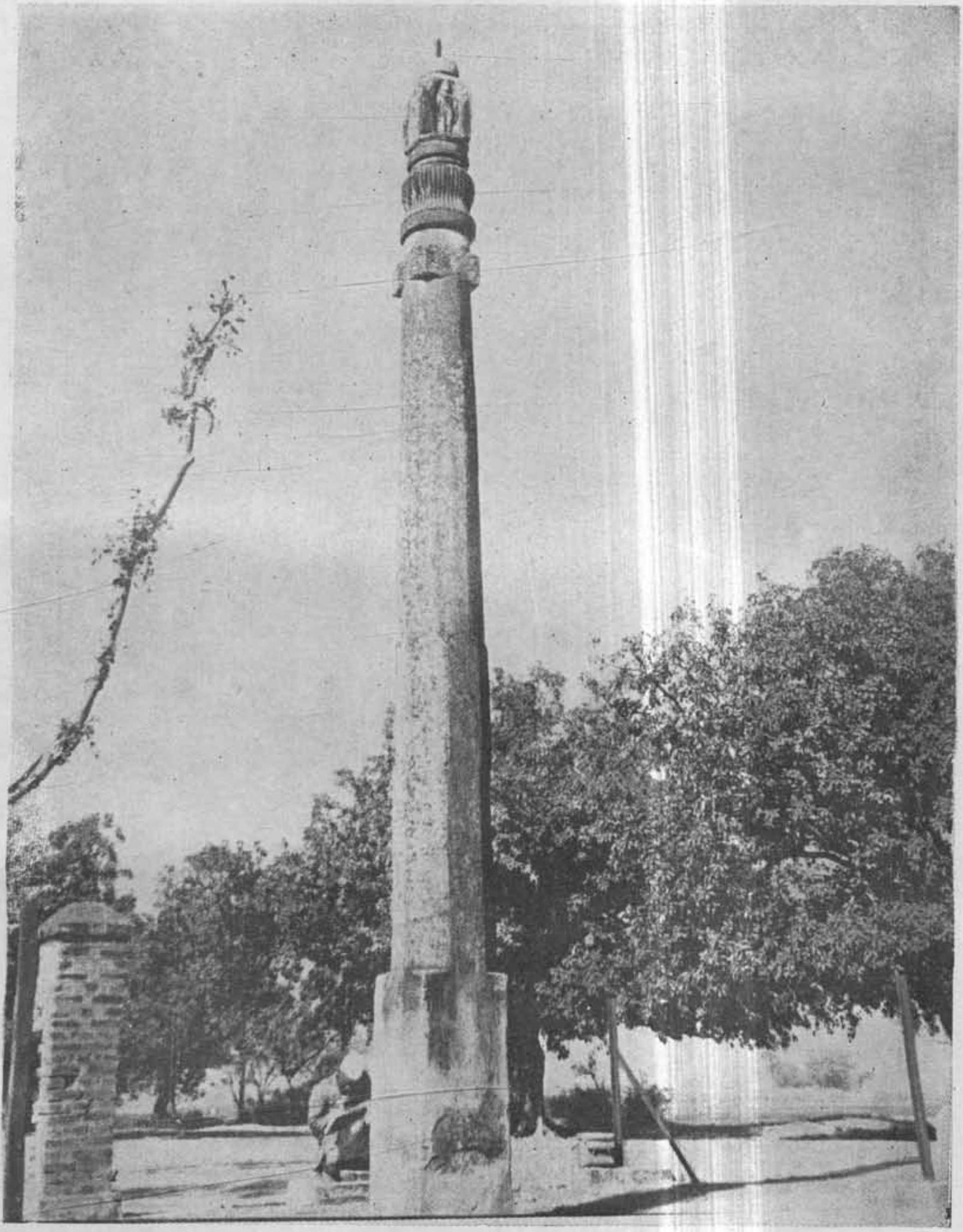

६०. ककुभग्राम (कहाऊँ) में गुप्त कालीन मानस्तम्भ। शीर्ष पर ८ जिन प्रतिमाएँ विराजमान हैं ।

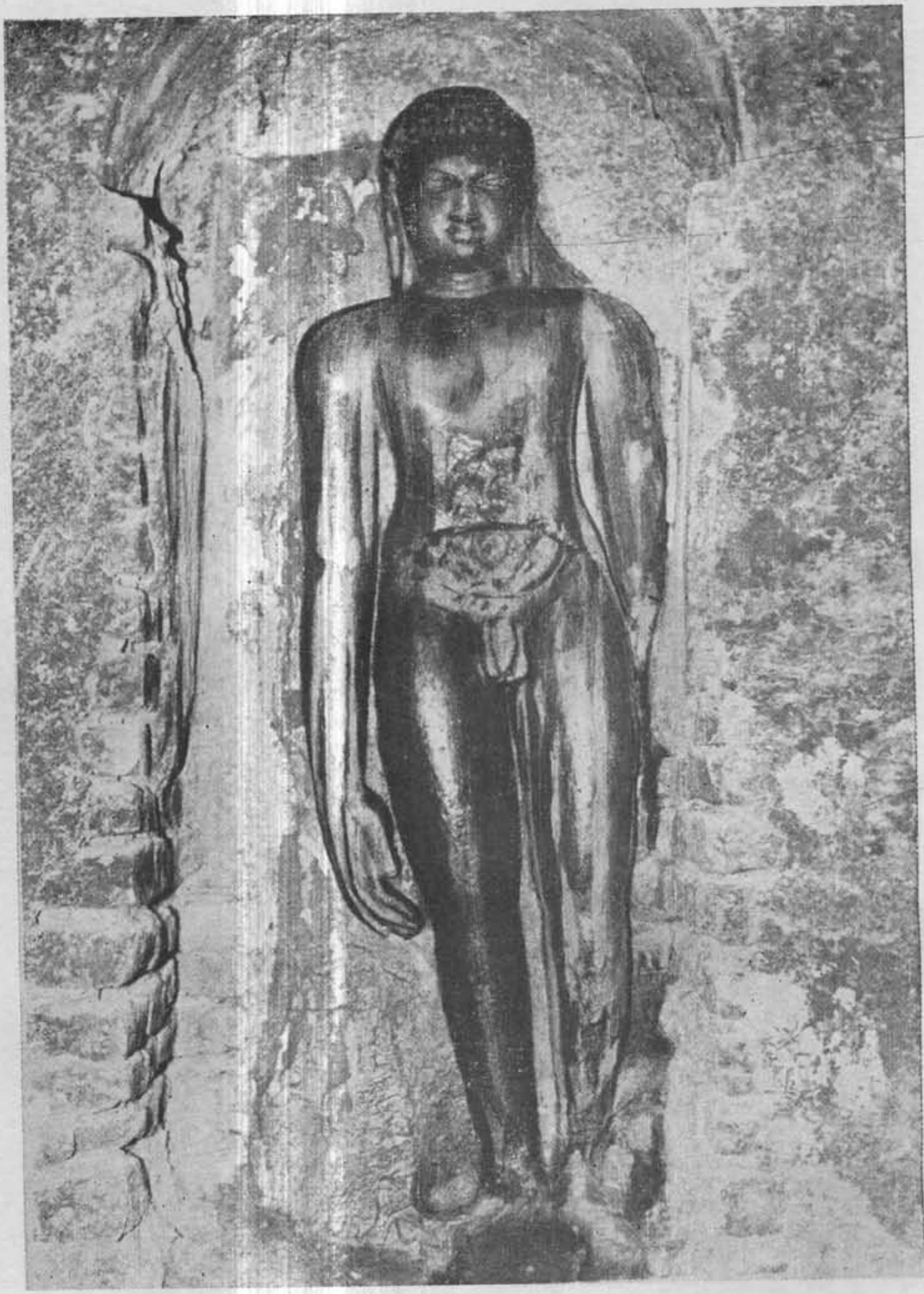

६१. कुकुमग्राम (कहाऊँ) में गुप्तकालीन पार्श्वनाथ प्रतिमा । प्रतिमा खण्डित है ।

६२. देवगढ़-मन्दिर नम्बर १२ की भीतरी भित्ति में जैन मूर्तियाँ ।

६३. देवगढ़—भीतरी चहारदीवारी में जैन मूर्तियाँ ।

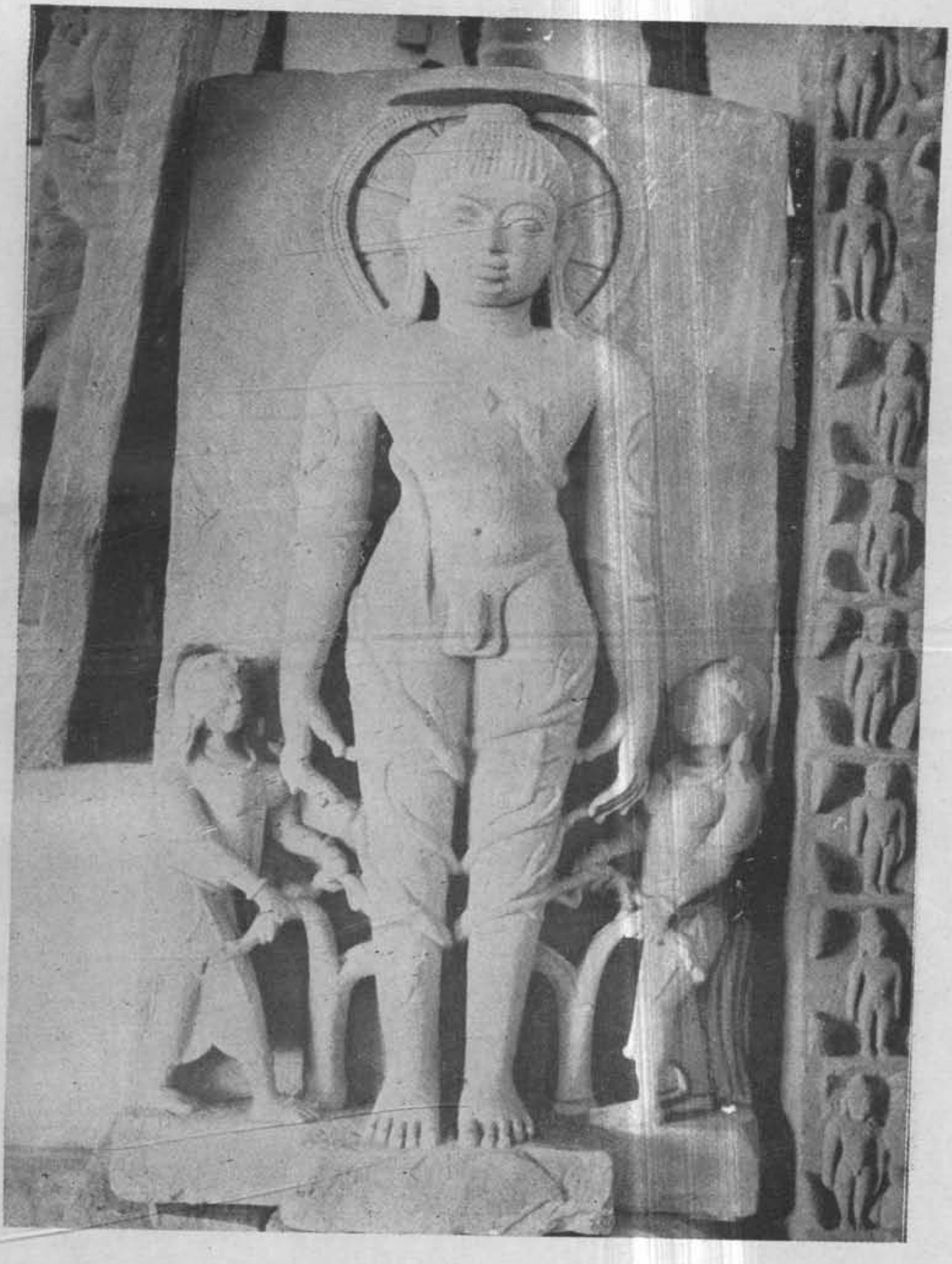

६४. देवगढ़—बाहुबली का भव्य प्रतिमा। किन्नरियाँ लताओं को हटाती हुई।

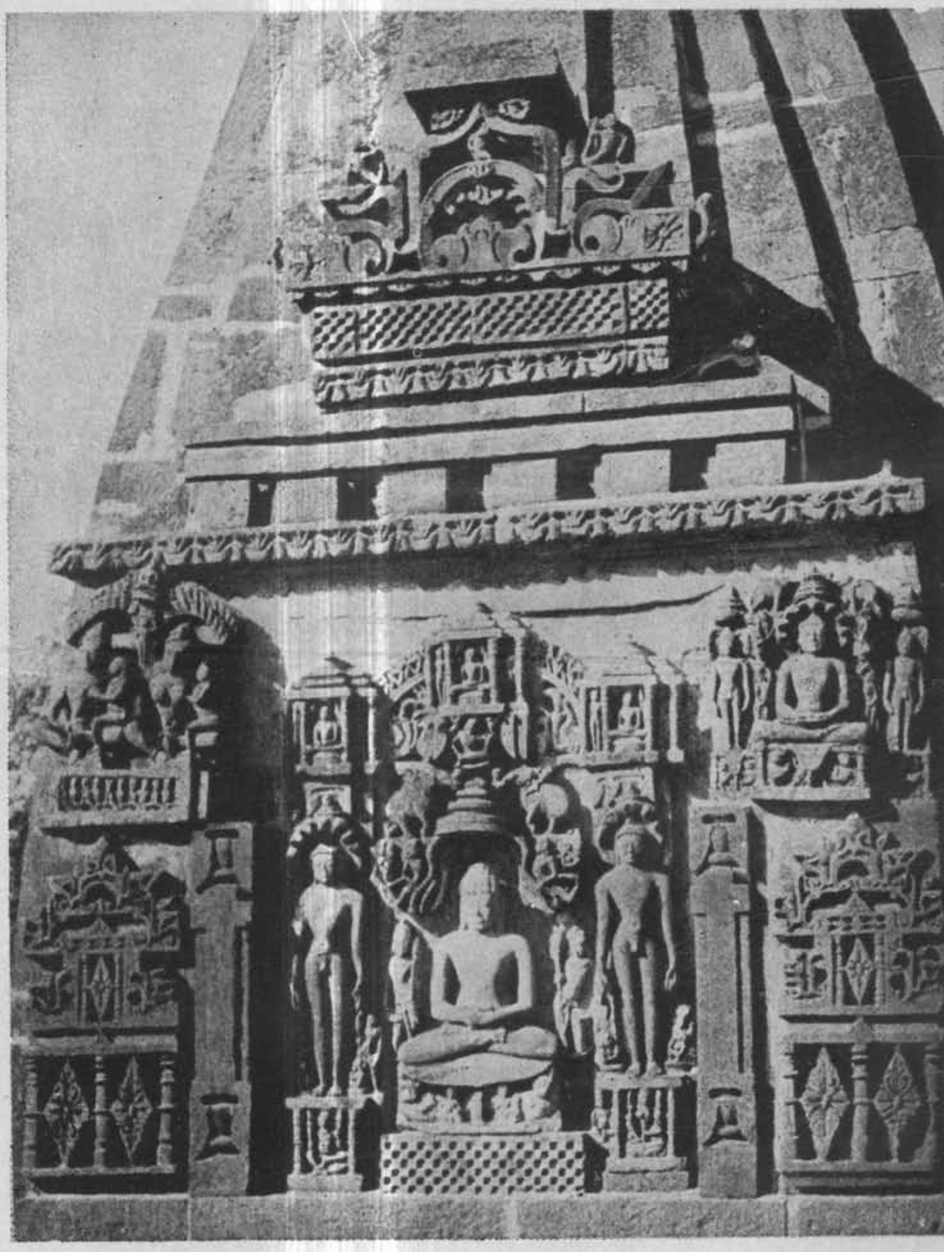

६५. देवगढ़—एक मन्दिर में शुकनासिका का दृश्य।

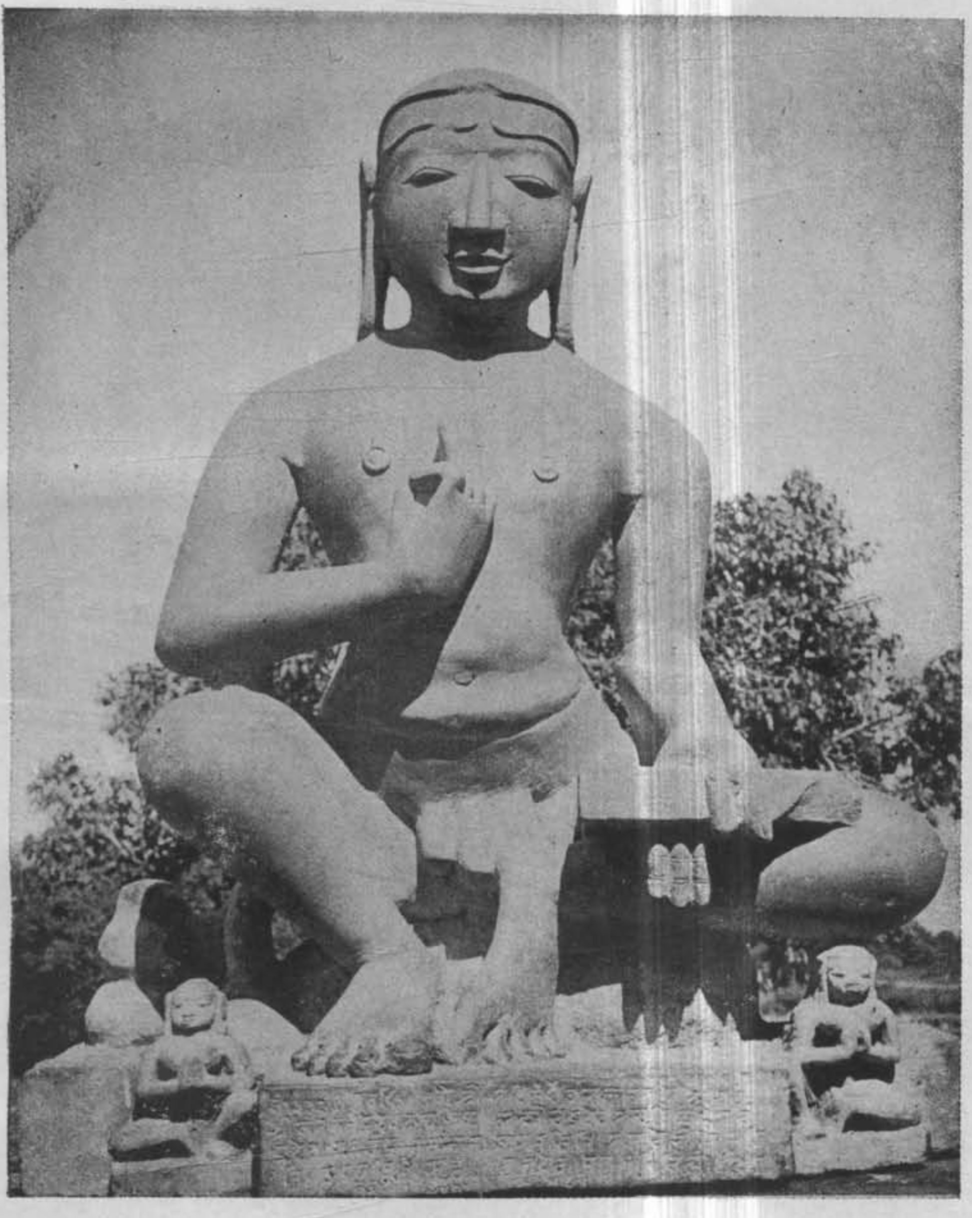

६६. देवगढ़—उपाध्याय परमेष्ठी की सौम्य मूर्ति ।

६७. देवगढ़—एक जैन मन्दिर के सामने भव्य मानस्तम्भ ।

६८. देवगढ़—एक दीवाल में अनेक जैन प्रतिमाएँ।

६९. देवगढ़—साहू जैन संग्रहालय में विंशतिभुजी चक्रेश्वरी ।

७०. सैरोन—गोमेध यक्ष और अम्बिका यक्षी। शीर्ष पर तीर्थंकर नेमिनाथ विराजमान हैं।

७१. सैरोन क्षेत्र के जैन मन्दिरों का भव्य दृश्य। केन्द्रीय सर्वेक्षण विभाग, आगरा क्षेत्र।

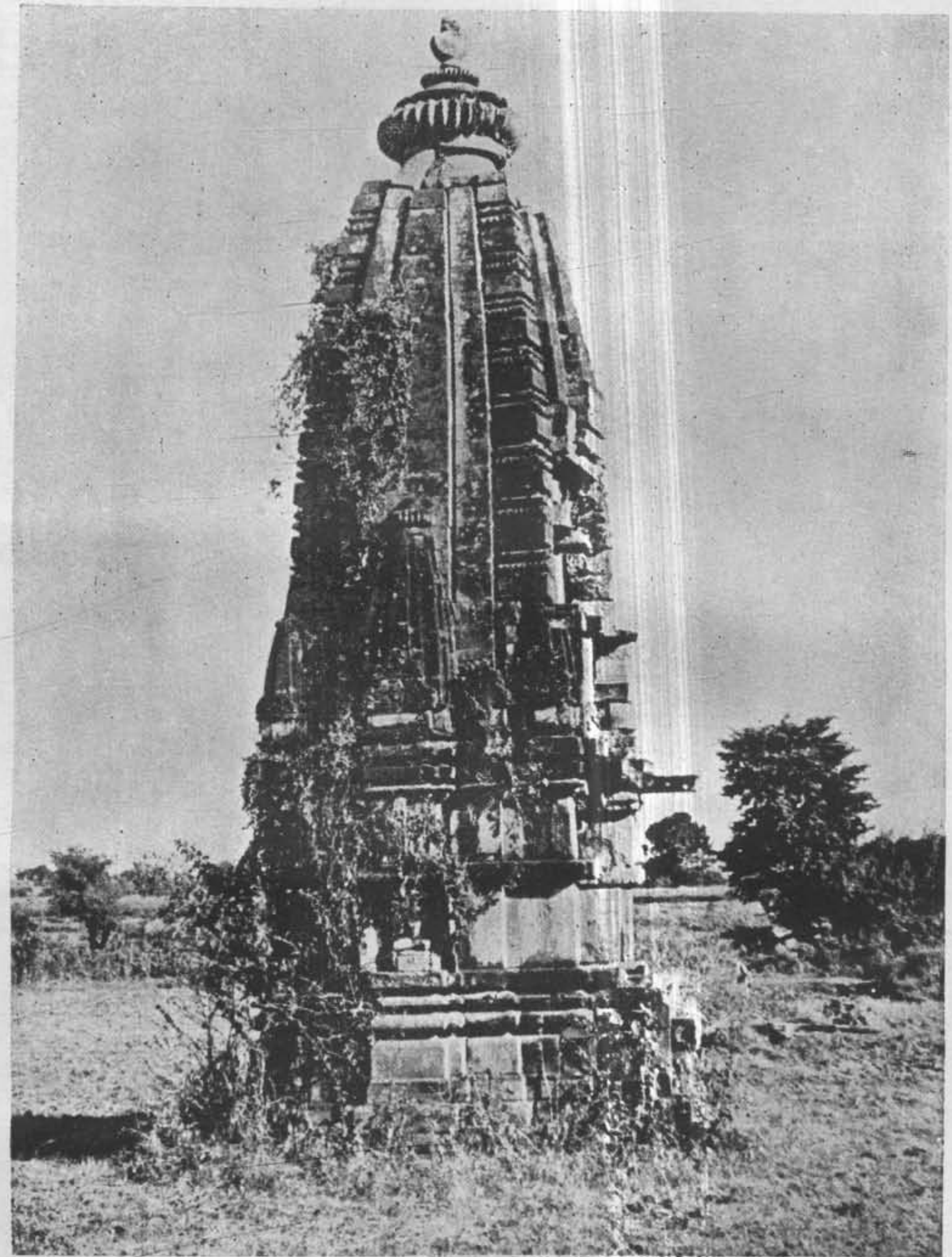

७२. सीरोन—एक भग्न मन्दिर ।

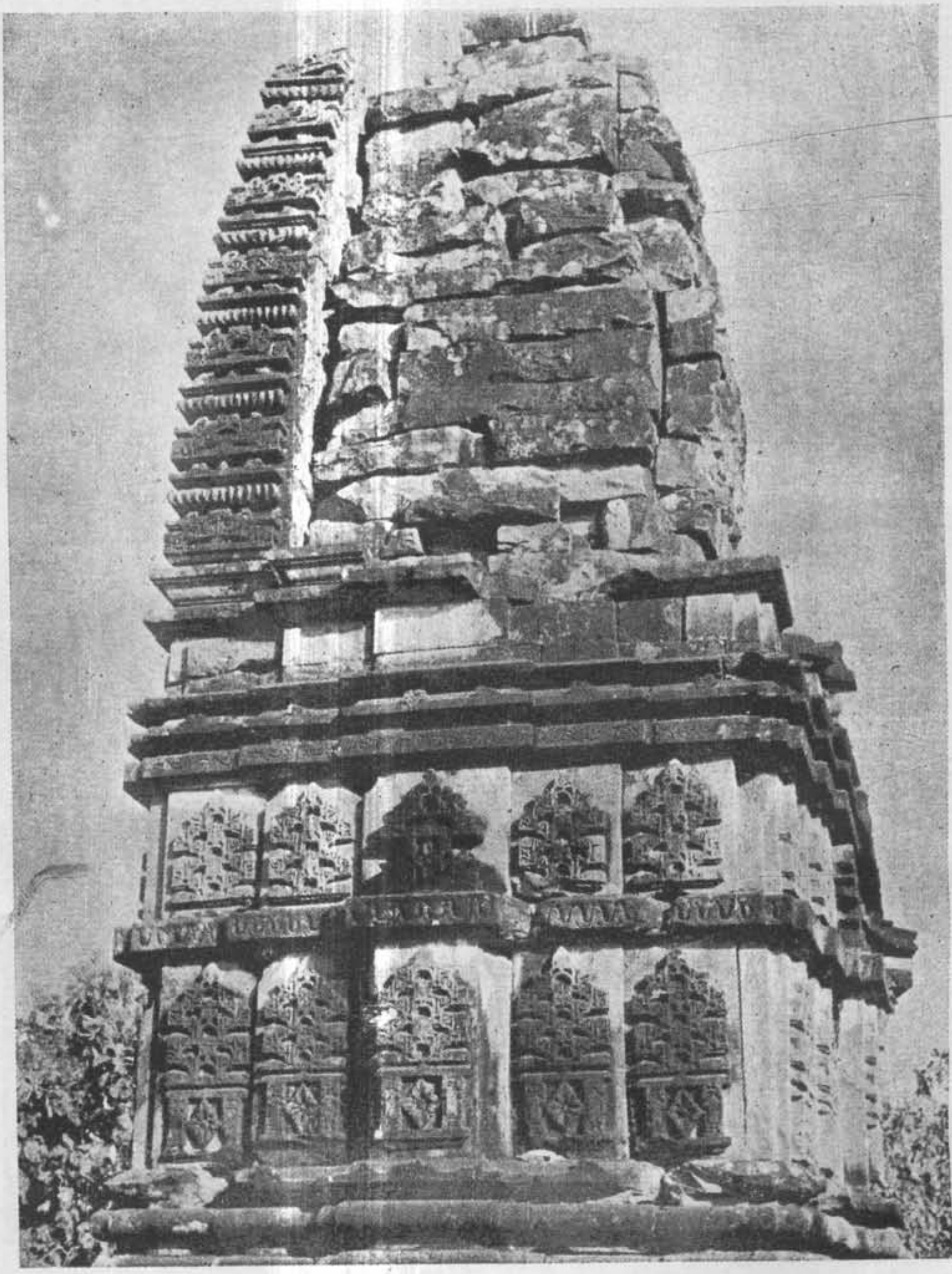

७३. चाँदपुर—क्षेत्र पर स्थित प्राचीन जैन मन्दिर।

७४. चाँदपुर क्षेत्र--कुछ खण्डित मूर्तियाँ ।

७५. दुधई क्षेत्र—जैन मन्दिर और उसका अद्भुत शिखर।

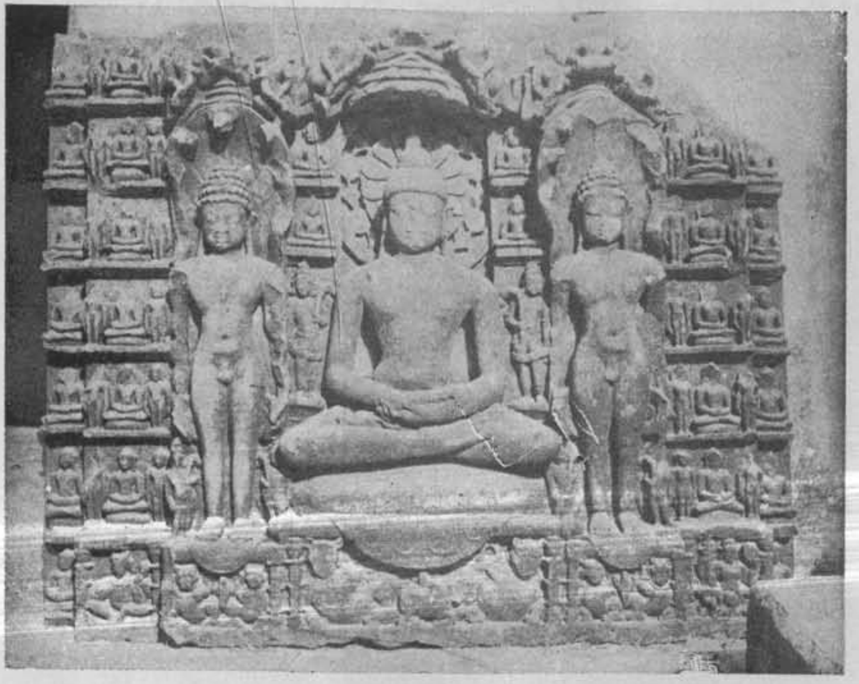

७६. बानपुर—एक शिलाफलक जिस पर ५६ कलात्मक मूर्तियाँ उत्कीर्ण हैं।

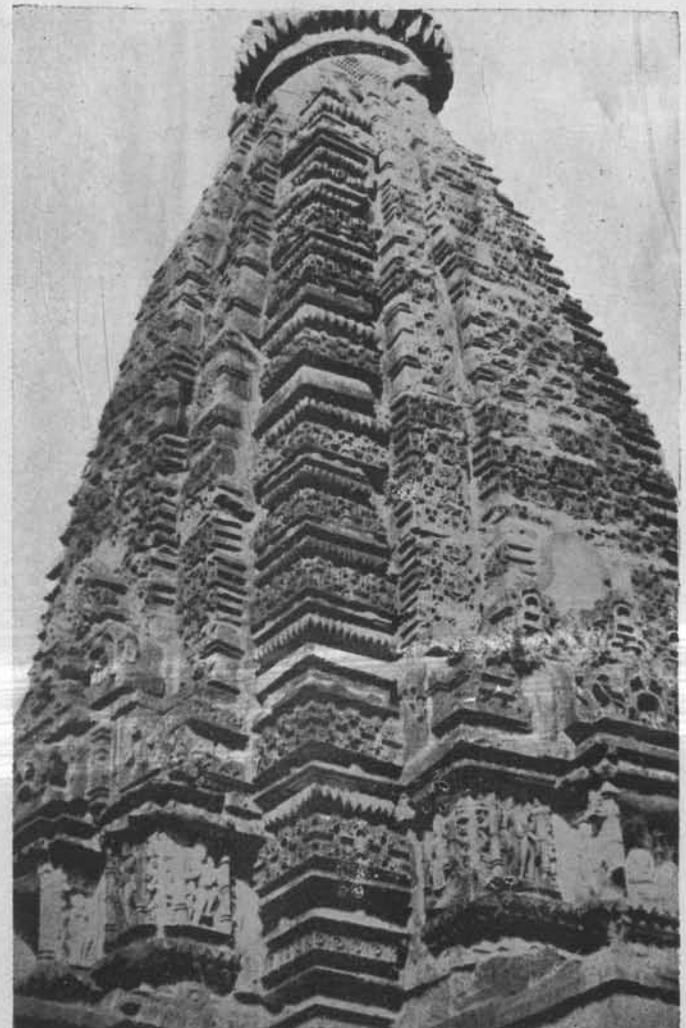

७७. बानपुर—सहस्रकूट चैत्यालय का शिखर।

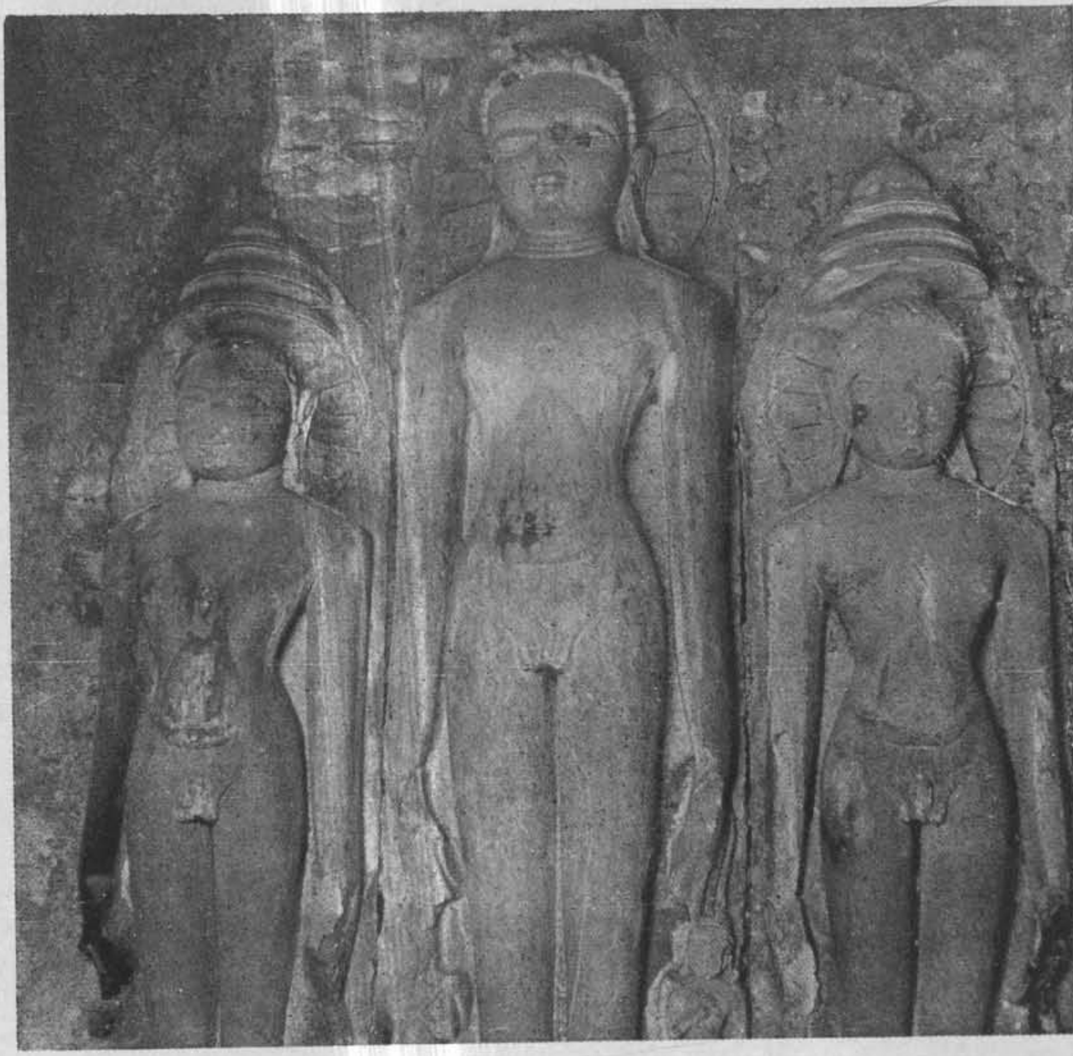

७८. मदनपुर—मोदीमठ में शान्तिनाथ, कुन्थुनाथ और अरहनाथ ।

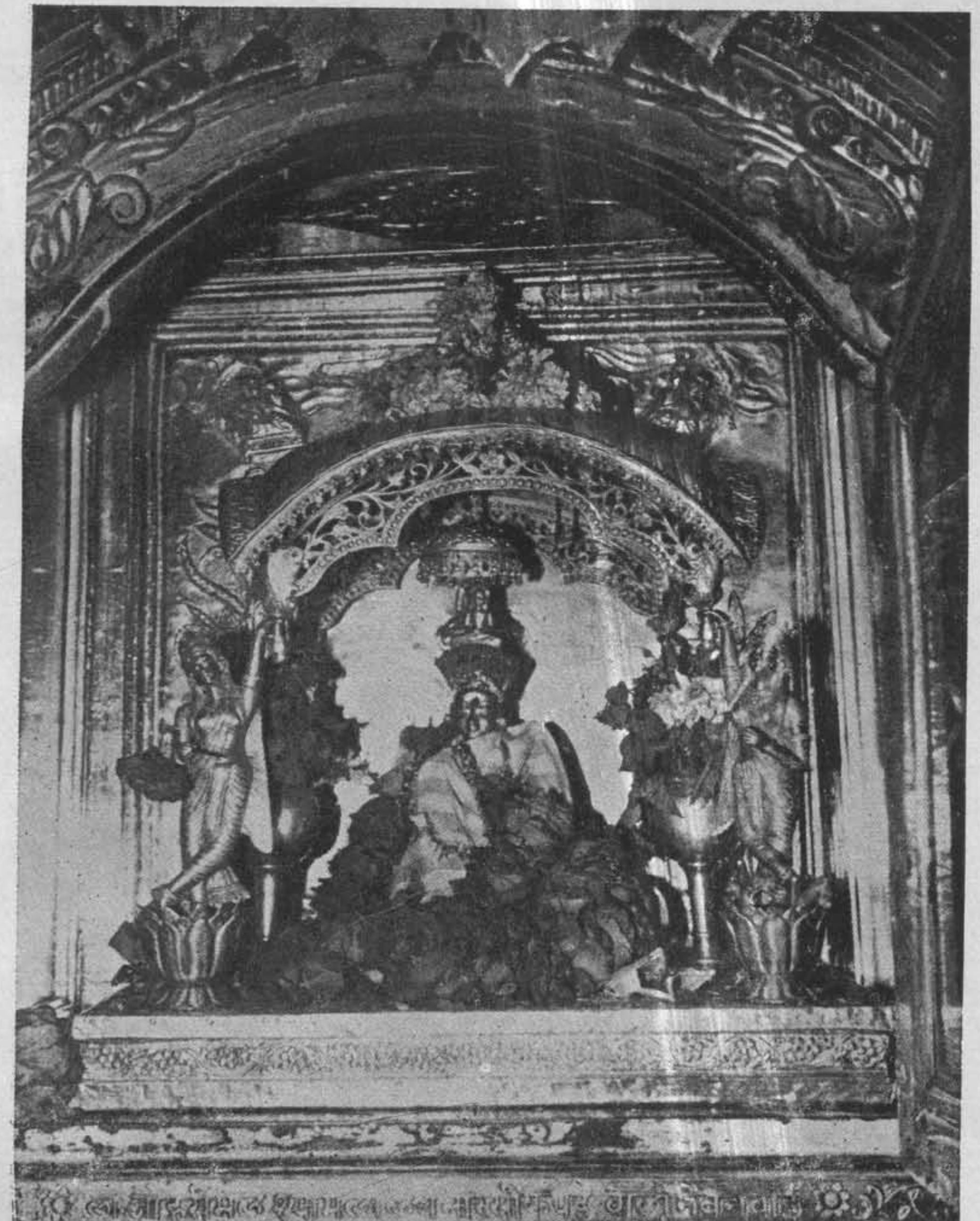

७९. दिल्ली—श्री दिगम्बर जैन लाल मन्दिर पद्मावती देवी की सातिशय प्रतिमा ।

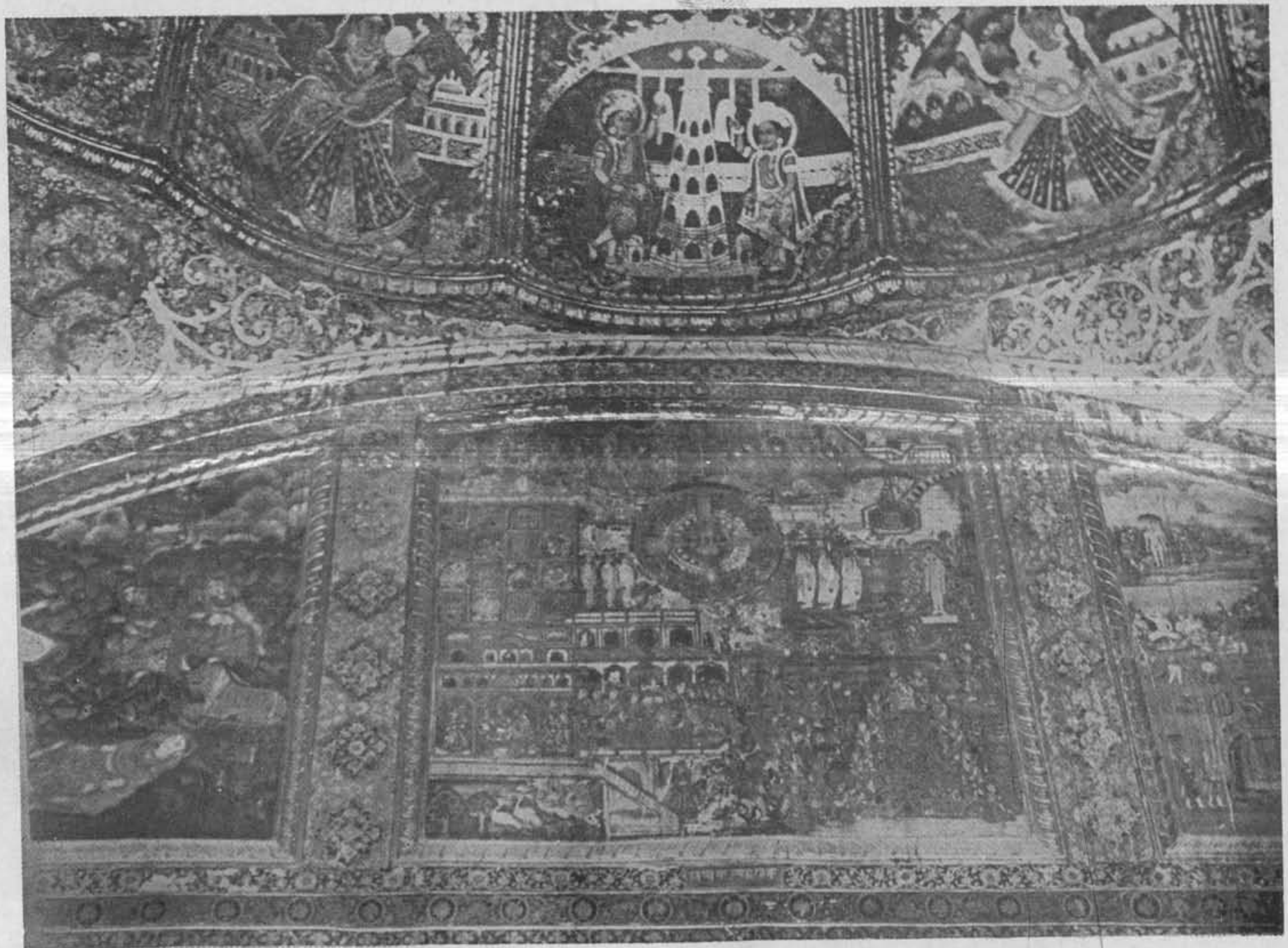

८०. दिल्ली—श्री दिगम्बर जैन लाल मन्दिर में भित्ति चित्र ।

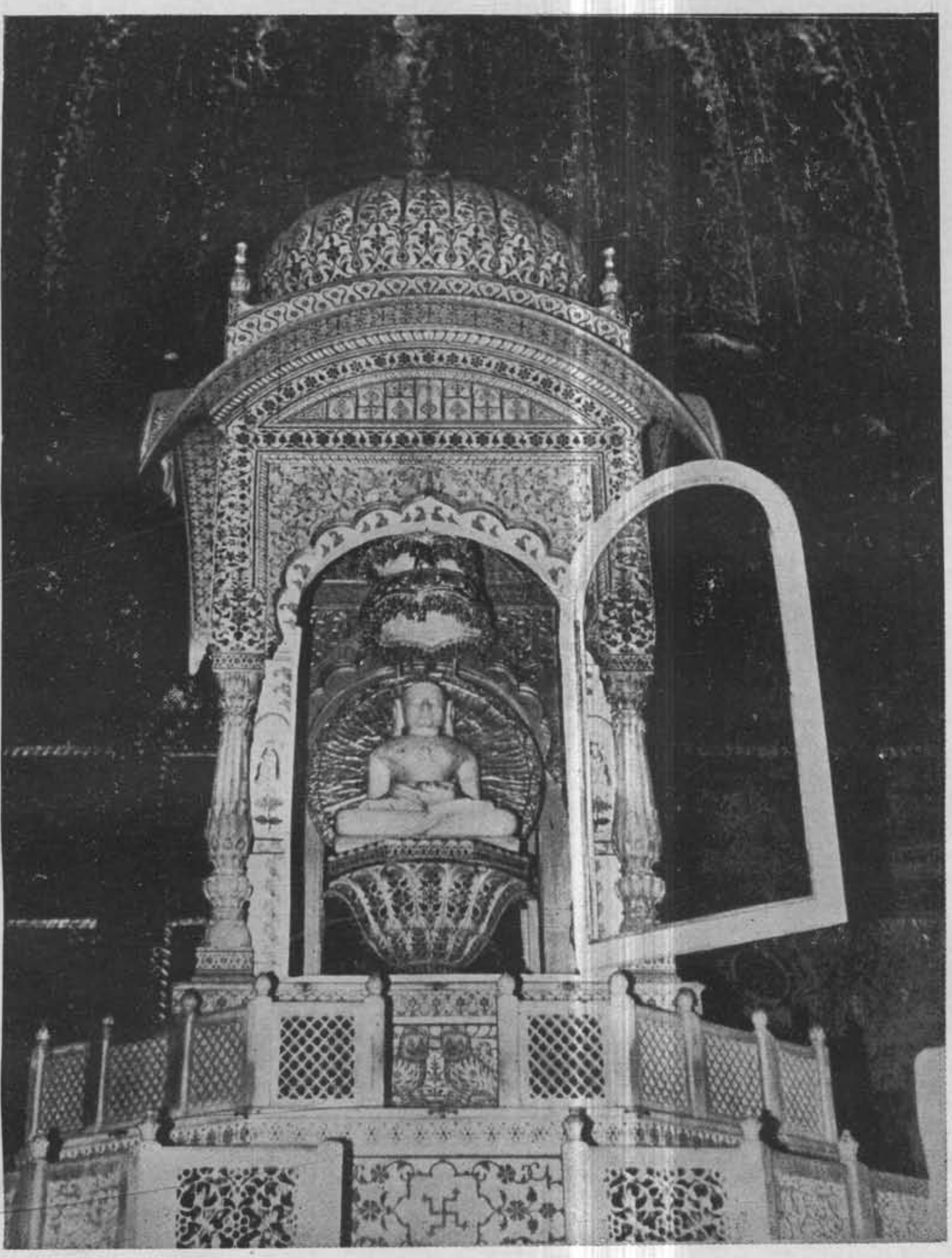

८१. दिल्ली—श्री दिगम्बर जैन नया मन्दिर, धर्मपुरा की कलापूर्ण मुख्य वेदी ।

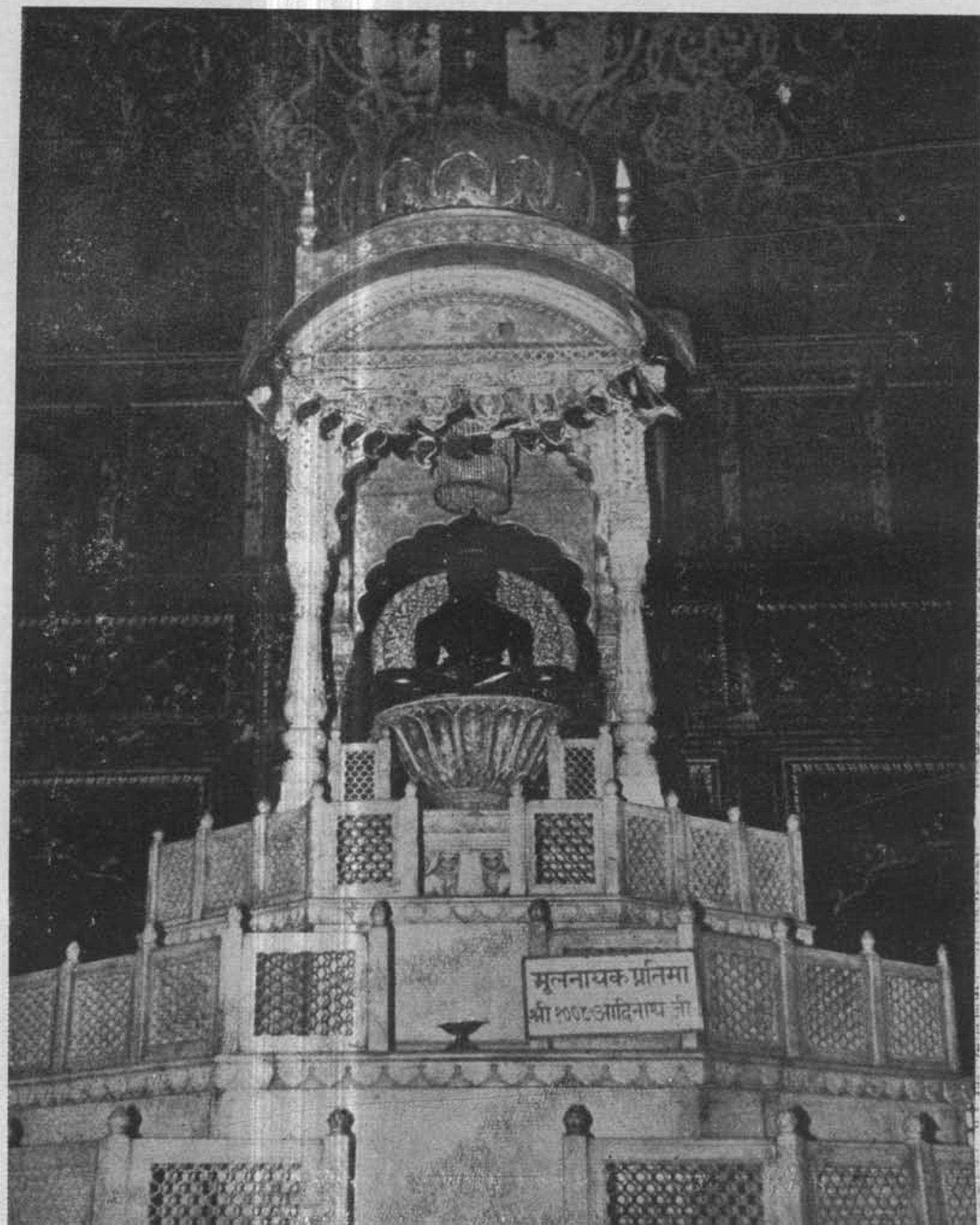

८२. दिल्ली—सेठ का कूचा मन्दिर की मुख्य वेदी और मूलनायक भगवान् आदिनाथ ।

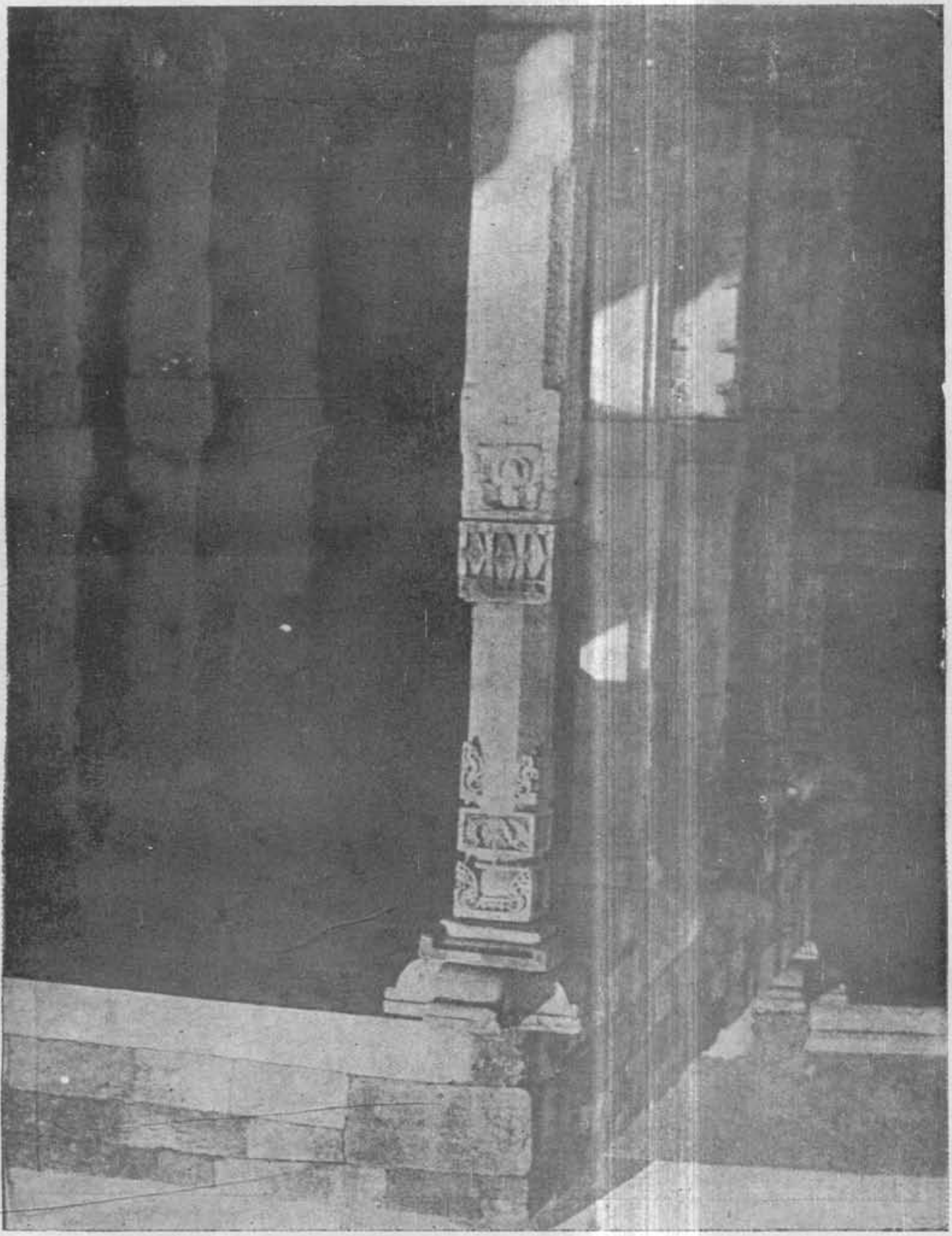

८३. दिल्ली—कुव्वतुल इस्लाम मस्जिद (जैन मन्दिर) का एक स्तम्भ जिसमें तीन ओर पद्मासन तीर्थंकर मूर्तियाँ बनी हुई हैं।